

પ્રકાશક—

શ્રીમન્ત સેઠ ઝંમીચન્દ્ર શિતાનરાય,

જૈન સાહિત્યોદ્ધારક ફંડ કાર્યાલય

અમરાવતી (ગુજરાત)



મદદ—

ડૉ. જી. પારીલ,

મંત્રી

મગધની ટ્રિબ્યુનલ પ્રમ, ખારાવતી

THE ṢAṬKHAṆḌĀGAMA

OF

PUSPADANTA AND BHŪTABALI

WITH

THE COMMENTARY BHAVAVI OF VIPASENA

VOL. I

SATPRARŪPANĀ

Introduction

of the Satprarūpanā and its contents

BY

HIRALAL JAIN, M.A., LL.B.

(Formerly at the Service of the Government of Amraoti)

1937/1938

Manit Phoolchandra
Siddhanta Sastri

*

Manit Hiralal Siddhanta Sastri
Nyayatirtha

Warrant of Appointment of

Manit Devakinandan
Siddhanta Sastri

*

Dr. A. N. Upadhye,
M.A., D.Litt.

Published by

Shrimant Seth Laxmichandra Shitabral

1, Vaidik Chakr, Lucknow

AMRAOTI (India)

1939

Price rupees ten only

Published by—

Prasant Seth Laxmichandra Shastri,

Jun Sahitya Udhavaka Lal Karyalaya

AMRAOTI (India)



Printed by—

T. M. Patil, Printer

Sahitya Udhavaka Lal Karyalaya

AMRAOTI (India)



[illegible]

40

[illegible]

पुनर्विचार

आ आराधी प्रति । नाचमे चौथा पाठमें पाठ छूटा हुआ है ।

५५५

ST-24

[illegible]

43



स्व० लक्ष्मीदेवी देवदत्त



स्व० लक्ष्मीदेवी देवदत्त



श्रीमान् जयनाथजी



श्रीमान् लक्ष्मीदेवी



लक्ष्मीदेवी देवदत्त



स्व० लक्ष्मीदेवी देवदत्त



लक्ष्मीदेवी देवदत्त

चित्र-परिचय

- १ स्व० सेठ हीराचंद नेमीचंद, सोलापूर, जिन्होंने मूडगिरीमें मिठान प्रयोगोंकी प्रतिलिपि करानेकी सर्व प्रथम व्यवस्था की।
- २ स्व० दानगीर सेठ माणिकचंद हीराचंद जाहरो बम्बई, जिन्होंने मिठान् प्रयोगोंने उद्धारका सय प्रथम प्रयत्न किया।
- ३ श्रीमंत सेठ लक्ष्मीचन्द्र सिठापरायणी, भेलसा, मस्थापक जन साहित्य उद्धारक फंड।
- ४ धीयुत बेरिन्टर जमनाप्रसादनी सय जज, जिन्होंने सठ लक्ष्मीचंदनीकी प्रोत्साहित करके उद्धारक फंडनी स्थापना कराई।
- ५ धीयुत सेठ राजमलनी बडजात्या, भेलसा, जिन्होंने उद्धारक फंडद्वारा सिद्धांत प्रयोगोंने प्रकाशनकी प्रेरणा की।
- ६ स्व० सेठ राजजी सखारामजी दोसी, सोलापूर, जो अभी अभी तक धी महाधनल सिद्धांतने उद्धारके लिये प्रयत्नशील थे।
- ७ श्रीमान् मिथर पद्मालाल बर्मालालनी, अमरावती जिन्होंने धन जय धनकी प्रतिलिपियाँ कराकर मैगाई और सशोधन सम्पादन निमित्त मस्थाने सुपुर्न की।

भाक् कथन

यादवी भारना यस्य मिद्धिर्भरति तादगी ।

सन् १९३३ में मैंने कारंवाके शास्त्रभण्डोंका भण्डोक्तन किया भार पडाके प्रथोंकी सत्ता बनाई। यदा भण्डाग भाषाका बहुतसा अधुनपूर्व साहित्य मेरे लष्टिगोचर हुआ। उसको प्रकाशमें लानेका उद्योग मेरे तथा संग्रहाके भनेक भाषा कीर्तिशे हृदयमे उठने लगी। कीक उन्ना समय मेरी कारंवाक सर्भाप ही जमरावती किंग पडवाई कालेनमें नियुक्ति हो गई भार मेरे सत्यके सहयोग मिज्ञानशास्त्रा प दरशीनन्दनवीरु सुप्रयत्नसे प धामान सेठ शापाल सारजी चररे प बनाकारगण मन्दिरके अधिकारियोंके सहस्रमादसे उन उपभ्रदा प्रथोंके सम्पादा प्रकाशनका कार्य चल् पडा, जितके फलस्वरूप पाव छड भ वन्त महत्त्वपूर्ण भण्डाग बाण्डोंका भव तत्र प्रकाशन हो चुका है।

महाविज्ञाके धपलादि मिज्ञान प्रथोंकी कानि मैं बरपनसे ही सुनता आ रहा ह। सन् १९०० में मैंने जैनसाहित्यका विशेषरूपसे अध्ययन प्रारम्भ किया, और उसी समयके लगभग इन मिज्ञान प्रथोंकी हस्तालिखित प्रतियोंके कुछ कुछ प्रसारकी चर्चा सुनाई पडने लगी। किन्तु उनके दानोंका सौभाग्य मुझे पढने पढले तथा प्राप्त हुआ जब हमारे नगरके भयन्त धमागुणी साहित्यप्रमी श्रीमान् मिपई पनालाल चीन धरल और जयधवलकी प्रति लिपिका कराकर पदाके जमान्दिरमें विराजमान कर दी। भव हृदयमें सुपराप भागा होने लगी कि कभा न कभी इन प्रथोंको प्रकाशमें लानेका भवदय सुभणसर मिलेगा।

सन् १९०० व दिसम्बर मासमे गिलि भारतपर्यय दिगम्बर जन परिवर्तका पापिक अधिपान इतरासमें हुआ भार उसक समापानि हुए मर परमप्रिय मित्र परिस्तर नमनाप्रसात्तजी मयचन। पदम् । इनक जन्मक पश्चात् शास्त्रक समयतम गणक रमाम वड हुए जन साहित्यक उदारक विषयमे चला कर रूढ ह। जजमाहव । इनभरकी धमधाम व दान उपम धक्का हुलसे लूट हुए थे। इसा चीन विमान मयद द। भलमानियासा मर उन्मादन्ती भा धियेनानमे भाव हुए भार व । इसा धामर कायमे सम्भरता र उलानमे कछ द्रव्य गाना खाटत ह। इस सत्यमे वज्रसाहसका उद्गम एकदम उमर ग्ग। और उनमे न ज्ञान का ज्ञाने ग गह। उ तम गगान । रना वड रू पन उताम उर । गतक बार यव गतकर उ हात मु जगाया भार नर पुता मर ह। उम । दया । जसमे सड लूमा ज्ञान साहित्याद्वारक । तय तम हनारक शानका प्रानका वा ग। इस दानक उपरन्धम । इन प्रात काल उपस्थित समाजके सज्जाका श्रीमन्त मठका पदपाम । यभापन । कया।

आगामी गमाकी दुष्टियाम अन्नसाहस्य मुझे लेख भेलमा पहुँचे और बहा सेठ रानमलनी बटजात्या च श्रीमान तरुतमलनी चकीरके सहयोगमे सेठजीके उक्त दानमा ट्रस्ट रनिष्ठी करा लिया गया और यह भी निश्चय हो गया कि उस ट्रस्टमे श्री प्रलान्ति मिहान्ताके मशौ धन प्रसाशनका कार्य किया जाय ।

गमोजे पश्चात् अमरावती लाटने पर मुझ श्रीमान सेठनाके दानपत्रकी सट्टापनाकी क्रियात्मक रूप देनेकी चिंता हुई । पहली चिंता धन जयधनलकी प्रतिलिपि प्राप्त करने की हुई । उस समय इन ग्रंथोंको प्रसाशित करनेके नाममे ही धामिर लोग चार्जमे हो जाते थे और उस कार्यके लिये कोई प्रतिलिपि देनेके लिये तयार नहीं थे । ऐसे समयमें श्रीमार्मिर्नई पन्नालालजीने च अमरावती पचायतने सन्महस करने अपने यहाँकी प्रतियाका सदुपयोग करनेकी अनुमति दे दी ।

इन प्रतियोंके सद्माउल्लेखने मुझे स्पष्ट हो गया कि यह कार्य अत्यन्त कष्टसाध्य है क्योंकि प्रधाका परिमाण बहुत विशाल, विषय अत्यन्त गहन और दुर्लभ, भाषा सरल मिश्रित प्राकृत, और प्राच्य प्रति बहुत अनुद्धत स्वल्प प्रचुर प्राप्त हुई । हमारे समुच्च जो धन और जयधनलकी प्रतिया थी उनमेसे जयधनलकी प्रति श्रीनाराम शास्त्रीकी लिखी हुई थी और दूसरीकी अपेक्षा कम अनुद्धत जान पड़ी । अब मने इसके प्रारम्भका कुछ अक्षर सरल रूपान्तर और हिन्दी भाषांतर सहित छापाकर जुने हुए विद्वानाके पास इस हेतु भेजा कि वे उसके आधारमे उक्त ग्रंथोंके सम्पादन प्रसाशनादिके सम्बन्धमें उचित परामर्श दे सकें । इस प्रकार मुझे जो सम्मति प्राप्त हो सकी उसपरमे मने सम्पादन कार्यके विषयमें निम्न निर्णय किये—

१ सम्पादन कार्य धनमे ही प्रारम्भ किया जाय, क्योंकि, रचना क्रमकी दृष्टिमे तब प्रारम्भ परपरामर्शकी नाम पहुँचे जाता है ।

२ मूपाठ एक ही प्रतिके भरोसे न रखा जाय । समस्त प्रचलित प्रतियाएँ ही धाधुनिच प्रतिकी प्रायः एक ही हाथकी गच्छे होने लगे थी उनमेसे चितनी मिल सकें उका उपयोग किया जाय तथा मूवित्रीकी तात्परकी प्रतिमे मिलान करके प्रमाण किया जाय, और उसके आधारमे रुद्रानपुरकी प्रतिमे मिलानका उद्योग किया जाय ।

मूत्र अतिरिक्त सिद्धा अनुवाद दिया जाय, क्योंकि, उसके बिना सब स्वाभाव्य प्रेमियोंकी प्रयत्नमे लाभ उठाना कठिन है । सरल छाया न दी जाय क्योंकि वह तो उसमे प्रयत्न करनेपर बहुत बर्ता है और उसमे प्राकृतके पठन पाठनका प्रचार नहीं होने पाता, क्योंकि, ऐसा उस छायाका ही आधार तब पर रहने है और प्राकृतकी ओर ध्यान नहीं देने । और तीसरे किट्टे सरलका अन्तर्गत प्राप्त है उक्त मूत्रागामी तत्वाकी सहायतामे प्राकृत समग्रनेमे भी कोई कठिनाई नहीं होगी ।

४ सरल छाया न देनेसे या शायद कायन हागा तबम अन्य प्राधान्य उन प्रधामने मूत्रामच लिखल दिये जाय ।

येने प्रधाना गणपदन प्रसाशन वाचवान गर्हा देता अन्त्य इम काय
पेमी उतागला न की पाय जिमने प्र रका प्रामाणितता प गुज्जतामिं वनि पद ।
उता कार्यम जितना हां सब उताग जय विद्वानाका गण्यांग प्राप्त किता जय

इन निर्णयाको समुदाय रखकर मन गणपदन कार्यकी व्यवस्थाका प्रयत्न किया।
याम ता अपने कालेजके द्वैतिक कार्यमें तथा गणकीक। अनेक विनाभा धारि
बाधायोंने घरा हुआ ही समय था। निमज काल काय बहुत ही मन्दगतिमें चल ग
था। अन्त्य पर सत्यय स्थाय गणम गग जनेक। गणपदका प्रयत्न हुए। सन १९०३
वीनानियामी प संसाधनका ध्याकरणावस्थाका मने युग लिया किन्तु गणमग गग मात का
करनेके पथान् ही कुछ मार्गदिशक गणपदकावने कारण उ द का। त हुन का जग प
नपभान् गणम (गामी) के नियमा प रिसागणका गण। गणपदका प्रयत्न हुए। सन १९०३
हुई। प प्रथम ताग पय उन्नतम गणपदकावने सन १९०३ गणपदका प्रयत्न हुए। सन १९०३
रहे। किन्तु सन जनपदने प यदा पला जिने गगे धार तमय प इन कायम मग गणपदका प्रयत्न
रहे हैं। उसी समयने धीना नियमा प पृष्ठगणकी गिनागणकीभी भी नियुक्त करनी ग
है भार प भी अब इसी कायम मने साथ स परताम गग द । गणपद कायम गणपदका प्रयत्न

मार्गतपाठ गणपदनगणपदा नियम हमन प्रग कार्य। द। ग। पूरा गणपदका प्रयत्न
को दावुरके अर्धमागधीक प्रयत्न, गणपद गणपदका प्रयत्न गणपदका प्रयत्न
गणपद करनपाठ गणपद प एन उपाधेक साथ पणन निमित्त किया। मग अगणपद
गणपदमें जंतपमके प्रकाश विद्वान् मि ता पें स्वकागणपदका प्रयत्न गणपद
गणपदका प्रयत्न। इन दोनों सदयोगिका। इन नि पात्र गणपदका प्रयत्न पण अगण
१। १२ समस्त गणपदन गण साधनादि काय मग गणपदका प्रयत्न पण अगण
गणपद प पृष्ठगणकी गामीके नि तग साधनादि हुआ है जितने नि अ गणपदका प्रयत्न
हृतक है। यदि इन हतिम पुन अगण पणपदका प्रयत्न गणपदका प्रयत्न ही गणपदका प्रयत्न

अप जितने पूरा पाठम गणपदका प्रयत्न गणपदका प्रयत्न गणपदका प्रयत्न
द उनका हम उपकार गणपद । गणपदका प्रयत्न गणपदका प्रयत्न गणपदका प्रयत्न
गणपदका प्रयत्न गणपदका प्रयत्न गणपदका प्रयत्न गणपदका प्रयत्न
अपणित मग गणपदका प्रयत्न गणपदका प्रयत्न गणपदका प्रयत्न
गणपदका प्रयत्न गणपदका प्रयत्न गणपदका प्रयत्न गणपदका प्रयत्न
गणपदका प्रयत्न गणपदका प्रयत्न गणपदका प्रयत्न गणपदका प्रयत्न
गणपदका प्रयत्न गणपदका प्रयत्न गणपदका प्रयत्न गणपदका प्रयत्न
गणपदका प्रयत्न गणपदका प्रयत्न गणपदका प्रयत्न गणपदका प्रयत्न

प्रयत्नका सुफल है कि आज हम इन महान मित्रानाँ के घर आगे सर्मगुप्त बनाने का साधन प्राप्त हो रहा है। इस लाला जम्नाप्रसादजी की मर्माङ्गी भी लक्ष्मी मर्माङ्गी है जो उन्होंने इन प्रशंसी एक प्रतिलिपिका अपने यहाँ सुगमिन् मर्माङ्गी उदारता दिखाई और इस प्रकार उनके प्रकट होने में निमित्त कारण हुए। हमारे विशेष ध्यान के पात्र इस प मर्माङ्गीनी उपाध्याय और उनकी इस भार्या प्रियुषी लक्ष्मीमर्माङ्गी तम प सीतागमनी शर्मिणी हैं जिन्होंने इन प्रशंसी प्रतिलिपिका के प्रसारण कठिन कार्य किया और उस कारण उन भार्याओं को प्रोध और विद्वेषको सहन किया जो इन प्रशंसी प्रकट होने में अपने धर्मकी हानि समझते हैं। श्रीमान सिधुट पन्नालालजीने जिस धार्मिक भाव और उदात्तता से बहुत धन व्यय करके इन प्रशंसी प्रतिया अमरावती में भगाई और उन्हें सशोधन प्रकाशन के लिये हम प्रदान का उसका ऊपर उल्लेख कर ही आये हैं। इस कार्य के लिये उनका जिनना उपकार माना जाये सत्य योश है। प्रिय सुफल यदि जम्नाप्रसादजी मर्माङ्गी भार्या उपकार है जो उन्होंने सेठ लक्ष्मीचन्द्रजीको इस साहित्योद्धार कार्य के लिये प्रेरित किया। वे ऐसे धार्मिक प्रामाणिक कार्यों में सदैव कर्त्तव्य कार्य किया करते हैं। श्रीमान् सेठ लक्ष्मीचन्द्रजी तो हम समस्त व्यवसाय के आधार स्तम्भ ही हैं। आज एक सकटमय घनमान काल में उनका हाथस्कूल, छात्रवृत्ति, व साहित्योद्धार निमित्त दिये हुए अनेक बड़े बड़े दानोंद्वारा धर्म और समाज का जो उपकार हो रहा है उसका पूरा मन्त्र अभी जाना नहीं जा सकता। यह कार्य बदाखिन् हमारी भावना पीढ़ीद्वारा ही सुचारु रूप से किया जा सकेगा। मेठजाकों उनके इन उदार कार्यों में प्रवृत्त कराने और उनका निराला करनेवाले भेदभावनिषेध मेठ राजमलजी रज्जवात्या और श्रीमान् सत्यमलनी प्रसील हैं जिन्होंने इस योजना में भी बड़ी रचि दिखाई और हम हर प्रकार से सहायता पहुँचाकर उपरान्त किया। साहित्योद्धारकी दृष्टि में हमें सि पन्नालालजी व देवकीनन्दनजी व सेठ राजमलजी के अनिर्लिप्त भ्रमणों से श्रीपुत्र मिश्रीलालजी व सम्मान निषाणी व जुगलकिशोरजी सुगता भी हैं। इन्होंने प्रस्तुत कार्य को सफल बनाने में सदैव अपना पूरा योग दिया है। व जुगलकिशोरजी सुगता हमें सम्पादन कार्य में विशेष साहाय्य मिलेगा। तथा भी किन्तु हमारे दुर्भाग्य से हमारा ध्यान उनका स्वाम व विगत गया और हम उनका साहाय्य विचार नहीं कर रहे। किन्तु आज सशोधन कार्य में उनसे सहायता मिलनेकी हम पूरी आशा है। तबसे इन प्रशंसी प्रकाशन का निश्चय है कि हमें तबसे शायद ही कोई माह लम्बा गया है तब हमारे समाज के अतिथि कार्यकर्ता श्रीपुत्र प्रचारी शीतल-प्रसादनाथ हम इस कार्य का पूरा पूरा उत्तरदायी प्रेरणा न की हो। धर्मप्रचारण के लिये कार्यका सफल हमारे लिये प्रकाशनात्मक कार्य लम्बा तबसे है जब कि शिष्टु अपने मानांक सुधर लिये लक्ष्य। उनका हम निरन्तर प्रणाम लिये हम उनके बहुत उपरान्त हैं। हम जानते हैं व इनके कार्यका सफल दृष्टि प्राप्त है। प्रत्यक्ष हमें। सम्पादन व प्रकाशन लक्ष्य है। इनके साधनात्मक कर्त्तव्यताका सम्मानन और साहाय्य हम अपने समाज के साहाय्य साहाय्य व सिद्धांत प्रत्यक्ष व नाथगमनी प्रमाण मिले हैं। यह बहनेकी धार्मिकता नही कि प्रमात्र जन समाज नही युग साहित्यिक के प्रमुख

जानेपर उनका पुनरुद्धार सर्वथा असम्भव है। क्या शान्ति करोहों कषया गर्ज करके भी पूरे द्वादशांग भूतका उद्धार किया जा सकता है? कभी नहीं। इसी कारण सत्ताय देश, राष्ट्र और समाज अपने पूर्ण साहित्यके एक एक टुकड़ेपर अपनी सारी शक्ति लगाकर उमड़ी रहना करते हैं। यह क्यात रहे कि जिन उपायोंसे अभी तक ग्रथ रक्षा होती रही वे उपाय अब कार्यकारी नहीं। महारक्ष शान्तिने ध्यानकल भीषण रूप धारण कर लिया है। आजकल साहित्य रक्षका हममे बन्द कर दूसरा कोई उपाय नहीं कि ग्रथोंकी हजारों प्रतियाँ छपाकर सर्वत्र फैला दी जाय ताकि किसी भी भयव्यामें कहीं न कहीं उनका अस्तित्व बना ही रहेगा। यह हमारी भुन प्रतिक्रिया अत्यन्त सुन्दरिहान स्वरूप है जो हम जानके इन उत्तम समझोंकी ओर हमने उद्गमन है और उनके सर्वथा विनाशकी जोखिम लिये चुपचाप बैठे हैं। यह ग्रथ समस्त जन समाजके लिये विचारणीय है। इसमें उदासीनता घातक है। हृदयके इन उद्गारोंके साथ अब मैं अपने माकस्यनही समाप्त करना हूँ और इन ग्रथकी पाठकोंके हार्थोंमें लावना हूँ।

विंग एडवर्ड कालेज

भारतवर्षी

१-११-३९

हिरानन्द जैन

विषय सूची

- १ आदर्श प्रतियोंके चित्र (मुख पृष्ठ पन्ना) । १ सत्प्रकरण
- २ प्रयोक्तारमें सहायक महापुष्पावली १० प्रथम भाग
- चित्र व चित्र परिचय ।
- ३ प्रारम्भ कथन

प्रस्तावना

पद्मशागम परिचय (अप्रतीम) । १५

- १ श्री धयलादि सिद्धान्तोंके प्रकाशम

आनेका इतिहास

- २ हमारी आदर्श प्रतिया

- ३ पाठसंशोधनके नियम

- ४ पद्मशागमके रचयिता

- ५ आचार्य परम्परा

- ६ धीर-निर्याण-काल

- ७ पद्मशागमकी टीका धरगरे

रचयिता

- ८ धरलामे पूरके गकाकार

- ९ धरगरेकारक सम्मुख उपस्थित

साहित्य

- १० पद्मशागमका परिचय

उपमहार

टिप्पणियोंमें उ

प्रयोगोंकी सन

सत्प्रकरणका वि

मुद्रिपत्र

मंगलाचरण

सत्प्रकरण (म

आ टिप्पण)

परिशिष्ट

सन परम्परा मुत्तानि

अनतरण गाथा नूची

३ ऐतिहासिक नाम मन्त्र

५ भागालिक नाम मन्त्र

प्रथ नामालम्ब

६ २२ नामालम्ब

७ प्रतियोग पाठ भद्र

८ प्रतियोगमें उक्त पृष्ठ पाठ

विषय अन्वय

प्रस्तावना

INTRODUCTION TO SATKHANDĀGAMA

The only surviving pieces of the original Jain Canon of twelve Angas according to Digambara tradition preserved in what are early known as Dhavala Jaldhavala and Mahadhavala manuscripts. Manuscripts of these were preserved only at Jain pontifical seat of Vallabhi in South Kanara. It is prin. the last twenty years that copies of the first two have become available and last still remains inaccessible.

The story of the composition of Satkhandāgama is told in the introduction. How Shatkhanda part of the Dhavala which is the commentary. The teaching of Lord Mahāvīra were arranged into twelve Angas by his pupil Jadrakhatta (autama) and they were handed down from preceptor to pupil by word of mouth till gradually they fell into oblivion. Only fragments of them were known to Dharasena who practiced penances in the Chauha Guphi of (Uttarganga) in the country of Saurashtra (modern Kathiawar). He felt the necessity of preserving the knowledge and so he called two sages who afterwards became famous as Jupadanta and Bhutabali and taught to them portions of the fifth Anga Vyāpasmatti and of the twelfth Anga Dattakāṇḍa. These were subsequently reduced to writing in Sutra form by the two eminent pupils Jupadanta composed the first 177 Sutras which are all embodied in the present edition of satpravarupana and his colleague Bhutabali wrote the rest of the Satkhandāgama being 6003 Sutras.

As regards the time of this composition we are told definitely that Dharasena lived after Lohriya the 7th in succession after Mahāvīra but how long afterwards is left uncertain. Most of the succession lists available show that the time that elapsed from the Nirvāṇa of Mahāvīra up to Lohriya was 681 years. But the Prakrit Pattavali of Nandisānha carries on the list of succession from Lohriya to the last three of which are Dharasena, Jopadanta and Bhutabali. The last three of the 683 years after Nirvāṇa are accounted for by these three.

Date of Shatkhandaagama. How long afterwards is left uncertain. Most of the succession lists available show that the time that elapsed from the Nirvāṇa of Mahāvīra up to Lohriya was 681 years. But the Prakrit Pattavali of Nandisānha carries on the list of succession from Lohriya to the last three of which are Dharasena, Jopadanta and Bhutabali. The last three of the 683 years after Nirvāṇa are accounted for by these three. Jopadanta and Bhutabali are mentioned in the Satkhandāgama as the two sages who reduced the teachings of the two eminent pupils to writing. The fact that in the Dhavala part of the Satkhandāgama the work is associated with the name of Jopadanta and Bhutabali is a strong indication that the work was composed by them. The fact that the work is associated with the name of Jopadanta and Bhutabali is a strong indication that the work was composed by them. The fact that the work is associated with the name of Jopadanta and Bhutabali is a strong indication that the work was composed by them.

gigantic writer Jina-ena his pupil who wrote the 10 thousand stanza Jaya-khavalī the beautiful little poem Irvanīyulaja and the magnificent Adipurāṇa before he died. What a bewildering amount of literary effort!

The various mentions found in the *Dhavalā* reveal to us that there was

Literature before Virasena
deal of manuscript material before Virasena and he
very judiciously and cautiously. He had to do with

recessions of the Vratas which it is not always agreed
statements. Varanasi satisfied himself by giving their alternative as to
the question of right and wrong between them to show who might know
than himself He also had to deal with opposite opinions of earlier commercial
travelers and here he boldly criticises their views in offering his own sight.
On certain points he mentions two different schools of thought which he calls
Northern and the Southern At present I am examining those which are
clearly They may ultimately turn out to be the Hindustani and the
Works mentioned and quoted from are (1) Santa Khatma Jaldia (2)
Jahura (3) Sammarvulla (4) Isya Janath Kutta (5) Janathi
(6) Tattvartha Betra of Orilhapurika (7) Scharanga (8) Samam
(9) Jayanta (10) Tattvartha Bhagya of Akala (11) Sivarama (12) (13)
(14) Ramnagarika and (15) Hishakarni samantala while others mention
the name of their works are Arja manukulu Dd-alavdi Jallalata and

[illegible]

acquire the hardly titl of *Shatkhandagama*. Its six subdivisions are *Jivatthana*, *Khudda Bandha*, *Bandha Samitta-Vichaya*, *Vedana*, *Vaggana* and *Mahabandha*.

The whole work deals with the karma philosophy, the first three divisions
Subject matter of the present work from the point of view of the soul which is the agent of the bondage and the last three from the point of view of the objective karma the nature and extent. The portion now published is the first part of the *Jivatthana* and it deals with the quest of the soul qualities and the stages of spiritual advancement through some expressive characteristics such as conditions of existence, sense, bodily volutory activities and the like. I propose to deal with the subject in some detail in the next volume when *Satprarupana* will be completed.

The present work consists of the original *Sutras* the commentary of *Virasena* called
Language *Dhavalā* and the various quotations given by the commentator from the writings of his predecessors. The language of the *Sutras* is Prakrit and so also of the most of the quoted *Gāthās*. The prose of *Virasena* is Prakrit alternating with Sanskrit. In the present portion Sanskrit predominates being three times as much as Prakrit. This condition of the whole text clearly reflects the comparative position of Prakrit and Sanskrit in the *Digambara* Jain literature of the South. The most ancient literature was all in Prakrit as shown by the *Sutras* and their first reputed commentary *Parikarma* as well as all the other works of *Kundakunda* and also by the preponderance of Prakrit verses quoted in the *Dhavalā*. But about the time of *Virasena* the tables had turned against Prakrit and Sanskrit had got the upperhand as revealed by the present portion of *Dhavalā* as well as its contemporary literature.

The Prakrit of the *Sutras* the *Gāthās* as well as of the commentary : *Sauraseni* influenced by the older *Ardhra Māgadhī* on the one hand and the *Maharashtrī* on the other and this is exactly the nature of the language called Jain *Sauraseni* by Dr. *Lehmann* and subsequent writers. It is however only a very small fraction of the whole text that has now been edited critically so far as was possible with the available material. Final conclusions on this subject as well as on all others pertaining to this work must wait till the whole or at least a good deal of it has been so edited.

I have avoided details in this survey of *Shatkhandagama* because I have discussed all these topics fully in my introduction in Hindi to which my learned readers are referred for details. The available manuscripts of the work are all very corrupt and full of lacunae being very recent copies of a transcript which so to say had to be stolen from *Mulbandra*. My great regret is that in spite of all efforts I could not get at the only old manuscript preserved there. Both text had to be constituted from the available copies as critically as was possible according to the principles which I have explained in full in my Hindi introduction. In spite of all these difficulties however I hope my readers will not find the text as unsatisfactory as it might have been expected under the circumstances.

१ श्री धवलादि सिद्धान्तोंके प्रकाशमें आनेका इतिहास

सुना जाता है कि श्री ध्वज्यादि सिद्धांत प्रयोगों प्रकाशमें लाने और उनका उत्तर भारतमें पठनपाठनद्वारा प्रचार करनेका विचार पंडित टोडरमजीके समयमें जयपुर और जयमेरवी ओरसे प्रारम्भ हुआ था। किन्तु कोई भी महान् वाप सुसज्जित होनेके विषय किसी महान् आत्माकी याद चाहता रहता है। बम्बईके दानवीर, परमापराधी एव सेठ मणिकचन्दजी जे पी या नाम किसने न सुना होगा? आजस उत्पन्न एवं पढ़ते कि म १९४० (सन् १८८१ ई) की बात है। सेठ जी सर टेंकर मूर्तिदेवी यात्राका १५ प। वहां उन्होंने रामजी प्रनिमाओं और ध्वज्यादि सिद्धांत प्रयोगों प्रतियोगे दान दिये। सेठजीका ध्यान विनया उन बहुमूल्य प्रनिमाओंकी ओर गया, उनमें कहीं अरिब उन प्रतिपोंकी और बाहरिन हुआ। उनकी सभ्य धर्मशास्त्रादिके दृष्टिसे यह बात सुनी नहीं रही कि उन प्रनिमाओं का दान जैसा था वह है। उन्होंने उस समयके भारताजी तथा बहावे पक्षोंका ध्यान भी उस ओर किया और इस बातकी पुष्टता प। कि क्या कोई उन प्रयोगों पर समय भी सक्ता है या नहीं? पक्षोंके उत्तर दिया 'हम लोग तो इनका दान पूजन करने ही अपने जमना सज्जमान है। हाँ, बैनरिदी (भयगङ्गागुप्त) में ब्रह्मगूरि शास्त्री हैं, व इनका पन्ना जनन है'। यह सुनकर सेठजी भीतर विचारमें पड़ गये। उस समय इसका अधिक कुछ न था मर, किन्तु इनके मनमें सिद्धांत प्रयोगोंके उद्धारकी चिन्ता स्थान कर गई।

[illegible]

करा। यह काय सन् १९१६ मे १९२३ तक संपन्न हुआ। सन् १९२४ में महारनपुराओंने मूडविट्रीने प लोनाथ जी शास्त्रीको बुझकर उनमे कनाटी और नागरा ठिपियोंरा मिशन करा दिया।

सहारनपुरकी कनाटी प्रतिष्ठा नागरा ठिपि करने समय प सीताराम शास्त्रीने एक और कानी कर दी और उसे अपने ही पाम रख दिया, यह लाला प्रद्युम्नकुमारनी दम, सहारनपुर, की सूचनासे ज्ञात हुआ है। पर यह भी सुना जाना है कि निम समय प विजयचन्द्रया जंग प सीताराम शास्त्री कनाटीकी नागरी प्रतिठिपि करने बठ उम समय प विजयचन्द्रया पन्ने जान थे और प सीताराम शास्त्री सुगिया और चन्दाके डिग नागवत वारा नागरीमे ठिपुने जते थे। एहों वरापरमे उहोंने पाठ शास्त्रासार प्रति मागनीमे ठिपकर आगनीको दे रा, किन्तु उन वराको अपने पाम ही रख दिया, और उही वरापरमे पाठ सीताराम शास्त्रीने अनेक स्थानोंपर धरत चरखत रा ठिपियां करके रीं। ये ही तथा उन वरासे का र, प्रतिष्ठा अर जमावनी, जारा, कागजा, मिठा, उमरद, मागपुर, माग, झाडापागन, इन्दर, सिपना, प्यार, अर अन्तर्गमे निरातमान हैं।

प गतने लाप्यय तथा प सीताराम शास्त्राल चाह जिस मारनाके उक्त कार्य बिदा हा और म. ही नातिनी कमीती पर यह कार्य टीर न उतरता हो, किन्तु न मदान् मिहान म. र. मेवरी काक बैदम मुक्त करक विद्वत् और विज्ञानु ससारया महान् उपकार वरनेरा श. र. उ. र. है। हम प्रसंगमें मुक्त गुमानी करिया निर पष पाद आता दे—

नृबन्धुनिन्दित् सुरि रणी प्रपितरन् स मगारभूत ।

बन्धुभूत-व दम्मायां गज्जन है गवरा उपसारी ॥

सिद्धान्त मणोरी प्रतियोगी इतिहास समझ करनेके लिये हमने चा प्रस्तावली प्रकाशित की थी उसका जिन अनेक महानुभावोंने सूचनात्मक उत्तर भेजनेकी कृपा की। हूँ। उन्हीं उत्तरोंके आधारसे पूर्वोक्त इतिहास प्रस्तुत करनेमें समर्थ हुए, इस हेतु हम इन सज्जनोंका आभार मानते हैं।

धन्यार्ति सिद्धान्त मणोरी प्रति उद्धारसचची प्रधानलीया उत्तर भेजनेवाले सज्जनोंकी नामावली—

- १ श्रीमन् सेठ राधजी सगारामजी दो गी, सोलापुर
- २ " राग प्रद्युम्नपुरजी रईस, सशरानपुर
- ३ " पंडित नाथराम जी प्रेमी, बम्बई
- ४ " प लोचनाथरा शास्त्री, गरी, बीरवाणी सिद्धान्त भवन, मुडुनिडी
- ५ " म गीतप्रसादजी
- ६ " प देवकीनन्दनजी सिद्धान्तगांधी, वाराणसी
- ७ " मिर्ष पन्नालालजी बगालालजी, अमरावती
- ८ " प मन्मथलालजी शास्त्री, मोरेना
- ९ " प रामप्रसादजी शास्त्री, श्री दे पन्नालाल मि जैन सरस्वती भवन, बम्बई
- १० " प के मुजबलीजी शास्त्री, जैन सिद्धान्त भवन, आरा
- ११ " प दयाचन्दजी न्यायाधीश, सचिवसुधाकरगिरी पाठशाला, रागर
- १२ " सेठ बीरचंद कोटारजी गंधी, पट्टन
- १३ " सेठ ठाकुरदास भगवानदासजी जखेरी, बम्बई
- १४ " सेठ मूलचन्द विन्नागास जी बागडिया, सूरत
- १५ " सेठ राजमन् जी बडवाला, भेलसा
- १६ " गोपी नेमचंद बाणचंदजी, कशीठ, उत्तरप्रदेश
- १७ " बाबू कामनाप्रसादजी, सुम्नादक बर, अजमेर

२. हमारी आदर्श प्रतियां

१ धनगढ़ी सिद्धा तंत्रोंकी एकमात्र प्राचीन प्रति दक्षिण कर्नाटक दशके मूत्रित्री नगरके गुरुवसदि नामक जैन मंदिरमें वहाके मन्दिरक श्रीचक्रतीर्तजी महाराज तथा जैन पंचोंके अधिकारमें है। तीनों प्रयोगोंकी प्रतिया ताटपत्र पर कनाडी लिपिमें हैं। धनगढ़ीके ताटपत्रोंकी लम्बाई लगभग २। फुट, चौड़ाई ३ इंच, और कुलसंख्या ५०२ है। यह प्रति कान्नी लिखा हुई है इसका ठीक ज्ञान प्राप्त प्रतियों पर से नहीं होता है। किंतु लिपि प्राचीन कनाडी है जो पाच छैसी योंसे कम प्राचीन नहीं अनुमान की जाता। कहा जाता है कि ये सिद्धांत प्रथम पहले जैनविद्वा अर्थात् श्रवणबेलगोल नगर के एक मंदिरजी में निराजमान थे। इसी कारण उस मंदिरकी अभी तक 'सिद्धांत वस्ती' नामसे प्रसिद्धि है। उदा से किसी समय ये प्रथम मूत्रित्री पहुँचे। (एपाप्राविआ कर्नाटिका, जिल्द २, भूमिका पृ २८)

२ इसी प्रतिनी धनगढ़ी कनाडी प्रतिलिपि ५० देवराज सठा, शा तथा उपप्याय और मन्त्रप इन्द्र द्वारा सन् १८९६ और १९१६ के बीच पूर्ण का गयी थी। यह लगभग १ फुट २ इंच लम्बे और ६ इंच चौड़े कान्नी कागज के २८०० पत्रों पर है। यह भी मूत्रित्री के गुरुवसदि मंदिर में सुरक्षित है।

३ धनगढ़ीके ताटपत्रोंकी नागरी प्रतिलिपि ५० गजपति उपाध्याय द्वारा सन् १८९६ और १९१६ के बीच की गई थी। यह प्रति १ फुट ३ इंच लम्बे, १० इंच चौड़े कान्नी कागज के १३०३ पत्रों पर है। यह भी मूत्रित्री के गुरुवसदि मंदिरमें सुरक्षित है।

४ मूत्रित्रीके ताटपत्रों परसे सन् १८९६ और १९१६ के बीच ५ गजपति उपाध्यायने उनकी विद्वान् पत्नी लक्ष्मीबाई की सहायतासे जो प्रति गुप्त लिपिसे की थी वह आपु निज कान्नी लिपिमें कागजपर है। यह प्रति अब सहायनपुरमें लाला प्रद्युम्नकुमारजी रसके अधिकारमें है।

५ पूर्वोक्त न ४ की प्रति की नागरी प्रतिलिपि सहायनपुर में पं. विनयचर्दपा और पं. रत्नगोपालजी द्वारा सन् १९१६ और १९२४ के बीच करा, गई थी। यह प्रति १ फुट ८ इंच लम्बे और १६-०० चौड़ाई का है। इसकी न ४ की कान्नी प्रतिम मित्रान मूत्रित्री के पं. कान्नी लिपि द्वारा सन् १९०४ में लिखा गया था। यह प्रति भी उपाध्यायजी के अधिकारमें है।

इस विवरण आर बगल स १८८८ हे कि यथार्थमें प्राचार प्रति एक ही दे किंउ खेद हे कि पल्लव प्रयत्न करनेपर भी हमें मूडिनीकी प्रतिके मित्रता लाभ नहीं मिल सका । यही नहीं, जिस प्रति परसे हमारी प्रथम प्रेस बानी सैवार हुई वह उस प्रतिकी छठवी पीढ़ीकी है । उससे सरोजनके लिये हम दूगन हो पावते पाणीकी प्रतियोंका लाभ पा सके । तीसरी पीढ़ीकी सशान्दुरकी प्रेम अन्तिम सरोधनके समय हमारे सामने नहीं थी । उसके जो पाठभेद अनारवनीकी प्रतिपर अभिन्न कर लिये गये थे उहीसे लाभ उठाया गया है । इस परपारमें भी दा पीढ़ीकी प्रेमिया गुन हीनसे की गई थी । ऐसी परपारमें पाठ-सरोजनका काय कितना पटिन हुआ है वह वे पाठक विशेषरूपमें समझ सकेंगे जिन्हें प्राचान प्रयोगोंके सरोधनका कार्य पडा है । भाग्ये प्राज्ञ हाने और विपकी पचन्त गहनता और दुष्कृताने सरोधन कार्य और भी जटिल बना दिया पा ।

वह सब होने हुए भी हम प्रभुत मय पाठकोंके हाथमें कुछ दत्ता और विनासके साथ दे रहे हैं । उपर्युक्त अवस्थामें जो कुछ सामग्री हमें उपलब्ध हो सकी उसका पूरा लाभ लेनेमें कसर नहीं रखी गई । सभी प्रतियोंमें बड़ी बड़ी विवरणोंके प्रकाशसे एक शब्दसे लेकर कोईसी शब्द तक छूट गये हैं । इनकी पूर्ति एक दूसरा प्रतिसे कर ली गई है । प्रतियोंमें वाक्य-समाप्ति-सूचक विराम-चिह्न नहीं हैं । बाराबाकी प्रेमिमें छाल स्वाहाके दण्डक लगे हुए हैं, जो वाक्यसमाप्तिके समस्तानमें सहायक होनेकी अनेक भामक ही अधिक हैं । ये दण्डक किस प्रकार लगाये गये थे इसका इतिहास भीमन् प देवकीन-इनकी शास्त्री सुगते थे । जब प सीतारामजी शास्त्री प्रयोगोंके ठेकर बाराबा पदुचे तब पडिनजीने प्रयोगों देखकर कहा कि उनमें विराम-चिह्नोंकी कमी है । प सीतारामजी शास्त्रीने इस कमीकी बड़ी पूर्ति कर देनेका वचन दिया और छाल स्वही लेकर कल्पस रागगण दण्डक लगाना प्रारम्भ कर दिया । तब पडितजीने उन दण्डकोंको जाकर देखा और उहें अनुचित स्थानोंपर भी लग पाया तब उहोंने बगल यह बगल दिया । ॥ सीतारामजीने कहा जहां प्रेमिमें स्थान मिला, पछिर बड़ी तो दण्डक लगाने जा सकते हैं । पडितजी इस अनपको देखकर अपनी इतिर पउनाये । अनन्तर वाक्य-विन्यास करनेमें ऐसे विराम-चिह्नोंका ग्याल विरहण ही छोड़कर निम्नके तत्त्वमशास ही हमें वाक्य-समाप्ति-विन्यास करना पडा है । इसप्रकार तथा अन्यत्र दिव हुए सरोधनके नियमोंद्वारा जब जो पाठ प्रस्तुत किया जा रहा है वह समुचित साधनोंकी अप्रतिकी देखने हुए पसोवजनक नहीं कहा जा सगन । हमें तो बहुत छोटे स्थानोंपर कुछ पत्रमें सहेट रहा है । हमें वाक्य-विन्यास नहीं है कि वे छोटे स्थान

कहा कि, किन्तु मैं इस बात का है कि प्रविष्टों को पूरा-न भराया हो तो भी उन
 लोगों को कुछ लाभ प्राप्त होगा। इस सम्बन्धमें हमने तुम यह कह बिना नहीं रह
 सकते कि प्रविष्टों को तुम्हारे ही से कुछ लाभ नहीं मिलेगा। यदि ही किसी प्रयोगकर्ता ने यह भी
 है, किन्तु मैंने यह कहने कि प्रविष्टों को कुछ लाभ नहीं मिलेगा। यदि ही किसी प्रयोगकर्ता ने यह भी
 है, किन्तु मैंने यह कहने कि प्रविष्टों को कुछ लाभ नहीं मिलेगा। यदि ही किसी प्रयोगकर्ता ने यह भी

३. पाठ सञ्चोधनके नियम

१. पाठ सञ्चोधन के लिये पाठ्यपुस्तक का चयन करना
 २. पाठ्यपुस्तक का चयन करने के लिये पाठ्यपुस्तक का चयन करना
 ३. पाठ्यपुस्तक का चयन करने के लिये पाठ्यपुस्तक का चयन करना
 ४. पाठ्यपुस्तक का चयन करने के लिये पाठ्यपुस्तक का चयन करना
 ५. पाठ्यपुस्तक का चयन करने के लिये पाठ्यपुस्तक का चयन करना
 ६. पाठ्यपुस्तक का चयन करने के लिये पाठ्यपुस्तक का चयन करना
 ७. पाठ्यपुस्तक का चयन करने के लिये पाठ्यपुस्तक का चयन करना
 ८. पाठ्यपुस्तक का चयन करने के लिये पाठ्यपुस्तक का चयन करना
 ९. पाठ्यपुस्तक का चयन करने के लिये पाठ्यपुस्तक का चयन करना
 १०. पाठ्यपुस्तक का चयन करने के लिये पाठ्यपुस्तक का चयन करना
 ११. पाठ्यपुस्तक का चयन करने के लिये पाठ्यपुस्तक का चयन करना
 १२. पाठ्यपुस्तक का चयन करने के लिये पाठ्यपुस्तक का चयन करना
 १३. पाठ्यपुस्तक का चयन करने के लिये पाठ्यपुस्तक का चयन करना
 १४. पाठ्यपुस्तक का चयन करने के लिये पाठ्यपुस्तक का चयन करना
 १५. पाठ्यपुस्तक का चयन करने के लिये पाठ्यपुस्तक का चयन करना
 १६. पाठ्यपुस्तक का चयन करने के लिये पाठ्यपुस्तक का चयन करना
 १७. पाठ्यपुस्तक का चयन करने के लिये पाठ्यपुस्तक का चयन करना
 १८. पाठ्यपुस्तक का चयन करने के लिये पाठ्यपुस्तक का चयन करना
 १९. पाठ्यपुस्तक का चयन करने के लिये पाठ्यपुस्तक का चयन करना
 २०. पाठ्यपुस्तक का चयन करने के लिये पाठ्यपुस्तक का चयन करना

पुत्र वटा (○) होता है। फिर अनुस्वार वा त्रिद्वय वणत पश्चात् और द्विवरा वणस पूरे
रमा जाता है। अनप्य विपिकार द्विवरा अनुस्वार और अनुस्वारका द्विव भी पत्र सत्वता है।
उदाहरणार्थ, प्रा० पाठनन अपने एक टाँस* त्रिगेरमापरी वनाडा ताडपत्र प्रति परमे बुद्ध
नागरीम मायाण उदभूत वी है तिलमैस एक यन्त्र दत्त है—

सो उ०म०गाहिमुहो चउ०मुहो सदीरे वास परमाऊ ।

चाहीस-रजओ निदभूमि पु०छ० स०मति गण ॥

इमना मुद्रक्य है—

सो उ०म०गाहिमुहो चउ०मुहो सदीरे वास परमाऊ ।

चाहीस-रजओ निदभूमि पु०छ० स०मति गण ॥

येमे अमरी गभरता प्याजमें रचकर निम प्रसारये पाठ सुगार त्रिप गये हैं—

(१) अनुस्वारवे स्थान पर आगळे उगवा द्विव—

अग मिन्ना-अगमिन्ना (पृ ६), नखण खड्गा-उरगगवदनी (पृ १५)
सवर-सवर (पृ २५, २९२,) वस-वस (पृ ११०) आदि।

(२) द्विवने स्थान पर अनुस्वार—

भाग-भग (पृ ४०) अरुक्तेसर-अरुक्तेसर (पृ ७१) वारवा-वरा (पृ
७३) समि०वरसया दत्त-समि०२० सया दत्त (पृ ७) सनेवणी-सरवणी (पृ
१०४) ओसाडिय ति ओसाडिय ति (पृ २९१) पारगालिय-पारगालिय
(पृ ४८) पडिम०वा-पडिम०वा (पृ ५८) इत्यादि।

(आ) क्वाटीमें द और ध प्राय एकमे ही गिने जाते हैं निममे एक दूसरेमें भग ॥

समता है।

द-ध, दरिद-परिद (पृ २९) प-प, ध्विर ध्वि (पृ १०) टरगु-
टरगु (पृ २७३) इत्यादि।

(१) क्वाटीमें य और घ में अरु वषट् वणक म०मे टर बिदूष रन १ रदरन

८ प्रतियोगीमें अन्तर्गत गाथार प्रायः अनियमित रूपसे उक्त च या उत च कहकर उद्घृत की गई है । नियमके अन्तर्गत हमने सर्वत्र सूचन पाठके पश्चात् उक्त च और प्रारम्भ पाठके पश्चात् उक्त च रखा है ।

९ प्रतियोगीमें सत्रिके सत्रमें भी बहुत अनियम पाया जाता है । हमने व्याकरणके सधिसूत्रानुसार नियमोंको प्थानमें रखकर यथाशक्ति सूत्रके अनुसार ही पाठ रचनेका प्रयत्न किया है, किन्तु यहाँ गिराम चिह्न आगया है वहाँ यदि अत्र, य ही तो- दी गई है ।

१० प्रतियोगीमें प्राकृत शास्त्रोंमें सुत व्यक्तोंके स्थानोंमें वहाँ य श्रुति पाई जाती है और वही नहीं । हमने यह नियम पाठनेका प्रयत्न किया है कि जहाँ आदर्श प्रतियोगीमें अशुद्धि कर ही हो वहाँ यदि सयोगी स्वर अ या आ हो तो य श्रुति का उपयोग करना, नहीं तो य श्रुति का प्रयोग नहीं करना । प्रतियोगीमें अधिकांश स्थानोंपर इसी नियमका प्रभाव पाया जाता है । पर ओ के साथ भी बहुत स्थानों पर य श्रुति मिलती है और ऊ अथवा ए के साथ बधित् ही, अथ स्तरोके साथ नहीं ।

(१) ओ य साथ य श्रुतिके उदाहरण—

भजिषा, जाणयो, विस्तारयो, पायो, आदि ।

(२) ऊ य साथ—रजिषुण

(३) ए के साथ—परिणयेण (परिणेतन) एतस्मात्सीये, आरीये, इत्यादि ।

४ पदखंडागमके रचयिता

प्रास्तुत ग्रन्थके अनुसार (पृ ६७) पदखंडागमके रचयिके ज्ञाता धरतनाचार्य थे, जो आचार्य धरमेन सोरठ दशक गिरिनगरकी चन्द्रगुफामें जन्म बरले थे । नदिसधनी प्राकृत पात्रलादे अनुसारवे आचार्यके पूज्यज्ञाते किन्तु 'धवडा' वं शास्त्रोंमें व अणों और पूर्वोंके पददेश जाना था । कुछ भी हा वे य मारी विद्वान और धुन-रसल । उन्हें इस बातका चिन्ता हुई कि उनके पश्चात् श्रुतज्ञानका टोप हा जायगा, अन उन्होंने महिला मण्डलके मुनिसम्मतकों पत्र लिखा निमके पत्रस्वरूप वहाँसे दो मुनि उनके पास पहुँचे । आचार्यने उनका बुद्धिकी परीक्षा करके उन्हें मित्रात् पताया । ये दोनों मुनि पुण्यदत्त और भूतबलि थे । धरसेनाचार्यने इन्हें सिखाया तो उत्तम

तासे किंतु क्यों हा आयाड शुभा एकादशीको अयन पूरा हुआ लो हा वगैराले बहुत समीप होने हुए भी उडे उसी दिन अपने पासमे विदा कर दिया । दोनों शिष्योंने गुरुजी गत अनुसंधानीय मानकर उसका पालन किया और वहासे चउकर अमुठेरमें चातुर्मास किया । धरसेनाचार्यने एहें वहासे तत्क्षण क्यों रवाना कर दिया यह प्रस्तुत प्रथमें नहीं प्रत्यया गया है । किंतु इन्द्रदिह्न श्रुताग्नार तथा गिनुय श्रीवरह्न श्रुतास्तारमें लिखा है कि धरसेनाचार्यको जान हुआ कि उनकी मृत्यु निकट है, अतएव इन्हें उस कारण वदेश न हो इससे उन्होंने उन मुनियोंको तत्काट अपने पासस विदा कर दिया । समय है उनके वहा रहनसे आचार्यके यान और तपमें विग्र होता, विशेषतः जब कि ये श्रुतज्ञानका रक्षासूत्रकी अपना कर्तव्य पूरा कर चुके थे । ये समझन यह भी चाहते होंगे कि उनके ये शिष्य वहामे जन्म निकट कर उस श्रुतज्ञानका प्रचार करें । जो भी हो, धरसेनाचार्यकी हमें फिर कोई उठा देखनेकी नहीं मिलती, ये मदाके लिये हमारी आंखोंसे ओझट हो गये ।

धरदाराने धरसेनाचार्यका गुरुका नाम नहा दिया । इन्द्रदिह्न श्रुताग्नारमें लाहाय तनरी गुरुगम्पगरे पश्चात् त्रिनयत्त आदत्त, त्रिदत्त और अहदत्त इन चार आचार्योंका उल्लेख किया गया है । ये सब अगों और पूरक एकरेश ज्ञाता थे । उनके पश्चात् अहर्द्धिका उल्लेख आया है । अहर्द्धि बड़े भारी सन्यासक थे । वे पूरकमें पुटर्धनपुरगे रहे गए हैं । उन्होंने पंचरशीय युग-अतिक्रमण समय बड़ा भारी यत्न-सम्पन्न किया जिसमें भी यावनक यति एकर हुए । उनकी भावनाओं परम उन्होंने जान दिया कि अब पश्चपातका चमत्कार आगया है । अतः उन्होंने नदि, वीर, अश्वत्थिन, दर, पचम्प, मन, मर, गुणगर, गुण, सिंह, चउर आदि नामोंमे भित भित सब स्थापित किए जिसमें एकर और अपने उसी भावनाम गुरु धम रामन्य आर धम प्रभावना रहे ।

श्रुताग्नारक अनुमत्त अहर्द्धिक अनन्त मानदि हुए वा मुनियामें श्रुत थे । उन्होंने जन्म और पुत्रका एकरा प्रमाण कैसा आ पश्चात् समाधिमान किया । उनका पश्चात् ही

१ इन्द्रदिह्न अनुमत्त धरसेनाचार्यने एहें दूर दिन भेग दिया ।

२ इन्द्रदिह्न इन चारोंका नाम बताया गया है । वही व ना इन्द्रदी याव काट पद ।

३ इन्द्रदिह्न काहा का समय उल्लेख नहीं है । काट पदवा केवल निर्णयदेव तदर्थमे । इन्द्रदिह्न, धरसेना आदिक निह्नदिह्न काहा धरसेनाय का कथा मरु इति मवा त पति विमर्शन कियति ।

सातत्य दशर गतिनायक समीप स्नयन परमरी उद्गुहाक निरुति धर्मनावागरी नन
जाया ह ।

इन चार आगताय बनिया आह अहद्वि, मानदि व धम्मन आहारर मीर इह—
नदिने वाइ गुर शिष्य-धम्मपारा उल्लभ नां विया । वरर अहद्वि आदि मीन अन्तर्ग
पन्थ पथात् दुसम्भ हनेरा रूप समन विया ह । पर इन तीनाम गुर शिष्य नान्तर मय, न
भी उहोंन वर नही बरा । यही नही प्रवृत्त उहोंन रूप वर दिसा ह यि—

गुणधरधरमेनान्यपगुणो दूगारयथाऽस्माभि ।

न नायन उन्मयस्यरात्ममहिम्नाभावात् ॥१७१॥

अथात् गुणेश आर धम्मनदी पयस्य सुत्तपरम्परा एव ज्ञान तां ह, कर्मि, उमरा
पुत्तान न ता एवे विमी आगममे मिग और न विमी मित ही घनगा ।

विशु नरिसिखरी प्राचन पहाडगम अटङ्गि, गारादि आर धामन मर उर
पभात् पुण्यन आर मूरगिदि पड दमर उलगिदिनी वनपाद ह गिरा हन मर ? वि
धामनका मरगुर अटङ्गि आर मर मापन दि य ।

मदिमरसो मरुतः सुवाच मम भीमपतिदया ताम आया है । मरुतः प्रो १
मदयात जीर वन्य निष्य रुग्णिगुहारी धन्ता वीर्य त, विन्तु उपर मरुत मरुत
आदिया उपाय गहो विना मरुत त । उवाची व मरुत पक्षम मरुतम विन्तु मरुतम
उपाय हालव माय ही मरुतदिया उपाय विन्तु मरुत है । मरुत त वि मरुतम विन्तु
अतद्वि आयात उपाय ही विन्तुमरुत अतम मरुत त । उवाच मरुत मरुत मरुत
हाम भी उवाची मरुत मरुत मरुत मरुत मरुत त । मरुत -

श्रीमान् पद्मनाभश्चरितानि श्रीगणेशाय नमः ॥ १ ॥

॥ भद्रवाह्यस्युत्पत्त्याय नमः ॥ ॥

[illegible]

मन्त्रः श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

• • • • •

ପ୍ରାଚୀନ ଶିଳା ପଥର ତିଆରି କରୁଥିବା ମଣ୍ଡପର ସମସ୍ତଙ୍କ ଦେଖିବାକୁ

[illegible]

नहीं। किन्तु उनका 'पुनर्प्राप्ति' अर्थात् पुनर्प्राप्ति का मतलब, हम विचारणम पत्रा
चटना है कि य व ही है। पत्राप्तिम उनका गिण्य धम्मनका उदय न आनरा माण पत्रा
सरता है कि धम्मन विद्यानुगामी य जीव व मयम अउम गहय गहयाम्याम विद्या सन य। अत
उनकी अनुपस्थितिमें मयरा नायकय मायनन्दिक अन्य गिण्य चिनचट्टय पडा हा। उय ग
सेनाचापन अपनी विद्यादाग गिण्यपगग पुपदन जीव वनगिदाग चटा।

मायनन्दिका उल्लेख 'जबूदीयग्याति' क कता पद्यनदिन भा विद्या है और
व हैं, राग, द्वेष और मोह मे रहित, धुतसागररे पारगामी, मनि-प्रगन्म, तय और सयममे मयम
तथा गियात कहा है। इनके शिष्य सकलचट्ट गुरु ये निम्होन सिद्धान्तहाशिमि अउन पापगमी
मैल धो डाले ये। उनका शिष्य श्रीनदि गुरु हुण चिनके निमित्त जबूदीयग्याति उिखी ग। यथा-

गप-सप-दोस-मोहो सुद-सायर पारभा मद-मय मा।

तय सनम-सपण्णो विखाओ मापनदि गुरु ॥ १५४ ॥

तसस य वरसिस्ता सिद्धत-महोदहिमि धुय कट्टसो।

गय-गियम-हाल बलिदो गुणउत्ता सयलचट्ट-गुरु ॥ १५५ ॥

तसस य वर सिमो गिमल-वर-माण-वरण सुततो।

सम्मदमण-सुद्धो मिरिणादि गुरु ति विखाया ॥ १५६ ॥

तस गिमित उिहिय जबूदायस तह य पण्णो।

नो पय सुणद पद सा गच्छइ वरम ठाण ॥ १५७ ॥

(येन सादिस सताय, य १ जबूदीयग्याति उल्लेख प नाप्राप्तनी प्रमा)

जबूदीयग्यातिः। यकाका निश्चित नहीं है। किन्तु यहा मायनन्दिका पुनर्प्राप्ति
पारगामी कहा है निमम नाम पन्ता है कि समकत यहा हमार मायनन्दिस हा नाप्य है।

मायनन्दि सिद्धान्तदीय मयधरा पय यथानक भी प्रचलित है। यहा जाना है कि
मायनन्दि मुनि एकदा चयाक उिय नगरम गय य। यहा पय कुम्हायकी कन्यान इससे प्रेम प्रग
गिया और व रम्यक साथ रहन उग। राग-तममे एकदा सयमे किमा मन्दातिर विपयपर मत
मय गमिन हा जीव नक किम म यमका मय गन नहा हा मया तय सनतायनन आहा हा
कि इसका मय गन मायनन्दि तस ताका यथा यथा। अत मय मायनन्दि तस यम पदुच
येर यमस हातकी व्यवसाय मया। मायनन्दि पदा 'यथा मय सुस अय भी यह सकार दता
ह। मन्दातिर मय गिया अत यम धुनयनका मय अय हाया।' यह सुनकर मायनन्दि पुन

प्राप्त हुआ था अतः वे जहां मुहाने रंग रूप पीली कमन्द होकर पुनः समर्थ आ मिले। जैन
लिनात्मकभर, म. १९१३, पृ. ४, पृ. १५१ पर 'एक ऐतिहासिक स्तुति' शीर्षकसे इसी
वर्णनका एक भाग प्राप्त है और उसके साथ सोलह श्लोकों का एक स्तुति छपी है जिसे वला दे
वि मन्त्रालये 'जदो मुद्गर' गीतके समय को पत्रों पर प्राप्त होते समय गाते गाते धनाया था।

इदि १२ वर्षातमें कुतु त्पत्ता हो भी तो समझत वह उन माधनदि नामके गवधमेंमे विना एवरे सगंधरा हो सकना है। तिका एतेस अणवलेगोलके अनेक शिलाटेतों में भदा है। (देग। जेगीललेगनपर) हमेंमे १ ४७१ के शिगलेतमें गुभवद धीषिदरक गुरु नपादि सिद्धा तैदर बड़े गवध है। गिजलेत न १२९ में विना किसी गुरुनिय सगंधके माधनिको तजसिद्ध सिद्धातैदर कहा है। यथा—

नमो 'सम्रचान' इत्यन्दिने माघनन्दिने ।

नगशब्दोच्चारणं तदर्थं विप्रमोदितं ॥ ४ ॥

[illegible]

उन दोनोंने धरसेनाचार्यसे सिद्धांत सीखकर प्रथम रचना की, अतः धरसेनाचार्य उ
शिक्षागुरु थे। पर उनके दाक्षागुरु कान थे इसका कोई उल्लेख प्रस्तुत ग्रंथमें नहीं मिल
ब्रह्म नेमिदत्तने अपने आराधना रूपग्रंथमें भा धरसेनाचार्यना कथा दी है। उसमें कहा है
धरसेनाचार्यने तिस मुनिसंघको पत्र भेजा था उसके सप्ताश्रित महासनाचार्य थे आर उ
अपने सपथमें पुण्यदत्त आर भूतबलिको उनके पास भेजा। यह कहना कठिन है कि
नेमिदत्तने सप्ताश्रितना नाम कथानकमें उल्लेख कल्पित कर लिया है या वे किसी आश्रम परसे
लिख रहे हैं।

विद्युत् धीग्रने अपने शुनास्त्रारमें भाग्यगणी के रूपमें एक भिन्न द्वा कथानक
है जो इस प्रकार है—

इसा मरतेपत्रक वागिदश (ब्रह्मदेश) में प्रसुधरा नामका नगरी होगी। पहाके नरयाह्य आर रानी सुम्याको पुत्र न होनेसे राजा रोदखिन होगा। तब सुमुद्रि नामके सेठ पद्मावतीकी पूजा करनेका उपदेश देगे। राजाके तदनुसार देशकी पूजा करनेपर पुत्रप्राप्ति होगी आर ये ठस पुत्रका नाम पद्म रखेंगे। फिर राजा सहस्रहृद चत्यालय बनवायेगे और प्रसिद्धि पायेगे। मेठवी भी राजासादसे पद पदपर पृथ्वीको जिनमदिरोंसे मडित करेंगे। इसी समय वसुन्धरामुमें समस्त मर वहां पत्रक होगा आर राजा सेठवीके साथ जिनपूजा करके रथ चलेगा उनी समय राजा अपने मित्र मगरासीके मुनींद्र हुआ देग सुमुद्रि मेठके साथ धराम्यसे दंग धरान करेंगे। श्री समय एक लेगसादर वहां आयेगा। वह जिन देवोंको नमस्कार करे मुनिदेवी तथा (पद्मेश्वरी) धरमा मुद्रवी बदना करके लेग समर्पित करेगा। ये मुनि उसे त्रिचैतन्य निरिगारके समस्त मुद्रावली धरमेन मुनीधर आपावणाय पूरकी पत्रक वस्तुके श्री गान्तशास्त्र व्याख्यान प्रारम्भ करनेसे है। धरमेन भारक कुठ दिनेमें तराह्य आर सुमुद्रि नामक मुद्रा देगा, धरमे ७२ चित्रचित्रा वराह आर मुद्रा वराहसात। शास्त्र समाप्त करनेसे उभेउ पदकी मृत्यु के विषय विवेक होगा। धरमे आर त्रिचैतन्य मुद्रा देगा। अतः धरमेने धरमेने नरकान्त मुद्रिका नाम मृत्युके आर आर तीन समय हो जायेगे मुद्रिका नाम प्रकाश है। समय प्रकाश समय आदि अज्ञान है आर यह वराह चित्रक प्रकाश है। अतः धरमेने वही १२ प्रतीक का आर नगरी दिया जासकता।

अन्तर्गत एक विधि (नं. १०५) में पुनः नगर भूतलिका कागज
मार्फत् नगर सचिव को लिख बद्ध है। यथा—

य पुष्पदन्तेन च भूतबन्ध्यायनातिरिति शक्तिदत्त रत्न ।

पञ्चप्रदाशाय जगज्जननीं प्राप्नोऽङ्कुराभ्यादिन वन्दयन् ॥ २५ ॥

अहंलिङ्गवत्तुलिङ्गं स आक्षेपदुन्दुभ्यम् ।

वाग्भ्यमासादिह जायमान द्वयन्तरासीनरणाय चर ॥ २६ ॥

[illegible]

प्रभुत प्रथम पुनर्दत्तता मापक एक जेष्ठ - नि । यवनाम् २०८५ ७३

पुष्पदन्त
आर

त्रिनपातित वगमामिष न । इह ७१।) न ल वा ग मल्लन भूय ३ न १२ ५

[illegible]

६ विष्णु १ ५१५ अ ४ ३३ दुष्ट न व अ० ५ ६ अ ६ ५
७)। १५१ व अ० ४ ३३ अ० ५ ६ अ ६ ५

૧. અમે (કાંઈ) જાનના પુત્ર દેવેશ્વર ને ૨. વાઘ ને ૩. ધર્મ ને ૪. શ્રી ૫. શ્રી
૬. શ્રી ૭. શ્રી ૮. શ્રી ૯. શ્રી ૧૦. શ્રી

‘ वीसदि सूत्रों ’ का रचना करके उह पढ़ाया, और फिर उस भूतशक्ति का मन्त्र भूतशक्ति
भूतशक्तिने उन्हें अन्यायु जान, मन्त्रमर्मप्रकृति पाठकर विष्णु भयम द्रव्यप्रमाणम लगाकर सो
प्रयत्न-रचना को। मन्त्रप्रकार पुण्यदत्त और भूतशक्ति दोनों मन्त्र मिश्रित प्रयत्न रचयिता ह
निनपाठित उस रचनाके निमित्त राण्य हूण ।

पुण्यदत्त और भूतशक्तिने नीचे जायुम पुण्यदत्त ही जठ प्रदान हात ह । मन्त्रप्रकार

पुण्यदत्त

भूतशक्तिने

जेठे ये

अपनी टीकाके मन्त्राचरणम उह ही पढ़ाउ नमस्कार किया ह और
‘ नमि-समिद-व ’ (नमिमिमिति-वनि) अथात् नमिदिया व मुनियोंका मन्त्र
नायक कहा ह । उनका प्रयत्न-रचना भी जात्रिमें हूँ और भूतशक्तिने अ
रचना अन्त उहोंके पास भवा निम रत्न व प्रमत्त हूण । न रा

उनका ज्येष्ठत पाया जाता ह । नमिमिमर की प्राज्ञ पदार्थम व स्पष्टत भूतशक्तिने पूर्व पदार्थ
हूए प्रतलये गये हैं ।

उत्तमान प्रथम पुण्यदत्तका रचना रितना ह और भूतशक्ति की रितना, मन्त्रा

पुण्यदत्त और

भूतशक्तिने

बीच निमने

रितना प्रथ रचा

उल्लेख पाया जाता ह । पुण्यदत्त जात्रि प्रथम ‘ रामदि नून रच ।
न राम सूत्रों वरगाराका मन्त्र मन्त्रप्रकारे नीम अभिराणें ता
ह, न कि जात्रि २० नम्बर तरर नयोंम, स्पष्टि, उहान स्पष्ट रह
कि भूतशक्तिने द्रव्यप्रमाणानुक्रमम लख रचना का (पृ ७१) । जहान द्र

है कि—

सपदि चामह जीरममाणागमरितनगदाण मिम्माण तमि चर परिमाण पत्तिनो
मदरडियागिया सुतमा ।

अथात्—‘ जम चाद’ जीरममामा न अलित्व का तान लनराउ गिथ्यों का उ
जीरममाणाग पत्तिमाग वतडानर गिय भूतशक्ति जाचाय मृत् कहत ह ।

द्विप्रकार वद्वप्रकारा अभिराणर रता पुण्यदत्त और नम ममन्त्र प्ररर रता भव
छरत ह ।

धन्यमे म प्ररर रचनारा रता ही निहाम पाया जाता ह । मन्त्र आ

भूतशक्तिने

प्रकार

हूतान द्रव्यहित श्रुत नागमे मिग्ता ह । उमेने अनुसार भूतशक्ति जाचा
पदार्थ मन्त्र रता मन्त्र रत्न करर यष्ट गुण ५ का चतुर्धर सपरे स
उन पुनरोंका उदररग मन्त्र श्रुत नरी पूता की निमस श्रुतपवमी निमि

प्रगपति निरीमें आचार्य की आनी है और उस निरीसे वे श्रुतका पूजा करते हैं * । फिर भूतबलि उत पुराणशास्त्र पुस्तकोंकी निर्यापितसे हाथ पुण्यदत्त गुह्ये पास भेजा । पुण्यदत्त उत देवदत्त आर अपने चिह्नित कायको सन्न ज्ञान अथवा प्रसन्न हुए आर उन्होंने भी चातुर्ग्य संपादित सिद्धांतकी पूजा की ।

५. आचार्य-परम्परा

अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि धर्मशास्त्रों और उनसे सिद्धांत सीखकर प्रथम रचना करनेवाले पुण्यदत्त आर भूतबलि आचार्य कौन हुए ? प्रस्तुत ग्रंथ में हम धर्मशास्त्र की कुछ सूचना महावीर स्वामीसे लगाकर लोहाबाय तन की परम्परासे मिलती है । यह परम्परा इस प्रकार है, महावीर भगवान् के पदचात् क्रमशः गान्धर्व, लोहाबाय आर जम्बूद्वीप समस्त श्रुत के वाचक आर अन्तमें केवलज्ञानी हुए । उनके पदचात् क्रमशः मिश्र, नदिमित्र, अपराजित, गोवर्धन आर भद्रनाहु, ये पाँच श्रुतकेवली हुए । उनसे पदचात् निशायाबाय, प्रोचि, मयिच, चय, नाग, सिद्धाच, धनिमेत, विजय, बुद्धिच, गन्देय, और धमसेन, ये ग्यारह एकादश अंग आर दशपूर्वसे पारगाभी हुए । तत्पश्चात् नम्र, जयपाल, पाटु, प्रवर्धन आर वग, ये पाँच एकादश अंगोंसे धारक हुए, आर इनके पदचात् सुमद्र, यशोभद्र, यशोराष्ट्र आर लोहाबाय, ये चार आचार्य एत आचार्य के धारक आर वेप श्रुतके एकदेश माना हुए । इनके पश्चात् समस्त अंगों और पूजाका एकदेश ज्ञान आचार्य परम्परासे आकर धर्मशास्त्रियोंको प्राप्त हुआ (६५-६६) । यह परम्परा इस प्रकार है—

एतान्पुत्रपुत्र्यान् शत्रुवर्णमघमवर्ण ।

तदुत्पन्नकालकरण यथायं भिक्षुवर्ण पुराण ॥ २४३ ॥

अतएवमग्निं तन प्रगपति सिद्धिरियं वरामय ।

अद्यापि यत् तस्यां श्रुतपुत्रां वृत्तं जना ॥ २४४ ॥

इति—भुवावनार

मन्त्रार्थ की विभाग-परम्परा

१ गीतम	३	१ प्रतिमन	
२ लोहाय	केवली	१६ विप्रय	
३ अम्बू		१७ सुप्रिउ	
४ पिण्ड		१८ गगदेव	
५ नदिमित्र		१९ धर्ममन	
६ अपराजित	धुनदेवली	२० नग्न	
७ गोवर्धन		२१ जयपाल	५
८ मङ्गवाह		२२ वाण	एकादशगवारी
९ विशाखावाह		२३ धुनसेन	
१० प्रोटिल		२४ वस	
११ क्षमिय	११	२५ सुमङ्ग	
१२ जय	क्षमपूर्वा	२६ यशोमङ्ग	४
१३ नाग		२७ यशोवाह	आचार्यगवारी
१४ सिद्धाय		२८ लोहाय	

टाक पण परंपरा घटनेमें आगे पुन वेत्तापत्र आदिमें विवृता ह । इन दानों
 आचार्य परम्परा
 में नाम भेद
 स्पष्टोपर तथा वेत्तादेय दिखल्लेख न १ में न २ के आचार्य का नाम
 गेलार्थ हा पाया जाता है, मितु हयिगपुराण, धुनावनार व यम केमहन
 धुनस्वयं व शिगम्ब न १०५ (२५३) में सम स्थान पर सुममरा
 नाम मिलता ह । यही नहीं, स्वयं धवलकारद्वारा हा रची हुई 'वयमरा' में भा उम स्थानपर
 छालाय नहीं सुममरा नाम है । इस उत्पन्नका सुटपलेका उक्त 'वयमरा' में पाया
 जाता ह । यहा यह स्पष्ट कहा गया है कि लाहायना हा दूसरा नाम सुममरा । यहा -

‘नय नि लेहजस्य य लाहजनेग य सुममराभय ।

गणय सुममरा उक्त वयमामस्त गिति ॥ १० ॥

(३ भा म १ प्र १४९)

न ४ पर विप्रय स्थानमें भा नामन पाया जाता है । वयमवपुष्पति, आग्निपुराण
 व धुनस्वयं उम स्थानपर नम् । या नमामि नाम मिलता है । यह भा गेहाय आर सुममरा
 मयान एक ही आचार्यके दो नाम प्रदान होत ह । इस भेदका कारण यह प्रतीत होता ह
 कि इन आचार्यका पूरा नाम विष्णुलक्ष्मी होमा जो यही एक वयमम मन्त्राय विष्णु और

दूसरे स्थानपर यदि नामधे निम्नलिखित विषय है । यदा यत्र अ. १. १८ व. ११ ३३ ।—
 पाई जाती है ।

म ५ अर ६ व आवायका गितालय न ३०५ मे। म व मलय - ३०५
मया दे, अथात् वदा अरसजिनका ताम पदित अर मजिमि वर म ५ व किम - ३०५
मह धर-निर्वाण मय मिये ह, वाह मिस म पन वा धानक मय।

आगत अनुर आचार्याः तम भे हिंसा ॥ १७५ ॥ अतः इति । र द
शिक्षा कारण भी दुर्द्वयना प्रन य हाया हे अर ह्य क ग्ग समस्त ६८२४ ३० ८०० ६
प्रकार प्रथम दिया गया है ।

[illegible][illegible]

ध्वंस्तोषप्रथमं मन्त्राये मनोहरे ।

मन्त्रायाणां तमं गच्छं सारस्वतीयम् ॥ २ ॥

कुन्दकुन्दान्वये धेनुमुपन श्रीगणाधिपम् ।

तमेवम् प्रवक्ष्यामि श्रूयतां सज्जना जना ॥ ३ ॥

पट्टावली

अतिम-त्रिग-निज्वाण वेत्तणाणी य गोयम-मुनिदो ।

बारह-यासे य गये सुधम्म-सामी य सजादो ॥ १ ॥

तद् बारह-नाम पुण सजादा जम्बु-सामि मुणिणाहो ।

अलीस-नाम रदियो वेत्तणाणी य उक्किट्ठो ॥ २ ॥

वासि वेत्त कामे तिप्पि मुणी गोयम सुधम्म जन् य ।

बारह बारह दा जग निय दुगहीण च वावीस ॥ १ ॥

सुयवेवठि पच जणा वासि-यासे गये सुसजादा

पणम चउदह-वास विण्हुवुमार मुणेपज ॥ ४ ॥

नदिमिच वास सोलह तिय अपराजिय वास वावीस ॥

इग-हीण बीस वास गोवद्धण मद्वाहु गुणतीस ॥ ५ ॥

सद सुयवेवठणाणी पच जणा विण्हु नदिमिचो य ॥

अपरानिय गोवद्धण तद् मद्वाहु य सजादा ॥ ६ ॥

मद्-वासि सुकासे गर सु-उपण्ण दह सुपण्णहरा ॥

सद निससि वामाणि य एगादह मुणिवरा जादा ॥ ७ ॥

आपरिय निसास पोठल राखिय जयसेण नागसेण मुणी ॥

तिद्धत्थ धित्ति निनय बुहिलिग देव धमसेण ॥ ८ ॥

दह उगणीस य सत्तर इक्कीस अट्ठारह सत्तर ॥

अट्ठारह तेरह बीस चउदह चोदय (सोइस) कमेगेय ॥ ९ ॥

अतिम त्रिग-निज्वाणे तियसय पण-चाउनाम जादसु ।

एगादहगधारिय पच जणा मुणिवरा जादा ॥ १० ॥

नकससो अयपालग पडव धुवमेन वस आपरिया ।

अट्ठारह बीस-वास गुण-वाल चोद वतीस ॥ ११ ॥

सद सेवीस वासे एगादह अगपरा जादा ।

वाम सुवर्णाकरिय दमय नम अग अङ्गधरा ॥ १२ ॥

मुमद च जर्मोमद मदनाङ्ग कपोत च ।

लोदाचर्य मु। म च कहिय च निगागमे ॥ १३ ॥

रुद्र अङ्गरु वामे तेजस काग (पगाम) वाम मुणिणाह ।

रुम नम नटुगरा वाम दुसदवीस सभेमु ॥ १४ ॥

दबमन दामदे अतिम निग-समय-जादेसु ।

— दब नम इपगधारी मुण्येना ॥ १५ ॥

चरिचरि मायनदि य घरमेण पुण्णयत भूदमली ।

नरिच इरिच उण्णीम तीम नीम वाम पुणो ॥ १६ ॥

रुमन-धर च मे इगाररी य मुगिररा जादा ।

रुमन-धर च रम निगारा अगदिनि कहिय निग ॥ १७ ॥

रुम च नम पुणो निगारा निगमा छद जमो ।

रुम नम छद नीम मोरम वामदि भमिण देव ॥ १८ ॥

रुमन च इरिच पुणो निगारा मगपुमा ।

रुम च नम निगारा रुम वामदि मुगपुम अतिग ॥ १९ ॥

३५० रुमन च नम रुम वामदि मुगपुम अतिग ॥ ३५० रुमन च नम रुम वामदि मुगपुम अतिग ॥

वीर निराणर पधान

१ रुमन	रुमन	१५	० निराणरा	रुमन	१०
२ रुमन		१५	१० प्राणिक	"	१०
३ रुमन		३५	११ अतिग	"	११
		३५	१२ अतिग	"	१२
		३५	१३ अतिग	"	१३
		३५	१४ अतिग	"	१४
४ रुमन	रुमन	१५	१५ अतिग	"	१५
५ रुमन		१५	१६ अतिग	"	१६
६ रुमन		१५	१७ अतिग	"	१७
७ रुमन		१५	१८ अतिग	"	१८
८ रुमन		१५	१९ अतिग	"	१९
		३५०			३५०

२० अक्षर	ग्यारह	१८	२८ खोदाचार्य	"	५२ (५०)
२१ अपपाल	भगधारी	२०			५९ (५७)
२२ पादप	"	३९			
२३ भूखेन	"	१४	२९ महद्रात्रि	एक भगधारी	२८
२४ बस	"	३२	३० माघनादि	"	२१
		१२३	३१ घरसेन	"	१९
			३२ पुण्डस्त	"	३०
			३३ भूतबलि	"	२०
५५ सुमद्र	दश मय	६			११८
	ष आठ				
२६ यद्योषद्र	भगधारी	१८			
२७ मद्रबाहु	"	२३			
				कुलजोड़	६८३

इस पञ्चाशत्तम प्रयोग आचार्यना समय अलग अलग निर्दिष्ट किया गया है, जो अथर्व नन्दि-आचार्यनी पट्टावलीवी रिगेपत्राल नहीं पाया जाता, अर ममटिप्पने भी वर्ष सन्वाये दी गई हैं। प्रथम तीन केचिपों, पांच भुनकराचिपों और ग्यारह दशपूर्वियोंका समय क्रमशः बही ६२, १००, और १८३ वर्ष बनगया गया है और इसका योग ३४५ वर्ष बहा है। निम्न दशपूर्वगारी एक एक आचार्यका जो बाल दिया है उसका योग १८१ वर्ष आता है। अतएव स्पष्टतः बहो दो वर्ष की भूल ज्ञान होती है, क्योंकि, जहाँ तो बहाँ तरबा योग ३४५ वर्ष नहीं आसकता। इससे आगे जिन पांच एकादशगंधारियोंका समय अथर्व २२० वर्ष बतलाया गया है उनका समय बहाँ १०३ वर्ष दिया है। इनके पश्चात् आगे जिन चार आचार्यना अथर्व एकादशगंधारी बह कर भुनशानकी परपरा पूरे वर्ष नौ गे है उन्हें बहाँ क्रमशः दश, नव और आठ अगके धारन कहा है, पर यह स्पष्ट नहीं किया गया कि बौन कितने अगोंना जाता था। इससे दश अगोंका अचानक छेप नहीं पाया जाता, जैसा कि अन्यत्र। इनका समय ११८ वर्ष के स्पष्टतः ९७ वर्ष बनगया गया है। पर आचार्यका समय जोइनेसे ०९ आता है अतः दो वर्ष की यहाँ भी भूल है। तथा इन्से आगे पांच और आचार्यका नाम गिनाये गये हैं जो एकादशगंधारी बहे गये हैं। उनके नाम अठिगठि (अष्टद्रात्रि) माघनादि, घरसेन, पुण्डस्त और भूतबलि हैं। इनका समय क्रमशः २८, २१, १९, ३० और २० वर्ष दिया गया है जिसका योग ११८ वर्ष होता है। इससे पूर्व भुतावतारमें विनयधर आदि जिन चार आचार्यके नाम दिये गये हैं वे यहाँ पाये जाते। इसप्रकार इस पञ्चाशत्तम अनुसार भा अग-परपराका कुल बाल ६९ + १०० + १८३ + १२३ + ९७ + ११८ = ६८३ वर्ष ही आता है जितना कि अथर्व बतलाया गया है। परन्तु भेद यह है कि अथर्व यह बाल खोदाचार्य तब ही पूरा वर्ष दिया गया है और बहाँपर उमके अन्तगत वे पांच

आचारपर मे धरमेनद्रता नीर निर्वाणम ६०० य पथात् वना हुआ माना गया है । इस प्रयत्न
एक प्रति भांडारकर स्टीट्यूट पुनामें है, विमे देवकर प चेकरामजीने जो नोट्स दिये थे उन्हें
परमे भुनारनीने उक्त परिचय लिखा है । इस प्रतिमें प्रयत्न नाम तो योनिप्राप्त ही है किन्तु उक्त
भर्ताका नाम पण्डितगण मुनि पाया जाता है । न महाभुनिने उसे कृष्णाण्डिनी महादेवीसे प्राप्त किया
था और अपने शिष्य पुण्डित और भुनारनीके दिये लिखा था । न दो नामोंके कथनसे इस प्रयत्न
धरमेनद्रत होना उक्त समय तकता है । प्रयागमण एक कदिका नाम है और उसके धारण
करनेवाले मुनि प्रयागमण कहलाते थे । जोणिपाट्टकी नम प्रतिमा देखन-काल मयत् १५८२ है,
अर्थात् वह चारसौ सय भा अरिज प्राचीन है । ' जोणिपाट्ट ' नामका प्रयत्न उल्लेख ग्रन्थमें भी
आया है । जो इस प्रकार है--

‘ जोणिपाट्टे भणि मन्तन सचीआ पागलाणुभाणो ति वेत-वो ’

(चवत्ता १ प्रति पृष्ठ ११८)

‘ ससे स्पष्ट है कि योनिप्राप्त नामका मन्त्रशास्त्रमन्त्र का अन्त्यत प्राधान्य प्रयत्न
है । उपर्युक्त अक्षरोंमें आचार्य धरमेननिमित्त योनिप्राप्त प्रयत्न के हानमें अविद्यामन्त्र का कारण
नहीं है । तथा बृहत्पिण्डिकामें जो उसका रचनाकार नीर निर्वाणमे ६०० य पथात् सूचित
किया है वह भी गलत सिद्ध नहीं होता । जहां अभी अनुक्त न, य २, किरण १२, पृ ६६६)
में श्रीमान् प न गुरामनी प्रेमीना ‘ योनिप्राप्त और प्रयोगमात्र ’ शीर्षक लेख उपा है, जिसमें
उक्त प्रमाण देकर उक्तवा है कि मन्त्रकर इन्स्टीट्यूटवा ‘ योनिप्राप्त ’ और उनाके साथ
मुपा हुआ ‘ योनिप्राप्त योगमात्र ’ समयन हरिवेगहन है, किन्तु हरिवेगने समयमें एक और
प्राचीन योनिप्राप्त विद्यमान था । बृहत्पिण्डिकाकी प्राणागिरिनाके विषयमें प्रेमीन ने कहा है कि

‘ योनिप्राप्त व गन गुरामनी (बृहत्पिण्डिका व मा ५ । पानिप)

‘ योनिप्राप्त व गन गुरामनी (बृहत्पिण्डिका व मा ५ । पानिप)

‘ योनिप्राप्त व गन गुरामनी (बृहत्पिण्डिका व मा ५ । पानिप)

‘ योनिप्राप्त व गन गुरामनी (बृहत्पिण्डिका व मा ५ । पानिप)

‘ योनिप्राप्त व गन गुरामनी (बृहत्पिण्डिका व मा ५ । पानिप)

‘ योनिप्राप्त व गन गुरामनी (बृहत्पिण्डिका व मा ५ । पानिप)

‘ योनिप्राप्त व गन गुरामनी (बृहत्पिण्डिका व मा ५ । पानिप)

‘ योनिप्राप्त व गन गुरामनी (बृहत्पिण्डिका व मा ५ । पानिप)

'बहू सुखी एक रत्नाकर विद्वान् प्रयेक मय देतकर तैयार का थी और अभी तक वह बहुत ही प्रामाणिक समझी जाती है' । निम्नलिखित ग्राह्य पद्धतियों के अनुसार गणनेका फल वीर निचणसे $६२+१० + १८१+१२+१७+२८+२१=६१४$ रूप पथात् पड़ता है, अतः अनेक पद्धतियोंसे १४ रूप पूरा करने बहू मय रचा हुआ । इन सम गणनेसे ग्राह्य पद्धतियों और कृत्रिम विचारोंके संकेत, इन दोनोंकी प्रामाणिकता सिद्ध होती है, क्योंकि, ये दोनों एक दूसरेसे स्वतंत्र आधारपर लिखे हुए मन्त्रित होते हैं ।

पञ्चगण्यसे रचनाकाट पर कुछ प्रकाश पुद्गुन्दाचार्यके संग्रहसे भी पड़ता है । बुन्दबुन्दकृत इन्दुनिन्दे धुनाकार्ये कहा है कि जब कमलाक्षर और कपायप्राभृत दोनों परिकर्म प्रस्तुतका हो चुके तब कोटबुन्दपुरमें पद्मनादि मुनिने, जिन्हें सिद्धान्तका ज्ञान गुरु-परिपाठमें मिला था, उन छह छात्रोंमेंसे प्रथम तीन रात्रोंपर परिकर्म नामक बारह हजार भोज प्रमाण टीका-मय रचा । पद्मनादि बुन्दबुन्दचार्यका भी नाम था और धुताक्षरमें कोटबुन्दपुरका उल्लेख आनेमें इसमें संदेह नहीं रहता कि वहाँ उन्होंने अभिषेक हुआ । पश्चात् श्री उपाध्वे कुटुम्बके पेश किसी मयका रचनाका बनवो प्रामाणिक नहीं स्वीकार करने, क्योंकि उन्हें धवला व जयधवलमें इनका कोई संगेन नहीं मिला । किन्तु बुन्दबुन्दके सिद्धान्त ग्रंथोंपर टीका बनानेकी बात सर्वथा निष्प्रबुद्ध नहीं पड़ी वा संकपी, क्योंकि, जसा कि हम अन्यत्र बता रहे हैं, परिकर्म नामक ग्रन्थ उल्लेख धवला व जयधवलमें अनेक जगह पाये जाते हैं ।

श्री उपाध्वे के बन्धुबुन्दके ज्येष्ठ इन्दीका प्रारम्भ काल, लगभग प्रथम गणनादिपोंके भीतरका समय, अनुमान किया है उससे भी पण्डितमय रचनाका समय उपरोक्त टीका जचना है ।

गणनाचार्य गणितारक। बन्धुबुन्दकृत रहत ३ । यह स्थान काठियावाड़क अन्तर्गत है ।
 मायालिखित १८ वर्षस्य नीधकर नीमाधक। निवाणभूमि नामक निरीक्षक ज्येष्ठ बहुत प्रथम
 उपाध्वे कांति अवनय मंडलपुत्र है । माय १ वर्षोक्त समयसे गणितारक गणितारक
 अथात् ४ थी ५ वा गणितारक नामक आरी मन्त्रित रहा तब कि पण्डित व हा ज्ञान पर
 पाय गये जगत्तक मा १ मन्त्रित ३ ३ ॥ १८ वर्षोक्त समयक १ बोध गणितारक ६

परमनाचार्य 'महिला' मन्त्रित मन्त्रित सुका ३ मन्त्रित ३ । जसा मन्त्रित नाम
 नगर या स्थान का नाम प्रकृत है, १ । १८ वर्षोक्त जगत्तक गणितारक नामक नगर
 था । बन्धा नामकी एक नगर बन्धा प्रान्तके मन्त्रित १८ मन्त्रित ३ ३ ॥ १८ वर्षोक्त जगत्तक
 एक गाव नी ॥ जो मन्त्रित मन्त्रित नामक हो सकता है । इससे अनुमान है कि मन्त्रित मन्त्रित ६

जैन मुनियोंका सम्मेलन हुआ था। यदि यह अनुमान ठीक हो तो मानना पड़ेगा कि सत्तारा जिन भाग उस समय आध्र देशके अर्तगत था। आध्र देशका राज्य पुराणों व शिवादि लेखोंपरसे पूर्व २३२ से ई० सन् २२५ तक पाया जाता है। इसके पश्चात् कमसे कम इस भागपर आधिकार नहीं रहा। अतएव इस देशको आध्र विषयातर्जनटना इसी समयके भीतर माना सकता है। गिरिनगरसे छोटते हुए पुण्यदत्त और भूतगछिने जिस अकुलेधर स्थानमें स्थापित किया था वह निम्न देह गुजरातमें भडोच जिलेका प्रसिद्ध नगर अकूलेधर ही चहिये। यहांसे पुण्यदत्त जिस वनगास देशको गये वह उत्तर कर्नाटकका ही प्राचीन नाम है गुगमदा और वरदा नदियोंके बीच बसा हुआ है। प्राचीन कालमें यहां कदम्ब वंशका राज्य जहां इसकी राजधानी 'वनगासि' थी वहां अब भी उस नामका एक ग्राम विद्यमान है। भूतगछि जिस द्रमिल देशको गये वह दक्षिण भारतका वह भाग है जो मद्राससे सेरिंगपम कावेरिन तक फैला हुआ है और जिसकी प्राचीन राजधानी काचापुरा थी। प्रस्तुत प्ररचना-सबसे इन भौगोलिक सीमाओंसे स्पष्ट जाना जाता है कि उस प्राचीन कालमें कटियावाड़ लगाकर देशके दक्षिणतम भाग तक जैन मुनियोंका प्रचुरतासे विहार होता था और उनके पारम्परिक धार्मिक व साहित्यिक आदान प्रदान सुचारुरूपसे चलता था। वह परिस्थिति बिल्कुल दूसरी शताब्दिक के समयका मकेत करती है।

६ वीर निर्वाण-काल

पूर्वोक्त प्रकार से पट्टाटगमनी रचनाका समय वीरनिर्वाणके पश्चात् शताब्दिके अन्तिम या आठवीं शताब्दिके प्रारम्भिक भागमें पड़ता है। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि महावीर भगवान्का निर्वाणकाल क्या है।

जिनियोंमें एक वीरनिर्वाण सन् प्रचलित है जिसका हम समय २४६५ वां वर्ष मानते हैं। इस तिथिसे समय भर मसुदा 'जैनमित्र' का ता १४ सितम्बर १९३९ का अंक प्रकाशित है जिसमें वीर का २४६५ भादा सुदी १, दिया हुआ है। यह सन् वीरनिर्वाण दिवस अनुमानित नाम-सन्नाह अनुसार कालिक कृष्ण पक्ष १४ के पश्चात् पड़लता है। अतः अगस्त ११ सन् १९३० से निर्वाण सन् २४६६ प्रारम्भ हो जायगा। इस समय सितम्बर १९०६ प्रचलित है और यह वर्ष गुप्त पञ्चम प्रारम्भ होता है। इसका अनुसार विष्णुसहस्रनाम सन् २४६६-१९०६=२७० वर्ष का अंतर है। दादा सपनोंके प्राप्तिमें २७० वर्ष हुए समयमें यह अंतर ४६० वर्ष आता है। ऐसा कि वनमात्र में। इस अन्तरका अनुमान पट्टाटगमनी निर्वाण विष्णु सन्तुल्य गुप्त नाम वम २७० वर्ष पूर्व हुआ।

त्रिभुविम मयनूय प्रारम्भ राख्यधर्म प्राचीन कालसे बहुत मतभेद चला आ
ता है जिससे कारण धीनियोग कायक सम्प्रदाय भी कुछ गन्धर्वी और मतभेद उत्पन्न हो गया
है । उदाहरणार्थ, 'ता त्रिदशय की प्राचन पद्यायडी' उपर उद्धृत की गई है उसमें धीनियोगसे
४७० वर्ष पश्चात् त्रिमय जन्म हुआ, ऐसा कहा गया है, और चूँकि ४७० वर्षका ही
अंतर प्रचलित निराग सदन आ त्रिम सदनम पाया जाता है, इससे प्रतीत होता है कि
त्रिम मयत् त्रिमने जन्म ही प्रारम्भ हो गया था । त्रिभु मस्तुगसूत 'स्वविद्याली' तत्रागच्छ
पद्यायडी, 'त्रिममयगिरि पायापुरीरूप', 'प्रभारगुणित प्रभारकथित' आदि ग्रंथोंमें उद्धृत हैं
कि त्रिम मयत् का प्रारम्भ त्रिम राजासे राख्यकालसे या उससे भी कुछ पश्चात् प्रारम्भ हुआ ।

धीयुन् बैरिष्टर काशीप्रसादजी जायसवालने इसा मनकी मान देकर निश्चित किया कि
धूमि जैन ग्रंथमें ४७० वर्ष पश्चात् त्रिमय जन्म हुआ कहा गया है और चूँकि त्रिमय
राख्यारम्भ उनकी १८ वरकी आयुमें होना पाया जाता है, अतः धीर निर्माणका ठीक समय जाननेके
लिए ४७० वर्षमें १८ वर्ष और जानना चाहिये अर्थात् प्रचलित त्रिम सन्तसे ४८८ वर्ष पूर्व
महारीरवा निर्माण हुआ ।

एक और ताक्षरा मन हेमचन्द्राचार्य के उल्लेखरसे प्रारम्भ हो गया है । हेमचन्द्रन अपने
परीरीष्ट परमें कहा है कि महारीरवा मुक्ति से १५५ वर्ष जाने पर चन्द्रपुत्र राजा हुआ । महा
उनका ताम्रपत्र स्पष्ट चन्द्रगुप्त मौर्यसे है । और चूँकि चन्द्रगुप्तसे लगाकर त्रिमयक का काल
संभव २५५ वर्ष पाया जाता है, अतः धीर निरागना समय त्रिमसे २५५ + १५५ = ४१०
वर्ष पूर्व ठहरा । इस मनके अनुसार ४७० से ३० वर्ष घटा देनेसे ठीक त्रिम पूर्व धीर
निराग काल ठहरता है । पाणिनि विद्वानों, 'वसु डों मायोवी' डों चापेटियर' आदिने इसी मत
का प्रतिपादन किया है और इधर मुनि बन्ध्याणत्रिमयजीने भी इस मतकी पुष्टि की है ।

- १ त्रिम राजा पुरा मित्र धीर विरुई भविष्य । मुन मुनिनेय तथा त्रिमय बालाड विष्णुकातो ॥
(मस्तुग स्वविद्याली)
- २ त्रिमय मु धावीरात्र त्रितीन वष सन वसुडो ४० संज्ञानम् । (तत्रागच्छ पद्यायडी)
- ३ महा मुनेस गमनाया पाठय नद चन्द्रगुहा रामु बालागमु वज्रपमचरहि कामि विद्वधाङ्गना
रामा हाडी । (त्रिमयमयूरि पायापुरीरूप)
- ४ इन गीरिषमहादेय क्षारचवती नयाधिप । अन्धरी पवित्रा कुबर् प्रवतवति वमरम् ॥
(प्रभारगुणित प्रभारकथित)

Bihar and Orissa Research Society Journal 191८

- ५ एव च मीमांसनीयप्रवचने यने । पचपचाळद्विषि च द्रष्टव्यमवन्तु ॥
(परिरिष्ट-वच)
- ७ Sacred books of the East XIII
- ८ Indian Antiquary XIII
- ९ धीर निर्माण सवन आर अनचाळगमना सवर् १९८०

किंतु दिग्भर सम्प्रत्यय जो उद्भूत मित्र १५ इम उत्पन्नता यत्तु कुठ
देते हैं। इन उद्भवोंके अनुसार शर सत्तत्ता उत्पत्ति आरम्भितामे कुठ माम अधिक ६०
पश्चात् हुइ तथा जो विक्रम सत्तत् प्रचलित है और निम्नता अन्तर आरम्भितामे कासे १०
पतता है उसका आरम्भ विक्रमके जन्म या शयकाल नही किंतु निम्नता मयुमे हुआ
ये उद्भव उपर्युक्त उद्भवोंका अपक्षा अधिक प्राचीन भा है। उनमे पूरा प्रचलित आर
निर्माण सत्तत् मृत्कालसेही सम्बन्ध पाये जाते हैं।

इन उल्लेखोंसे पूर्वोक्त उल्लेखन सम्प्रकार सुस्पष्टनी है। प्रथम शतक मत्तु ना ला
यह वीर निर्माणसे ६०५ वष पश्चात् चला। प्रचलित विजय मत्तु जार शतक मत्तु म १३
का अन्तर पाया जाता है। अतः इस मत्तु अनुमान विजय मत्तु ना प्रारम्भ रीति
६०५-१३५=४७० वष पश्चात् हुआ। अतः विजय मत्तु पर विचार नीतिव ना वि
मृत्युसे प्रारम्भ हुआ। मेरतुगाचार्यने विजयना रायशाल ६० वष कहा है^१, अतएव
वर्षमसे ये ६० वर्ष निराकल देनसे विजय के रायशाल प्रारम्भ वीरनिर्माणमे ४१० वष
सिद्ध होता है। इसप्रकार हेमचन्द्रके उल्लेखानुसार जा वीरनिर्माणसे ४१० वर्ष पश्चात् वि-

१ निष्ठायां वारिणि ऋत्यास सदसु पचवत्सिषु । पण्यमानसु गदसु सत्वादा सगाणि वा अह्वा ॥

(निष्ठादपण्णदि)

श्रवणा श्रवणं श्रुत्वा पचाप्रा सामपचकम् । मानं तन मदापार शक्राजस्ततोभवत् ॥

(जिनमन हरिवंशपुराण)

पण्डितस्मयवत्स पणमात्रमद गमित्य वारिणि जुहदा । सगगनो

|| ८५० ||

(नेमिषद्र विद्याकमार)

एषा धारिणिक-विज्ञान-गद-विषयानां च सगलस्य आत्मा इति । तादृश-काला इति ।
एतन्निष्ठे सगलस्य विज्ञानस्य विषयानां च सगलस्य आत्मा इति । तादृश-काला इति ।

पञ्च य मामा पञ्च य वामा हृत्चेव हानि वामपथा । सगराक्ष्य य सहिया भावेयत्रा तदो रामा

२. कृत्तनि वीरि सः प्रियकमशायस्स मरण पत्तस्स । सात्तु वत्ताण उप्पण्णो सवन्ने सधो ।

पञ्च-सप्त छत्राणि त्रिष्वङ्गरावस्तु मरणवत्तस्तः । दक्षिण मन्त्रा नादो दावि-सधौ महामाहो
सप्तमं तद्वर्ण त्रिष्वङ्गरावस्तु मरणवत्तस्तः । श्रुति-य वागान कदा सदा प्रणयन्तौ ॥

(स्वमन-दशनमार)

सर्वविश्वं शतुन्दानां मृते विश्वमराजनि । सागर्ग्यं वत्मापुषामभूत्वाप्यत मया ॥

(वासुदेव मावसमह)

समायेदे पुन श्रिदशयसति विजमनुये । सह्य यथाया प्रभवति हि पचाद्यदधिक ।

समाप्त पञ्चम्यमत्रानि धरिणीं मुञ्जनपत्ता । शिव पञ्च पाँच वधहितामिद शाश्वतमनघम् ॥

(अमिनगति सुमाधितरनसदाह)

मृते विप्रम मृपाले सत्तामश ते सपुन । शशपञ्चनन्दानामितातं दण्डापरम् ॥ १५७ ॥

(राजनदि-मद्रवाटुचरित)

३ विद्यमानं साय ६ वषाणि । (मयनुग विचारधर्मा यत्र ३ नै गा सगोषक २)

राय प्रारम्भ माना गया है वह टार उठ जाता है, सिन्धु उस विमल यस्त्ररा प्रारम्भ नहीं। तन्त्रना चाहिये। जिन मतान विमल रायम पूर या तमम पुत्र ४७० वर यस्त्ररा मत है तन्त्रे विमलने जम, रायरात्र व मृयुत्र समथम मयत्तु प्रारम्भने मयत्राम यस्त्ररा अति हन हानी है। भोतिरा एर दमरा भी कारण हुआ है। हमरान्न रमित्ररात्र मय दमरान्न ६० यस्त्ररा अन्तर यस्त्ररा है और चद्रगुण माय तर १५० यस्त्ररा। इमरान्न यस्त्ररा रायरात्र ०५ यस्त्ररा पन्ना है। सिन्धु अय यस्त्ररा चद्रगुण रायरात्र यस्त्ररा १० यस्त्ररा। तदयरा ही का मान लिया है और उमम पुत्र ६० यस्त्ररा मयत्ररा १० भी काम है। इमरान्न जा ६० वर यस्त्ररा मय उम उहान जन्म विमलरात्रे यस्त्ररा १० यस्त्ररा से है। सनरा प्रारम्भ मान लिया और इमरान्न ४७० यस्त्ररा सनरा कायम है। १० यस्त्ररा प्रनिपादन प पुनरिन्धोरी मुत्तान लिया है।

इस मतका बुद्धिनिर्माण व आचार्य परम्पराकी गणना आदि विमल यस्त्ररा ४०० यस्त्ररा यह पुत्र विमलरात्र दिव है जिसरा यस्त्ररा विचार करत आव यस्त्ररा है। तन्त्रे यस्त्ररा मयत्र मयत्रों पर से यह मात लेनेमें आपत्ति नहीं सि यस्त्ररा विमलरात्र ४७० यस्त्ररा ५५१ विमलरी मृयुत्र राय मयत्रान विमल रात्र प्रारम्भ हुआ। अय मयत्र परम्परा मयरा १५० यस्त्ररा विमल रायत् ६१४ - ४७० = १४४, हाक रायत् ६१४ - ६०५ = ५९ यस्त्ररा हाक रायत् ६१४ - ५९७ = ८७ यस्त्ररा पन्ना है।

७. पदसुण्डागमकी टीका धवलके रचयिता

प्रारम्भ राय यस्त्ररा अतमे विमल राय यस्त्ररा १० यस्त्ररा ११५ यस्त्ररा रचयिता प्राप्ति है -

यस्त्ररा अन्तिम प्रारम्भ

११	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००	
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००	
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००	

अत्रज्जणट्टिसिम्मेणुत्त-कम्मम चद्रमेणम ।
 तह णत्तवेण पचत्त वृहण्यमाणुणा मुणिणा ॥ ४ ॥
 सिद्धत उद-वेइम मापरण पमाण मत्थ णिगुण ॥
 मारण टीका डिहिण्मा गीरमेणेण ॥ ५ ॥
 अट्ठीमहि मासिय रिक्कमगयहिह ण्णु मग्गो । (१)
 पोसे सुत्तेरसीण भाव-विउग्गे पणल पग्गे ॥ ६ ॥
 जगत्तुगदेवग्गे रियहिह कुभण्णि राहुणा वाण ।
 सरे तुहाए सत गुरुहिह कुउविट्ठए होणे ॥ ७ ॥
 चायहि रणिगुत्ते सिंघे मुक्कम्मि णेमिचग्गि ।
 कत्तियमासे एसा टीका हु समणिआ धरडा ॥ ८ ॥
 बोद्धणराय-णरिदि णरिद-चूणमणिहि भुत्ते ।
 सिद्धतगमरिय गुरुणमाण्ण रिगत्ता मा ॥ ९ ॥

दुर्भाग्यवत इस प्रशस्तिका पाठ अनेक जगह अशुद्ध है जिसे उपर्युक्त अनन्य प्रतिषेध
 टीकाकार मिलानमे भी अभीतर हम पूरी तरह शुद्ध नहीं कर सके । तो भा हम प्रशस्तिसे
 टीकाकारके विषयमें हमें बहुतसी ज्ञानत्रय बानें विदिन हो जानी हैं । पहला गायामे स्पष्ट
 है कि इस टीकाके रचयिताका नाम वीरमेन है और उनके गुरुका नाम एलाचार्य ।
 फिर चौथी गायामें वीरसेनके गुरुका नाम जार्यनन्दि और दादा गुरुका नाम चद्रमेन कहा गया
 है । समस्त एलाचार्य उनके त्रिपागुरु और आर्यनादि दीक्षागुरु थे । इसी गायामें उनका शास्त्रा
 नाम भी पचस्तूपान्वय दिया है । पाचरा गायामें कहा गया है कि इस टीकाके धर्मा वीरमेन सिद्धांत,
 छद्, ज्योतिष, व्याकरण और प्रमाण अथात् याम, इन शास्त्रोंमें निपुण थे और मारक पदसे
 निर्मुक्ति थे । आगेकी तीन अर्थात् ६ से ८ वीं तक्की गायामें इस टीकाका नाम
 ' धरला ' दिया गया है और उसके समाप्त होनेका समय वर्ष, मास, पत्र, तिथि, नक्षत्र व अन्य
 योगनिपुणवर्गी योगोंके सहित दिया है और जगत्तुगदेव के रायका भा उल्लेख किया है ।
 अन्तिम अर्थात् ९ वीं गायामें पुन रायका नाम दिया है जो प्रतिषेधों ' बोद्धणराय ' पता जाना
 है । वे नरेन्द्रचूणमणि थे । उन्हींके रायमें सिद्धांत प्रत्येक उपर गुरुके प्रसारमें डेवल्लके इस
 टीकाकी रचना की ।

द्वितीय सिद्धांत मात्र कथावस्तुवर्ती टीका ' जयधरला ' का भा एक भाग इहो
 वीरसेनाचार्यका ठिछा हुआ है । दोस भाग उनके शिष्य तिनमेने पूरा किया था । उसका प्रश

है। धर्म ए वारसेन इमीन। अतः प्रजा अपर अनुपम साहित्येन अपर मने। उनय विपश्य मर
भूनि धर्मिक धर्म एव अतः अतः

उपस्थितेन मम बोद्धे समानम्,

धर्म दान निरवधिगुण्य च शुभम् ।

वारमाचार्यरा सुमय निमित्त ए। उनरा अपूर्ण रा मयरागारा वनक रि प
नीरसेनाचार्यका विमाग रा म ० ७५९ को पागुन गुम दशमी निधिवो पूण वा य
अत वस समय अयोधराग राय यो । मयदेव रायकृ नरस अमा
रचनाराल रा मयके उन्नय उनके समयक ताघपणे म ॥ ७३७ म एगम
७८८ तन कथान् वनक रायक ५२ यी रा तन मित्र ह । अत नपयल टीका अयोध
यन रा यने २३ यी रा मे सम त ह मित्र हानी ह । एत इममे व रा य वन टीका
समस्त हो चुकी थी आर वरसेनाचार्य सगमासी हो चुके थे ।

धरला टाका जन्मरी ना मरानि मय वामनरागारा गिना ह, हम उर उन्नय
का राय हैं उनरी छट्ठी गाथाम उम टाकासी वामन मूचन कालरा निर्देग ह। रिनु दुभायन
हमारी उपस्थ प्रनियामे उसरा पाठ उन्नय न ह इसमे वही अरित वपरा टीका निधय नहीं
हाना । रिनु उसमे जगन्मदेव रायरा एव उन्नय ह । शष्टकृ नरसोम जगन्म उपारि अन
राजाओरा पाइ जाना ह । इनमस प्रथम वानु गादि नृतीय ये जिनक ताघपन म मर
७१६ म ७२५ तन मि ह । इतर पुन अमायन प्रथम ध निनक रायन वनराग राय
चिनमेन दान ममान ह । अतः म एव ह रि मरारा मरानि इही गादिनान न
गुमरा मय हाना मरि

अब कुछ प्रशस्तिनी उन शताब्दीय गाथाआपरा विचार कीजिये । गाथा न २ में ' अष्टासिंहि ' और ' विक्रमसायहि ' सुस्पष्ट है । गणनाकी मचनाक अभागमें अन्तीमका वर्ष हम जगतुगदेवका साथका ले सकते हैं । किन्तु न तो उसका विक्रमसन्तमे कुछ मन्त्र प्रकटा जाय न जगतुगका साथ ही ३८ वर्ष रहा । नैसा हम ऊपर प्रगत चुक हैं उनका साथ प्रकट २० वर्ष के लगभग रहा था । अतएव उस ३८ वर्ष का समय विक्रमसेही होना चाहिये । गाथामें शतमृचका शब्द गट्ठम है । किन्तु जान पड़ता है छेयका तापर्य कुछ सौ ३८ वर्ष विक्रम सन्तके कहनेका है । किन्तु विक्रम सन्तके अनुसार जगतुगका साथ ८५१ म ८७० न लगभग आता है । अतः उसके अनुसार ३८ क अरफी कुछ सार्थकता नहीं पड़ती । यह भी कुछ साधारण नहीं जान पड़ता कि बीरमेनेन यहा विक्रम सन्तका उल्लेख किया है । उन्होंने जहा जहा वीर निर्माणका काल-गणना दी है जहा शत-काठका ही उल्लेख किया है । उनका गिन्य जिनसेनेने जयवर्लाही समाप्तिका काल शक गणनानुसार ही सूचित किया है । दक्षिण प्रायः समस्त जन छेयकाने शकका गना है । उल्लेख किया है । ऐसी अगम्यामें आश्रय नही तो यहा भी छेयका अभिप्राय शक कालसे हो । यदि हम उक्त सख्या ३८ के साथ सानसी आ मिला दें और ७३८ शक सन्तके छे तो यह काल जगतुगके ज्ञान काल अर्थात् शक सन्त ७३५ न बहुत समाप्त आ जाता है ।

अब प्रश्न यह है कि जब गाथामें विक्रमसन्तका स्पष्ट उल्लेख है तो हम उस शक सन्त अनुमान कैसे कर सकते हैं ? पर खोज करनेसे जान पड़ता है कि अनका जन छेयकों प्राचीन कालसे शक कालक साथ भी विक्रमका नाम जोड़ रक्खा है । अकलकचरितमें अकलक गणकों के साथ शताब्दीका समय इसप्रकार बतलाया है ।

विक्रमार्श्वशताब्दीयशतसत्प्रमाणुपि ।

काठऽनलङ्कयनिनो बोद्धमदो महानभूत ॥

यद्यपि इस विषयमें मतभेद है कि यहा छेयका अभिप्राय विक्रम सन्त से है या शकस, किन्तु यह तो स्पष्ट है कि विक्रम और शकका सन्त एक ही काल गणनामे जोड़ा गया है । यह भ्रमका है और चाहे किसी मायतानुसार । यह भी बात नहीं है कि अनेका ही इस प्रकारका उदाहरण हैं । विक्रमसन्तकी गाथा न ८५० की टीका करते हुए गीताकार श्री मारन चन्द्र प्रविष्ट लिखते हैं—

‘ श्रीगीताथनिवृत्त सनाशात पचासपञ्चमस्यगणि (६०५) पचमासयुतानि गमा पञ्चान विक्रमसन्तस्यगजो जायत । तत उपरि चतुणयुत्तरप्रदान (३०४) यथाणि सप्तमागा प्रिगानि गमा पञ्चान कर्त्तव्य जायत ’ ।

1 Inscriptions at Sravasti Belola Intro p 64 and पाण्डु च मणिपट्ट १ ३

यहा विष्णोः शङ्कराजका उल्लेख है और उसका तात्पर्य स्पष्ट शक्यताके साथ
 पत्र ८ । उक्त सन्तरणर का पाठकने विष्णो की है कि यह उल्लेख स्पष्ट है । उन्होंने ये
 समाकर यह कहा जान जाता है कि उम का दवा तात्पर्य विष्णु सन्तमे ही हो सकता है । कि
 पत्ता नहीं है । शङ्कराजका सूचकामें ॥ एवमने विष्णुना नाम जोड़ा है, और उसे शङ्कराज
 उपारि कहा है जो सर्वथा समर्थ है । शङ्कर और विष्णु सन्तमे वाग्गणाके विषयमें
 ऐगव्योमें कुछ भ्रम रहा है यह तो अवश्य है । त्रिनेत्रप्रभिमैं जो शङ्कराज उत्पत्ति धीरनिर्वाण
 ४६१ वर्ष पश्चात् या विक्ल्म ६०५ वर्ष पश्चात् बतलाई गई है 'उसमें यही भ्रम या माया
 वायवारी है, क्योंकि, धीर नि से ४६१ वां वर्ष विष्णुके सन्तमें पत्ता है और ६०५ वर्ष
 शङ्कराज प्रारम्भ होता है । ऐसी अवस्थामें प्रभुत गाथामें यदि 'विष्णुसन्तमिह' से शङ्कराज
 सूचना ही हो तो हम यह समझें हैं कि उस गाथाके कुछ भागमें धराके समाप्त होनेका सम
 शङ्कराज सन्त ७३८ विदिष्ट रहा है ।

इस निष्कर्षमें पत्र यन्त्रिह उपस्थित होती है । शङ्कराज ७३८ में लिखे गये नव
 साराके तात्पर्यमें 'जगत्पुत्रके उत्तराधिकारी अमोघराज' का यथा उल्लेख है । यही नहीं, किन्तु शङ्कराज
 सन्त ७८८ के मिश्रसे मिश्र हुए तात्पर्यमें अमोघराजका शङ्कराज ५२ में बतला उल्लेख है, जिससे
 गत होता है कि अमोघराज सन्त ७३७ से प्रारम्भ हो गया था । तब फिर शङ्कराज ७३८ में
 जगत्पुत्रका उल्लेख किन्तु प्रकाश किया जा सकता है । इस प्रश्नपर विचार करते हुए हमारी धारणा
 गाथा न ७ में 'जगत्पुत्रद्वारजे' के अनन्तर आय हुए 'रियमिह' शङ्कराज जाता है जिसका अर्थ
 होता है 'जने' या 'रिते' । मभरा उससे कुछ दूर जगत्पुत्रदेवरा का प गत हुआ था और
 अमोघराज सिंहासनात्क हुए थे । इस कल्पनामें आगे गाथा न ० में जो 'बादणराय नरेन्द्रका
 उल्लेख है, उससे उल्लेख भी स्पष्ट होती है । बादणराय मभरा अमोघराजका ही उपनाम होगा
 या यह बहिर्गताही रूप हो और बहिर्ग अमोघराजका उपनाम हो । अमोघराज तृतीयका उपनाम
 बहिर्ग या बहिर्गता तो उल्लेख मित्रता ही है । यदि यह कल्पना ठीक हो तो धीरसे स्वामीके
 इन उल्लेखोंका यह तात्पर्य निकलता है कि उहाने धरका टीका शङ्कराज सन्त ७३८ में समाप्त की
 नव जगत्पुत्रदेवका सन्त पूरा हो चुका था और बौद्धसन्त (अमोघराज) राजगिरि में बैठ चुके थे ।
 'जगत्पुत्रद्वारजे रियमिह' और 'बादणरायनरि' नरिन्द्रात्मणिमि भुजते' पाठोंपर
 ध्यान करनेसे यह कल्पना बहुत कुछ पुष्ट होती है ।

१. श्रीरत्न मिहिरा चउता इति। वचनविशेष । ७३८ वर्ष की वरत उपस्था पत्र सन्तारा ॥ ३॥

विष्णुसन्ताराज ३ नाम सन्त पत्र वरितम । पत्र नाम सन्त सन्तारा सन्तारा अत्रा ॥ ८९ ॥

[illegible][illegible]

शुद्ध परिणाम अगस्त १९३३ ई. में ११२३ वर्षों उत्तरी ६२
परिणाम ५५। इस आठ वर्ष में ३५५ वर्षों तक राशि आगे बढ़ा। राशि गति ३५५ वर्षों
दायी ६। तन्मूलक शक ७३८ में राशि गति ३५५ वर्षों राशि अथात ३५५ वर्षों होना
चाहिये। अतः राशि गति ३५५ वर्षों राशि गति ३५५ वर्षों राशि गति ३५५ वर्षों
३५५ वर्षों ६३५ वर्षों राशि गति ३५५ वर्षों राशि गति ३५५ वर्षों राशि गति ३५५ वर्षों

शनिवी परिक्रमा तीस वरमें पूरी होता है। तन्नुसार गत १९२३ वरमें उसकी ३७ परिक्रमा पूरी हुई और गत १३ वरमें यह काह पांच शशि आगे गयी। अब तक ७३८ में शशि धनु राशिमें होता आदिसे। जब धरणाकारने स्तन ग्रहोंकी स्थितियों दौ हैं, तब वे शनि जैसे प्रमुख ग्रहों का साथ बना सभ्यता माने हमारी दृष्टि प्रशस्तित चापमहि वरणिगुप्ते पापर गद। चाप का जगना धनु होता है, किंतु शनिगुत्त से शनि का अब नहीं निकल सता। पर साथ ही यह ध्यानमें लाना पड़ता कि सभ्यता गुरु पात्र तरणिगुप्ते (शरणिगुत्त) है। तथैव सूर्या पर्यायवाचा ८ और शनि सूर्यपुत्र कहलाता है। इसप्रकार प्रशस्तिमें शनिका भी उल्लेख मिल गया और इन तीन ग्रहोंकी स्थितिमें हमारे अनुमान किए हुए धरणाके समाप्तिवाक्य शक्य सत्य ७३८ का पूरी पुष्टि हो गई।

द्वन ग्रहोंका डही राशियोंमें योग शक ७३८ के अनिरक्त केरड शक ३७८, ५५८, ९१८, १०९८, १२७८, १४५८, १६३८ और १८१८ मेंही पाया जाता है, और य कोईभी सवत् धराके रचनाकाके लिये उपयुक्त नहीं हो मन्ते ।

अब ग्रहोंमेंसे केरड तीन अथान केतु, मंग और गुरु हा एम रह गय तिनका नामोन्टेल प्रशस्तिमें हमारे दृष्टिगोचर नहीं हुआ । केतुकी स्थिति मंदर राहुमें सन्तम राशिपर रहती है, अत राहुका स्थिति रना देने पर उमका स्थिति आप ही स्पष्ट हो जाता है कि उम समय केतु सिंह राशिमें था । प्रशस्तिमें शेष शब्दोंपर विचार करनेमें हमें मंग और बुधका भी पता लग जाता है । प्रशस्तिमें ' रोगे ' शब्द आया है । कोण शब्द रोगके अनुसार मंगलका भी पर्यायवाची है । असा जागे चउरुग नान हागा, कुटलान्चक्रमें मंगलका स्थिति नौमें आती है, इसासे समान मंगलका यह पर्याय पुश्ट करिको यहां उपयुक्त प्रतीत हुआ । अत मंगलकी स्थिति राहुके साथ कुम्भ राशिमें थी । राट पदकी तुताया निमक्ति ' मी ' सायने व्यक्त करनेके लिये रखी गई जान पड़ता है । अत केरड ' भावनिलगमे ' और ' कुलविच्छेद ' शब्द प्रशस्तिमें ऐसे उच रहे हैं तिनका अभीनक उपयोग नहीं हुआ । कुल का अर्थ कोणानुसार पुन भा होता है, और गुरु सूर्यकी आन गानकी राशियोंसे बाहर नहीं जा सकता । जान पड़ता है यहां कुलविच्छेद का अर्थ ' कुटविच्छेद ' है । अथान गुरुकी सूर्यकी हा राशिमें स्थिति होनेमें उमका विउय था । गायमें मात्रापूर्विके लिये विच्छेद का विच्छेद कर दिया प्रतीत होता है ।

अत तय लग्नका समय नहीं दिया जाता तत तत ' योनिय कुडल पूरा नहीं कहा जा सकती । ६४ वामी का पूर्ति ' भावनिलगमे ' पद से होनी है । ' भावनिलगमे ' का पुट टीक अर्थ नहीं पड़ता । पर यदि हम उसका जगह ' भाणुनिलगमे ' पाठ डे डे तो उसमें यह अर्थ निरलता है कि उस समय सूर्य लग्नका राशिमें था, और क्योंकि सूर्यकी राशि अ वत तुडा वतडा है, अत ज्ञान हुआ कि गतडा टीका को गारमेन शर्माने प्रात कालके समय पूरा का थी तय तुडा राशिमें माय मयदेन उच्य हो रहे थे ।

हम विरचनद्वारा उक्त प्रशस्तिमें समयसूचक पंचोका पूरा संशोधन हो जाता है, और उससे धवराकी समानिका काठ निवासद रूपमें शक ७१८ कार्तिक पुन १३, तदनुसार तारीख ८ अक्टूबर सन् ८१६, दिन बुधवार का प्रात काल, मिद हो जाता है । उममें धीरसेन स्वर्गमें मृत योनिय जन्मका भा पता चउ जाता है ।

अब हम उन तीन पद्यों का मुद्रण हमारे पत्र में करेंगे ।

अठतीसमि मनसए विषमरापणि सु मगगाम ।
 चामे सुतरमीण भाणु विलगे धवल पसर ॥ ६ ॥
 जगतुगदव-रञ्ज गियमि वममि गहुणा काण ।
 मरे तुलाण मते गुरुमि कलविल्लह होते ॥ ७ ॥
 चारमि तगणि पुन मिष मुवमि मणि चरमि ।
 कलिय-मामे एमा टीका हु ममाणिआ धरला ॥ ८ ॥
 २ म धरणा की वममुत्तम निमज्जकाल गाथा न मरता ह



एकान स्वामि अना गीतावा नम ५२५ करा मकर दह पर धरणा न
 धरला नामकी विगाह नहीं हुआ । धरणा नामक पुस्तक अखिल मुद्र विगाह
 सार्धवता भी हाता ह । मकर ह अर्थात् २२५ इमी मकर मुद्र
 एतान दह नाम कुल हा । दह म -
 पात्र मकर

८ ध्वलासे पूर्वके टीकाकार

उपर वह जाय है कि त्रयपत्रासी प्रगल्भिक अनुमात्र योग्यताचायन अपनी टीका
मिहानत प्रयोगी उहृत पुष्टि की, त्रिमम न अपनम पुत्र ममम पुनरुत्थिषकोम न ग
इसमे प्रथ उपल हाता है कि क्या गीरसेनेमे भी पुत्र मम मिहानत प्रगरी अय टीकाण गिनी ग
थी २१ इन्द्रनन्दिने अपन श्रुतासनाम गना मिहानत प्रयापर गिनी ग अतः टीकाभासा उहृत
गिया है जिसके जागम पद्मपण्डागमरी स्वयम प्र गची गं गीसाभासा यहा पश्चिम गिया
जाना है ।

कर्मप्राभृत (पद्मपण्डागम) आर स्थायप्राभृत न गना मिहानतोंका नान पुत्र
परिकर्म और परिपाटीम उहृतपुत्र पञ्चनन्दि मुनिना प्राप्त हुआ, आर उहें मम
उससे रचयिता पहल पद्मपण्डागमक प्रथम तीन गणनापर ग्राह हाता अय प्रमाण एक टीका
कुन्दकुन्द प्रय रचा त्रिमरा नाम परिकर्म था । हम उपर गनडा आय है कि इन्द्रनन्दिना
कुन्दकुन्दपुत्रक पञ्चनन्दिम हमार उहें प्राप्त स्मरणीय कुन्दकुन्दाचार्यसा है
अभिप्राय हो सकता है जा दिगम्बर जैन मप्रदायम ममम उड आचाय गिन गय है आर त्रिमर
प्रयचनमा, ममयमा आरि अय जैन मिहानतक मगापि प्रमाण मान तात है । दुभाग्यत उनरी
बनायी यह टीका प्राय नहा है आर न मिहानत अय उह्वरान उमर सा उह्वरादि दिय । त्रि
स्वय ध्वला टीकामें परिकर्म नामक प्रथमा अनसगा उह्वर आया है । ध्वलागमन बहा
'परिकर्म' म उह्वरत किया है, कहा कहा है कि यह गान परिकर्म क रानपम गानी
जानी है आर कही अपन त्रयनरा परिकर्मर त्रयनम गिना जानरी गरा ग्राहक ममरा
ममागान किया है । एक गानपर गहान परिकर्मर रानर सिद्ध अपन न गनडा पुष्टि भी सा है आर

१ गुलकाना विमानां मुखाभास इव । उनासनायना नव मर पुनरुत्थिषका ॥ २४ ॥
२ ७४ । त्रिधा इ यनाकगुलकान ममा । इन । गवापा- । गान १५३ । कुण्डकु इव ॥ २४ ॥
धीवचमि इमुनिना गाना गानममयपात्राण । मधपरिकर्मकथा १ ११ । गान २४ ॥ २४ ॥
३ ७४ । त्रिधा इ यनाकगुलकान ममा । इन । गवापा- । गान १५३ । कुण्डकु इव ॥ २४ ॥

त्रि परिकर्ममे पुत्र
परिपाटीम पुत्र
परिपाटीमपुत्रा न २४
परिपाटीमपुत्रा २४

ध्वला अ २४
२४
२४
२४

परिपाटीमपुत्र म २४ । २४
परिपाटीमपुत्र म २४
परिपाटीमपुत्र म २४

परिपाटीमपुत्र
२

सरा मिले उक्त २ राशियाँ चर्या । भूत राशिर 'आम' की चर्या' पाठमें समस्त
अक्षरों में समानता है । किन्तु अष्टमोदक वरुण शक्य है नही होता ।

विष्णु सागर स्मृतिसंग्रहमें समस्तभट्टनाम्न 'जीरमिद्धि' का उल्लेख आया
है, किन्तु यह भी अक्षरों में नहीं है । वही 'समस्तभट्ट' 'जीरहाण' का टीका
है । 'समस्तभट्ट' का उक्त ग्रन्थ ग्रन्थमहाभाष्य में उल्लेख मिले है । जिनमें उसे
तत्पराध या तत्पराधग्रन्थ का उल्लेख कहा है । इस नाम माना जाता है कि समस्तभट्टने
यह भाष्य समस्तभट्टनाम्न नाम से लिखा होगा । किन्तु यह भी समस्त है कि उन उल्लेखों
अभिप्राय समस्तभट्टनाम्न ही मिले जायेंगी टीका है । इन ग्रन्थों में 'तत्पराधमहाभाष्य'
नाम का प्रसिद्धि नहीं है । चर्या नाम हम ऊपर कट आया है । सुसुग्राह्यरूप में इस
'तत्पराध' नाम का उल्लेख उन तत्पराधग्रन्थों में आया है ।

इतिहास कहा है कि समस्तभट्ट नाम द्वितीय सिद्धांतकी भाषा टीका लिखना चाहते थे,
किन्तु उनका यह सपना ठीक नहीं बन सका । उनका ऐसा करने का कारण द्रव्यादि-
गुणों के कारण प्रत्यक्ष अभाव बन गया था । समस्तभट्ट ने कहा कि समस्तभट्टनी उस भस्मक
मार्गिक । और समस्तभट्ट, जिसका कारण कहा गया है कि उन्हें कुछ बातें अपनी सुनि आचारका
अभिप्राय करना पड़ा था । उनका इसी भावों और सारांश अवस्थाकी उनका महर्षीने द्वितीय
सिद्धांत में प्रत्यक्ष टीका टिप्पणमें अनुष्ठान न देना उन्हें सारा दिया है ।

यदि समस्तभट्ट नाम सप्तममें लिखा गइ थी और वरुणोपासना समय तक,
विष्णु नाम की ओर उल्लेख प्रत्यक्ष तत्पराधमें उल्लेख न दिया जाता था आक्षेपों की बात होगी ।

सिद्धांतमें टीका प्रत्यक्षतम गुण प्रत्यक्षतम चर्या रहा । इस प्रत्यक्षमें शुभमन्दि

१. टीका प्रत्यक्षतम ५ १० १० १० १०

आवृत्ति १० १० १०

१० १० १० १० १० १० १० १० १० १०

१० १० १० १० १० १० १० १० १० १०

१. टीका प्रत्यक्षतम ५ १० १० १० १०

१० १० १० १० १० १० १० १० १० १०

१० १० १० १० १० १० १० १० १० १०

तत्पराध प्रत्यक्षतम ५ १० १० १० १० १० १० १० १० १०

५ १० १० १० १० १० १० १० १० १०

१० १० १० १० १० १० १० १० १० १०

१० १० १० १० १० १० १० १० १० १०

१. टीका प्रत्यक्षतम ५ १० १० १० १० १० १० १० १० १०

१० १० १० १० १० १० १० १० १० १०

५ बप्पदेव गुरुकुल
व्याख्याप्रवृत्ति

और रत्नान्दि नामके दो मुनि हुए, जो अन्यत्र नाश्वर्युद्धि य। उनसे बप्पदेवगुरुने वह समस्त सिद्धांत विशेषरूपसे सीखा। वह व्यम्पन भीमरथि और कृष्णमेरु नदियोंके बीचके प्रदेशमें उत्कलिमा प्रन्त समीप मगणरुह्री प्रायमें हुआ था। भीमरथि कृष्णा नदीकी शाखा है और इनके बीचका प्रदेश अब बेतगाँव व धारवाड कहलाता है। उहाँ यत्र बप्पदेव गुरुना सिद्धान्त-अध्ययन हुआ होगा। इस अध्ययनके पश्चात् उन्होंने महाबभ्रवी जेट शेर पाच खटोर 'व्याख्याप्रवृत्ति' नामकी टीका लिखी। तत्पश्चात् उन्होंने छठे खण्डकी संहारमें व्याख्या लिखी। इस प्रकार उन्होंने खर्गोव निगम हो जानेके पश्चात् उन्होंने कथाप्रामाण्यकी भी टाका रची। उस पाच खर्गो और कथाप्रामाण्यकी टीकाका परिमाण साठ हजार, और महाबभ्रवी टीकाका 'पाच अधिक अट हजार' था, और इस सब रचनाकी माता प्राकृत थी।

चवत्तमे व्याख्याप्रवृत्तिने गो उल्लेख हमारा दृष्टिमें आये है। पर स्थानपर उसका अन्तरा द्वारा टाकाराने अपने मतकी पुष्टि की है। यथा—

छोगे वादपिदिदो ति त्रियाहपण्णचिबयाना (प १४३)

दूसरे स्थानपर उससे अपने मतका विशेष दिखाया है और कहा है कि आपण भेत्तसे वह भिन्न-भावनाको छिये हुए है और इसलिये उसका हमारे मतसे ऐक्य नहीं है। यथा—

'वेदा त्रियाहपण्णचिसुणेण सह कथं न निरोधो' न, एदम्भादो तस्स पुग्गुत्तस्य कथयिनेत्ता भेदमवगमस्य प्यत्तामावाधो (प ८०८)

इस प्रकारसे स्पष्ट मतभेदसे तथा उसका मत बड़े जानमें इस व्याख्याप्रवृत्तिको इन सिद्धान्त प्रवृत्तिकी टीका करने में आशङ्का उत्पन्न हो सकती है। किन्तु तत्पश्चात्तमें एक स्थानपर ऐक्यके बप्पदेवका नाम उभर उभरे और अपने बीचका मतभेदको बतलाया है। यथा—

वृत्तिगुणमि बप्पदेववारिपिदिदुबाराण अन्तमुत्तमिदि मणिदा । अहदि डिदिदुबाराण पुा दहं पाममभ, उक्कं सम्भा समत्ति दमविदा (उप १० १८७)

१. बह व्यम्पनप्रवृत्तिरुह्री नृ वादपिप्रवृत्तिः । अत्रैव सिद्धांताः । त्रिवर्गस्य च । त्रिवर्गस्य च । १०१ ॥
२. बह व्यम्पनप्रवृत्तिरुह्री नृ वादपिप्रवृत्तिः । अत्रैव सिद्धांताः । त्रिवर्गस्य च । त्रिवर्गस्य च । १०२ ॥
३. बह व्यम्पनप्रवृत्तिरुह्री नृ वादपिप्रवृत्तिः । अत्रैव सिद्धांताः । त्रिवर्गस्य च । त्रिवर्गस्य च । १०३ ॥
४. बह व्यम्पनप्रवृत्तिरुह्री नृ वादपिप्रवृत्तिः । अत्रैव सिद्धांताः । त्रिवर्गस्य च । त्रिवर्गस्य च । १०४ ॥
५. बह व्यम्पनप्रवृत्तिरुह्री नृ वादपिप्रवृत्तिः । अत्रैव सिद्धांताः । त्रिवर्गस्य च । त्रिवर्गस्य च । १०५ ॥
६. बह व्यम्पनप्रवृत्तिरुह्री नृ वादपिप्रवृत्तिः । अत्रैव सिद्धांताः । त्रिवर्गस्य च । त्रिवर्गस्य च । १०६ ॥
७. बह व्यम्पनप्रवृत्तिरुह्री नृ वादपिप्रवृत्तिः । अत्रैव सिद्धांताः । त्रिवर्गस्य च । त्रिवर्गस्य च । १०७ ॥
८. बह व्यम्पनप्रवृत्तिरुह्री नृ वादपिप्रवृत्तिः । अत्रैव सिद्धांताः । त्रिवर्गस्य च । त्रिवर्गस्य च । १०८ ॥
९. बह व्यम्पनप्रवृत्तिरुह्री नृ वादपिप्रवृत्तिः । अत्रैव सिद्धांताः । त्रिवर्गस्य च । त्रिवर्गस्य च । १०९ ॥
१०. बह व्यम्पनप्रवृत्तिरुह्री नृ वादपिप्रवृत्तिः । अत्रैव सिद्धांताः । त्रिवर्गस्य च । त्रिवर्गस्य च । ११० ॥

५ वप्पदेव गुरुकृत
व्याख्याप्रवृत्ति

और रत्तिनान्दि नामके गे मुनि हुए, जो अत्यन्त तान्त्रिकपुद्गि थे। उनसे
वप्पदेवगुरुने यह समस्त सिद्धांत विशेषरूपसे सीखा। वह व्याख्यान
भीमरथि और कृष्णमेख नदियोंके बीचके प्रदेशमें उत्कलिका ग्रामके

समीप मगणनहल्ली ग्राममें हुआ था। भीमरथि कृष्णा नदीका शाखा है और इनके बीचका प्रदेश अज
बेलगाय व धारवाड कहलाता है। वही यह वप्पदेव गुरुका मित्रात अग्र्यन हुआ होगा। इस अग्र
यनके पश्चात् उन्होंने महाभारतमें छोट शेष पाच खंडोंपर 'व्याख्याप्रवृत्ति' नामकी टीका
लिखी। तत्पश्चात् उन्होंने छठे खण्डका सत्रोपमें व्याख्या लिखी। इस प्रकार उन्होंने खंडों में निम्न
हो जानेके पश्चात् उन्होंने व्याख्याप्रवृत्ति की भांटी रची। उक्त पाच ग्रंथों और व्याख्याप्रवृत्ति
टीकाका परिमाण साठ हजार, और महाभारत की टीकाका 'पाच अंगिक अठ हजार' था, और
इस सब रचनाकी भाषा प्राकृत था।

धनलमें व्याख्याप्रवृत्तिके दो उल्लेख हमारा दृष्टिमें आये हैं। एक स्थानपर उस
अन्वयण द्वारा टीकाकारने अपने मतका पुष्टि का है। यथा—

लोभो गदपदिष्टो चि त्रियाहपण्णचिक्खणादो (ध १४३)

दूसरे स्थानपर उससे अपने मतका विशेष दिखाया है और कहा है कि आचार्य
भेत्से वह भिन्न नायताको लिये हुए है और इसलिये उसका हमारे मतसे ऐक्य नहीं है। यथा—

'एदेण त्रियाहपण्णचिसुणेण सह करण निरोहो' ण, एदंशदो तस्स पुण्डुस्स
आपरिपभेएण भेदमाखण्णस्स एवमाभासो (ध० ८०८)

इस प्रकारके स्पष्ट मतभेदने तथा उसके सूत्र कहे जानेसे इस व्याख्याप्रवृत्तिके
इन सिद्धांत प्रयोगों की टीका मानने में आशंका उत्पन्न हो सकती है। किंतु जयपरलमें एक
स्थानपर लेखकने वप्पदेवका नाम देकर उनसे और अपने बीचके मतभेदको बनलाया है। यथा—

जुग्गिमुत्तमि वप्पदेवा, रिक्खिहिदुच्चारणाए अतोमुत्तमिदि मणिदो । अहंदि
लिहिदुच्चारणाए पुण जहं एगममओ, उहं सखेजा समया चि पक्खिदो (जयध० १८५)

१ एवं व्याख्यानकृतमहाभारत परमग्रन्थपरवरा। आगच्छन् सिद्धाता त्रिवाक्कतिनिवृत्तिश्चात् ॥ १०१ ॥
भीमरथिनदिपुनि या भीमरथि कृष्णमेखया सरिता । य यमविवय इत्येवावाक्यिद्याममामायत् ॥ १०२ ॥
विव्याख्यानप्रवृत्तिग्राम व विषयवृत्ति । अथा तथाप पा व तमस्य वप्पदेवपुत्र ॥ १०३ ॥
अपनाय महाभारत व मृगयामपवस्ये नु । व्याख्याप्रवृत्ति व वर्य खड व तन सतिथ ॥ १०४ ॥
वर्णा खडना वति नि यमना तथा कथाव्याख्यानवृत्ति व व्याख्यान वरवाचयुतात् ॥ १०५ ॥
वृत्तिश्चात्तमवाक्यो सत्यकुरातनव्याख्यानम् । अग्रहयमवा व्याख्या पञ्चाविंश महाभारे ॥ १०६ ॥

इति व्याख्यान

आचार्याद्वारा भी ।। सुके थे । और यह व्यापारिक ही है, क्योंकि, उनके उद्देश्य यह है कि सूत्रोंका अध्ययन कई प्रकारसे करना या जिसका अनुसरण कई गुणाचार्य'ों, की उच्चारणाचार्य', मोक्ष निष्पेक्षाचार्य' और काह व्याख्यानाचार्य' । इनमें भी उक्त 'महाभाष्य'ों' पर शान होता है । कयायशास्त्रोंके प्रसारण का आर्यम् और नागहस्तिना अनेक जगह महाभाष्य कहते हैं । आर्यनन्दिया भी महाभाष्यरूपमें एक जगह उक्त है । समस्त ये रूप वीरसेनके गुरु य जिनका उद्देश्य धर्मशास्त्रोंके प्रसारणमें भी किया गया है ।

धर्मशास्त्रोंके कई जगह एक प्रमाण भी उक्त है जहाँ मुद्रापर इन आचार्याका का मत उपलब्ध नहीं था । इनका निर्णय उ होने अपने गुरुके उपदेशके बल पर 'य परमाणु उपदेशद्वारा तथा सूत्रोंसे अविद्वज्ज अथ आचार्याक वचनोंद्वारा' किया है ।

धर्मशास्त्र पर १०१६ पर तथा अथधर्मशास्त्रोंके महाभाष्यमें कहा गया है कि गुणधराचार्य विरचित कयायशास्त्र आचार्यगणेशके आर्यम्-यु और नागहस्तिना आचार्याका प्राप्त हुआ और उनमें सीखकर यतिवृषभने वनपर प्रसिद्ध रचे । वीरसेन और जिनसनेने समुच्च, जान पड़ता है, उन दोनों आचार्योंके अलग अलग व्याख्यान प्रस्तुत थे क्योंकि उ होने अनेक जगह उन दोनों

१ सुखाश्रयि वसन्त-पण्डितो उक्तम् । तन्मा तेषु सुखाश्रयि वसन्त-पण्डितेन य २११

२ एवौ लब्धारणाश्रयि अभिषातः । वक्तव्य अ ३१४ एवमभिव्यासगतानामुच्चारणाश्रयिो वसन्तलेण पण्डितेन वसन्तमात्रे । अथ अ ८६२

३ शिष्येयाश्रयि पण्डिते माहात्म्येन अ भवितामा । धर्मशास्त्र अ ८२३

४ धर्मशास्त्राश्रयि पण्डिते वसन्तमात्रे । धर्मशास्त्र अ १२३

धर्मशास्त्राश्रयिपण्डितमात्रे । धर्मशास्त्र अ ३२८

५ महाभाष्यपण्डितमस्तुमन्त्राणामुक्तदत्तम् । महाभाष्यपण्डितमस्तुमन्त्राणामुक्तदत्तम् । धर्मशास्त्र अ १४५० महाभाष्यपण्डितमस्तुमन्त्राणामुक्तदत्तम् । धर्मशास्त्र अ १४

अत्रान्न नागहस्तिना महाभाष्यपण्डितमस्तुमन्त्राणामुक्तदत्तम् । अथ अ १३३

६ कथमेव नन्द ? गुरुवेदसाक्षे । धर्मशास्त्र अ २१८

७ सुतामात्रं तत्र च व सत्राणि करात । यि वम नन्द ? य आश्रयि परपरामुक्तदत्तम् ।

धर्मशास्त्र अ ५२

८ मुद्रा नन्द ? अविद्वज्जश्रितवशात् सुत स्तमात्राणां । धर्मशास्त्र अ १२७ सुतव विना

मुद्रा नन्द ? सुतविद्वज्जश्रितवशात् सुत स्तमात्राणां । धर्मशास्त्र अ १२३०

मनभोरा उभय त्रिया है' तथा उहे ग्हावाचक पत्रिक 'क्षमाधमण' भी कहा है।
चरित्रमयत चरित्रमूखी पुनव भी उभे सामने थी और उसवे सूत्र सत्या प्रकाश भी बारसेनने
का प्यार रक्खा है ।

॥ आ उत्तर व्याख्यानम् विष्णुः प्रतिष्ठा एव आग्निधरा उत्तरा मित्ता ह
उत्तर और दक्षिण
प्रतिपादि
विष्णु धर्मशास्त्रा उत्तर प्रतिपादि आ दक्षिण प्रतिपादि यत् । य दो
विष्णु मायनाथ श्री विनयम् टीकाकार स्वयं दक्षिण प्रतिपादित्वा श्रीशार
वत ५ वर्योक्ति यत् कर्तु अथात् सत्, सुरुपट आ आशय परपरागत
है तथा उत्तर प्रतिपादि अर्जुन ह अत्र आशय परपरागत नहीं । धर्मशास्त्र इस प्रमाणक तीन मन
भूत हमाह दक्षिणाह दृष्ट है । प्रथम द्वा प्रमाणानुयागशास्त्र उपराम गीरीही सत्या ३०४ बतार
यत् ह—

‘कश्चि पुत्रपुत्राणां पत्नूणां वरानि । इह पत्नूणां वरमाणां पराजितमाणां दक्षिणमाश्रित्य
परपरापण्डितं न वुत्त एव । पुत्रपुत्र-वत्पुत्रपुत्रपराजितमाणां वाउ आश्रित्यपरपरा अगादमिदि
नपत्य ।’

अपने वह पक्ष पुरातन प्रमाणों पाचरी कमी करते हैं। यह पाचरी कमी का व्याख्यान प्रचुर प्रान्त है, दत्त है और आचार्य परमप्रान्त है। पुरातन व्याख्यान प्रचुर प्रान्त नहीं है, दत्त है और आचार्य परमप्रान्त आचार्य भी नहीं है, ऐसा जानना चाहिये।

इतीर आग भापरश्रेणीकी मर्यादा ६०५ घनसेर बढ़ा गया है—

एसा उगार पाडिवत्ती । एय दस अगणिद दक्षिण पाडिवत्ती हवदि ।

अथात् यत् (६०५ वीं सम्पासस्थी) उत्तर प्रतिपत्ति है । इसमें दश निरापुट देन पर द्वाणि प्रविपत्ति है । जाना है ।

भाग चत्वारः इत्यप्रमाणानुसारम् हे। सद्योत्तरी साया ८९००९९७ मतान्तर
कदा ८ ' ९९० दक्षिण-पट्टिष्वी । इमं अन्तगत भी मतभेदादिस निगमन कार, सि

१ कर्मप्रति ति आशयान्तरादि मन्त्रमात्रं च उच्यते । जलपुष्पवर्षादीनां पञ्चापचरणा कर्म
 तदपचरणं ति पागहृति मन्त्रात्मना भवति । अक्षय्यगुणमात्रेण पुन कर्मप्रतिदिपचरणं ति भवति । एवं
 दाहि उच्यते किं कर्मप्रतिपचरणा कावना । (अथ ज १४४) इह पुन उच्यते महाशिवपञ्चममन्त्रगुणरत्ना
 पञ्चदशमे योगप्रतिदि आशयान्तरात्मा माद बद्धायां चिदित कर्म उच्यते । महाशिवार्पणं पागहृति सरणा
 मुच्यते सां प्रति नामा माद-बद्धायां चिदितकर्म अत्रागच्छपञ्चादि । जय अ १११९

२ अथसहस्रविंशतिगणिते नवमः अध्यायः ।। अथसहस्रविंशतिगणिते । अथ ज २४

कहा है 'एता उत्तर पट्टिर्वाच यत्तु गमा' आर तपश्चात् मत्वा तामसा २००९००००
बतलाई है। यहा इनकी सर्वाचीनताक नियम उक्त नहीं था।

दक्षिण प्रणिपत्तिक अर्चन एक आर मनभद्रा भी उद्धृत किया गया है। उक्त
आचार्योक्त उक्त सन्यास सनम का शरीर उद्योग उद्योग निम्न शरीर धारण कर रहत है—

‘ज दूषण भण्डि तण्ण दूषण, सुद्धिभूणाद्विमुत्तिगमयनाद।।’

अर्थात् ‘जो दूषण कहा गया है वह दूषण नहीं है, क्योंकि यह सुद्धिभूत आचार्य
मुनसे निकली हुई बात है’। सभ्य ह योग्य स्वामान शिवा मममायिक आचार्य शरीर
ही दृष्टिमें रखकर यह भजना की है।

उत्तर और दक्षिण प्रणिपत्ति भद्रा तीसरा उद्धृत अतनुगामद्वयमें आया है जहा तिर्य
और मनुष्योंके सम्बन्ध और समयादि धारण करनेकी योग्यताक शरीर नियन्त्रण करने हुए
लिखते हैं—

‘एव ये उद्वेसा, त जहा—निरिक्रमेण गेमासमुद्धतपुत्रस्तमुत्ति सम्मन सनमामनम व
जीरो पट्टिर्वाचि। मणुसेसु गमादिअद्वयस्सेसु अतोमुद्धतमहिणसु सम्मन सनम सनमासनम व
पट्टिर्वाचि चि। एसा दक्षिणपट्टिर्वाची। त्रिण उक्तु आचार्यपरपरागदमिदि एयहा।
निरिक्रमेण तिण्णि पक्ख तिण्णि दिवस अतोमुद्धतसुरि मम्मत्त सज्जामनम च पट्टिर्वाचि। मणुसेसु
अद्वयस्साणमुत्ति सम्मन सनम सनमामनम च पट्टिर्वाचि। एसा उत्तरपट्टिर्वाची, उत्तरमणुत्तु
आचार्यपरपरागदमिदि एयहा धनला अ ३३०

इसका तापय यह है कि सम्मन और मयमासयमादि धारण करनेकी योग्यता दक्षिण
प्रणिपत्तिके अनुसार नियंत्रणमें (नमसे) २ मास और मुत्तपुत्रस्तमुत्तरे पश्चात् होता है, तथा मनु
ष्योंमें गभसे ८ वर्ष और अतमुत्तरे पश्चात् होता है। किंतु उत्तर प्रणिपत्तिके अनुसार निय
त्रणमें वही योग्यता ३ पक्ष, ३ दिन और अतमुत्तरे उपरात्, तथा मनुष्योंमें ८ वर्ष
उपरात् होता है। धनलागने दक्षिण प्रणिपत्तिके यहा भी दक्षिण, ऋतु व आचार्य-परपरागत
कहा है और उत्तर प्रणिपत्तिके उत्तर, अत्रु और आचार्य परपरागमे अनागत कहा है।

हमन इन उद्धरणोंका दूसर उद्धरणोंका अपेक्षा उक्त निम्नागसे पश्चिम इस धारण दिया
है, क्योंकि, यह उद्योग और दक्षिण प्रणिपत्तिमा मतभेद अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रिचाणीय है।
सभ्य ह इनसे धारणमात्रा तापय जन ममानके भीतरकी निही विशेष साम्प्रदायिक भावनाओंमें
है।

च तत्त्वार्थभाष्ये ' या 'तत्त्वार्थभाष्यगत' प्रकट किया गया है। ध्वन्यम् एक भाव (प ७००) पर कहा गया है—

पूयपात्रभट्टारकैरपभाणि—सामान्य नय-र-भाणिदिनेव । तद्यथा, प्रमाण प्ररशिताथ गिरप प्ररपरो नय इति ।

इन्ने आग प्ररपेण मान प्रमाणम् आदि उक्त अनन्तर 'या'या भी दा है। यही लक्षण व 'या'या तयपगतार्थिक, १, ३३, १ में आर है। जयप्रला (प २६) में भी यह 'या'या २। २१ ह और वहां उसे 'तत्त्वार्थभाष्यगत' कहा है। 'अय वाक्यनय तत्त्वार्थ भाष्यगत' । 'सम सिद्ध शता ह रि पावनिकर' अस्ती प्राचीन नाम 'तत्त्वार्थभाष्य' है और उमर बना अस्ती नामानुचर उपनाम 'पूयपात्र भट्टारक' भा १। उनका नाम भट्टारकनेव नो मिलता है। है।

प्रभाचन्द्र भट्टारक ध्वन्ये वेदनामज्ञातगत तयरे निष्पणमे (प ७००) प्रभाचन्द्र भट्टारक द्वारा कहा गया नयका ल ग उद्धृत किया गया है, जो इस प्रकार है—

' प्रभाचन्द्र भट्टारकैरपभाणि-प्रमाण-यथाश्रय-परिणाम-रीरस्य-वशाद्वनार्थ-विशेष-प्रमाण-प्रमाण प्रणिरिमे स नय इति । '

टीव यही लक्षण 'समय-यथाश्रय' आदि जयप्रला (प २६) में भी आया है और उमर पश्चात् किया है 'अय वाक्य नय प्र १७ १० य' । यह दूसरी प्रतिकी अनुदि लन दानी है और इसका टीव 'अय वाक्यनय प्रभाच द्रिय' ऐसा प्रतीत होता है।

प्रभाच द्रयन ने प्री-याय प्र सुप्रसिद्ध हैं, एर प्रमेय-प्रमाण-अर्थ और इनका दाय पुस्तक गेदप । इस दूसरे प्रकाश अभी एक ही सड़ प्रकाशित हुआ है। इन दोनों प्रथमे उक्त लक्षण का पता लगाने का हमने प्रयत्न किया कि-तु वह उमरे नहीं मिला। तब हमने 'पु व के मुपाय संग्रह' प महेन्द्रकुमारजीसे भा इसकी कोज करनेरी प्रारंभ की। कि-तु उ होने भी परिश्रम करनेर पश्चात् हमें सूचित किया कि बहुत शोध करनेर भी उस लक्षण का पता नहीं लग रहा। इससे प्रतीत होता है कि प्रभाच द्रयन कोई और भी मय रहा है आ अभी तक प्रसिद्धिमें नहीं आया आर उसीसे अज्ञान वह लग रहा, या इसका बना का प्रमे है। प्रभाच द्रयन हों।

ध्वन्ये 'इति' व चतस्र अप वन्यमव रिच 'उत्थ उच्यतेप्रो मिलाया' अन्त

धनजयकृत अनेकार्थ नाममाला
 इस विषय का एक उपयोगी श्लोक कहकर निम्न श्लोक उद्धृत किया है—
 हेतोरिव प्रसारार्थं व्यञ्जयेद्विपर्ययः ।
 प्रादुभावे समानं च इति शब्द विदुर्बुधाः ॥ धरणी अ ३७

यह श्लोक धनजयकृत अनेकार्थ नाममाला का है और यहाँ यह अपने प्रसंगमें उद्धृत किया जाता है—

हेतोरिव प्रसारार्थं व्यञ्जयेद्विपर्ययः ।
 प्रादुभावे समानं च इति शब्द प्रसूचित ॥ ३० ॥

इसी मन्त्ररत्ना बनाया हुआ नाममाला कोश भी है जिसमें उन्होंने अपने द्विमधान कल्पकाल का अन्तर्गत प्रमाण और धूषणादिक मन्त्रों के अभिप्राय कहा है अर्थात् उनका अर्थ है कि यह मन्त्र प्रमाण है ।

इसका अर्थ यह है कि जो जो कारण धनजय, धूषणाद और अन्तर्गत प्रमाण है । इसका अर्थ यह है कि अन्तर्गत प्रमाण नहीं होता है । धरणी उद्धृत प्रमाण है । यह है कि धरणी का अर्थ प्रमाण, प्रमाण का अर्थ ७३८ से पूरा है ।

यह श्लोक इस प्रकार प्रमाणों में भी पाया जाता है । पाँच सत्रों में अभीष्ट कृत भी है । यह श्लोक इस प्रकार है कि यह कहते आदि किमर्थ बताया हुआ है । इसप्रकार का यह उद्धृत प्रमाण है । अतः, (११११ १ ३८९) धरणीमाला का उक्त—

यह श्लोक अथवा विष्णुसंहिता में ।
 अथवा अथवा य मन्त्रका अर्थ समान ॥

यह श्लोक अथवा अथवा मन्त्रमाला में भी पाया जाता है और धरणी माला में ७३८ से पूरा है ।

यह श्लोक अथवा अथवा मन्त्रमाला में ७३८ से पूरा है । धरणी माला—
 य मन्त्रमाला में ७३८ से पूरा है । धरणी माला—

१११ अ ३०३

यह श्लोक अथवा अथवा मन्त्रमाला में ७३८ से पूरा है ।

‘ म सम्मपरादे सावित्राय नमः । (पञ्च अ १३७१)

जन्म रोगों से एक स्थान पर दूसरे स्थानों में प्रवृत्ति आया है । यथा—

‘‘पुनरुत्पत्तिमिव जन्ममुत्पिबन्तरसमय निर्वन्ने वधेयाय कीचराणांमिति । दग्ध
वर्णोमया पुन पशुद्विपसमयमेतमश्नित्य वेदोपसमा वापरायगुणाण्यु नि वधणाकरणमोवह-
णकरण च दा वि भर्त्ताजे ति । जप ७ अ १०४३

इस अवस्था में इस समय में क्याही बच, उदय, सन्मग आदि इस अवस्थाओं का
बर्णन दत्ता प्रणीत होना है ।

ये धार्मिक लोग उन्हे ई जो पञ्च आर जपवचन पर एक स्थूल दृष्टि डालने से प्राप्त
हूँ है । हमें विश्वास है कि इन प्रयोगों से हम अवलोकन से जैन धार्मिक और साक्षिपक इतिहास से
साक्ष्य में वस्तुता में, कौन कौन होगी जिनसे अनन्त साक्षिपक प्रयोगों द्वारा सत्येंगी ।

१० पदसङ्गमका परिचय

पुनरुत्पत्ति और भूतवर्तिता जो प्रथम रखा गया उसका नाम क्या था ? स्वयं सूत्रों में
प्रथम नाम प्रथम बार नाम हमारे देखने में नहीं आया, किन्तु ध्वजाकारने प्रथम की उत्पत्तिकामें
प्रथमे मग, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम और कता, इन छह ज्ञातव्य बातों का
परिचय कराया है । वही हमें ‘ पदसिद्धान्त ’ कहा है और इसके सत्रों की सत्ता छह बातें हैं
हैं । इन प्रथम ध्वजाकारने इस प्रथम नाम ‘ पदसङ्गम सिद्धान्त ’ प्रकट किया है । उन्होंने
यह भी कहा है कि सिद्धान्त और आगम एकापराची हैं । ध्वजाकारक पश्चात् इन प्रयोगों की
प्रतिदि आगम परमाणु व पदसङ्गम नाम से ही विवेकत हुई । अपञ्च महापुण्यनर बना
पुनरुत्पत्ति धरत आर जपवचन आगम सिद्धान्त, गाम्भिर्यपूर्ण टीकाकार परमाणु

१ तदा एवं पदसिद्धान्त पदसङ्गम पुनरुत्पत्तिमिव नि कर्त्तारो जपति । (पृ ७१)

इदं पुन जीवहृत्ता पदसिद्धान्त पदसङ्गम पुनरुत्पत्तिमिव नि कर्त्तारो जपति । (पृ ७४)

२ आगम सिद्धान्तो जपवचमिति पृ ७१ । (पृ २) आगम सिद्धान्त । (पृ २९)

पदसङ्गम सिद्धान्त प्रथम आगम पर । (पदसङ्गम जपवचन ४)

३ न च कुत्रिह आगमसु लक्षणम् । सिद्धान्तु पदसङ्गम जपवचन नाम ॥ (पदसङ्गम १ ९ ८)

४ एवं विहितमस्मात् पुनरुत्पत्तिमिव प्रकृत्या अवलोकनमवशिष्टं प्रमाणपरिग्रहयोग्यता परिभाषा
अनुक्रम मज्जा परमाणु प्रमाण प्रतिपादित । (गी जी टी २१) परमाणु निगोदनीयता इति पर
पदसिद्धान्त । (गी जी टी ४४२)

तथा धुनायनाय कता इदानीं पद्यटीकाम कता ह, आर इन प्रयोगों आगम कहना
भी भाग साधना भी है । मिद्वान्त और जामम यद्यपि सामान्यतः पद्यावली में ज्ञात
हैं, किन्तु निर्गति और मन्त्रावली इति उनमें भ्रम है । जो भा निर्गति या मिद्व मन्त्र मिद्वान्त
कता जा सकता है, किन्तु आगम यही मिद्वान्त कहलाता है जो आप्तवाक्य ह आर पूर पद्यम
जया है । मन्त्रावली सभी जाममा मिद्वान्त कह सकते हैं किन्तु सभी मिद्वान्त आगम नहीं
कहला सकते । मिद्वान्त सामान्य सज्ञा है और आगम निगम ।

इस विवेचनके अनुसार प्रस्तुत ग्रन्थ पूर्णरूपसे आगम मिद्वान्त है । धरमेनाचार्यने
पुनरुक्त और भूतगतिजोदे ही सिद्धांत सिद्धाये जो उहें उनसे पूर्ववर्ती आचार्योंद्वारा प्राप्त हुए और
निर्गति परमग महावीरराम नर पदुचनी है । पुनरुक्त और भूतगतिमें भा व ही आगम सिद्धान्तों
पुनरुक्त शिवा और तीसरास्तो भी उनका निरचन पूर मायनाओं और पूर आचार्योंके वर
शोक अनुप्राप्त किया है जैसा कि उनका टीकामें स्थान स्थानपर प्रकट है । आगम
का भी सिद्धांत है कि हममें हनुमाद नहीं चला, क्योंकि, आगम अनुमान आदिनी अपेक्षा
नहीं रखता किन्तु १५५ प्रयोगोंके बराबरका प्रमाण माना जाता है ।

पुनरुक्त व भूतगतिकी रचना तथा उक्त पर बारम्बारनी टीका इसा पूरे दाम्भासी
मन्त्रों के हूँ ह इति इदानीं वसे आगम कहा है और हमन भा इसा सार्वभौम
मन्त्र के ह इदानीं नाम निमित्त नाम पद्यटीकाम रीतिर विधा है ।

वीरदास प्रमाणोंमें ग्रन्थ सादृश नम 'जीवितान' है । उक्त च तत्तत् १ सत्, २ सत्या, ३ धर्म,
४ अर्थ, ५ काय, ६ अर्थ, ७ भाव और ८ अर्थवस्तु, ९ आर अनुयायिद्वारा, तथा १० मर्त्य

१ पद्यटीकाम नाम १५५ प्रयोग ॥ २५ ॥ पद्यटीकामनाम १५५ प्रयोग ॥ २५ ॥
पद्यटीकाम, १५५ प्रयोग ॥ २५ ॥ पद्यटीकामनाम १५५ प्रयोग ॥ २५ ॥
पद्यटीकाम ॥ २५ ॥ पद्यटीकाम ॥ २५ ॥

१ पद्यटीकाम ॥ २५ ॥ पद्यटीकाम ॥ २५ ॥ पद्यटीकाम ॥ २५ ॥
२ पद्यटीकाम ॥ २५ ॥ पद्यटीकाम ॥ २५ ॥ पद्यटीकाम ॥ २५ ॥

३ पद्यटीकाम ॥ २५ ॥ पद्यटीकाम ॥ २५ ॥ पद्यटीकाम ॥ २५ ॥
४ पद्यटीकाम ॥ २५ ॥ पद्यटीकाम ॥ २५ ॥ पद्यटीकाम ॥ २५ ॥
५ पद्यटीकाम ॥ २५ ॥ पद्यटीकाम ॥ २५ ॥ पद्यटीकाम ॥ २५ ॥

६ पद्यटीकाम ॥ २५ ॥ पद्यटीकाम ॥ २५ ॥ पद्यटीकाम ॥ २५ ॥
७ पद्यटीकाम ॥ २५ ॥ पद्यटीकाम ॥ २५ ॥ पद्यटीकाम ॥ २५ ॥
८ पद्यटीकाम ॥ २५ ॥ पद्यटीकाम ॥ २५ ॥ पद्यटीकाम ॥ २५ ॥

समुक्तीना, २ स्थानसमुक्तीना, ३५ तीन महादण्डक, ६ जषय स्थिति, ७ दाह्य स्थिति, ८ सम्यन्त्रोत्ति और ९ गति-आगति ये नौ दूरी गण्ड । एव खन्ना परिमाण धरलानारे अठारह हजार पद परा ६ (पृ ६०) । पूरात जाठ अनुयोगद्वारे और नौ चूटिनाथोंमे गुणस्थानों के मागणाश्रोंआ आध्रय देकर यहाँ विचारमे बगल किया गया है ।

इति गज सुदारथ (मुद्गरय) है। इति ग्याह अधिपत ६, १ इति च,
 २ सुदारथ २ का, ३ चतार, ४ भागिच ५ द्रव्यप्रमाणानुगम, ६ भेदानुगम, ७ स्वरा
 मानुगम ८ नाना-चार-व्या, ९ नाना-चार-चन्तर, १० भागाभागागुगम और
 ११ अन्तर्हवानुगम। इति गजमे इति ग्याह प्रमाणानुगम उमरध धनराजे जाररा धनराज
 नदीसहित धनराजिया गया ६।

यद् यत् १ प्रवित्र ४७-१ पत्रने प्राग्भ हात्र ७७^२ पत्रार समाप्त द-ता द ।

तीमर गन्ध नाम वधस्यामित्यभिप्रेतम् । मित्नी प्रवर्तयति शिव जीवर
वध । नर वध हाता है, मित्ने मर्ह । हाता है, मित्नी प्रवर्तयति शिव
गुणध्याने पूर्णति हाता है, मित्नी वधाय प्रवर्तयति मित्नी है
आ पण्य वधाय मित्नी है, ह्यामि वधाय मित्नी शिवो वध
मीमर । भेषाम इति मित्ने मित्नी है ।

यह सन् ५ प्रवि ५७६ से परा प्रारम्भ होकर ६७७ व पर पर समा हुआ है ।

४ वेदना धारे पडना नाम वेदना ८ । हस आदिमें पुन मगगल्ल रिग गया ८ । हसी गल्ल भतगत कृति आर वेदना भुपाद्वार ८ । रिगु वल्लार धल्लकी प्रल्लग आर अधिर शिल्लारु पाएग र्गग गल्ल ना वेदना गल्ल गग ८ ।

कृतिमें आशुविषादि पाच शयसोरी सधानन बार परिगतनस्य इतिहा तदा मन्त्रे
 तपस आर अग्रयम समयमें स्थित जीवोक्त इति, गोमति और अरक्त पश्य सप्तभेद दान है ।
 १ नान, २ क्षान्ता, ३ द्रव्य, ४ गगना, ५ पथ, ६ वन्य और ७ नर, ये कानिरे सप्त
 प्रकार हैं, जिनमेंमें प्रथममें गगताइति मुख्य वन्याइ ११६ ।

पेट्रनामे १ डिसे, २ नय, ३ गम, ४ दय, ५ मय, ६ जय, ७ नय, ८ दय,

॥ ११ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

[illegible]

१८४३ ई. म. १२ व. ५७६ पृ. । प्रथम भाग ५७६ पन्नाएँ समाप्त हुआ है ।

१६२ अथवा ३०५ पध्दशमिन्द्रियत्व । चित्तनी प्रह्नितियास विम जीवक
 ३ पध्दशमिन्द्रियत्व
 चित्तनी प्रह्नितियों की कित
 गुण ३३५ तु ११ हाता ८, यथाश्च यस्याप्रह्नित्या चित्तनी है
 यथाश्च यस्याप्रह्नित्या ८, इत्यादि समस्तस्मन्वीर्यविपासा बधन
 त्रिविधा भवति इत्युक्तम् ॥

एतत् १२ अ प्रविश ५७१ व पर १ प्रथम हात ६६७ व पर पर समाप्त हुआ है ।

४ पदनाम अन्तर्गत क्रान्ति नाम वेदना अनुयायिनाम् । त्रिभुवेन्द्रादेः कथनस्य प्रधानता आरम्भित इत्यादि कारण इव स्थानात् तस्य वेदना स्मृता गम्या ह ।

कृत्तिमें आगारिवारि पाच शरीरेंगी सगानन आर परिशातमरूप इतिहा तथा मनेके प्रथम आर अग्रम समयमें सिधन गीयेंइ इति, नोखनि ओइ अरक्त यग्य मर्याओका वर्णन है । १ नाम, २ रगाना, ३ द्रव, ४ गगता ५ मर, ६ धरण और ७ भार, ये बातेंदे सात प्रकार द. जिनमेंसे प्रकृतमें गगताइति मुख्य बनलाइ गइ है ।

वृत्तान्तो १ निःश्व, २ नय, ३ नाग, ४ ॥ प, ५ मय, ६ काल, ७ भाय, ८ प्रत्यय,

१. इति पाठः कश्चिदपि प्रा. पाठोदासीनः । न च यत्कश्चिदिति । तत्र ह्यङ्गमङ्गलमङ्गलं तिष्ठति च
 लक्षणं तिष्ठति उच्यते । न तत्र यद्वाङ्मत्तमावाधोः । त्विति कुर्यात् । न च 'सप्तथेयं पुरुषणादौ' ।

समुच्चयता २ स्थानसमुच्चयता, १५ मीन महाशब्दक, ६ जघन स्थिति, ७ उत्तरस्थिति, ८ सम्बन्धोपति और ९ मनि-५ मनि येनी चूल्किण्ड। इस शब्दक परिमाण धरलाकामे अठारह हजार पद यथा ६ (१ ६०)। पूरात नाठ-अनुपगदाओं और नो चूल्किण्डोंमें गुणगणनों आर मार्गगणनों आधय अर यहाँ लिखासे बान किया गया है।

दशमः खण्डः सुधारण (सुधारणः । १ । एतत् व्याख्या अभिप्रायः १ । रामनिध,

२ सुदायथ ३ पात्रं, ४ तल, ५ भग्निरय ६ द्रव्यप्रमाणानुगम ७ श्रेयानुगम ८ स्वयं
मानुगम ९ नाश-पारका, १० नाश-वीर-पत्र, ११ भयान-लानगम अर
१२ अन्त-हस्त-लुगम। वस शेषम् इन व्याप्त प्रपञ्चा साहाय्य उभयपक्ष कर्तव्यत्वं तैरसा कर्मवध
भेदादिति ध्यान विना गया ह ।

पृष्ठ संख्या : प्रतिष्ठान ४७० पत्रांक प्रमाण : ४७० पत्रांतर संख्या : ५००

तीसरे गणेश नाम घटस्थापित करिये । तिनती प्रतिपादा विष जीवर
घटा नर वर दाता ह, तिमरे तर्फी दाता ह, तिनती प्रतिपादा विष
मुक्तताम मुक्ति दाता ह, शाश्व बरदा प्रभिता तिनती ह
आज शाश्व बरदा तिनती ह, इसदि बमरगमनी शिराश बर
वपनामे इस गडम बगल ह ।

यह गन्ध ५ प्रतिशत ५७^६ व पदार्थ प्रत्यक्ष ११५२ ६६७ व पदार्थ गन्ध ६६६ ।

गडशः नम वेदना । इमं जन्म पुनः मया यत् सिद्धं तदा ह । इ'

[illegible]

कवि ५ ५ ११३ ६६ ६६ २० २२ १५६ ७३

[illegible]

7 4 4 4 3 2 1

2014年12月15日

उत्तराध्यायः ।

● 7月 ●

५५ ५६ ५ वृद्धात्ताम्रपादो ६ अमृतं च द्रव्यं च

९ स्वामित्व, १० वेदना, ११ गति, १२ अन्तर, १३ सन्निध्य, १४ परिमाण, १५ माग
भागानुगम और १६ अल्पग्रहत्वानुगम, इन सोलह अधिकारोंके द्वारा वेदनाका वर्णन है ।

इस खण्डका परिमाण मोलह हजार पद्य मिलाया गया है। यह समस्त गद्य अ प्रविष्टे
६६७ वें पत्रसे प्रारम्भ होकर ११०६ वें पत्रपर समाप्त हुआ है, जहां कहा गया है—

एव त्रेयण-अप्पावट्टुगाणिओगद्दोरे समत्त त्रेयणाग्गड समत्ता (खंडो समत्तो) ।

पाचरें खण्डका नाम वर्णना है । इस गद्यमें प्रजापति के अन्तर्गत वर्णना अधिकारों
५ वर्णना अनिरिक्त स्पर्श, कर्म, प्रकृति और जन्मका पहला भेद कर, इन अनुयोगद्वारा भी
अन्तर्भाव कर लिया गया है ।

स्पर्शमें निक्षेप, नय आदि सोलह अधिकारोंद्वारा तरह प्रकारके रसशाना वर्णन कर
प्रकृतमें कम स्पर्शसे प्रयोजन कटाया है ।

कर्ममें पूर्वोक्त सोलह अधिकारोंद्वारा १ नाम, २ स्थापना, ३ द्रव्य, ४ प्रयोग
५ समग्रधान ६ अय, ७ ईर्ष्याय, ८ तप ९ क्रिया और १० भाव, इन दश प्रकारके कर्मों
वर्णन है ।

प्रकृतिमें शीत और स्वभावसे प्रकृतिके पर्यायवाची बताकर उसके नाम, स्थापना,
द्रव्य और भाव, इन चार भेदोंमेंसे कर्म द्रव्य प्रकृतिका पूर्वोक्त १६ अधिकारोंद्वारा विस्तारसे वर्णन
किया गया है ।

इस खण्डका प्रज्ञान अधिकार उनीष है, जिसमें २३ प्रकारकी वर्णनाओंका वर्णन
और उनमेंसे कर्मप्रधाने योग्य वर्णनाओंका विस्तारसे वर्णन किया है ।

यह खण्ड अ प्रविष्टे ११०६ वें पत्रसे प्रारम्भ होकर १३३२ वें पत्रपर समाप्त हुआ
है और वहां कहा है—

एव तिससोउच्चय-अग्गणाण समत्ताण माहिरिय उग्गणा समत्ता होदि ।

इन्द्रजित्ने भुत्तात्तारमें कहा है कि भूत्ताजित्ने पांच खण्डोंके पुनर्पदत विरचित सूत्रों
६ महाउच्च महित छह हजार मूल रचनेपर पश्चात् महाउच्च नामके छठवें खण्डकी तीस
हजार दशक प्रमाण रचना की ।

१ तत्र तत्र पद्यानि भूत्ताजित्ने मयकपनी भुत्ता । अग्गणाणमरचनामिच्छा प पत्ततुरा ॥ १३० ॥
विस्वात्तादुत्तान्धमग्गि मातवन् प्रीत्य तत्र । अग्गणाणमरचनामिच्छा अग्गणाणमरचना ॥ १३८ ॥
मृत्तानि अग्गणाणमरचना पृथक्पृथक् । अग्गणाणमरचनामिच्छा तत्र पद्यक मरचना ॥ १३९ ॥
विस्वात्तादुत्तान्धमग्गि मातवन् प्रीत्य तत्र । अग्गणाणमरचनामिच्छा तत्र पद्यक मरचना ॥ १३९ ॥
इति, भुत्ताजित्ने

...महाबध्ने प्रकृतिः । (अथ १२५९ १२६)
 ...महाबध्ने प्रकृतिः । (अथ १२५९ १२६)

...महाबध्ने प्रकृतिः । (अथ १२५९ १२६)
 ...महाबध्ने प्रकृतिः । (अथ १२५९ १२६)

...महाबध्ने प्रकृतिः । (अथ १२५९ १२६)
 ...महाबध्ने प्रकृतिः । (अथ १२५९ १२६)

...महाबध्ने प्रकृतिः । (अथ १२५९ १२६)
 ...महाबध्ने प्रकृतिः । (अथ १२५९ १२६)

इन्द्रादिके उपर्युक्त कथनानुसार यहा चूजिना मजेवसे उटना खड टहाना है, जे
 रमना नाम मन्त्रमे प्रभाव होता है, तथा रमने सहित घटका पश्यदागम ७२ हजार धेन
 प्रमाण मिद होता है । प्रिनुप श्रीप्रभे भवानुसार रामेनहन ७२ हजार प्रमाण मनस धरा
 टाराना ही नाम मन्त्र है । यथा—

अतएव ज्ञानाय भगवत्पाश मित्रात्तद्वयं शरमेन्न मा मुनि पटि वाऽपराण्यि यत्परा
 रिताग्नी प्रातः पचयेत् पचयेत् मन्त्रस्य मन्त्रमवाहयत्वा सत्त्वमनामवासा दामनमि
 त्तमनितां घृतलनामनितां विष्णुपुत्रं विशन्ति महत्कुरुष्व भवन्ति विचार्य शम्भवा मुनि स्व
 दास्यति । (विष्णु श्रार श्रुतान्तर मा ३ मा २१, पु ३१८)

[illegible]

॥ १० ॥ नि मन्त्रमं पचिच्छाया विरयण सुमहत् । चात्मानमभियोगादेव ॥
 ॥ ११ ॥ नि मन्त्रमं पचिच्छाया विरयण सुमहत् । चात्मानमभियोगादेव ॥
 ॥ १२ ॥ नि मन्त्रमं पचिच्छाया विरयण सुमहत् । चात्मानमभियोगादेव ॥
 ॥ १३ ॥ नि मन्त्रमं पचिच्छाया विरयण सुमहत् । चात्मानमभियोगादेव ॥
 ॥ १४ ॥ नि मन्त्रमं पचिच्छाया विरयण सुमहत् । चात्मानमभियोगादेव ॥
 ॥ १५ ॥ नि मन्त्रमं पचिच्छाया विरयण सुमहत् । चात्मानमभियोगादेव ॥
 ॥ १६ ॥ नि मन्त्रमं पचिच्छाया विरयण सुमहत् । चात्मानमभियोगादेव ॥
 ॥ १७ ॥ नि मन्त्रमं पचिच्छाया विरयण सुमहत् । चात्मानमभियोगादेव ॥
 ॥ १८ ॥ नि मन्त्रमं पचिच्छाया विरयण सुमहत् । चात्मानमभियोगादेव ॥
 ॥ १९ ॥ नि मन्त्रमं पचिच्छाया विरयण सुमहत् । चात्मानमभियोगादेव ॥
 ॥ २० ॥ नि मन्त्रमं पचिच्छाया विरयण सुमहत् । चात्मानमभियोगादेव ॥

इति चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः समाप्तः । अथोद्धारोपमं प्रति
०१ इन्द्रादयश्चेत्यादिभ्यः श्यङ्, शर्म, प्रशस्तिश्च यङादिष्वङ् यङनीयात् यङा
०२ इति चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः समाप्तः । अथोद्धारोपमं प्रति
०३ इति चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः समाप्तः । अथोद्धारोपमं प्रति
०४ इति चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः समाप्तः । अथोद्धारोपमं प्रति

— — — — —

— — — — —

— — — — —

[illegible]

धरणा। स्थाना पश्चात् उभय गवमे बडे पागामी विद्वान्मित्र मिद्वान्तवचनार्थीने इन
 १। १। (विभा। १) एतन्म एतत्तर्जनात्तर्जना औ वमराडकी एता की, एता प्रतीत होता है।
 तथा उसने एते गदोरा एता वमरा उहोने गरर साथ बहा है रि ' निस्प्रसार एक चक्रवर्ती
 आगे एतत्तर्जना एता गद एदिरीमे निस्प्रसार अपने वमरे घर लेता है, उसीप्रकार अपने
 मणिनी चक्रवर्ती १। १। एता गद मिद्वान्तर्जना सम्यक् प्रसारत साधन कर लिया ।—

नर एतत्तर्जना य चक्रवर्ती एतत्तर्जना सारिष सम्म ॥ ३७७ ॥ गा य

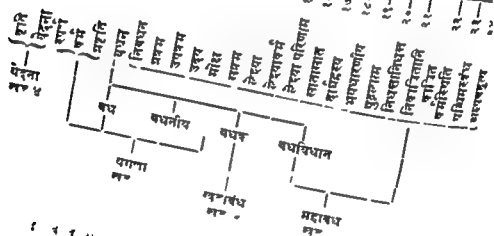
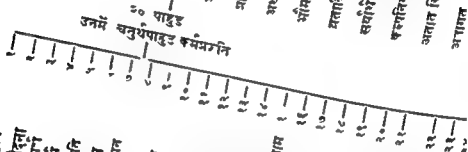
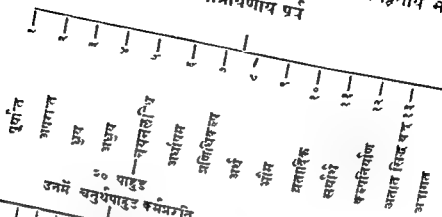
नर एतत्तर्जना मया एतत्तर्जना सारिष सम्म ॥ ३७७ ॥ गा य

इसने आचार्य नेमिधरदा मिद्वान्तवचनार्थीका पद मिळ गया और तभीसे उक्त
 पूरे मिद्वान्तवचनार्थीका इस पदार्थमे विभूषित करनेकी प्रथा चउ पड़ी। जो इसके केवल प्रथम तीन
 गदोमे पारगन होने थे, उन्हें ही जान पड़ता है, त्रैविध्यदेवका पद दिया जाता था। श्रवणबेलगोलाके
 शिष्टाचारमे अथवा मुनियोंके नाम इन पदियोंसे अलङ्कृत पाये जाते हैं। इन उपाधियोंने वीरसेनसे
 पूरबी सुशोभाय, वराणाशाय, व्यापानाशाय, निशाचय व महाशयका पदियोंका सर्वथा
 स्थान ले लिया। किन्तु थोड़े ही वामे गोमन्सारने इन सिद्धांतोंका भी स्थान ले लिया और
 उनका पटन-पाटन सक्ता रह गया। आज वर शताब्दियोंके पश्चात् इनके सुप्रचारका पुन
 सुअवसर मिळ रहा है।

दिग्भर सम्प्रदायकी मान्यतानुसार पृथ्वीगण और कपायवाधन ही ऐसे ग्रह हैं

पृथ्वीगणमरा
 द्वादशागमे
 सम्प्रदाय
 तिनका साधा सम्बन्ध महाशरीरवासीकी द्वादशांग यागीसे माना जाता है। शेष
 सप्त भूतलान इससे पूर्व ही क्रमशः ह्रस्व व उन्नत भिन्न होगया। द्वादशांग भूतका
 प्रस्तुत ग्रथमे विस्तारसे परिचय कराया गया है (पृ १९ से)। इनमेंसे
 बारहवें अंगका छोटकर गैर सब ही नामोंके अंग ग्रथ भेताम्बर सम्प्रदायमे
 अथ भी पाये जाते हैं। इन प्रयोगों परम्परा क्या है और उनका विषय विस्तारदि दिग्भर
 मान्यताके बहातक अनुकूल प्रतिकूल है इसका विवेचन आगेव किसी खंडमे किया जायगा,
 यहाँ केवल यह बात प्यान देने योग्य है कि जो ग्यारह अंग भेताम्बर साहित्यमें हैं व दिग्भर
 साहित्यमें नहीं है और जिस बारहवें अंगका भेताम्बर साहित्यमें सक्ता अभाव है वही दृष्टिवाद
 नामक बारहवां अंग प्रस्तुत मिद्वान्त ग्रंथोंका उद्गमस्थान है।

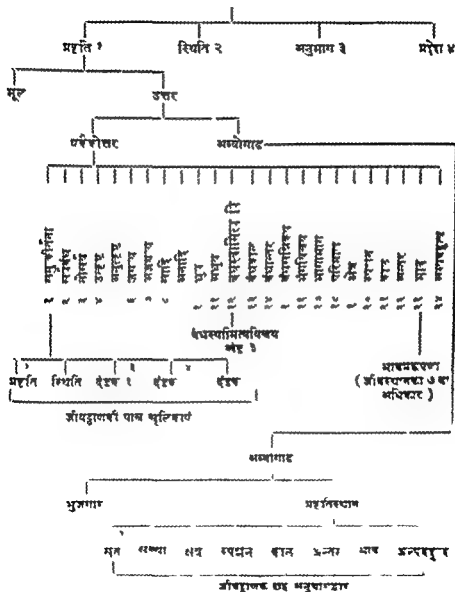
बारहवें दृष्टिवादके अन्तर्गत परिक्रम, सूत्र, प्रथमानुयाग, पूर्वगत और चतुर्का य पांच
 प्रमेद हैं। इनमेंसे प्रगतके चारह भद्रामेरे द्वितीय आभाषणीय पूर्वसे ही जीवज्ञानरा बहुभाग
 चार पांच पांच सप्त सप्त निबन्ध है तिनका क्रमभन् नीचेरे उद्गमस्थानमे स्पष्ट हो जा



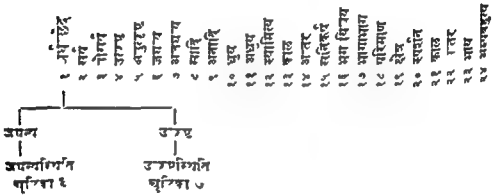
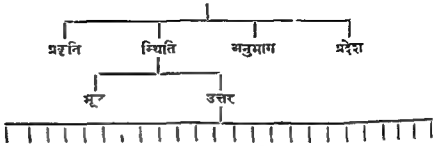
१ व २ ५ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

अथकथं ११ अनुयोगद्वारेणैवास्माकं प्रत्यक्षप्रमाणानुगमः । महाजातद्वाराणां सामान्या प्रत्यक्षानां उद्गमस्थानम् ।

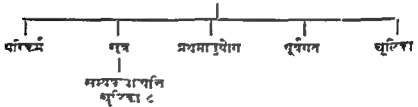
७. अध्याविधान



३ त्रयविधान



४ दृष्टिमाद (१२ वा जग)



५ व्याख्याप्रज्ञप्ति (पात्रा श्रम)



१. अर्थ छेद २. संय ३. योग्य ४. उद्गृह ५. अद्गृह ६. जगत् ७. अन्वय ८. साहि ९. अन्वयि १०. ध्रुव ११. अद्गृह १२. स्यामित्य १३. काल १४. अन्तर १५. स्तिरुद १६. भग विनय १७. भागभागा १८. परिमाण १९. क्षेत्र २०. स्पर्शन २१. काल २२. तत्त्व २३. भाग्य २४. अन्वयवृत्त्य

११ सत्परूपणाका विषय

प्रस्तुत प्रथम हा जीवद्वारा उद्गमिनाम कहा गया है कि धरतन पुत्र विद्वान् सागर पुत्रदत्ताचार्य चतुर्दशमे गये और यहाँ उन्होंने 'सिद्धि' पुत्रों को बना कर आते हैं चित्पातितरा पत्रार्थ मृत्यु आचार्य, जा प्रमिउ दशम च मय थ, म पत्र भन्ता । पुत्रमन्त्रि उन सूत्रों के दत्त और न पत्रार्थ प्रथममागस प्रार्थना करके मन्त्र मन्त्र पत्रार्थमन्त्रों मन्त्रचना की । इससे स्पष्ट है कि सप्रार्थना के पुत्र मन्त्र पुत्रार्थमागस बनाये हुए हैं । किन्तु उन पुत्रों की सत्ता सिद्धि तथात् हीन नहीं परन्तु परमा सत्तर है, तब प्रथम उद्गमिना होता है कि पुत्रदत्तक बनाये हुए मन्त्र मन्त्रम धरतमागस मापत्र कहा है । मन्त्रमन्त्र प्रार्थनाओं के मन्त्रों की विद्वान् समाज हानन अनन्तर जा औपान्यास प्रार्थना सिद्धि है मन्त्र प्रार्थनाओं के ध्यानम सागर है । सिद्धि गया है । और इस विद्वान् की जा सत् नमिचत कि म न मन्त्रमन्त्र जीवद्वारा सत्तुलित किया है वह भी उन मन्त्र प्रार्थनाओं के पुत्र ही है । व हीन प्रार्थना मन्त्रमन्त्र मन्त्रमन्त्र प्रार्थना है—

पुत्रार्थ मन्त्रार्थ पात्रा सत्ता य मन्त्रार्थ ।

उद्गमिना वि य मन्त्रार्थ मन्त्र मन्त्रार्थ मन्त्रार्थ ॥ १ ॥

अपान्ता मन्त्रमन्त्र, जावतमा, पत्रार्थ, मन्त्र, सत्ता मन्त्रमन्त्र मन्त्रमन्त्र मन्त्रमन्त्र मन्त्रमन्त्र है ।

गुणस्थानमें सम्पन्न हो जाता है किन्तु चाग्रि नहीं। सुगता । देशगिरि का चाग्रि था। सुगता है, प्रमत्तगिरि का चाग्रि पूरा ता होता है, किन्तु परिणामात्मा अपेक्षा जप्रमत्तगिरि का चाग्रि का क्रम शुद्धि व वृद्धि होती जाती है । ग्याह्य गुणस्थानम चाग्रिमोहनीयका उपग्राम हा जाता है बारहवा गुणस्थान चाग्रि मादनीयका क्षयसे उपग्र होता है । तर्हमें गुणस्थानमें सम्पन्नता पूर्णता है किन्तु योगोंका मद्भाग भी है । अन्तिम गुणस्थानम दर्शन, ज्ञान और चाग्रि की पूर्णता तथा योगोंका अभाव हो जानम मोक्ष हो जाता है ।

मार्गणा शब्दका अर्थ खोज करना है। अतएव निम्न निम्न प्रश्ननिर्देशोंसे जागृकी खोज या अनुसन्धान किया जाय उन घमनिर्देशोंको मार्गणा कहते हैं। ऐसी मार्गणाएँ चारह हैं—गति, स्थिति, वाय, योग, वेद वसाय, ज्ञान, समय, दशन, उपाय, अभ्यन्त्र, सम्यक्त्व, सज्जित, और आहार।

१ गति चार प्रकारकी हैं— नरक, नियच्च, मनुष्य और देव

२ इन्द्रिया दृश्य और भावगुण होती ह और व पांच प्रकारकी ह- स्पर्श, रस, प्रकाश, शब्द और श्रेष्ठ

१. कोटिपेठे पांच इन्द्रियों तकनी शरीरचक्राको ज्ञाय कहते हैं। यन्त्रिः।
जैव स्तरपर भाव दोन त्रय कहलगे हैं।

४ आमशेसोंकी खचत्तारा नाम योग ४ इमीम जमरा होना दे। याग तैव
त्रिभिन्ना होना ५- मन, दत्तन और धाव।

५. पुनः, यं च ननुमन्त्य मातु च तत्त्वं आत्यसिधेयसं प्रेष्टव्यं ८ ।

६ जो अज्ञान निम्नमात्र व चारित्र्यो वग अभाव गान गृहोरे गह कपाय ।
हमने का, मन, मया जोर रोम व चार मेर ह ।

७ इति श्रुतिं श्रुत्वा मनःपथं, यत्, तत् कुमतिं कुमतिं आ कुमतिं । तत्
इति श्रुत्वा श्रुत्वा ।

१. अत्र वृद्धिः कतिपय निरुद्धा नाना मयस्य हे तावत् नाना विमर्श
 नाना विमर्श नाना विमर्श । नाना विमर्श नाना विमर्श, नाना विमर्श, नाना
 विमर्श नाना विमर्श, नाना विमर्श नाना विमर्श ।

* अथ प्रवृत्तिः प्रवर्तमाना वसन्ति यस्मिन्नेषु च भद्रं ते ।

१० यथापि अनुचित पापानां प्रवृत्तिः च समस्त पापानां नाम लक्षणा है।
इति एव भा. है—इति नीति, वागान, पात्र, पत्र आदि ।

११ विना शक्तिर निमित्तम आमाके दान, नान आदि गति गुण प्रगट हान है
उमे भयंकर बनते हैं। तदनुसार जीव भय व अभय होते हैं।

१२ तत्प्राप्त्यर्थं धनानां नाम मुख्यं च तत् पार दर्शनमात्रे उपयोग, भाषणम्,
भाषितं सारमिथ्यात्वं, सम्पादन व निष्प्राप्त्यर्थं भाषितं अनुसार सम्पन्नतामाणां तत् भेद है।
जाने है।

१३ मनके इति विधादिने प्रवण करनेसे सत्ता प्राप्त है और एसी सत्ता विमल
हो पा मन्त्री बनता है। तदनुसार जीव सत्ता व अमला होते हैं।

१४ आशक्ति आदि शक्ति और पयाविने प्रवण करनेसे आहार प्राप्त है।
तदनुसार जीव आहार्य और अनाहार्य हान है।

इन सात गुणधर्मों और भाषणाधारा प्रवण करनेवाले संप्रत्ययाने अन्तगत
१७७ सूत्र है विनय विषयम इतिप्रकार है। प्रथम मन्त्रे पंचपदमन्त्रां नमस्कार किया है। आगे
तीन मन्त्रों में भाषणाधारा प्रवण करनेवाला गया है और उनका गति जाति नाम निर्देश किया
गया है। ५, ६ और ७ व मन्त्रों में भाषणाधारे प्रवण निमित्त आठ पदुयागमों का जानने की
जायजता बताई है और उनका सूत्र, उपक्रम (सूत्र) आदि नाम निर्देश किया है। ८ वें
मन्त्र में इन अनुयागमों में प्रथम सूत्र प्रवण का विवरण प्रारम्भ होता है जिसका आश्रित है और
आगे आगे अर्थात् सामान्य और विषय रूप विवरण प्रतिपादन करने की प्रतिज्ञा करके सिध्दादि
भाषि बाण्ट गुणधर्मों का निर्माण किया है जो ९ वें मन्त्र में ३ वें सूत्र के अन्त में है। १० वें
मन्त्र में विनय अर्थात् गति आश्रित भाषणाधारा विवरण प्रारम्भ हुआ है जो अन्त में प्रथात् १७७
व सूत्र का अन्त होता है। गति भाषणा ३२ वें सूत्र का है। महापर नरनामि बाण गतिधर्म
गुणधर्म के अन्त में यह प्रतिपादन किया है कि ऐसे विषय अमली पंचद्विधन गुण विषय
हान है। सत्ता सिध्दादि संपन्नतासंपन्न गुणधर्मनर मिश्र नियत हान है, और इसी प्रकार
मनुष्य भी। दर और नारबी अमपन गुणधर्मनर मिश्र अर्थात् परिणामां अमपन दूसरी तीन
गतिधर्म तीसरा साथ समान हान है। प्रमत्तमनस आदि गुण मनुष्य हान है। ३३ व मन्त्र
३८ वें तक इति भाषणाधारा अन्त है और इसमें आगे ७६ वें सूत्र तक बाधका और फिर
१०० वें सूत्र तक योगका अन्त है। इस भाषण में योगका साथ पयाभि अप्रामिधियों की प्रवण

ह। गत बार लग्नी टीकामे जा सङ्गत प्राकृतका परिमाण पाया जाता है वह प्रायः उन दाँतों भागाओं। ता वाक्विक आशेषिष्य श्वरताया धोनर है। इस समयसे प्राकृतका बड़ पठ चरा और सङ्गतका रङ्ग, यद्वातक वि आनरुल जैनियोंमें प्राकृत भाषाके पठन पाठनरी बहुत ही ॥ दना है। शिगुबर समाजके विशाङ्गोंमें तो व्यवस्थित रूपसे प्राकृत पढ़ानेकी मर्यादा परग्या रही ही नहीं। ऐसी अवस्थामें प्रस्तुत प्रथरा परिचय करते समय प्राकृत भाषाका परिचय करा देना भी उचित प्रतीत होता है। प्राकृत साहित्यमें प्राकृत भाषा मुख्यतः पाँच प्रकारकी पाई जाती है—मागधी, अर्धमागधी, धारसनी, महाराष्ट्री, और अपभ्रंश।

महाराष्ट्रवासीयें समयमें अपभ्रंश आजसे लगभग द्वाद्व हजार वर्ष पूर्व जो भाषा मगध प्रांतमें प्रचलित थी वह मागधी कहलानी है। इस भाषाका कोई स्वरूप मय नहीं पाया जाता। विष्णु प्राकृत व्याकरणोंमें इस भाषाका स्वरूप बतलाया गया है, और कुछ शिगुलकों और नाटकोंमें इस भाषाके उदाहरण मिलने हैं जिनपर से इस भाषाकी तीन विशेषताएँ स्पष्ट समझमें आ जाती हैं—

१ र क स्थानमें ल, ले, राजा-पाता, नगर-जगन्,

२ छ, ए और लके स्थानपर झ। जमे, राम-शम, दासी-दारी, मनुष-मनुष।

३ सहाओंके बनावारव एकरचन पुष्टिम रूपमें ए। जैसे, दर-दव, नर-गर, उदाहरण—

अठ कुभीलआ। कहहि, कहि तुए छन्दे मणिशयणकिमणामहेण लज्जकाउए अगुगी
अए शाशादिए। (शकुंतला)

‘ और कुभीलव । कह, कहा वने इम मणिबध आर उन्नीर्ण नाम राजकीय अगुगीको पाया ’।

दूसरे प्रकारकी प्राकृत अर्धमागधी इस कारण कहलाइ वि उसमें मगधीके आधे लगभग पाप जान हैं आर क्योंकि, समयमें यह आधे मगध देशमें प्रचलित थी। इस भाषामें प्राचीन जन मूर्खोंकी रचना हुई थी और हमरा रूप अर जेतम्बरीय सूत्र-मयोंमें पाया जाता है, इसीगिरे हा पाकावीने इस जन प्राकृत कहा है। इसमें ए और ल के स्थानपर न न हाकर सानर म् ही पाया जाता है, र क स्थानपर ल तथा कर्ता कारकमें ‘र’ विकल्पस हाता है, अपाठ कई हाता है आर कही नहीं हाता, आर अभिचरण कारकका रूप ‘र’ व ‘मि’ व अतिरिक्त ‘अमि’ लगाकर भा बताया जाता है।

अपान् आग्रा रक्त होकर कर्म वांछता है तथा शरीरद्वि होकर कर्मों में मुक्त होता है ।
यह जाशेवा बधसमाप्त है, ऐसा निश्चय जानो ।

मानिसा वामन रहित (वेबली भगवान्) का गुण ही मुगोंमें छेड़ है, ऐसा मुनकर जो धर्रा नहीं करते वे अवश्य हैं, पार जो भय है वे उस मानते ह ।

महात्मा प्रान्त प्रार्थन महात्मा श्री भाग्य द मित्रा स्वर्ग मयम्भन्ती, मनुष्य,
महात्मा गुरुदेव आदि वाच्योपाया जाता है। सन्तान भाग्यमे जहां प्रान्तम प्रान्त
हाना द यहां पात्र वानचन ता संभोगमें करने दे अथ गन प्रान्तम है,
पेमा विशालोक्त मत द। इतना उपमान जनिषेन भी गुरु रिश द। पम्भन्ति सन्तानमभ्या,
सुमुदीपचरिभ, पासगातगिभ आदि वाच्य जत वान्तर आत्म मयम्भन्ती, पूर्ण टीक,
आम्भिय भाग्य महात्मा प्रान्त है। पर यहां भी जनिषेन इधर उधरम जपम्भन्ती प्रान्त
एतत् उत्तर अपनी एत एगा दी द, पर इम वाच्य इन वान्ती मयम्भन्ती प्रान्त
पम्भन्ती है। जन महात्मा में सन्तान व सन्तान आदिम भाग्य विशाल जनि व, रिशमें न
आ मनु वान्तर मयम्भन्ती अथ जनिषा उपमान हुआ द, जैसा जन मयम्भन्ती मयम्भन्ती
महात्मा रिश एतम जा उस मयम्भन्ती मयम्भन्ती व द है रि यहां मयम्भन्ती व
मय एत एतम वान्तर उत्तर इत एत जाना है, रिश व द मयम्भन्ती मयम्भन्ती दान। उत्तरम
थ यहां थ में रिशमिन् न एतम्भन्ती मयम्भन्ती दाना है, अथ रिशम मयम्भन्ती मयम्भन्ती
एतम्भन्ती वान्तर जाना है। जन महात्मा में रिशमभाज अम्भित वान्ती वान्ती इ वान्ती मय
प्रपन्नात व आज्ञा द। जस—

नामनि नाम्ना काम-वह भूवा-हउम अर्. ।

उदाहरणार्थ—

સાધારણ અભ્યાસ ગ્રામીણ વિદ્યુત્તંત્ર દર્શાવે છે.

परित्याग निषेध-नव. ६३. ॥

(७४८ ५ ३३ ३८, ५ ३३३)

अपनी मारी साक्षरों में प्रवेश करा रहे हैं।

अपभ्रंश
बन्धनस्य सप्तमः पदः अस्ति । अत्रापि अपभ्रंशः स्यात् । अत्रापि अपभ्रंशः स्यात् । अत्रापि अपभ्रंशः स्यात् ।

तक प्रकाशमें आया है उसमेंका कमसे कम तीन चायाई हिस्सा दिगम्बर जन साहिलका है। कुछ विद्वानों का ऐसा मत है कि जितना प्राकृत भाषाएँ थीं उन सबका विकसित होकर एक एक अभ्रश बना। जैसे, मागधी अभ्रश, शारसेनी अभ्रश, महाराष्ट्र अभ्रश आदि। बौद्ध चर्यापदों व विद्यापतिकी कविताओंमें मागधी अभ्रश पाया जाता है। किन्तु विशाल साहित्यिक वस्तुनि जिस अभ्रशका हुई वह शारसेनी महाराष्ट्र मिश्रित अभ्रश है, जिस कुछ बैया कर्णोने नागर अभ्रश भा कहा है, क्योंकि, किसी समय समस्त वह नागरिक लोगोंकी बोडचारनी मन्ता था। पुनरन्तर्गत महापुराण, णायपुमारचरित, जसटरचरित, तथा अन्य कवियोंक पदकटचरित, भविस्यवत्तरुहा, सायपुमारचरित, सायपुमम्भदोहा, पाटुडदोहा, इसी भाषाक फाय है। इस भाषाको अभ्रश नाम बैयाकरणोंने दिया है, क्योंकि ये स्थितिपात्र होनेसे भाषाके स्वामीक वस्तुतः विज्ञान न समझकर विचार समझने थे। पर इस अपमानजनक नामका छेहर भी बद भाषा गुरु कर्ण कृष्ण और उसीकी पुत्रिया आज सम्पूर्ण उत्तर भारतका वाचन्यन्तर सन्नाह है।

इस भाषाका सग य निवासी स्वरचारा अन्य प्राकृतोंस बहुत कुछ भिन्न हो गया है। उदाहरण, कण व कम कारण पत्रचन, उकारात होता है जेमे, पुत्रो, पुत्र्य-पुत्र, पुत्र्य-पुत्रे, पुत्र, पुत्र्य, पुत्र्य-पुत्र, पुत्र्य-पुत्रे, पुत्रि, पुत्रिदि, आदि।

दिगम्बे, कर्णेन-कर्ण, कुरति-करदि, कुरुय-करह, आदि।

इन्हे सब सब छेहरा प्राकृत व हुआ जा पुरानी मरहृत व प्राकृतमें नहीं पाय जात, किन्तु यह छेहरा, कुरुय, मरही आदि आधुनिक भाषाओंमें सुप्रचलित हुए। तत्कालीन भाषाके मुबलक इस छेहरा के बने विवेचना दे। गेहा, आगाइ आदि छन्द यशसे ही दिगम्बे आय।

अन्तर्गत नाम—

सुख सख्य सख्यसख्य त सुख धम्मायव।

सुखि त वि त कर्ण त अम्भर, पुत्र ॥

सायपुमारचरित ॥ ४ ॥

अन्तर्गत नाम—
सुख सख्य सख्यसख्य त सुख धम्मायव। ॥ ४ ॥

अन्तर्गत नाम—
सुख सख्य सख्यसख्य त सुख धम्मायव। ॥ ४ ॥

ध्वनियोंमें अनेक प्रकारके परिवर्तन व उतारा लोप, समुल्ल यननोंका असमुक्त या द्विसंख्य परिवर्तन, पचमांतर ह्रस्व आदि सबके स्थापन हटत नभस्थामें अनुस्वार व रसरसद्विध अस्थामें ल में परिवर्तन । ये परिवर्तन प्राश्न जिनकी पुरानी होगी उतने कम और पितनी अवाधीन होगी उतनी अधिक मात्रामें पाये जाते हैं । अपभ्रंश भाषामें ये परिवर्तन अपनी चरम सीमापर पहुँच गये और वहाँमें फिर भाषाके रूपमें स्थापित हो चला ।

इन सब प्राश्नोंमें प्रस्तुत प्रथमी भाषाका ठीक स्थान क्या है इससे पूर्णतः निर्णय करनेका अभी समय नहीं आया, क्योंकि, समस्त ध्वन्य मिथ्यान्त अमरासतीकी प्रविष्टि १४६५ पत्रोंमें समाप्त हुआ है । प्रस्तुत भय उससे प्रथम ६५ पत्रोंमात्रका सारक्षण है, अतएव यह उसका पार्श्वका अंग है । तथा ध्वन्य और जयपटाको मिलाकर बारसेनकी रचनाका यह केरत चालीसवा अंग बनगा । सो भी उपर्युक्त एकमात्र प्राचीन प्रतिनी अभी अभी की हुई पाँचवीं छटवीं पाँचवीं प्रतियोंपरसे तैयार किया गया है और मूल प्रतिके मिथ्यान्त सुअक्षर भी नहीं मिल सका । ऐसी अवस्थामें इस प्रथमी प्राप्त भाषा व व्याकरणके नियमोंमें कुछ विधाय करना वगैरह करना पड़े, विशेषतः जय पट्टाको भेद बहुत कुछ वणविपर्ययके ऊपर अवलम्बित है । तथापि इस प्रथमे सूत्र अथवादिनी सुविधाके लिये व इसकी भाषाके महत्वपूर्ण प्रथमी और मिथ्यान्तोंका प्यान आशयित करनेके हेतु उसकी भाषाका कुछ स्वल्प वतलाना यहाँ अनुचित न होगा ।

१ प्रस्तुत प्रथमों में त्रुटि द में परिवर्तित पाया जाता है, जैसे, सुत्रोंमें—गदि-गति, चतु-चतु, वादराग-गीतराग, मदि-मति, आदि । गाथाओंमें—परद-पवन, अशद-अनीन, मदिय-मृदाय, आदि । टीकाओंमें—अशरते-अशरार, एदे-एते, पदि-पतित, चिति-चानितम्, सति-सन्वितम्, गीदम-गीतम, आदि ।

किन्तु अनेक स्थानोंपर त्रुटि भी पाया जाता है, यथा—सुत्रोंमें—गह-गति, चड-चतु, वादराग गीतराग, जोगसिध चितिच, आदि । गाथाओंमें—हेऊ-हेतु, पय-प्रमति, आदि । टीकाओंमें—सम्पद-सम्पति, चतुर्दि-चतुर्दिध, स पाह-सवशति, आदि ।

क्रियाके रूपोंमें भी अधिकतर त्रुटि पाये जाते हैं । जैसे, (सुत्रोंमें अस्थि के सिवाय दूसरी कोई क्रिया नहीं है) । गाथाओंमें—णयदि-नयति, छिज्जे-छिजते, जाणदि-जानाति, लिपदि-लिपति, रोचदि-राचते, स टि अस्थति, पुणदि-वरति, आदि । टीकाओंमें—धीरते, धीरति-क्रियते, गिरादि-गिरति, उचदि-उचते, जणदि-जानाति, पणदि-प्रणयति, वरदि-वति, रिरादे-रिरुपत, आदि ।

किन्तु न वा छेप होसर सयोगा स्वस्मात् शेष रहनेके भी उदाहरण बहुत मिल
 हैं क्या— गाथाओंमें—होइ, ह ड-मरने, उहड़-रूपयति, रक्काण्, व्याप्याति, मम अन्ति,
 मगद-मगदने, आदि । टीकामें—कुगद-कगेति, गण्—वगयति, आदि ।

२. विद्याओंके पूर्वसांख्यिक रूपोंके उदाहरण इसप्रकार मिलते हैं—इय-छागि, तत्त्वा । सु-कृ-कृत्वा । अ-अहिगम्भ-अभिगम्भ । दूण-अम्मिदूण-आश्रिय । ऊग—अम्मिग, गृह, मोक्ष, गऊ, चिनिऊ, आदि ।

३ मन्त्रार्थों के उक्त अर्थानुसार आदेशों द्वारा उद्घाटन मिलता है। यथा— सुशोभ-
नेत्र-अंश । गात्रार्थ—पञ्चम पदार्थ, शरीरार्थ—पञ्चतत्त्व, प्रथम-वर्ण, अक्षर
आदि।

[illegible]

४ क—क, ग, च, ज, न, द, और प, य लपट ता उदाहरण माय पये
 ही उ-२ दे, शिनु इमेउ कु-२ गग न दानर भी उदाहरण मित्रे हं। यथा— ग—गग ग
 गगे गगगगे गगगगग गगगगग, यदि। न—निनीन-यानि। द—दमय दमय
 दमयदमय दमयदमयदमय अनुवाद, द, दग, यदि।

[illegible][illegible][illegible]

प्रोमे—एरमि, एरमि, एरमि, मरमि, आदि। टीकामें—वयुमि, चरदहि, जहि,
।

दो गाथाओमें बनावार एकरबनकी विभक्ति उ भा पाई जाती है। जस बाबरु
(५) एकरु (१४६) एर एरुन अपभग भावारी बार प्रवृत्ति है आर उस एभगना
०२८ में इरर साहिबों पाया जाना भट्करा है।

७ जहां मयदनी भजना लोप हुआ है वहां यदि सयागी गैर एकर अ अथवा
। तो बहूदा य भुनि पायी जाती है। जैसे—विचपर-सार्थर, पयप पशय, वेयणा वेरना,
। गज, रिमगया विमर्गना, आहारया बाहरया, आदि।

अ व अतिरिक्त 'ओ' के साथ भी और बचित उ व ए के साथ भा हस्ताभिनय
में य भुनि पाई गई है। किन्तु हमबदले नियमना तथा 'नै नौरसेनीर' अथवा
रा' विचार करव नियमने लिए इन तबोरे साथ य भुनि नहीं रखनेका प्रस्तुत प्रपमें
रिया गया है। तपानि इसक प्रयोगकी ओर आगे हमरा सूचयि रहभा। (देखो ऊपर
। इनके नियम प १३)

उ के पभाव सुमरागे म्यानमें बहूदा य भुनि पाई जाना है। जैसे—बादरा बाटका,
। एकर निहुदरिदुन, आदि। किन्तु 'पज्जर' में रिया उ के साथ एके भी नियमसे
ने पाई जाती है।

८ वय विरारक कुछ विंग उदाहरण इस प्रकार पाये जात हैं—मयोंमें—
। ज अपननीय (१६३), अगियाग अनुयाग (५), आउ अप (३०) इहि क्रदि
(५) ओरि, ओरि भवनि (११५, १३१), आरानिय बादरि (५६), एरमय
(१३२), तेउ तनस (३०) पज्जर पयाय (११५), मोस-मूरा (४९) बैर-व्यन्तर
(५), एरदयनारन, नारकी (२५) गाथाओमें—इमय इन्काउ (५०), उरा उदार (१६०)
। अगार (१५१), तेस-अरर (५०) चाग-व्याग (००) एरप-एरप (१०१),
। इम-सम्बदन (१३०)।

गाथाओमें आए हुए कुछ दगी शब्द इस प्रकार हैं—बादानी-बायध (८८),
। अमर (६३), बागना मुद (०००), गिमेग आधर (७), मेज मीर, (००१),
। वा, मयादा (००)

टीकाउ कुछ दगी शब्द अन्विष्ट उपसगनि (०२०), चडनिय-आग (००१),
। एर वा (२११) गिसुगिय-नन (६८) बागनिय-अनीय (६८)।

१ अथवा य भुनि । ८ १ १) टीका—बागनिय मने विवर ॥ १८ ॥

२ ॥ गाथा में मयदयनारकी शिका वृ ११५

इन थोड़ेसे उदाहरणोंपरसे ही हम सूत्रों, गाथाओं व टीकाओं भाषा के विषयमें कुछ निर्णय कर सकते हैं। यह भाषा मागधी या अर्धमागधी नहीं है, क्योंकि उष्म न तो अनिकर्ष रूपसे, और न विकल्पसे ही र के स्थान पर ल, व म क स्थानपर झ पाया जाता, और न कर्ताकारक एकरचन में कहीं ए मिलता।

त के स्थानपर द, क्रियाओंके एकरचन वर्तमान कालमें द्वि व टे, पूरनाटिक क्रियाओं के रूपमें चु व दूष, अपादानकारककी विभक्ति दो तथा अधिकरणकारककी विभक्ति मिह, र के स्थानपर श, तथा य के स्थानपर य आदेश, तथा ढ, और घ का लोपमान, ये सत्र शौर्मेनाक लक्षण हैं। तथा त का लोप, क्रियाके रूपोंमें इ, पूरनाटिक क्रियाके रूपमें ऊग, ये महाराष्ट्रीके लक्षण हैं। ये दोनों प्रकारके लक्षण सूत्रों, गाथाओं व टीका सभामें पाये जाते हैं। सूत्रोंमें वर्णविकारके विशेष उदाहरण पाये जाते हैं वे अर्धमागधीकी ओर सजेन करते हैं। अतः कहा जा सकता है कि सूत्रों, गाथाओं व टीकाका भाषा गौरसेनी प्राकृत है, उसपर अर्धमागधी का प्रभाव है, तथा उसपर महाराष्ट्रीका भी मस्कार पड़ा है। ऐसा ही भाषाओं विशेष आदि पाश्चात्तिक विद्वानोंने जैन शौरसेनी नाम दिया है।

सूत्रोंमें अर्धमागधी वर्णविकार का बाहुल्य है। सूत्रोंमें एक मात्र क्रिया 'अधि' आती है और वह एकरचन व बहुचन दोनोंकी योग्य है। यह भा सूत्रोंका प्राचान आप प्रयोग का उदाहरण है।

गाथाएँ प्राचीन साहित्यके भिन्न भिन्न ग्रंथोंकी भिन्न भिन्न वाङ्मयी रची हुई अनुमान का जा सक्ती हैं। अतएव उनमें शौरसेनी व महाराष्ट्रीपनका मात्रामें भेद है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि भाषा जितनी अधिक पुरानी है उतना उसमें शौरसेनीपन अधिक है और जितनी अवाचीन है उतना महाराष्ट्रीपन। महाराष्ट्रीका प्रभाव साहित्यमें पीछे पाठे अभिव्यक्त पता गया है। उदाहरणके लिये प्रस्तुत ग्रंथ की गाथा न० २०३ छानिये जो यहाँ इसप्रकार पाई जाती है—

गंसदि गिददि जण्णे दुसदि बहुसो य सोय भय-वट्ठो ।

अमुयदि परिभयदि पर पससदि अप्पय वट्ठो ॥

इस गाथामें गोम्मटमार (जीवजट ५१२) में यह रूप धारण कर लिया है—

गंसः गिदइ जण्णे दुसद बहुसो य साय-भय-वट्ठो ।

अमुयद परिभयद पर पससए अप्पय वट्ठो ॥

महारी गाथाओंका गोम्मटमारमें इसप्रकारका महाराष्ट्री परिवर्तन बहुत पाया जाता है। किन्तु कहीं कहीं ऐसा भी पाया जाता है कि वहाँ इस ग्रंथमें महाराष्ट्रीपन है वहाँ गोम्मटमारमें

गार्सनरान स्थित है। यथा, गाथा २०३ म यहाँ 'समस्त वस्तु अहि ह वता गा' १९ में 'समस्त वस्तु अहि' पाया जाता है। गाथा २१० म यहाँ 'अथ विष्णो' ह, किन्तु गार्सनर १९६ में उसी जाह 'समस्त विष्णो' ह। इस सम्बन्ध में गार्सनर प्राचीन पद स्थिति का प्रभाव होता है। इन उदाहरणों से यह भी स्पष्ट है कि तब तक गार्सनर प्राचीन पद स्थिति का प्रभाव प्रतियोगी सावधानी से परीक्षा में नहीं जाय और यद्यपि उदाहरण सम्पूर्ण उद्दिष्ट न हो तब तक इनसे भाषाक विषयों निश्चयन कुछ घटना अनुचित है।

[illegible][illegible]

उपसहार

अंतिम तीर्थकार धामहास्यस्वामीके वचनानुसार उनका प्रमुख शिष्य दण्डभूति गानमन द्वादशांग भूतके रूपमें प्रथम रचना की। जिसका ज्ञान आचार्य परम्परासे क्रमशः कम होत हुआ धरमेनाचार्यतक आया। उन्होंने गण्डर्व अम दृष्टिवादक अतर्गत पूर्वोंके तथा पाचवें अम व्याख्याप्रवृत्तिके कुछ अंशोंको पुष्पदन्त और भूतगलि आचार्योंका पढ़ाया। और उन्होंने बार निर्माण के पश्चात् ७ वीं गतान्द्रिके लगभग सत्रमपाहुडकी यह हजार सूत्रोंमें रचना की। जिसका प्रसिद्धि पद्मडागम नामसे हुई। इसकी टीकाएँ क्रमशः बुन्दबुन्द, शामरुड, तुम्बुल, समन्तभद्र और वृषभदेवने बनाई, ऐसा कहा जाता है, पर ये टीकाएँ अब मिलती नहीं हैं। इनके अंतिम टीकाकार वीरमेनाचार्य हुए जिन्होंने अपनी सुप्रसिद्ध टीका घनलारी रचना शक ७३८ नातिक शुक्र १३ को पूरी की। यह टीका ७२ हजार श्लोक प्रमाण है।

पद्मडागमका उद्देश्य गट महाविषय है। जिसकी रचना स्वयं भूतगलि आचार्यने बहुत विस्तारसे की थी। अतएव पश्चात्कालिकों को यह उसपर विशय टीकाएँ नहीं रची गई। इसी महारथका प्रसिद्धि महाघनलारे नामसे है जिसका प्रमाण ३० या ४० हजार कहा जाता है।

धरमेनाचार्यक समयक लगभग एक और आचार्य गुणधर हुए जिन्होंने भी द्वादशांग भूतका पूरा ज्ञान था। उन्होंने व्यासप्राभूत की रचना की। इसका आर्यमनु और नागहस्तिन व्याख्याएँ किया जाय यतिवृषभ आचार्यने चूणिमूर रचे। इसपर भी वीरमेनाचार्यने टीका लिखी। किन्तु वे उस २० हजार प्रमाण लिखकर ही स्वगयासी हुए। तब उनके सुयोग्य शिष्य जिनमेनाचार्यने ४० हजार प्रमाण और लिखकर उसे शक ७५९ में पूरा किया। इस टीकाका नाम जयधरला है और यह ६० हजार श्लोक प्रमाण है।

इन तीनों या तीनों महाग्रन्थों की केवल एकमात्र प्रति ताटपत्रपर होय रही थी जो मकरों वषामे मृदविर्गम मृदागमें बंद थी। सन् २०१२५ वर्षमें उनमेंसे धरडा व जयधरडा की प्रतिलिपियाँ किसी प्रकार बगहर निकल आई हैं। महारथ या महाघनल अथ भी दुष्प्राप्य है। उनमेंसे धरडाके प्रथम अंशका अब प्रकाशन हो रहा है। इस अंशमें द्वादशांगशास्त्रों व प्रथम रचनाके इतिहासके अतिरिक्त सत्प्रख्याता अथवा चरममात्रों और मागणाओं का विशेष विवरण है। श्रुतोंकी भाषा पूर्णतः प्राकृत है। जिसमें जगह जगह उद्धृत पुराणोंके पद्य २१६ हैं जिनमें बंजर १७ सम्बन्धमें और शेष प्राकृतमें हैं, टीकाका कोई तृतीयांग प्राप्तमें और शेष सम्बन्धमें है। यह सब प्राकृत प्रथम वही धरमेनी है जिसमें बुन्दबुन्दादि आचार्यों के प्रथम रचनाएँ बने हैं। प्राकृत और सम्बन्ध दोनोंकी शैली जयधर सुन्दर, परिमार्जित और प्रौढ़ है।

टिप्पणियोंमें उल्लिखित ग्रन्थोंकी

संकेत-सूची

संकेत	ग्रन्थ नाम	संकेत	ग्रन्थ नाम
१ अनु ए	अनुयोगशास्त्र	२४ जी द सू	जीवज्ञान द्वाणिज्ज्ञान
२ अभि ङ को	अभिधानराजद्वकोष	२५ जी वि प्र	जीवविचारप्रकरण
३ अल बि	अलङ्कारविन्तामणि	२६ जी स सू	जीवज्ञान सनपत्तवर्णा
४ अष्टा	अष्टशती		सुच
५ अष्ट	अष्टसहस्री		प्योतिष्यरण्डक सगीक
६ आचा नि	आचाराङ्ग नियुक्ति	२७ ज्यो क	ज्योतिष्यशास्त्र
७ आ नि	आवयक-निर्णय	२८ शाखा सू	शाखाधर्मशास्त्र
८ आ पा	आढापयद्धति	२९ तत्त्वार्थ भा	तत्त्वार्थभाष्य (स्वे)
९ आ पु	आदिपुराण	३० त रा वा	तत्त्वार्थगोपवार्तिक
१० आ मी	आत्ममीमांसा	३१ त र्ज्ये वा	तत्त्वार्थभोक्तवार्तिक
११ इन्द्र धुता	इन्द्रन्दिश्रुतारतार	३२ त सू	तत्त्वार्थसूत्र
१२ उत्त	उत्तराष्वयन	३३ ति प	तिथोपपन्नादि
१३ और सू	औपपानिगम	३४ द म	दशमकि
१४ व म	वर्ममय	३५ द वै	दशमिगद्विक
१५ क म	वर्मप्रवृत्ति	३६ देशीना	देशीनाममाळा
१६ क. प्र य उ टी	वर्मप्रवृत्ति यशोविजय	३७ द स वृ	द्रव्यसमहृदि
१७ कमापपाहृदुणि	उपाध्यायकृत वि टी	३८ धवला	धवला (जिनि)
१८ गुण म म	(लिगित)	३९ न च	नयचक्र
	गुणस्थान-प्रमाण	४० या कु च	न्यायवृत्तमुद्रचक्र
	प्रकरण	४१ न सू	नदिसूत्र
१९ गो क	गोमन्तर वर्ममन्त्र	४२ पञ्चस	पञ्चमस (दि)
२० गा जी	„ जीवकाङ्	४३ पञ्चा	पञ्चास्तिसय
२१ गो जी, जी प्र, टी	गोमन्तर जीवकाङ्	४४ पञ्चाप्या	पञ्चाप्यादी
	जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका	४५ पञ्चा वि	पञ्चाङ्ग सटीक वि
२२ गो जी, म प्र, टी	गो० जी० मद्रवो	४६ प मु	परिभाषा
	विनी टीका	४७ पा उ	पाणिनि उग्गदि
२३ जपथ	जपथवर्ग (लिगित)	४८ पात महाभा	पातञ्जल महाभाष्य

सकेत

४९ पु सि
५० प स
५१ प्र क मा
५२ प्रना सू
५३ प्रमाणनयन

५४ प्रमाणमी
५५ प्रच
५६ प्र सा पू
५७ वा अ
५८ वृ क सु
५९ वृ स्व स्तो
६० प्र शु
६१ भग गी
६२ भग सू
६३ मूलाचा

प्र नाम

पुण्यामिद्विपुणाय
पचमप्र (७)
प्रमयममटमान
प्रतापना सूत्र
प्रमाणनयनशाशा
कार
प्रमाणमीमासा (२३)
प्रचनमार
प्रचनमाणेद्रा प्रार
वागस जणुरसा
वृहत्कल्पमूत्र
वृहत्स्वयम्भूस्तोत्र
नमोमेचद्र शुनम्भ
भगवद्गीता
भगवती सूत्र
मूलाचार

महा

१४ गुणा

६१ राग

६६ त ग

६७ टीय

१८ " खो वृ नि

१९ डा प्र

७० नि मा

७१ स त

७२ म त टी

७३ स न सू

७४ स सि

७५ सम मू

७६ त्या सू

७७ ह पु

प्र

मृगागना

अगना

गगना

अगना

अगना

अगना

अगना

अगना

अगना

अगना

अगना

अगना

अगना

अगना

अगना

अगना

मत्प्रकरणारी विषय-सूची

१

महाभारत

१ महाभारत टीका

२ महाभारत पंच पाली भाषा

३ महाभारत के दिग्दर्शक श्रीमद्भगवद्गीता

४ महाभारत के अंग

१ उपनिषद्

२ महाभारत के अंग

३ महाभारत के अंग

४ महाभारत के अंग

५ महाभारत के अंग

६ महाभारत के अंग

७ महाभारत के अंग

८ महाभारत के अंग

९ महाभारत के अंग

१० महाभारत के अंग

११ महाभारत के अंग

१२ महाभारत के अंग

१३ महाभारत के अंग

१४ महाभारत के अंग

१५ महाभारत के अंग

१६ महाभारत के अंग

१७ महाभारत के अंग

१८ महाभारत के अंग

१९ महाभारत के अंग

२० महाभारत के अंग

१-७२

१

१

८

८

८

८

८

८

८

८

८

८

८

८

८

८

८

८

८

८

८

८

चन्द्रनी ५२ तत्परवा भाग ५७

२ १ प्रेम-सुग वपन

३ प्रेम-सुग वपन

वपन

७ प्रेम-सुग

८ प्रेम-सुग

९ प्रेम-सुग

१ प्रेम-सुग

२ प्रेम-सुग

३ प्रेम-सुग

४ प्रेम-सुग

५ प्रेम-सुग

६ प्रेम-सुग

७ प्रेम-सुग

८ प्रेम-सुग

९ प्रेम-सुग

१० प्रेम-सुग

११ प्रेम-सुग

१२ प्रेम-सुग

१३ प्रेम-सुग

१४ प्रेम-सुग

१५ प्रेम-सुग

१६ प्रेम-सुग

१७ प्रेम-सुग

१८ प्रेम-सुग

१९ प्रेम-सुग

२० प्रेम-सुग

२१ प्रेम-सुग

२२ प्रेम-सुग

२३ प्रेम-सुग

२४ प्रेम-सुग

५८

६०

६०

६०

६०

६१

६२

६३

६४

६५

६७

जीवस्थानका अन्तर

१० उपक्रम

१ जीवस्थानका अन्तर

२ जीवस्थानका अन्तर

३ जीवस्थानका अन्तर

४ जीवस्थानका अन्तर

५ जीवस्थानका अन्तर

६ जीवस्थानका अन्तर

७ जीवस्थानका अन्तर

८ जीवस्थानका अन्तर

९ जीवस्थानका अन्तर

१० जीवस्थानका अन्तर

११ जीवस्थानका अन्तर

१२ जीवस्थानका अन्तर

१३ जीवस्थानका अन्तर

१४ जीवस्थानका अन्तर

१५ जीवस्थानका अन्तर

७२-१३२

७२ ८३

७२

७३

८०

८२

८२

८३

८३ ९१

८३

८३

८४

९१ १३२

९३

९३

९३

(९२)

२ धृतज्ञानके भेद प्रभेदोंका स्वर्ण
३ आप्रायणीय पूर्वके १४ अर्थाधिकार
और जीवज्ञान गठके अतर्गत-
मिमांसरी उपपत्ति

०६

१२३

३
विषयरी उत्थानिका

१३२-१५९

१४ चौदह मार्गगाओंका सामान्य स्वर्ण-
निष्पन्न

१३२-१५३

१ गतिमार्गणा

१३४

२ इन्द्रियमार्गणा

१३५

३ क्वापमार्गणा

१३८

४ योगमार्गणा

१३९

५ वेदमार्गणा

१४०

६ क्वापमार्गणा

१४१

७ शास्त्रमार्गणा

१४२

८ सप्तममार्गणा

१४४

९ दशममार्गणा

१४५

१० छद्ममार्गणा

१४६

११ भव्यमार्गणा

१४७

१२ सम्यक्त्वमार्गणा

१४८

१३ सहिमार्गणा

१४९

१४ अक्षरमार्गणा

१५०

१५ अनुपपत्ति अर्थात् भेदोंका
सामान्य निष्पन्न

१५१

४

मार्गमार्गणा

१५० ४१०

अथ और अर्थात् भेदोंका

मार्गमार्गणा

१५० २००

१ निष्पन्नमार्गमार्गणा

१५१

२ सम्यक्त्वमार्गमार्गणा

१५२

३ सम्प्रभिमार्गमार्गणा गुणमार्गणा

१५३

४ असंप्रभिमार्गमार्गणा

१५४

५ सप्तममार्गमार्गणा

१५५

६ प्रमत्तमार्गमार्गणा

१५६

७ अप्रमत्तमार्गमार्गणा

१५७

८ अपूर्वमार्गमार्गणा

१५८

९ अनिब्रुतमार्गमार्गणा

१५९

१० मूर्धन्यमार्गमार्गणा

१६०

११ उपमानमार्गमार्गणा

१६१

१२ क्षीणमार्गमार्गणा

१६२

१३ सयोगमार्गमार्गणा

१६३

१४ अयोगमार्गमार्गणा

१६४

१५ सयोगी और अयोगीके मनसा

१०२

अभार होनेपर करडाननरी

समुक्तिर सिद्धि

२००

१६ सिद्धस्वरूप निष्पन्न

२००

१७ मार्गगाओंमें गुणमार्गान निष्पन्न २०१ ४१०

१ गतिभेद निष्पन्न

२०

२ नरसंगतिमार्गमार्गान प्रतिपादन

२०

३ नियमगतिमार्गमार्गान

२०५

४ मनुष्यगतिमार्गमार्गान

२१०

५ उपायगतिमार्गमार्गान

२१०

६ मार्गगतिमार्गमार्गान

२१५

७ मार्गगतिमार्गमार्गान निष्पन्न

२५

८ मार्गगतिमार्गमार्गान

२२०

९ मार्गगतिमार्गमार्गान

२२५

१० मार्गगतिमार्गमार्गान

२३०

१५ पश्यानि आर प्राणमें भेद	२५६	३४ आदेशकी ओर भा वेद-साध- प्रतिपादन	३४५
१६ इंद्रियादि जीवोंके भेद	२५८	३५ कथायमागामाके भेद व स्वत्त्व	३४८
१७ अपवाप्त अवस्थामें मनसा निराकरण	२५०	३६ कथायमागामामें गुणस्थान विचार	३५१
१८ इन्द्रियमार्गगामें गुणस्थान-साध प्रतिपादन	२६१	३७ ज्ञानमार्गगामें भेद व स्वत्त्व	३५३
१९ कथायमागामाके भेद	२६४	३८ ज्ञानमार्गगामें गुणस्थान-विचार	३६०
२० स्पर्शकारिका जीवोंके भेद	२६७	३९ सयममार्गगामें भेद व स्वत्त्व	३६८
२१ प्रसारायिका जीवोंके भेद	२७२	४० सयममार्गगामें गुणस्थान-विचार	३७४
२२ कथायमागामामें गुणस्थान निरूपण	२७४	४१ दशनमार्गगामें भेद व स्वत्त्व	३७८
२३ योग मार्गगामें भेद व स्वत्त्व	२७८	४२ दशनमार्गगामें गुणस्थान विचार	३८१
२४ मनोयोगके भेद और उनमें गुणस्थान-निरूपण	२८०	४३ लेख्यमार्गगामें भेद व स्वत्त्व	३८६
२५ वचनयोगके भेद	२८६	४४ लेख्यमार्गगामें गुणस्थान-विचार	३९०
२६ वायव्ययोगके भेद	२८९	४५ भव्यमार्गगामें भेद व स्वत्त्व	३९७
२७ केरति-समुद्भात विचार	३००	४६ भव्यमार्गगामें गुणस्थान विचार	३९७
२८ तिस्रयोगी योगोंके स्थानी	३०८	४७ सयममार्गगामें भेद व स्वत्त्व	३९५
२९ द्विस्रयोगी और एकमयोगी योगोंके स्थानी	३०९	४८ सयममार्गगामें गुणस्थान- विचार	३९६
३० योगोंमें पर्याप्त व अरुपात विचार	३१०	४९ आदेशकी ओर भा साधन साधप्रतिपादन	३९७
३१ आदेशकी ओर भा निमागामामें प्राप्त व अरुपात-विचार	३२२	५० सविमार्गगामें भेद व स्वत्त्व	४०८
३२ वयमार्गगामें भेद व स्वत्त्व	३४०	५१ सविमार्गगामें गुणस्थान-विचार	४०८
३३ वयमार्गगामें गुणस्थान विचार	३४२	५२ अक्षयमार्गगामें भेद व स्वत्त्व व भेद व स्वत्त्व विचार	४०९

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अनुदि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति	अनुदि	शुद्धि
८	४	साहस्य ॥३॥	साहस्य ॥३॥ इदि ।	११४	१	मन्त्र साहस्य	मन्त्र साहस्य
२३	०	॥ इदि ।	॥३॥ इदि ।	११० (त्रि)	०	मन्त्रादि	मन्त्रादि । गो श्री
"	४	साक्षामिदि	साक्षामिदि				श्री प्र श्री २
२	७	मय	मय	१०३	१०	पुन्यमादो	पुन्यमादो
२१	३	महत्	महत्	"	"	मयमादो	मयमादो
३२	१	विनाशयति	विनाशयति मान	"	११	पुन्यमादो	पुन्यमादो
			यति	"	"	मयमादो	मयमादो
३३	६	मये	मय	"	"	मयमादो	मयमादो
३	०	महत्सू	महत्सू जीवम्	१०	३	मयमादो	मयमादो
४०	१	कल पायेंतु	कल दि पायेंतु	१०३	१०	नेर्वादिमादो	नेर्वादिमादो
"	१	लहु पारया	लहु पारया				भायादो
४७	०	गुणरत	गुणरतो	१३३	१	यिग्न म	यिग्न । म
४८ [दि]	६	जो पुण्याकार	जो मय भयय	११	६	कज	कध
			घोने पुण्याकार	२११	३	स्थानेषु	स्थानेषु मार्गणा
५५	१	भोयण घेलाय	भोयण-वेगाय	२२७	१	यत्परिमाण	यत्परिमाण
		संघयमानि	' संघयमानि '	२१४	०	प्राहा	प्राहा
५६	१	अभ्युदयने	अभ्युदय	२१९	०	यनस्पति	यनस्पति
		धेयसम्	नै धेयसम्	२७३	४	नियधन	नियधन
५९	६	पययणादो	पययणादो	२८०	७	॥ १' ३ ॥	॥ १' ३ ॥
७०	४	अद्विय क्वरा	अद्वियक्वरा	२८१	२	॥ १५४ ॥	॥ १' ६ ॥
"	"	विहीण क्वरा	विहीणक्वरा	२८२	४	॥ १' १ ॥	॥ १' ७ ॥
"	६	द्विय न्वराण	द्वियक्वराण	२८९	९	॥ १' २ ॥	॥ १' ८ ॥
८२	१०	सा	तय सा	"	११	॥ १५७ ॥	॥ १' ९ ॥
९४	६	पुधत ।	पुधत,	३०	३	वाड्मनसो	वाड्मनसयो
९७	३	पुरिस	पुरिसे	१०८	९	वाड्मनोभ्या	वाड्मनमाभ्या
१०१	८	छापण सहस्स	छापण सहस्स	३१०	१	"	"
१०७	६	पण्णारह-लम्भा	पण्णारह लम्भा				
		वे सहस्स	वे सहस्स				

संत परब्रवणा

मंगलाचरणम्

श्रीमत्परम-गम्भीर स्याद्वादामोघ लाञ्छनम् ।

जीयात् त्रैलोक्य नाथस्य शासनं जिनं शासनम् ॥ १ ॥

सः श्रीमान् धरमेन-नाम-सुगुरु श्रीजैन सिद्धान्त-मदू-

षाद्विर्धुर्धर पुष्पदन्त-सुमुनिः श्रीभूतपूंगे बलि ।

एते सन्मुनयो जगत्त्रय हिता स्वर्गार्मररचिता*

दुर्युमें जिनधर्म कर्मणि मतिं स्वर्गापमर्गप्रदे ॥ २ ॥

श्रीगीरसेन इत्याप्त महारक पृथु-प्रथ* ।

स न पुनातु पूतात्मा वादि दुन्दरको मुनि ॥ ३ ॥

धबला भारतीं तस्य कीर्तिं च शुचिं निर्मलाम् ।

धबलीकृत निःश्रेय भुवना ता नमाम्यहम् ॥ ४ ॥

भूयादानीरसेनस्य वीरसेनस्य शासनम् ।

शासनं वीरसेनस्य वीरसेन-कुशेशयम् ॥ ५ ॥

सिद्धाना कीर्तनादन्ते यः सिद्धान्त-प्रसिद्ध-वाद् ।

सोऽन्नाद्यनन्त सन्तानः सिद्धान्तो नोऽन्यताश्चिरम् ॥ ६ ॥

१ अक्षयवल्गुल शिलालेख नं ३९ आदि । २ नमः नमिदच्छत आराधनाकथायां पृ ३५९ ।
३-४ सरहृत् महापुरुष उपायिका । ५-६ अक्षयवल्गुलतमेत ।



मिनि-भगवत पुष्पदन भृदपलि पणीदे

छक्खंडागमे

जीवट्टाण

नस्स

मिनि त्रिगमणादग्गि जिडया दीरा

धवला

मिद्धमणतमणिनियमणुममप्पुत्थ-भोस्समगरज ।

वेवल-पहाण निजिय दुण्णय तिमिर जिण णमह ॥ १ ॥

ओ मिद्ध ह अनन्न स्वरूप ह अनिद्रिय ह अनुपम ह आत्मात्पन्न सुखको प्राप्त ह अनपद्य अथात् निदाय ह आर जिडान केवलज्ञानरूप मूर्धके प्रभापुंजसे कुनवरूप आधकारको जीत लिया ह एस जिन भगवानको नमस्कार करो। अथवा ओ अनन्न-स्वरूप ह अनिद्रिय ह अनुपम ॥ आत्मात्पन्न सुखको प्राप्त ह अनपद्य अथात् निदाय ह जिहोन केवलज्ञानरूप मूर्धक प्रभा-पुंजस वृत्तरूप आधकारका जीत लिया ह आर ओ समस्तजर्म-दाबुमोंके जीतनेसे 'जिन सदाशा प्राप्त ह एस सिद्ध परमात्माका नमस्कार करो।

विशेषार्थ—‘मिद्ध’ शब्द का अर्थ उत्तम होना है, अर्थात्, जिज्ञान अपन कर योग्य सब कार्योंको कर लिया है, जिन्होंने अनादिकाल से बड़े हुए धानायागणादि कर्मोंका प्रवर्ण ध्यानरूप अभिप्रेक्ष द्वारा भोग कर दिया है, ऐसे कर्म प्रवर्ण मुक्त जीवोंको मिद्ध कहते हैं। अर्द्ध परमेष्ठी भी चाहे घातिया कर्मोंका नाश कर चुके हैं, इसलिये वे भी घातिसम भव मिद्ध हैं। इस विशेषण से उनसे मतका निराकरण हो जाता है जो अनादि काग्रेस ही। ईश्वरको कर्मों से अस्पृष्ट मानते हैं। अथवा, ‘पिघु’ धातु गमना का भी है, जिसमें मिद्ध शब्द यह अर्थ होता है, कि जो शिर लाकम पहुँच चुके हैं, और उदास लाट कर कर्मों नहीं मानते। इस कथन से मुक्त जीवोंको पुनरागमनकी भायना का निराकरण हो जाता है। अथवा, ‘पिघु’ धातु ‘सराधन’ का अर्थ भी जानते हैं, जिससे यह अर्थ निश्चलता है, कि जिज्ञान बामाव गुणाका प्राप्त कर लिया है, अथवा, चित्त की जातमात्र अपने स्वाभाविक अन्त गुणाका प्रकाश हो गया है। इस व्याख्यासे उन लोगोंके मतका निरसन हो जाता है, जो मानते हैं कि, ‘चित्त प्रकार दापन नुम जाने पर, न यह पृथ्वीकी ओर नीचे जाता है, न आकाशकी ओर ऊपर हो जाता है, न किसी दिशाकी ओर जाता है और न किसी विदिशाकी ओर ही। किन्तु नेलके क्षय हो जानेसे केवल शान्ति अर्थात् नाशको ही प्राप्त होता है। उसीप्रकार, मुक्तियों प्राप्त होना हुआ जीव भी न नीचे भूलकी ओर जाता है, न ऊपर नमस्तकी ओर, न किसी दिशाकी ओर जाता है, और न किसी विदिशाकी ओर ही। किन्तु सौंद अर्थात् रागपणिनिके नष्ट हो जानेपर, केवल शान्ति अर्थात् नाशको ही प्राप्त होता है।’

अनन्त—जिसका अन्त नहीं है उसे अनन्त कहते हैं। अथवा, 'अन्त' शब्द सामावाच्य भी है, इसलिए जिसकी समाप्ति न हो उसे भी अनन्त कहते हैं। अथवा, अनन्त पदार्थोंके जाननेवालेको भी अनन्त कहते हैं। अथवा, अनन्त कर्मोंके अर्थोंके जाननेवालेको भी अनन्त कहते हैं। अथवा, अनन्त ज्ञानादि गुणोंसंयुक्त होनेके कारण भी अनन्त कहते हैं।

अनिन्द्रियं—जिसके इन्द्रिया न ह, उस अनिन्द्रिय कहते ह। इन्द्रिया अर्थात् भारतीया छत्रस्य दशम पाई जाता ह, परन्तु सिद्ध भार अर्हत् परमात्मा छत्रस्य दशमो

१. 'आर्त्तसङ्गा प्रयागं सङ्गात् । तेषां च सः सुखमाप्नोति । अत्रापि १ ४१ 'माहात्मिकं आवासा
मङ्गलं गाम्यावश्यं मङ्गलात् । विद्वत्तद आर्त्तं प्रयुज्यते । एतत् सङ्गमा पृ ७ मितं बद्धमष्टकात्
कर्मचनं मानं स्यात् । जायमानं पुत्रं यन्नामस्य यमं विद्वत् । अथवा 'तदु गता' इति वचनात् सधति
रमं प्रयुज्यात् । अत्रानुगमस्य । अथवा विप्रं मराडा इति वचनात् सधति विद्वत्पति रमं
निगन्ताया मरात् रमः । अथवा 'तदु गता' इति वचनात् सधति रमं शान्तिना भूत्वा माह्वं
रूपं । एतन्मन्त्रं रम इति विद्वत् । अथवा विद्वत् । अथवा अप्यवगतं स्थितिरुक्तं । प्रयत्नात् वा मन
स्य च यमस्यमाह्वत् । जायमानं यन् पुत्रं कर्म या वा गता । अत्रानुगमस्य । अथवा अत्रानुगम
एतन्मन्त्रात् । यमात्तु विद्वत् कृतमङ्गलं यमः । अथवा १ १ २ (टाका) १० पञ्चा अ पृ ४३४

२ नाभ्यात्तान्त्राणान्न निम्नशरावतान्त्राणान्नस्थमान् । नाभ्यात्त मांसाभ्यन्त
त्वात् । अनन्ताभ इवशराणान्न अनन्ताभ इवशराणान्न स्वरूपत्वात् । अन्नलक्ष्माद्यजपनाणन । अन्तान्न श

३ न व त्रि-त्रय तयाह्न त्रि त्र ज्ञानादवलम्बथा । पा म स क्तव (अग्निप्रि) ।

आदि सुगन्धित पदार्थोंके मधुनेत्र, रमणीय रूपोंके अत्यन्तकम, अरण मुखका मगलोंके सुननेमें और चित्तमें प्रमोद उत्पन्न करनेवाले अनेक प्रकारके विषयोंके चित्रनमें आनन्दका अनुभवसा करता है, और उसमें अपनेका मुखी भी मानता है। पर यथायमें देखा जाय तो इसे 'सुख' नहा कह सकते हैं। मुख जिसे कहना चाहिये यह तो आहुत्याके अभावमें ही उपलब्ध हो सकता है। परन्तु इन सब विषयोंके ग्रहण करनेमें आहुत्या दया जाती है, क्योंकि प्रथम तो इन्द्रिय मुखकी कारणभूत सामग्रिका उपलब्ध होना ही अत्यन्त है, इसलिये आहुत्या होनी है। दूसरा उक्त सामग्री यदि मिल भी जाय तो उस विरम्याया बनानेके लिये और उसे अपने अनुभूत परिणामानके लिये चिन्ता करनी पत्नी है। इतना सब कुछ करने पर भी उस सामग्रिस उत्पन्न हुआ मुख चिरस्थायी ही रहेगा, यह कुछ कहा नहीं जा सकता है, क्योंकि समारमें न किमीका मुख चिरस्थायी रहा है और न कोई प्राण ही। फिर इस सुखमें रोग, शोक, इष्टियाग, अनिष्टमयोग आदि निमित्तोंसे सदा ही भक्तों वाया उपस्थित होती रहनी है, जिससे यह सुख सामग्री ही दुस्कर हो जाती है। यदि इनमें ही घस होता, तो भी टीक था। पर यह सुख पापका बीज है, क्योंकि समारमें मुखका सामग्री परिमित है और उसके ग्राहक अर्थात् उसके अभिलषी अनन्त हैं। अतः जो भी व्यक्ति सुखका आचक्षुष्यतासे अधिक सामग्री एकत्रित करता है, यथायत्न देखा जाय तो, वह दूसरोंके नाप प्राप्त अशक्ती छीनता है। इसलिये यह सुख पापका बीज है। फिर यह सुख धारम्भादि निमित्तोंसे अनेकों जीवोंकी हिंसा करनेके बाद ही तो उपलब्ध होता है, अतः कर्मबन्धका कारण भी है। अतः यह इन्द्रियोंसे उत्पन्न होनेवाला सुख, सुख न होकर यथायत्नमें दुःख ही है। किन्तु जो आनन्द, जो शान्ति, स्वाधीन है, अर्थात्, बाह्य पदार्थोंकी अपेक्षा न करके केवल आत्मामें उत्पन्न होती है, बाधा रहित है, अविच्छिन्न एक धारासे प्रवाहित हो कर सदाकाल स्यात् है नर्थात कर्मबन्ध करानेवाली भी नहीं है, दूसरोंके अधिकार नहीं छीननेसे पापका बाध भी नहीं है, उसे ही सच्चा सुख कहा जा सकता है। सो ऐसा आत्मोत्पन्न, अनन्त सुख सिद्ध और अरहत परमेश्वरोंके ही समान है। अतः उक्त विशेषण देना सार्थक एवं समुचित ही है।

अनन्त—अनन्त, पाप या दोषका कहने है। गुणव्यानक्रमस आत्माके अनेक विवाशको देखने दृष्टे यह भलीभांति समझमें आ जाता है कि ज्यों ज्यों आत्मा विगुण मार्गपर अग्रसर होता जाता है, त्यों त्यों ही उसमेंसे मोह, राग, द्वेष, काम, अहं, मान, माया मत्सर, गैभ, नृणा आदि विकार परिणति अपने आप मन्द या क्षीण होती हुई चली जाता है। यद्यपि कि एक यह समय आ जाता है जब यह उन समस्त विकारोंमें रहित हो जाता है। इसी अवस्थाको मंगलकारिण अनन्त या निदाल शब्दसे प्रगट किया है।

केवलप्रभाषिणितदुर्नयतिमिर—अथ दृष्टिभेदोंकी अपेक्षा रहित कथल एक दृष्टि

१ जइ एउ तइ अथ पतव दुखया नया मव । म ठ १ १५ । नरवना नया दिव्या मापया एउ
दुखइ । आ भी १०८ । तनकाज अन्वात प्रवाल । एउ अथ अतिपवनव । तप्रयनाइ प्रतिपया दुख
इउठ विरह विरहइउठन स्वयया नविवाय । अथ का १०६ । अवस्यानइअथ धी प्रवाल ठाकी ।
नया बमानाएगी दुखइलविवाय ॥ अथ वृ २१०

ब्रह्म-संगिज्जा विपलित मल मृद-दमपुतिलया ।
 विवित्रं च चत्तु भूमा पमियउ सुय देवया मुदर ॥ २ ॥
 चत्तु-ग-सुद-सवित्रो विवित्रादि विराट्वा विणिम्मगा ।
 विगता नि कुगया गादग्नेया पमीयतु ॥ ३ ॥
 पमिस्तु मद् भग्नेयो पर-वाद्-गपोद् दाप पर मीक्षो ।
 विद्वन्मिद-म-पर-सग्ग कपाय पोय-मग्गो ॥ ४ ॥

[illegible][illegible][illegible][illegible][illegible][illegible]

पणमामि पुण्यं न दुःकृतं पुण्ययधयार-सोऽयम् ।

भग्ग मित्र-भग्ग-क्वट्टयमिमि-ममिड-वड मया न्त ॥ ५ ॥

पणमह वय भूय-वलि भूयवलि केय-नाम-परिभूय वलि ।

गिणितय-वम्मह-पमर वल्लविय विमल-जाण-वम्मह पमर ॥ ६ ॥

मगट-गिमित-रुच परिमाण ण म त्त्वं वा यत्तर ।

ਬਾਗਰਿਯ ਤੁ ਨਿ ਪਾਠਾ ਬਸਨਾਗਤੁ ਸਚਮੁਖਿ ॥ ੧ ॥

अथान्, सिद्धान्तके भजगादनस जि ज्ञान विद्युत्को प्रसन्न कर जिया है यस ध्या प्राप्तन भगवान्
मुम पर प्रसन्न हो ॥ ४ ॥

जी पुण्ड्रिक मध्याह्न पापाका भजन करनया ॥ है आ पुनः पुनः भजनया ॥ भजन
 करनया ॥ जिह्वे स्थित समान है जिह्वे मध्याह्नक भजनया (मिह्वे मध्याह्नक भजन
 करनया ॥) भजन भजन नष्ट कर दिया है आ कर्पणिका नामनि ॥ भजन
 भजनिया है, भजन आ भजन नष्ट कर दिया है भजन करनया ॥ भजन पुनः पुनः ॥
 (ध्यान) भजन करनया ॥ ॥ ॥

जो भूत भयान् प्रणिमावन पूज गव है अथवा, भूत-नामक इतर ज्ञान दम म
पूज गव है जिहोन अपन कथाया अथवा समस्त-बुद्ध का न का अथवा अथवा अ
उपम दानवाली शिथिलतावा घटभूत भयान् निरवहन कर दिया है जिहोन कथमक
प्रसादको लष्ट कर दिया है, भाव जिहोन निमल ज्ञानके द्वारा प्रसादक प्रसादक, कथा अथवा
गव भूतवा निमल आध्यात्मिक प्रणाम करो ॥ ६ ॥

निर्णयार्थ—ज्ञान समय भूतकाल आचार्यन अरुन गुरु धर्मन आचार्यन । मङ्गल
प्राथम्यकाल समाप्त विद्या धा उक्त समय भूतकाल अरुन दय न उक्तर्त वृत्त वः र्थः । इत्यत्र
उक्त धर्मन अरुन विद्या गथा ई ।

मैत्रेय निमित्त हनु परिमाण नाम भूतवन इति उक्तं भूतवनम् इति उक्तं
वर्तमानं पश्चात् भूतवनं इति उक्तं ।

विष्णुपार्थ — शास्त्रिक प्रारम्भमें यहिई संगणकाल करना आदिथ । १३ त्रिस वि द्वांस
नाम्बर्की रचना हुए हो उस निमित्तकर कर्षक करना आदिथ । इसक बाद द्वांस-एकद्वन्द्व
प्रत्यय भूत परपरा-द्वन्द्व करण करना आदिथ । अनन्तर शास्त्रिक प्रमाण बन न बने ।
विद प्रत्यय नाम भूत आद्यावत्प्रत्यय उसक मूलकता उक्तकता भूत परपरा-बन्धन कर द्वांस
करना आदिथ । इसक बाद प्रत्यय व्यापकता करना आदिथ । प्रत्ययकता पर बन्धन

[illegible]

for

ଅନୁଷ୍ଠାନର ନାମ : ଶ୍ରୀ ମହାରାଜା ସତ୍ୟବାଦୀ ପ୍ରତିଷ୍ଠାନ

इदि णायमाइरिय-परपरागय मणेणानहारिय पुन्वाइगियापाराणुमण तिरयण
हेउ त्ति पुण्डताइरियो मगनादीणि छण मरुगणाण परुणट्ट मुचमाह—

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाण ।

णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व-साहूणं ॥ १ ॥

कथमिदं मुत्तं मगलं निमित्त-हेउ-परिमाण-णाम-कत्ताराण मरुगणाण परुण
ण, तालपल्ल-मुत्तं व देमामामियत्ताणे ।

परपरासे खला आ रहा ह, आर इस प्रथम भा इसी क्रमसे व्याख्यान किया गया ह ॥ १ ॥

आचार्य परपरासे आये हुए इस व्यायको मनम धारण करके, आर पूर्वार्थाँ
आचार मर्थाँ व्यवहार परपराका अनुसरण करना रखत्रयका कारण है, ऐसा समझ
पुण्डन आचार्य मगलादिक छहों अधिकारोंका सकारण व्याख्यान करनेके लिये मगल-स
कत्त ह—

अरिहंताका नमस्कार है, सिद्धाको नमस्कार है, आचार्योंका नमस्कार है, उपा
ध्यायोंका नमस्कार है, और लोकोम मर्ग साधुमाका नमस्कार है ॥ १ ॥

विशेषार्थ—यह मगलसव्व नमाका मंत्रक नामसे प्रसिद्ध है। इसके अन्तिम भागमें
आ 'लोए' मर्थाँ लोकोम अर्था 'सत्य' अर्था सत्य पद आये हैं, उनका सव्व 'णम
अरिहंताण' आदि प्रत्येक नमस्कार वाक्य के साथ कर लेना चाहिये। इसका शुभ
आचार्यने स्वयं भाग वाक्य किया है।

शुभा—यह सूत्र मगल, निमित्त हेतु, परिमाण, नाम आर कर्ताका सकारण प्रख्या
कामा है, यह कम समय है? दाकाकारका यह अभिप्राय है कि इस सूत्रमें जब कि कथन मगल
मर्थाँ इष्ट-शुभाका नमस्कार किया गया है तब उममें निमित्त आदि अथ पात्र अधिकारोंका
कर्ताकरण कम समय है।

ममाधानि—यह मगलसूत्र मात्र शब्द सबक समान दशमभाक हासन मगलादि
छहों अधिकारोंका सकारण प्रख्या करता है इसीर्थ उपयुक्त भाक दीक नहीं है।

विशेषार्थ—आ सूत्र निमित्त (यथा) कथनदाता समस्त विषयोंका
सूत्रक कर उस नामाका सूत्र कत्त है। इसीर्थ मात्र शब्दसव्व क समान दश मगलसूत्र

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

२१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

अणवगण-शाउस्म मिम्मस्म अत्थागमाणुसत्तीदो । उक्त च—

सन्दापदमिद्धि^१ पदमिद्धेयनिर्णयो भवति ।

अर्थात्तत्तज्ञान तत्त्वज्ञानात्पर श्रेय ॥ २ ॥ स्नि ।

णिष्ठये पिण्णए सिगदि नि णिकखेरो । मो नि उच्चिहो, णाम द्वुवणा-
गेत-कान-भाउ भगत्तमिदि ।

उच्चारियमथपद^२ णित्तेव ना वय न दृष्ट्वा ।

अथ णवने तत्त्वमिदि तदो ते णथा भागिणो ॥ ३ ॥

पिना विपणिन गज्जक अर्थका ज्ञान नहीं है। अतः अर्थ-बोधक लिपि पिना
ज्ञादके अर्थका ज्ञान कराना आवश्यक है। इसलिये यहाँ पर धातुका निरूपण किया गया
कहा भी है—

गज्जक पदकी मिद्धि होनी है, पदकी सिद्धिसे उसके अर्थका निर्णय होता है, म
निर्णयम नव्यज्ञान अर्थात् द्वेषोपादय विरुद्धी प्राप्ति होनी है, अतः नव्यज्ञानसे परम कल्प
होगा है ॥ २ ॥

जो किसी एक निश्चय या निर्णयमें श्रेयण कर, अर्थात् अनिर्णय धातुका उ
नम्रादिब्रह्मा निर्वच करता, उस निश्चय कहते हैं। यह नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, क
और भाषण भद्रम छद्म प्रकारका है, और उसके सबधम मयत्त भी छद्म प्रकारका हो
है, भाष्यमग्न कथापनामग्न, द्वायमग्न, क्षेत्रमग्न, कालमग्न, और भाषमग्न ।

^१ उच्चारण किया गया अर्थ पद और उसमें किये गये निक्षेपका दूल्कर, अर्थात् समस्त
पराधीन होकर निर्णयक धातुका है, इसलिये यह कथ कहते हैं ॥ ३ ॥

विशेषार्थ—भागवते किसी श्लोक, गाथा, वाक्य अथवा पदके ऊपरम अर्थ-नि

१. उक्तं च अणवगण-शाउस्म मिम्मस्म अत्थागमाणुसत्तीदो । इत्युक्तं शाउस्म मिम्मस्म अत्थागमाणुसत्तीदो ।

२. उच्चिहो, णाम द्वुवणा-गेत-कान-भाउ भगत्तमिदि । इत्युक्तं उच्चिहो, णाम द्वुवणा-गेत-कान-भाउ भगत्तमिदि ।

३. उच्चिहो, णाम द्वुवणा-गेत-कान-भाउ भगत्तमिदि । इत्युक्तं उच्चिहो, णाम द्वुवणा-गेत-कान-भाउ भगत्तमिदि ॥

४. उच्चिहो, णाम द्वुवणा-गेत-कान-भाउ भगत्तमिदि । इत्युक्तं उच्चिहो, णाम द्वुवणा-गेत-कान-भाउ भगत्तमिदि ॥

५. उच्चिहो, णाम द्वुवणा-गेत-कान-भाउ भगत्तमिदि । इत्युक्तं उच्चिहो, णाम द्वुवणा-गेत-कान-भाउ भगत्तमिदि ॥

६. उच्चिहो, णाम द्वुवणा-गेत-कान-भाउ भगत्तमिदि । इत्युक्तं उच्चिहो, णाम द्वुवणा-गेत-कान-भाउ भगत्तमिदि ॥

७. उच्चिहो, णाम द्वुवणा-गेत-कान-भाउ भगत्तमिदि । इत्युक्तं उच्चिहो, णाम द्वुवणा-गेत-कान-भाउ भगत्तमिदि ॥

८. उच्चिहो, णाम द्वुवणा-गेत-कान-भाउ भगत्तमिदि । इत्युक्तं उच्चिहो, णाम द्वुवणा-गेत-कान-भाउ भगत्तमिदि ॥

इदि वयणादो कय पिकरोवे दृष्टुण जयाणमज्जरुओ भवन्ति । सो जया णाम ?

जयदि ति जया भणिओ भन्दि गुण पज्जहि ज त्वं ।

परिणाममेत कालतोसु अविगं समाग ॥ ३ ॥

करनेक लिये पदार्थ निर्द्वय पदार्थसं द्योतादिकका उच्चारण करना चाहिये मन्त्रमन्त्र पदच्छेद करना चाहिये, उसका बाद उसका अर्थ कहना चाहिये, भक्तमन्त्र पदनिर्देश अर्थात् मामादि विधिसं मयोंका अत्यन्तन कर पदार्थका ऊहापात करना चाहिये । तभी पदार्थ व्यक्तपदार्थ निर्णय होना है । पदार्थ निर्णयक इस वचनको दृष्टिमें रखकर मन्त्रमन्त्र भय पदका उच्चारण करके, और उसमें निश्चय करके, जयाक हास्य, नय निर्णयका उपदेश दिया है । शाधामें 'अथपद' इस पदमें पद, पदच्छेद और उसका अर्थ ज्ञानित किया गया है । जितने अक्षरोंमें पदमुक्त बाध है। उनमें अक्षरोंक समूहका 'अथपद' कहन है । 'जितमर्थ' इस पदमें निर्णय विधिकी, और 'अर्थ जयानि नयने' इत्यादि पदमें पदार्थनिर्णयक ति । मन्त्रों आध्यायकता बतलाई गई ॥ ३ ॥

पूर्यात् पद्यमके अनुसार पदार्थम विज्ञे नय निश्चय इत्येव जयपद भवन्ति इत्यादि ।

पदार्थ—नय विज्ञे कहन है ।

भक्त गुण और भक्त पदार्थोंकाहित, अथवा उनकाहास्य पद परिणाममें मन्त्र परिणाममें, पद क्षत्रम मन्त्रे क्षत्रम और पद कात्तम मन्त्र कात्तम अविमानि-अविमानि-अविमानि रहनेवाले द्रव्यका जा न जाना है, अर्थात् उसका ज्ञान कर देता है उस नय कहन है ॥ ४ ॥

निशेपार्थ—आगममें द्रव्यका लक्षण दो प्रकारमें बतलाया है एक गुणपरिणाम पद द्रव्यम अर्थात् जिसमें गुण और पदार्थ बाध जाय उस द्रव्य कहन है । और दूसरा पदार्थ-द्रव्यम अर्थात् 'यत् तद् द्रव्यलक्षणम्' जो उत्पत्ति, विमान और स्थिति-वचनका होता है वह मन्त्र है, और मन्त्र ही द्रव्यका लक्षण है । यही पद जयकी निर्गति करन समस्त द्रव्यक इस

१ अनन्यवशादसकस्य बाहुन अथनय पदा पदमय कात्तम मन्त्र ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

१ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

अजगमय-भाउस्म मिम्मम्स अत्थाजगमाणुअभीदो । उक्त च—

श-दाप्यदप्रसिद्धिं पदसिद्धेरयनिर्णयो भवति ।

अथावत्तज्ज्ञानं तत्त्वज्ञानायैव ॥ २ ॥ इति ।

णिच्छये णिण्णए सिमदि चि णिम्मेरो । मो वि छव्विहो, णाम हुण्णा-
मेत्त-ज्ज्ञान-माअ भगलमिदि ।

उच्चारियमत्यपदं णित्तेअ वा कय तु दृष्टण ।

अय णयति ताअमिदि तदो ते णया भाणियो ॥ ३ ॥

यिना यिरभिन्न शब्दक अर्थका ज्ञान नहीं है। और अर्थ-बोधके लिये यिना शब्दक अर्थका ज्ञान करना आवश्यक है। इसलिये यहा पर धातुका निरूपण किया गया है।

शब्दों परकी सिद्धि दानी है, परकी सिद्धिसे उसके अर्थका निर्णय होता है, सिद्धि-मत्तपञ्चान अर्थान् हयोपादय विवक्की प्राप्ति होती है, और तथ्यज्ञानसे परम कर्म होता है ॥ २ ॥

आ किमी एव निभय वा निर्णयम क्षेपण कर, अर्थान् अनिर्णीत वस्तुका उच्चारण-विज्ञान निर्णय कराव, उक्त निक्षेप कहत है। यह नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, अर्थ, अथवा भूत एव प्रकाशका है, और उसके संबंधसे भगल भी छद्म प्रकारका हो जाता है। ज्ञानमत्तपञ्चानामागम, द्रव्यमगम, क्षेत्रमगम, कायमगम, और भावमगम।

'उच्चारण किय ग। अर्थ पर और उसमें विवेक गये निक्षेपको देनकर, अर्थान् समस्त पराजित होके निर्णयक पहुँचा दित है, इसलिये ये मय कहलान है' ॥ ३ ॥

विशेषार्थ—भागवत किमी दृष्टेक, शाखा, याकय अथवा परके ऊपरसे अर्थ नि-

१. १. १. १. अजगमाणुअभिदि । अजगमाणुअभिदि । अजगमाणुअभिदि । अजगमाणुअभिदि ।

२. १. १. १. अजगमाणुअभिदि । अजगमाणुअभिदि । अजगमाणुअभिदि । अजगमाणुअभिदि ।

३. १. १. १. अजगमाणुअभिदि । अजगमाणुअभिदि । अजगमाणुअभिदि । अजगमाणुअभिदि ।

४. १. १. १. अजगमाणुअभिदि । अजगमाणुअभिदि । अजगमाणुअभिदि । अजगमाणुअभिदि ।

५. १. १. १. अजगमाणुअभिदि । अजगमाणुअभिदि । अजगमाणुअभिदि । अजगमाणुअभिदि ।

६. १. १. १. अजगमाणुअभिदि । अजगमाणुअभिदि । अजगमाणुअभिदि । अजगमाणुअभिदि ।

अजगमाणुअभिदि । अजगमाणुअभिदि । अजगमाणुअभिदि । अजगमाणुअभिदि ।

७. १. १. १. अजगमाणुअभिदि । अजगमाणुअभिदि । अजगमाणुअभिदि । अजगमाणुअभिदि ।

इति वयणादो कय णिकसेवे ऽनूय वयणमन्तरा भवति । सो णयो णाम ?

णयदि चि णयो णणिआ बह्नि गुण णनह्नि न दत्त ।

परिणाम-मेत कालतेसु अणिम ममा ॥ ४ ॥

करनेके लिये पहले निर्दाय पदानिस्त द्वाकादिकका उच्चारण करना चाहिये नदनन्तर पदच्छेद करना चाहिये, उसके बाद उसका अर्थ कहना चाहिये, अनन्तर पद-निर्णय अर्थात् नामादि विधित्त मयाका अर्थलक्ष्य लेकर पदार्थका उच्चारण करना चाहिये । तभी पदार्थका व्यवस्था निर्णय होता है । पदार्थ निर्णयक इस क्रमकी दृष्टिमें स्वरूप गणनाकरन भय पदका उच्चारण करके, और उसमें नि रण करके, मयोंक द्वारा मन्त्र निर्णयका उपदान दत्त है । गायामें 'अथपद' इस पदस पद, पदच्छेद और उसका अर्थ ज्ञानित किया गया है । जिसमें अक्षरोंस पस्तुका बोध हुआ उनमें अक्षरोंक समूहका 'अथपद' बनता है । 'णिकसेवे' इस पदसे निम्नेप-विधिकी, और 'अथे णयानि मघने' इत्यादि पदस पदार्थ-निर्णयक । मयोंकी आयव्यवस्था बनलाई गई है ॥ ३ ॥

पूर्वनि वचनके अनुसार पदार्थमें किसे मय नि रणक द्वाका मयाका भवना हुआ है ।

गुहा—मय किम् कहता है ?

अनक गुण और अनक पदार्थोन्माहित अथवा उनकाद्वारा, मय परिणामस द्वारा परिणाममें, एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें और एक कारणस दूसरे कारणमें अविनाश स्वभावधनस रहनेवाला द्रव्यका जा जाना है, अथवा उसका ज्ञान करा दत्ता है उस मय बनता है ॥ ४ ॥

निम्नेपार्थ—आगमस द्रव्यका लक्षण दो प्रकारस बनलाया है एक 'गुणपर्याय द्वाका' अर्थात् जिसमें गुण और पदार्थ पाये जाय उस द्रव्य कहता है । और दूसरा 'अपद-व्यवस्थाप्ययुक्त सन्' य 'सद् द्रव्यलक्षणम्' जा उपनि विनाश और स्थिति-रक्षण हुआ है वह सन् है, और सन् ही द्रव्यका लक्षण है । यहा पर मयकी निरति बनत समय द्रव्यक इस

१ अन पदार्थसमस्या का न अर्थस पदार्थ ॥ ५ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

अणमगय-ग्राउम्म मिम्मस्स अत्थाणममाणुपपत्तीदो । उक्त च—

श-दात्पदप्रसिद्धिं पदसिद्धेरथनिर्णयो भवति ।

अथात्तरज्ञान तत्तज्ज्ञानात्पर श्रेय ॥ २ ॥ इति ।

णिच्छये णिण्णए सिमिटि ति णिम्मेसो । सो वि छत्थिहो, णाम दृग्णा म्म
सेत्त-काल-भाय मगलमिदि ।

उच्चारणमत्यपदं णिम्मेसो वा कय तु दृग्ण ।

अथ णयति तच्चनमिदि तदो ते णया णणियां ॥ ३ ॥

यिना विवक्षित शब्दक अर्थका ज्ञान नहीं हो सकता है। और अर्थ-बोधक लिखे विवक्षित शब्दके अर्थका ज्ञान करना आवश्यक है। इसलिये यहाँ पर धातुका निरूपण किया गया है। कहा भी है—

शब्दसे पदकी सिद्धि होती है, पदकी सिद्धिसे उसके अर्थका निर्णय होता है, अर्थ-निर्णयसे तत्त्वज्ञान अर्थात् हेयोपादेय विवेककी प्राप्ति होती है, और तत्त्वज्ञानसे परम कल्याण होता है ॥ २ ॥

जो किसी एक निश्चय या निर्णयम क्षेत्रण कर, अर्थात् अनिर्णय वस्तुका उसके नामादिकद्वारा निर्णय करावे, उसे निक्षेप कहते हैं। यह नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके भेदसे छह प्रकारका है, और उसके सब-घसे मगल भी छह प्रकारका हो जाता है, नाममगल, स्थापनामगल, द्रव्यमगल, क्षेत्रमगल, कालमगल, और भावमगल।

‘उच्चारण किये गये अर्थ पद और उसमें किये गये निक्षेपको देखकर, अर्थात् समग्रक, पदार्थको ठीक निर्णयनक पहुँचा देते हैं, इसलिये ये नय कहलाने हैं’ ॥ ३ ॥

निक्षेपार्थ—आगमके किसी श्लोक, गाथा, वाक्य अथवा पदके ऊपरसे अर्थ-निर्णय

१ शक्राचार्य ‘व्याकरणापदमिदि’ इत्यादिभाष्यपाठमदन सह प्रभाषाब्रह्म शास्त्रद्वयनयनमिदि
विमोदिव्याकरणप्रधूपलम्बत ।

२ तत्तापु लुप्तमगा ज चम्भण हाइ खटु दृक्क । चत्त सदि णामादित्त त निक्खव हवे सत्त ॥
नयव २६९ निक्खिअह तण तत्ति तआ व निक्कवण व निक्खवा । निपआ व निक्कआ वा खेवो नामा तिअ
मत्थिय ॥ वि मा ० १२ निपपण चास्मात्तामस्थापनादिभेदेयमन चवत्थापन निषेप । निषिन्धन नामाणि
मत्थियव्याप्यतज्जनानामाणि वा निषय । वि मा १२ व टी

३ णामणि-तज्ज्ञानाद दचक्खेवाणि कालमावा य । इय छम्भय मणिय मगलमाणदमजणण ॥

ति प २, १८

४ जणिग्गि अस्सहि अचावत्ता इमाद तमिमक्खण कलावा अचपद नाम । जयव ज पृ १२

५ भाष्य पाठमदन जयवत्तापाठमुपलम्बत । तण्णा, उच्चारणमिदि पद निक्खव आ वयं तु दृग्ण ।
अथ णयति न नञ्चा वि नञ्हा नवा मविवा । जयव ज पृ ३० गुप्त परं पयथा पय निक्खेवो य निषयमिदि ।

ह क पृ १०९

इति वयमाने वयन्निर्गमेरे दृष्ट्वा पञ्चामशसो मरदि । को वयो वाम ?

मरदि ति त्वे मन्त्रो बहि गुणमरदि न दत्तः ।

परिमर्मेन कात्तरेणु १ विन्दु समार ॥ ४ ॥

करनेज निय पदार्थ निरूप्य पञ्चानिम रत्नादिषुका उच्चारण करना चाहिये, मन्त्रान्तर पदार्थ करमा चाहिये उमक बाद उमका अर्थ कहना चाहिये अनन्तर पद-निधेय अर्थात् मन्त्रादि विधिम नयोंका अयनवन लेकर पदार्थका उच्चारण करना चाहिये । मन्त्री पदार्थके व्यवहारक निर्णय होता है । पदार्थ-निर्णयके इस क्रमका दृष्टिमें रखकर मन्त्राकारने अर्थ-पदकी उच्चारण करके, और उसमें निहित करके, नयोंक द्वारा मन्त्र-निर्णयका उपदेश दिया है । गाथामें 'अथान्' इस पदसे पद पदार्थ और उसका अर्थ ध्यानि किया गया है । अर्थात् आसतोसे वस्तुका बोध हो उमके अर्थोंके समूहके, 'अथ-पद' कहते हैं । 'निरूप्ये' इस पदसे निधेय-विधि और अर्थ ध्यानि मन्त्र 'इत्यादि पदसे पदार्थ-निर्णयक लिये नयोंकी अर्थ-व्यवस्था बतलाई गई है ॥ ३ ॥

पूर्वोक्त वचनके अनुसार पदार्थमें किये गये निरूपक इतरकर नयोंका अवतार होता है ।

मन्त्रा—नय किसे कहते हैं ?

अनक गुण और अनक पर्यायोंसाहित अथवा उनकेद्वारा एक परिणामसे दूसरे परिणाममें एक शब्दसे दूसरे शब्द और एक शब्दसे दूसरे कालमें अविनाश-स्वभावस्वरूपसे रहनेवाला द्रव्यको आ ले जाता है अर्थात् उसका ज्ञान करा दता है, उसे नय कहते हैं ॥ ४ ॥

विशेषार्थ—आगममें द्रव्यका लक्षण दो प्रकारसे बतलाया है, एक गुणपर्यवषद् द्रव्यम् अर्थात् जिसमें गुण और पर्याय पाये जाय उसे द्रव्य कहते हैं । और दूसरा 'उत्पत्त्यस्य भाव्यपुनर्लभम्' य सद् द्रव्यलभ्यम् अ, उत्पत्ति, विनाश और स्थिति-स्वभाव होता है यह सद् है । और सद् ही द्रव्यका लक्षण है । यहा पर मन्त्री निर्गति करने समय द्रव्यके इन

१ अथान् पदार्थ निरूप्य पञ्चानिम रत्नादिषुका उच्चारण करना चाहिये, मन्त्रान्तर पदार्थ करमा चाहिये उमक बाद उमका अर्थ कहना चाहिये अनन्तर पद-निधेय अर्थात् मन्त्रादि विधिम नयोंका अयनवन लेकर पदार्थका उच्चारण करना चाहिये । मन्त्री पदार्थके व्यवहारक निर्णय होता है । पदार्थ-निर्णयके इस क्रमका दृष्टिमें रखकर मन्त्राकारने अर्थ-पदकी उच्चारण करके, और उसमें निहित करके, नयोंक द्वारा मन्त्र-निर्णयका उपदेश दिया है । गाथामें 'अथान्' इस पदसे पद पदार्थ और उसका अर्थ ध्यानि किया गया है । अर्थात् आसतोसे वस्तुका बोध हो उमके अर्थोंके समूहके, 'अथ-पद' कहते हैं । 'निरूप्ये' इस पदसे निधेय-विधि और अर्थ ध्यानि मन्त्र 'इत्यादि पदसे पदार्थ-निर्णयक लिये नयोंकी अर्थ-व्यवस्था बतलाई गई है ॥ ३ ॥

२ इति वयमाने वयन्निर्गमेरे दृष्ट्वा पञ्चामशसो मरदि । को वयो वाम ? मरदि ति त्वे मन्त्रो बहि गुणमरदि न दत्तः । परिमर्मेन कात्तरेणु १ विन्दु समार ॥ ४ ॥

नित्ययः त्रयणं मगहं त्रिसं पत्वार-मूत्र-वायवर्णी ।

त्रिद्विओ यः पत्रयः त्रया यः मेमा त्रिपत्ता मि ॥ ५ ॥

त्रिद्वि त्रय-मयर्दं सुद्धां समहं पत्रयणा त्रिसंयो ।

पत्रिन्ना पुण त्रयणय त्रिच्यो तस्म त्रिहो ॥ ६ ॥

द्वेना लक्षणपर दृष्टि रक्खी गई प्रगत होती है। नय किसी त्रिभिन्न धर्मद्वारा ही द्रव्यको बोध कराता है। नयके इस लक्षणका सकेत भी 'गुणपञ्चणदि' पदद्वारा ही जाना है। यह पद तृतीया विभक्ति सहित होनेसे उसे द्रव्यके लक्षणम तथा निरुक्तिके साथ नयके लक्षणम भी ले सकते हैं ॥ ४ ॥

तीन प्रकारके वचनोंके सामान्य प्रस्तारका मूल व्याख्यान करनेवाला द्रव्याधिक नय है और उन्हा वचनोंके विशेष प्रस्तारका मूल व्याख्याना पर्यायाधिक नय है। शेष सभी नय इन दोनों नयोंके निकल अर्थात् भेद है ॥ ॥

विशेषार्थ—जिने द्वेद्वेचने दिव्यध्वनिक द्वारा जिनना भी उपदेश दिया है, उसका, अभेद अर्थात् सामान्य ही मुख्यतासे प्रतिपादन करनेवाला द्रव्याधिक नय है, और भेद अर्थात् पर्यायकी मुख्यतासे प्रतिपादन करनेवाला पर्यायाधिक नय है। ये दोनों ही नय समस्त विचारों अथवा शास्त्रोंके आधारभूत हैं, इसलिये उन्हें यहा मूल व्याख्याना कहा है। शेष समग्र द्रव्यद्वारा, क्रानुमूत्र, शब्द आदि इन दोनों नयोंके अन्तर भेद है ॥ ॥

समग्र नयकी प्ररूपणाको विषय करना द्रव्याधिक नयकी शुद्ध प्रवृत्ति है, और वस्तुके प्रत्येक भेदके प्रति शब्दार्थका निश्चय करना उसका व्यवहार है। अर्थात् व्यवहार नयकी प्ररूपणाको विषय करना द्रव्याधिक नयकी अशुद्ध प्रवृत्ति है ॥ ६ ॥

विशेषार्थ—यन्तु सामान्य विशेष धर्मात्मक है। उनमेंसे सामान्य धर्मको विषय करना द्रव्याधिक और विशेष धर्मको (पर्यायको) विषय करना पर्यायाधिक नय है। उनमेंसे समग्र और व्यवहारके भेदसे द्रव्याधिक नय दो प्रकारका है। जो अभेदको विषय करता है उसे समग्र नय कहते हैं, और जो भेदको विषय करता है उसे व्यवहार नय कहते हैं। ये दोनों ही द्रव्याधिक नयकी क्रमशः शुद्ध और अशुद्ध प्रवृत्ति हैं। जब तक द्रव्याधिक नय घट, पट आदि विशेष भेद न करके द्रव्य सत्स्वरूप है इसप्रकार द्रव्यको अभेदरूपसे ग्रहण करता है तब तक यह उसकी शुद्ध प्रवृत्ति समझनी चाहिये। ऐसे ही समग्र नय कहते हैं। तथा सत्स्वरूप आ द्रव्य है, उसके जीव और अजीव ये दो भेद हैं। जीवके सत्सारी और मृत इस तरह दो भेद हैं। अजीव भी पुत्रल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इस तरह पांच भेदरूप हैं। इस प्रकार उत्तरोत्तर अभेदकी अथवा अभेदकी स्पर्श करता हुआ भी जब यह भेदरूपसे वस्तुको ग्रहण करता है, तब यह उसकी अशुद्ध प्रवृत्ति समझनी चाहिये। इसीको व्यवहार नय कहते हैं।

१ व्याख्यान्य वचना भाषा निदयन त्रिद्वि त्रयणं मन्वितिक प्रथम काण्ड भाषा १, ४, १, ११
इति अथपञ्चमः ।

तत्त्व णेगम-मगह पट्टहार-णाम्मु मन्त्रे गदे णिस्मया इति तन्त्रिमयम्
तन्त्रमन्त्र-मारिच्छ-सामण्यम्हि मन्त्र णिस्मये-ममराने। कय दृव्यद्विय-णय भाग णिस्मये-म
समगो ? ण, उट्टमाण-पञ्चापोरलमिय दव्य भागो इति दव्यद्विय-णयम् उट्टमाण

और व्यय हुआ करता है। इसीका स्यनिमित्तात्पाद-व्यय कहते हैं। उसीप्रकार पर-निमित्तम भी द्रव्यमें उत्पाद और व्ययका व्यवहार किया जाता है। जैसे, स्वर्णकारने कच्चे कुन्ड बनाया। यहाँ पर स्वर्णकारके निमित्तसे कडरूप सानकी पर्याय तट्ट होकर कुण्डलरूप पयायका उत्पाद हुआ है और इसमें स्वर्णकार निमित्त है, इसलिये इसे पर-निमित्त उत्पाद-व्यय समझ लेना चाहिये। इसीप्रकार आकाशादि निष्क्रिय द्रव्योंमें भी पर-निमित्त उत्पाद और व्यय समझ लेना चाहिये, क्योंकि आकाशादि निष्क्रिय द्रव्य दूसरे पदार्थोंक अग्राहण, गति आदिमें कारण पड़ते हैं, और अग्राहण, गति आदिमें निरन्तर भेद दिनाई देता है, इसलिये अग्राहण, गति आदिके कारण भी भिन्न होना चाहिये। स्थित वस्तुके अग्राहणमें जो आकाश कारण है उसमें भिन्न दूसरा ही आकाश मिया परिणत वस्तुके अग्राहणमें कारण है। इसतरह अग्राहणमें वस्तुके भेदमें आकाशमें भेद सिद्ध हो जाता है, और इसलिये आकाशमें पर-निमित्तसे भी उत्पाद-व्ययका व्यवहार किया जाता है। इसीप्रकार धर्मादिक द्रव्योंमें भी पर-निमित्तसे उत्पाद और व्यय समझ लेना चाहिये। इसप्रकार यह सिद्ध हो गया कि पर्यायार्थिक नयका अपना पदार्थ उत्पन्न भी होते हैं और नाशको भी प्राप्त होते हैं। इसप्रकार अनन्त-कालसे अनन्त पर्याय परिणत होते रहने पर भी द्रव्यका कभी भी नाश नहीं होता है, और न एक द्रव्यके गुण धर्म बदलकर कभी दूसरे द्रव्य रूपही हो जाते हैं। अनन्तर द्रव्याधिक नयकी अपना पदार्थ सर्वदा स्थिति-रहमान है ॥ १ ॥

उन सान नयोंमें स नगम, सग्रह और व्ययहार, इन तीन नयोंमें नाम, स्थापना और सभी निशेष होते हैं, क्योंकि, इन नयक विषयभूत तद्रूप सामान्य और सादृश्य-सामान्यमें सभी निशेष समझ है।

प्रश्न—द्रव्याधिक नयमें भावनिशेष कसे समझ है ? अर्थात् जिस पदार्थमें भावनिशेष होता है वह तो उस पदार्थकी वर्तमान पर्याय है। परन्तु द्रव्याधिक नय सामान्यका विषय करता है, पर्यायका नहीं। इसलिये द्रव्याधिक नयमें, अर्थात् द्रव्याधिक नयके विषयभूत पदार्थमें, जिसप्रकार दूसरे निशेष घटित हो जाते हैं उसप्रकार भावनिशेष घटित नहीं हो सकता है। भावनिशेषका अन्तर्भाव तो पर्यायार्थिक नयमें समझ है ?

समाधान—एसा गटा है, क्योंकि, वर्तमान पर्यायमें युक्त द्रव्यको ही भाव कहते हैं और यह वर्तमान पर्याय भी द्रव्यकी आरम्भसे लेकर अनन्तकालकी पर्यायोंमें आती है। तथा द्रव्य नर्णत सामान्य द्रव्याधिक नयका विषय है जिसमें द्रव्यकी त्रिकाण्णती पर्याय अनन्त

१. कर्म मन्त्र नीरगण मन्त्र इति । कर्माव-पाठं पुण्डि (अथवा १) पृ ३०

मन्त्र इति । मन्त्र-वचना मन्त्र । मन्त्र-वचनानि मन्त्र मन्त्रानि । मन्त्र-वचनानि । पृ ३०

त्रे आरभ्यपुष्टि आ उवरमाणे । मग्गे मुद्ध-द्वन्द्विणि वि भावणिकसेवस्म अतिथत्त
विरुज्झदे मुद्धकिं विविगत्तामेत्त निमेम-मत्ताण सच्च कालमरुद्धिण भावन्मु
माणे ति ।

णाम ठवणा दविए वि एम द वियिस्स निशत्तमे ।

भावो दु पज्जवियि पवणा एस परमणे ॥ ९ ॥

अगेम मम्मइ-मुत्तेम मह कथमिद् वक्खण ण विरुज्झे ? इति ण, तत्थ
आपस्सलकण-कवणो भावन्मुवगमादे ।

त ई अतएव द्रव्याधिक नयमें आयनिक्षेप आ बन जाता ह । यहा पर पर्यायका गणना
र द्रव्यकी मुख्यतास आयनिक्षेपका द्रव्याधिक नयमें अन्तर्भाव समझना चाहिये ।

इतिप्रकार 'गुद्ध द्रव्याधिकरूप समग्र नयमें भी आयनिक्षेपका सङ्गाय विरोधका प्राप्त
ही जाता है क्योंकि अर्थात् बुद्धिमें समस्त विशेष सत्तामें को समाविष्ट करनेवाली अर्थात्
काल परकूपसे अवस्थित रहनेवाली महात्मनामें ही 'भाव अर्थात् पर्यायका सङ्गाय माना
ता है ।

अन्यरूपसे वस्तुको जब भी ग्रहण किया जायगा, तब ही यह वर्तमान पर्यायसे युक्त
ही हो इसलिये वर्तमान पर्यायका अनर्भाव महात्मनामें हो जाता ह । अर्थात् समग्र
का महात्मना विषय है, अतएव समग्र नयमें भी आयनिक्षेपका अन्तर्भाव ही जाता
। यहा पर भी पर्यायकी गणना और द्रव्यकी मुख्यता समझना चाहिये ।

शुद्धा—'नाम, स्थापना और द्रव्य के तत्वों द्रव्याधिक नयके निष्पन्न है, और भाव
गौरवार्थक नयका निक्षेप है । यह परमार्थ सत्य ह ॥ ९ ॥

सम्प्रतिपक्ष इस कथनसे 'आयनिक्षेपका द्रव्याधिक नयमें अथवा समग्र नयमें भी
नर्भाव होता है यह व्याख्यान क्यों नहीं विरोधको प्राप्त होगा ?

निर्णयार्थ—शकाकारका यह अभिप्राय है कि सम्प्रतिपक्ष आयनिक्षेपका कल्प
गौरवार्थक नयमें ही अन्तर्भाव किया ह । परंतु यहापर उसका द्रव्याधिक नयमें भी अन्तर्भाव
या गया ह । इसलिये यह कथन तो सम्प्रतिपक्षके कथनसे विरुद्ध प्रतीत होता ह ।

समाधान—एसी शका ठीक नहीं है क्योंकि, सम्प्रतिपक्षमें पर्यायका लक्षण शक्ति
है अथवा रूपसे स्वीकार किया गया है । अर्थात् सम्प्रतिपक्षमें पर्यायकी विषयतासे कथन किया
और यहा पर वर्तमान पर्यायका द्रव्यसे अभिन्न मानकर कथन किया है । इसलिये कोई
रोध नहीं आता है ।

१ त त १ ५ नाभाक स्थापनाद्वय द्रव्याधिकनयपणा । पवादावपणा मावर्तवय सव
रित ॥ त आ वा १ ५ १५ नाभाकित्व द्रव्यविस्म अथा व पञ्चवयसस । संह-वयसा पदमस्त सवा
वयस ॥ वि मा ७५ पर्यायविस्मयेन पवादावपणविस्मयेन इत्येतां नामस्वपनाद्वयत्वां द्रव्याधिकनयेन
मावामपणा । त मि १ ६ बुद्धि

न न प्रमाणमेव दृष्टव्यम् ॥ ३५१ ॥

नये प्रमाणानि प्रकृतोक्तिरिति ॥ ११ ॥ इति ।

तत्र कनेष्य नयनिरूपणम् ।

इदानीं निरुद्धवत्तु भविष्यामा । तत्तु पाम-भगत पाम निमित्ततर निरुद्धता
मगत-मगा । तत्तु निमित्त वउत्तिह, जाइ-द्वय-गुण-विशेषा चेदि । तत्तु जाइ तन्मव-
मागिष्ठ-नकरण-मामणा । दृष्ट दृष्टिह, मज्जय-दृष्ट मज्जय-दृष्ट चेदि । तत्तु

मामादि निमित्तके द्वारा मज्जय-दृष्टिमे विचार नही किं जाइ ॥ यह पदार्थ कभी युक्त
(सगत) होत हुए भी भयुक्त (भगवत्) स प्रमाण होना ह और कभी भयुक्त होते हुए भी
युक्त की तरह प्रमाण होना ह ॥ १० ॥

पिछान् लोग सम्प्रमाणको प्रमाण कहते ह सामादिकके द्वाप पदार्थमें
भेद करनेके उपायको म्यास या निक्षेप कहते ह, भार जातके अभिप्रायकी नय कहते ह ।
इसप्रकार युक्तिते अर्थात् प्रमाण नय भार निक्षेपके द्वाप पदार्थका ग्रहण भयान निर्णय
करना चाहिये ॥ ११ ॥

अन्यथा नयका निरूपण करना आवश्यक ह ।

अब भाग सामादि निक्षेपका कथन करते ह । उनमेंसे अन्य निमित्तकी मपेभा रहित
विशेषी 'मेल' ऐसा संबन्ध करनेका नाममगत कहते ह । नाम निक्षेपमें सबके धार
निमित्त होत ह आनि द्रव्य, गुण भार विद्या । उन धार निमित्तोंमें स मज्जय और मादरय
सम्प्रमाण सामान्यको आनि कहते ह ।

विशेषार्थ—जिसमें विचक्षण-द्रव्यगत भूत वर्तमान भार भाविष्यकाल संबंधी पर्याप
अव्ययवृत्तसे होनी ह उस सामान्यका अथवा चिन्ता एक द्रव्यकी विचक्षणोत्तर अनेक पर्यापोंमें
रहनेवाले अव्ययको मज्जयसामान्य या ऊर्ध्वतासामान्य कहते ह । अने मनुष्यकी बालक, युवा
आर वृद्ध अवस्थामें अनुपपन्न-सामान्यका अव्यय धार्य जाता ह । तथा एक ही समयमें जाना
व्यभिक्त सदा परिणामको मादरयसामान्य या निर्णयसामान्य कहते ह । जैसे रंग आकार
आदिमें भिन्न भिन्न प्रकारकी गाँवोंमें मान्य-सामान्यका अव्यय धार्य जाता ह ।

द्रव्य-निमित्तके ह भेद ह सदाग-द्रव्य भार समधाय-द्रव्य । उनमें अन्तर अन्तर मन्त्र

१ ५३१ मन्त्र-प्रमाण-संग्रह ॥ ३५१ ॥ मन्त्र-प्रमाण-संग्रह ॥ ३५१ ॥

मन्त्र-प्रमाण-संग्रह ॥ ३५१ ॥ मन्त्र-प्रमाण-संग्रह ॥ ३५१ ॥

मन्त्र-प्रमाण-संग्रह ॥ ३५१ ॥ मन्त्र-प्रमाण-संग्रह ॥ ३५१ ॥

मन्त्र-प्रमाण-संग्रह ॥ ३५१ ॥ मन्त्र-प्रमाण-संग्रह ॥ ३५१ ॥

मन्त्र-प्रमाण-संग्रह ॥ ३५१ ॥ मन्त्र-प्रमाण-संग्रह ॥ ३५१ ॥

मन्त्र-प्रमाण-संग्रह ॥ ३५१ ॥ मन्त्र-प्रमाण-संग्रह ॥ ३५१ ॥

मन्त्र-प्रमाण-संग्रह ॥ ३५१ ॥ मन्त्र-प्रमाण-संग्रह ॥ ३५१ ॥

मज्जोय-द्वय नाम पुष्य पुष्य पमिद्धाण दव्याण मज्जोमेण निष्पन्नम् । ममयाय-
 नाम ज दव्यामि समवेद । गुणो नाम पञ्चायादि-परोप्पर निरुद्धो अपिरुद्धो वा ।
 किरिया नाम परिष्कृष्टरूपा । तत्थ जाड-निमित्त नाम गो-मणुम्म-पड-पड-यम
 वेत्तादि । सज्जोय-द्वय निमित्त नाम ठडी उती मोली इच्चमादि । ममयाय निमित्त
 नाम गल-गडो काणो कुडो इच्चमादि । गुण-निमित्त नाम किण्हो रहिरो इच्चमादि ।
 किरिया निमित्त नाम गायणो णच्चणो इच्चमादि । ण च गदे चनाणि निमित्ते
 मोत्तुण नाम-पउत्तीए अण्ण निमित्ततरमात्थि ।

रक्षनेवाले द्रव्योंके मेलसे जो पद्म हो उसे सयोग-द्रव्य कहते हैं । जो द्रव्योंमें समवेत हो
 अर्थात् कथञ्चित् तादात्म्य रक्ता हो उसे समयाय-द्रव्य कहते हैं । जो पर्याय आदिकमें परस्पर
 विरुद्ध हो अथवा अविरुद्ध हो उसे गुण कहते हैं ।

विशेषार्थ—इसका अर्थ इसप्रकार प्रतीत होता है कि उत्पाद आर ध्ययकी विरक्षाने
 गुण, पर्यायोंसे कथञ्चित् विरुद्ध अर्थात् भिन्न हैं, और ध्येय विरक्षाने द्रव्योत्कीर्ण व्याप
 नुसार अभिन्न अर्थात् अविरुद्ध भी है ।

परिष्कृष्ट अर्थात् हलन चलनरूप अस्तित्वको निया कहते हैं ।

उन चार प्रकारके निमित्तोंमेंसे, गा, मनुष्य, घट, पट, स्तम्भ और घेत इत्यादि जाति-
 निमित्तक नाम हैं, क्योंकि, गो, मनुष्यादि सत्त्वार्थ गो, मनुष्यादि जानिमें उत्पन्न होनेसे प्रकृत
 हैं । दण्डी, छत्री, मोली इत्यादि स्वयं-द्रव्य निमित्तक नाम हैं, क्योंकि, दण्ड, छत्री, मुकुट
 इत्यादि स्वयं-सत्त्वावाले पदार्थ हैं, और उनके सयोगसे दण्डी, छत्री, मोली इत्यादि नाम
 ध्ययद्वारमें आते हैं । गलगण्ड, काना, कुबडा इत्यादि समयाय द्रव्यनिमित्तक नाम हैं, क्योंकि
 जिसके लिये 'गलगण्ड' इस नामका उपयोग किया गया है उससे गलेका गण्ड भिन्न-सत्त्वावाला
 नहीं है । इसीप्रकार काना, कुबडा आदि नाम समझ लेना चाहिये । दण्ड, दधिर इत्यादि गुण
 निमित्तक नाम हैं, क्योंकि, दण्ड आदि गुणोंके निमित्तसे उन गुणवाले द्रव्योंमें ये नाम ध्यय
 द्वारमें आते हैं । गायक, नर्तक इत्यादि क्रिया-निमित्तक नाम हैं, क्योंकि, गाना, नाचना आदि
 क्रियाओंके निमित्तसे गायक नर्तक आदि नाम ध्ययद्वारमें आते हैं । इसतरह जानि आदि
 उन चार निमित्तोंका छोड़कर सत्त्वाकी प्रवृत्तिमें अन्य कोई निमित्त नहीं है ।

१ जानागम्य शब्द । २ या न्याय्य वन । जानि, न विवका गायक हाड शब्द ।

त भा वा १, ५ १

२ मनुष्य शब्द दण्ड-पट-वादिशब्द । समवाय-शब्द विषयान्यादिरिषय ।

त भा वा १, ५ १

३ गुणवाचकता वन शब्द गुणनिमित्तक । गुण वाक्य इत्यादि शब्दवचनवाचक । त भा वा १, ५ १

४ कम शब्दवचनवाचक शब्दगुणनिमित्तक । वनि दण्ड वदकदिननिमित्तक । त भा वा १, ५, १

येचत्थ निरवश्यो मंगल सद्दो णाम-मंगल । तस्म मंगलस्म आधारो अट्टविहो । त जहा, जीवो वा, जीरा वा, अजीवो वा, अजीरा वा, जीरो य अजीवो य, जीवा य अजीवो य, जीरो य अजीरा य, जीरा य अजीवा य ।

तत्थ दृवण मंगल णाम आहिद णामस्म अण्णस्म मोयमिदि दृवण दृवणा णाम ।

वात्पाय अर्थान् द्वाप्यार्थकी अपेक्षा रहित 'मंगल' यह शब्द नाममंगल है। उस नाममंगलका आधार आठ प्रकारका है। जैसे, १ एक जीव, २ अनेक जीव, ३ एक अजीव, ४ अनेक अजीव, एक जीव और एक अजीव, अनेक जीव और एक अजीव, ७ एक जीव और अनेक अजीव, ८ अनेक जीव और अनेक अजीव ।

विशेषार्थ—मंगलक लिये आधार वा आधय आठ प्रकारका होता है, जिसका गुलाभा इसप्रकार समझना चाहिये—^१ साभात् एक जिनेन्द्रियके आधयसे जो मंगल किया जाता है उसे एकजीवाधित मंगल कहते हैं। यहा जिनेन्द्रियक स्थानपर एक जिन यानि भी लिया जा सकता है। २ अनेक यनियोंके आधयसे जो मंगल किया जाता है उसे अनेक जीवाधित मंगल कहते हैं। ३ एक जिनेन्द्रियकी प्रतिमाके आधयसे जो मंगल किया जाता है उसे एक अजीवाधित मंगल कहते हैं। ४ अनेक जिन प्रतिमाओंके आधयसे जो मंगल किया जाता है उसे अनेक अजायाधित मंगल कहते हैं। एक जिनेन्द्रिय और एक ही उनकी प्रतिमाके आधयसे एक ही समय जो मंगल किया जाता है उसे एक जीव और एक अजीवाधित मंगल कहते हैं। ५ अनेक यानि और एक जिनेन्द्रियकी प्रतिमाके आधयसे एक ही समय जो मंगल किया जाता है उसे अनेक जीव और एक अजायाधित मंगल कहते हैं। ६ एक जिनेन्द्रिय और अनेक जिन प्रतिमाओंके आधयसे एक ही समय जो मंगल किया जाता है उसे एक जीव और अनेक अजीवाधित मंगल कहते हैं। ७ अनेक यानि और अनेक जिन प्रतिमाओंके आधयसे एक ही समय जो मंगल किया जाता है उसे अनेक जीव और अनेक अजीवाधित मंगल कहते हैं।

उन नामादि विशेषोंमेंसे अब स्थापनामंगलको बतलाने हैं। किसी नामको धारण करने-वाला हमरे पदार्थकी 'यह यह है' इसप्रकार स्थापना करनेको स्थापना निधेय कहते हैं।

१ प्रतिप कञ्च इति वा । नाम हि शब्द सदा तत्त्व वा तत्त्वपरिणम ॥ वि भा १४

२ पाठा-यमादस्रनाविधयुक्त वन— जीवा वा जला वा अजीवा वा अजीरा वा जीरो य अजीवो य अजीवा य अजीरा य अजीवा य जला य अजीवा य जीवा यानि । विविदि प्रजापकजीवनाय यथा णिप हान । विविदि दनकजावनाय यथा कृप इति । विविदिवाजीवनाय यथा चर इति । विविदिनकजीवनाय यथा प्राणा इति । विविदिनजीवजावनाय यथा प्रतीति इति । विविदिजीवनाय यथा कागर इति । विविदिजीवनाय यथा मृगत । विविदिनकजावाजीवनाय यथा मृगादिनि । त भो ॥ १ ५ जीवन्म मी जितस्व य अजीवन्म ७ जितस्वपिमाण । जीवाण जण पि व अजीवाण नु पडिमाण ॥ जीवस्माजीवन्म य जण्हा विरस्व भगजा समय । जीवस्माजीवन्म य जण्हा पडिमाण भगध ॥ जीवाणमजीवन्म य जण्हा विरस्व वेगभा समय । जीवाणमजीवन्म य जण्हा पडिमाण भगध ॥ वि भा १४२४ १४२५ १४२६

ना दुविहा, सम्भायाम्भाय-द्वयणा चेति । तस्य जागाम्यतएव यत्थुम्भि सम्भाय द्वयणा । तद्विपरीया असम्भाय-द्वयणा ।

मगल पञ्जय-परिणद जीव रूप लिहण एणण-चघण-क्खेयणादिण्ण ढुविद दुद्वेण आरोविद-गुण-मम्ह मम्भाय द्वयणा मगल । दुद्वेण ममारोविद-मगल पञ्जय परिणद जीव-गुण-मम्भयसु वराडयादयो असम्भाय द्वयणा-मगल' ।

द्वय मगल नाम अणायय पञ्जाय विमेष पट्टच गट्टियाहिमुहिय दव्व अतम्भाय वा । त दुविद, जागम णो आगम दव्व चेति । आगमो मिद्वतो पययणमिदि णयट्ठो । आगमाय

पट्टस्थापनानिषेध दो प्रकारका है, सट्टायस्थापना और असट्टायस्थापना । इन दोनोंमें से, जिस वस्तुकी स्थापना की जाती है उसके आकारका धारण करनेवाली वस्तुमें सट्टायस्थापना समझना चाहिये, तथा जिस वस्तुकी स्थापना की जाती है उसके अकारमें रहित वस्तुमें असट्टायस्थापना जानना चाहिये ।

लेखनामें लिखकर अर्थात् चित्र बनाकर, और रातन अर्थात् छत्री, दाही आदिक टाग, वगैरह अर्थात् जिनाई, लेप आदिसे द्वारा तथा क्षेपण अर्थात् साजे आदिमें द्वारा आदिक द्वारा मूर्ति बनाकर स्थापित किये गये, ओर जिसमें बुद्धिमें अनेक प्रकारके मगलरूप अर्थके रूपका गुणमूर्द्धोकी वस्तुता की गई है, ऐसे मगल पर्यायमें परिणत जीवके स्वरूपको अर्थात् आहूतिवा सट्टायस्थापना मगल कहते हैं ।

ममकारादि करते हुए जीवका आकारमें रहित भक्ष भक्षान् दानदेजकी गोर्तमें पराङ्क अर्थात् कर्तव्योंमें तथा इमीप्रकारकी अन्य वस्तुओंमें मगल पर्यायमें परिणत जीवका गुण या स्वरूपकी बुद्धिमें वस्तुता करना मगलस्थापना मगल है ।

विशेषार्थ—जिस दानग्र आदिक जगम राजा, मंत्री आदिकी और गोत्रनेकी कीर्ति या लसोंमें सत्ताकी आराधना होती है, उमीप्रकार मगलपर्यायपरिणत जीव और उसके गुणोंकी बुद्धिके द्वारा की हुई स्थापनाको असट्टायस्थापनामगल कहते हैं ।

अब द्रव्यमगलका वयन करते हैं । भागे होनेवाली पर्यायको ग्रहण करनेके समुपलब्ध द्रव्य (उस पर्यायकी अन्तः) द्रव्यनिक्षेप कहते हैं । अथवा, घनमान पर्यायकी विज्ञानमें रहित द्रव्यका ही द्रव्यनिक्षेप कहते हैं । वह द्रव्यनिक्षेप आगम और ना आगमके भेदमें दो प्रकारका है ।

आगम विज्ञान और प्रत्यक्ष, ये दो प्रकारके हैं । आगममें भिन्न पर्यायोंको आगम कहते हैं ।

अथ य एवम एव विदुः एव मगल अथ मगलस्थपना मगलस्थपना मगल मगलस्थपना

मगल ११ १२० १२० १२० १२० १२० १२० १२० १२० १२०

अथ य एवम एव विदुः एव मगल अथ मगलस्थपना मगलस्थपना मगल मगलस्थपना

मरीरस्य मंगल-चरणमो ण अण्णमिं, तेसु द्विद मंगल-पज्जायाभासा । ण, गय-पज्जाया-
हारत्तणेण अणामठादीद चीपे पि राय पहारोपलभा ।

तत्थ अदीद-सरीर तिगिह, चुद चड चत्तमिदि । तन्थ चुद णाम कयलीधादण
त्रिणा पव पि फल व कम्मोदण ज्झीयमाणायु-करय पट्ठिद । चड णाम कयली-
धादेण छिण्णायु करय पट्ठिद मरीर । उच्च च—

परन्तु भार्य और भूतकालके शरीरका अवस्थाको मंगल सत्रा देना किसी प्रकार भी उचित नहीं
है, क्योंकि, उनमें वर्तमान मंगलरूप पर्यायका अभाव है ?

समाधान—येसा नहीं है, क्योंकि राज पर्यायका आधार होनेसे अनागत और अनीन
जीवम भी जिसप्रकार राजारूप व्यवहारकी उपलब्धि होती है, उसीप्रकार मंगल पर्यायसे
परिणत जीवका आधार होनेसे अनीन और अनागत शरीरमें भी मंगलरूप व्यवहार हो
सकता है ।

विशेषार्थ—भागमके सहकारी कारण हानसे शरीरको जो भागम कहा गया है और
उनमें अवयव प्रत्ययकी उपलब्धि होनेसे उसे द्रव्य कहा गया है । ये दोनों बातें अनीन, वर्तमान
और अनागत इन तीनों शरीरोंमें घटित होती हैं, इसलिये इनमें मंगलपनेका व्यवहार हो
सकता है । इसका गुलासा इसप्रकार है—

भौतिक, धर्मिक और आहारक शरीर मंगलविययक शास्त्रके परिज्ञानम सहकारी
कारण है, क्योंकि, इनके बिना कोई शास्त्रका अभ्यास ही नहीं कर सकता है । अब इनमें अवयव
प्रत्यय कैसे पाया जाता है इसका गुलासा करते हैं । जिस शरीरमें मैंने मंगल शास्त्रका अभ्यास
किया था वही शरीर उस अभ्यासको पूरा करने समय भी विद्यमान है, इसप्रकार तो वर्तमान
ज्ञायक शरीरमें अवयवप्रत्यय पाया जाता है । मंगल शास्त्रज्ञानसे उपयुक्त मेरा जो शरीर था,
तद्विययक शास्त्रज्ञानसे रहित मेरे अब भी वही शरीर विद्यमान है, इसप्रकार अनीन ज्ञायक
शरीरमें अवयवप्रत्ययकी उपलब्धि होती है । मंगल शास्त्रज्ञानके उपयोगसे रहित मेरा जो
शरीर है वही तद्विययक तत्त्वज्ञानकी उपयोग-दशामें भी होगा, इसप्रकार अनागत ज्ञायकशरीरमें
अवयवप्रत्ययकी उपलब्धि बन जाती है । इसलिये वर्तमान शरीरकी तरह अनीन और अनागत
शरीरमें भी मंगलरूप व्यवहार हो सकता है ।

इनमेंसे अनागत शरीरकी तीन भेद हैं, व्युत्पन्न, व्यापित और स्थल ।

वर्द्धमान मरणक बिना कर्मक उद्यम अङ्गनयासे आयुर्कर्मके क्षयसे पके हुए
वज्रच समान भटने भाग पतित शरीरका व्युत्पन्नी कहते हैं ।

विशेषार्थ—जब पका हुआ वज्र अपनी समय पूरा हो जानक कारण वृक्षमें स्थल
लिप्त पड़ता है । मृत्तम अलग हानक त्रिय उस और मृत्तम निमित्ताकी अपेक्षा नहीं पड़ती है ।
उसप्रकार आयु कर्मच पूरा हो जान कर जो शरीर शास्त्रादिकके बिना छूट जाता है उस व्युत्पन्न
शरीर कहते हैं ।

वर्द्धमानच हाग आयुच छिन्न है । जानकर छूटे हुए शरीरको व्यापितशरीर
कहते हैं । कहा की है—

मनम विनाम मरण उस्माम निरोह काउन मुद-साहु-सरीर कथे निरुदि ? न कथे चि तहा मुद-नेहम्म मंगलताभावादो । मंगल पाहुड धारयम्म धरिद-महच्चयस्स पत्त-देहम्म अत्त देहम्म वा देहो कथममंगल ? साहणमजुत्तकारिस्स देहताणे अमंगल मिणि न बोधु जुत्त, पुच्च ति-न्यणाहारत्तेण मंगलत्तमुजगयस्स पच्छा भूद पुच्च णाण्ण मंगल माव पडि विरोहाभावादो । तदो मंगल मारेण कथे चि निरुदेयव्यमेदेण मरीरे गेति । न च्छदम्मि पदेदि चत्तम्म चि आहार निरोहेण पदिदम्म च्छदत्ताउत्तीणे । तो कगहिं त्थ पत्तच्च ? कयली घाणेण मरण-कराण जीवियामाण जीविय मरणामाहि विणा वा पटिद-मरीर च्छद । जीवियामाण मरणामाण जीविय मरणामाहि विणा पत्तयली

पुत्री—संयमक विनाशके भयसे इयासो-धुसका निरोध करके मरे हुए साधुके शरीरका त्यक्तके तीन भेदोंमेंसे किन्सी भेदमें अन्तर्भाव होता है ?

ममाधान—ऐसे शरीरका त्यक्तके किन्सी भी भेदमें अन्तर्भाव नहीं होता है, क्योंकि, इसप्रकारसे मृत-शरीरको मंगलपना प्राप्त नही हो सकता ।

पुत्री—जो मंगल शान्तका धारक है अर्थात् जाता है, जिसने महात्मनोंको धारण किया है, चाहे उस साधुने समाधिमें शरीर छोड़ा हो अथवा नहीं छोड़ा हो, परन्तु उसके शरीरका अमंगलपना कैसे प्राप्त हो सकता है ? यदि कहा जाये कि साधुभामें अयोग्य काय करनेवाले साधुका शरीर होनेसे यह अमंगल है, तो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि, जो शरीर पहले रत्नत्रयका वाधार होनेसे मंगलपनेको प्राप्त हो चुका है उसमें पीछेने भी भूतपूर्व म्यायक अपेक्षा मंगलत्वक स्वीकार कर लनम कोर विरोध नहीं आता है । इसलिये मंगलपनेकी अपेक्षा संयमक विनाशके भयसे इयासो-धुसके निरोधसे छोड़े हुए साधुके शरीरका त्यक्तके तीन भेदोंमेंसे किन्सी एक भेदमें ग्रहण करना हो चाहिये । इस शरीरका न्यायिनमें तो ग्रहण हो नहीं सकता है, क्योंकि यदि इसका न्यायिनमें ग्रहण किया जाये, तो आहारक निरोधसे छूटे हुए त्यक्त शरीरका भी न्यायिनमें ही अन्तर्भाव करना पड़ेगा ? तो ऐसे शरीरको किन्सी भेदमें ग्रहण करना चाहिये ?

ममाधान—मरणकी आत्मासे या अश्विनकी आत्मासे अथवा जीवन और मरण इन दोनोंकी आत्माके विना ही कर्त्तव्यतासे छूटे हुए शरीरको न्यायिन कहन है । जीवनका आशास मरणकी आत्मासे अथवा जीवन और मरण इन दोनोंकी आत्माके विना ही कर्त्तव्य

१. ता वा विनाशः । उक्षान्नित्यावादाय कथा । अत्राशान्ति नहि बन्ध सन्निध आनन्ति ॥ वा पत्ता ता विनाश विनिर्वा कथयति ॥ पुत्री । सनद्धरचपावादा आर वातन हा जाति ॥ अन्ति कथयति पटिय मरण तु काउमम पा । उमालगिद्वपड १ गुणत्त च वृत्तादि ॥ तव व ५४६ ८८

घादेण अचत्त-भावेण पदिदं सरीरं चुदं णाम । जीविद-मरणासाहिं णिणा सरुवोवलद्धि-
णिमित्तं च चत्त-चञ्जतरग-परिग्गहस्म कयली-घादेणियरेण वा पदिद-सरीरं चत्त-देहमिदि ।

मन्यनोआगमद्रव्यं भविष्यत्काले मङ्गलप्राभृतज्ञायको जीवः मङ्गल-पर्याय
परिणस्यतीति वा । तद्व्यतिरिक्तं द्विविधं कर्मनोर्कर्ममङ्गलमेवात् । तत्र कर्ममङ्गल
दर्शन-निशुद्ध्यादि-पोढशुद्धा प्रविभक्त-तीर्थरु-नामकर्म-कारणैर्जीवः प्रदेशं निवद-तीर्थरु-
नामकर्म माङ्गल्य-निबन्धनत्वात्माङ्गलम् । यच्चोर्कर्ममङ्गलं तद् द्विविधम्, लौकिकं लोकोपरं

घानं यः समाधिमरणमे रूढितं होकर छूटे हुए शरीरको च्युत कहते हैं । आत्म-स्वरूपकी
प्राप्तिके निमित्त, जिसने बहिरंग और अन्तरंग परिग्रहका स्वाग कर दिया है ऐसे साधुके
जीवन और मरणका आशाके बिना ही कर्त्तव्यतासे अथवा इतर कारणोंसे छूटे हुए शरीरको
त्यक्तशरीर कहते हैं ।

विशेषार्थ — ऊपर बतलाये गये च्युत, व्याधित और त्यक्तके स्वरूप पर ध्यान देनेसे
यह भर्त्त प्रहार पड़ित हो जाता है कि संयम विनाशके भयसे दयामोक्षसका निरोध करके छूटे
हुए साधुके शरीरका व्याधितमें ही अन्तर्भाव होता है, क्योंकि, व्याधित मरणमें कर्त्तव्यताकी
प्रधानता है । और दयामोक्षसका व्यर्थ निरोध करके मरना कर्त्तव्यतामरण है । उसमें
समाधिका सङ्गाय नहीं रह सकता है इसलिये ऐसे मरणका त्यक्तके किसी भी भेदमें ग्रहण
नहीं किया जा सकता है । यद्यपि किसी एक मरणमें कर्त्तव्यता भी निमित्त पड़ता है । परंतु
यहवार कर्त्तव्यतासे, परवृत्त उपसर्गादि निमित्तोंका ही ग्रहण किया गया है, स्वयत्त
दयामोक्षानिर्गन्ध आदि आभ्यासके साधन विषयित नहीं है ।

आ जीव भविष्यत्कालमें मंगल शास्त्रका जाननेवाला होगा, अथवा मंगलपर्यायसे
परिचित होगा उसे भविष्यत्काल मंगलद्रव्यमंगलनिर्भेय कहते हैं ।

विशेषार्थ — ज्ञायकशरीरके तीन भेद किये हैं । उसका एक भेद भावी भी है । परंतु
इससे इस भावीके भिन्न समझना चाहिये, क्योंकि, ज्ञायकशरीरके भावी विकल्पमें ज्ञानके
आगे होनवाले शरीरके ग्रहण किया है, और यहापर भविष्यमें होनेवाला तद्विषयक शास्त्रका
ज्ञान ग्रहण किया है ।

कर्ममङ्गलविरहितद्रव्यमंगल और भोक्ममङ्गलविरहितद्रव्यमंगलके भेदसे तद्व्यति
रिक्तमोक्षमङ्गलमंगल वा प्रकाशका है । उनमें क्षीयनिशुद्धि आदि मोक्षप्रकारके तीर्थरु
कर्ममङ्गल कारणोंसे उचित प्रदत्तोंसे कथे हुए तीर्थरु नामकर्मको कर्ममङ्गलविरहितमो-
क्षमङ्गलमंगल कहते हैं क्योंकि, वह भी मंगलानेका सङ्गच्छारी कारण है ।

कर्ममङ्गलविरहितभावागमद्रव्यमंगल वा प्रकाशका है । एक लौकिक भोक्म
मङ्गलमोक्षमङ्गलमंगलमंगल और दूसरा ओद्योत भोक्ममङ्गलविरहितमोक्षम-
ङ्गलमंगल ।

मिति । तत्र सौख्यं त्रिविधम्, सच्चित्तमचित्त मिथमिति । तत्राचित्तमङ्गलम्—

मिदं पुण्य-कुमो वदणमाला य मंगल उच्यते ।

मेदो वणो आदसणा य वण्णा य जवत्तो^१ ॥ ११ ॥

सच्चित्तमङ्गलम् । मिथमङ्गल मालङ्कारव्यादि ।

उन दोनोंमेंसे सौख्यमंगल सचित्त, अचित्त और मिथके भेदसे तीन प्रकारका है । इनमें—^१मिदार्थ अर्थात् पीले सरसों, जलसे मरा हुआ कलश, चंदनमाला, छत्र, द्येत यण, और रूपेण आदि अचित्त मंगल हैं । और बालकन्या तथा उत्तम जातिका घोड़ा आदि सचित्त मंगल हैं ॥ ११ ॥

विशेषार्थ—पैवास्तिवायकी टीकामें भी जयसेन आचार्यने इन पदार्थोंको मंगलरूप माननेमें भिन्न भिन्न कारण दिये हैं । ये इसप्रकार हैं, जिनद्रव्यके मतादिकके द्वारा परमार्थको प्राप्त किया और उन्हें मिदं यह सत्ता प्राप्त हुई, इसलिये लोकमें सिद्धार्थ अर्थात् सरसों मंगलरूप माने गये । जिनद्रव्यके संपूर्ण मनोरथोंसे अथवा केवलज्ञानसे परिपूर्ण हैं, इसलिये पूर्ण-कलश मंगलरूपसे प्रसिद्ध हुआ । बाहर निकलने समय अथवा प्रवेश करते समय बापीस ही तीर्थकर घन्टना करने योग्य है, इसलिये भारत स्वयंभूने घन्टमालाकी स्थापना की । अरुहण परमेष्ठी सभी जीवोंका कल्याण करनेवाले होनेसे जगके लिये छत्राकार हैं, अथवा मिदलोक भी छत्राकार है, इसलिये छत्र मंगलरूप माना गया है । ध्यान, गुरुदेव्या इत्यादि द्येत-वर्ण माने गये हैं, इसलिये द्येतवर्ण मंगलरूप माना गया है । जिनद्रव्यके केवलज्ञानमें जिसप्रकार लोक और बलोक प्रतिभासित होता है, उसीप्रकार रूपमें भी अथवा चित्र मंगलरूप है । अतएव रूप मंगलरूप माना गया है । जिसप्रकार पतंग सूर्यदेव लोकमें मगन्द्वरूप है, उसी प्रकार बालकन्या भी रागभासे रहित होनेके कारण लोकमें मंगल मानी गई है । जिसप्रकार जिनन्द्र द्येने कर्म शत्रुओं पर विजय पाई, उसीप्रकार उत्तम जातिके घोड़ेने भी शत्रु जीने जाते हैं, अतएव उत्तम जातिका घोड़ा मंगलरूप माना गया ॥ ११ ॥

अलंकार सहित कथा आदि मिथ-मंगल समझना चाहिये । यदा पर अलंकार अचित्त और कथा सचित्त होनेके कारण अलंकारसहित कथाको मिथमंगल कहा है ।

॥ वयस्यममजमगुणं साविता त्रिविधं पश्यति । तदा तृणा जमि विदुषा मंगल वच ॥ पुण्य मनोरेहं य वयस्यमम जमि सत्तुणा । अस्ता इति सौ सुमंगल पुण्यमुमा ॥ विनामन्वसिह य इह पञ्चमं वि वदन्ति ता । वदणमालं वि कथा मरिच य मंगलं तेव ॥ सवत्रचमि-पुण्यता वयायात जलस्य वरहता । वयायात मादं वि मंगलं तेव उच्यते ॥ सेदो वणो साव लेसा य जवासेउच्यते य । अस्ता इति सौ सुमंगल सदवणा ॥ दीपह लायलोमो केवन्नाय तदा त्रिविधस्य । तदा दीपह पुत्रो विह दानं देणं सुमह ॥ जह बीयायम-पण्डु त्रिविधो मे-क हवह ला । हवायवयान्णया तदा मयन्ति विदन्ति ॥ कणात त्रिविधं त्रिविधं मासु त्रिविधं वि जय । जयस्य व अस्ति त्रिविधं यन्तु पुत्रह देण ॥ यथा दीप

लोकोत्तरमङ्गलमपि त्रिविधम्, मचित्तमचित्तं मिश्रमिति । मचित्तमर्हन्तीर्दनाम
नाथनिधनजीवद्रव्यम् । न केवलज्ञानादिमङ्गलपर्यायप्रतिष्ठाहृदादीनाम्, जीवद्रव्यम्
ग्रहण तस्य वर्तमानपर्यायोपलभित द्रव्य मात्र इति भावनिक्षेपान्तर्माणात् । न केवल
ज्ञानादिपर्यायाणां ग्रहण तेषामपि भाररूपत्वात् । अचित्तमङ्गल कृत्रिमाकृत्रिमवैत्त्याल-
यादि, न तत्स्यप्रतिमास्तु सम्स्थापनान्तर्माणात् । अकृत्रिमाणा कथं स्थापनाव्यपत्तेः ?
इति चेन्न, तेषापि बुद्ध्या प्रतिनिधौ स्थापितस्युद्योपलम्भात् । यथा अग्निरित्यमाणः कोऽपि
तथा स्थापनेन स्थापनेति तामा तद्व्यपदेशोपपत्तेर्ना । तदुभयमपि मिश्रमङ्गलम् ।

तत्र ध्वजमङ्गल गुणपरिणतामन-परिनिष्क्रमण-केवलज्ञानोन्पत्ति परिनिर्वाण-

लोकोत्तर मङ्गल भी सचित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन प्रकारका है । अरहन्
आदिका अनादि और अनन्तस्वरूप जीवद्रव्य सचित्त लोकोत्तर नो भागमतद्रूपतिरितद्रव्य
मङ्गल है । यद्वापर केवलज्ञानादि मङ्गल पर्याययुक्त अरहन् आदिकका ग्रहण नहीं करना चाहिये
किंतु उनका सामान्य जीवद्रव्यका ही ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान पर्यायमहित
द्रव्यका भावनिक्षेपम अनर्मात्र होता है । इसलिये केवलज्ञानादियुक्त अरहन्के आत्माकी
भावनिक्षेपमें परिगणना होगी । उसकी द्रव्यनिक्षेपमें गणना नहीं हो सकती है । उसीप्रकार,
केवलज्ञानादि पर्यायोंका भी इस लोकोत्तर नो भागमतद्रव्यमङ्गलमें ग्रहण नहीं होता है, क्योंकि,
ये सब पर्याय भावस्वरूप होनेके कारण उनका भी भावनिक्षेपमें ही अनर्मात्र होगा ।

हृत्रिम और महृत्रिम ध्यानादि अचित्त लोकोत्तर नो भागमतद्रूपतिरितद्रव्य
मङ्गल है । उन ध्यानाद्योंमें स्थित प्रतिमाओंका इस निक्षेपमें ग्रहण नहीं करना चाहिये,
क्योंकि, उनका स्थापना निक्षेपमें अनर्मात्र होता है ।

धृता — महृत्रिम प्रतिमाओंमें स्थापनाका व्यवहार कैसे समझ है ?

समाधान — इसप्रकार नका करना उचित नहीं है, क्योंकि, महृत्रिम प्रतिमाओंमें
भी बुद्धिद्वारा प्रतिनिधित्व मात्र लेने पर 'ये जितेन्द्रिय है' इसप्रकारके मुख्य व्यवहारका
उपलब्धि होती है । अथवा भिन्नानुत्पन्न भावोंका भी जिसप्रकार अति कहा जाता है, उसीप्रकार
हृत्रिम प्रतिमाओंमें की गई स्थापनाके समान यह भी स्थापना है, इसलिये महृत्रिम जिन
प्रतिमाओंमें स्थापनाका व्यवहार हुआ सकता है । उन दोनों प्रकारके सचित्त और अचित्त
मङ्गलोंको मिश्र मङ्गल कहते हैं ।

गुणपरिणत आत्मनक्षेत्र अर्थात् अहं पर योगात्मन धारात्मन इत्यादि अनेक आत्मनोंमें
नन्दुहृत् अनेक प्रकारके योगाभ्यास जिनानुत्पन्ना आदि गुण प्राप्त किये गये हैं ऐसा क्षेत्र
परिनिष्क्रमण क्षेत्र केवलज्ञानात्मनिक्षेत्र और निर्वाणक्षेत्र आदिका क्षेत्रमङ्गल कहते हैं ।

१. मङ्गल मङ्गल मङ्गल मङ्गल मङ्गल । उपरी इव पट्टा वदुःख सन्मग्नम् । पट्टा
मङ्गल मङ्गल मङ्गल मङ्गल । मङ्गलमङ्गल मङ्गलमङ्गल ॥ ११॥

एदेसु निस्सेवेसु रेण निक्खेयेण पयोजणं ? गो-आगमणे भाव-निक्खेयेण
तत्परिणएण पयोजणं । अदि गो-आगमणे भाव-निक्खेयेण तत्परिणएण पयोजणमियेगेहि
निक्खेयेहि इह हिं पयोजणं ?

अथ वहु जाणिजा अरिणिदं तस्य निक्खेये गियमा ।

अथ उहुण ण जाणिजे चउय निक्खेये तस्य ॥ १५ ॥

इदि उयणादो निक्खेयो कदो ?

अथ स्यात्, किमिति निक्षेपं क्रियत इति ? उच्यते, त्रिविधा श्रुताः, अन्य
तपश्च अगताशेषविशेषपदार्थ एवदेशतोऽगताशेषविशेषपदार्थ इति । तत्र प्रथमो-
च्युत्पन्नत्वाभाध्वनस्यतीति । विशिष्टपदमप्यर्थं द्वितीयं मध्येने कोऽर्थोऽस्य पदमप्यविकृतं

जिनेन्द्रदेव आदिकी धन्दना, भावस्तुति आदिमें परिणत जीवको तत्परिणतनोआगमभाषमगल
कहते हैं ।

शुक्रा—इन निक्षेपोंमेंसे यहा (इस अभ्यासरूप प्रकरणमें) किस निक्षेप से
प्रयोजन है ?

समाधान—यहापर तत्परिणतनोआगमभाषमगल से प्रयोजन है ।

शुक्रा—यदि यहा तत्परिणतनोआगमभाषमगल से ही प्रयोजन था, तो अन्य निक्षे-
पोंके कथन करने से यहा क्या प्रयोजन है ? अर्थात् प्रयोजनके बिना उनका यहा कथन नहीं
करना चाहिये था ।

समाधान—‘जहा जीवादि पदार्थोंके विषयमें बहुत जाने, यहापर नियमसे सग
निक्षेपोंके ज्ञापन उन पदार्थोंका विचार करना चाहिये । और जहापर बहुत न जाने, तो यहापर
धार निक्षेप अग्रय करना चाहिये । अर्थात् चार निक्षेपोंके द्वारा उस पदार्थका विचार अग्रय
करना चाहिये ’ ॥ १४ ॥

इस कथनके अनुसार यहापर निक्षेपोंका कथन किया गया ।

पूयोंक कथनके मत सेने पर भी, किस प्रयोजनको लेकर निक्षेपोंका कथन किया
जाता है, इसप्रकारकी शका करने पर आचार्य उत्तर देते हैं, कि धोता तीन प्रकारके होते हैं
पहला अशुद्धतपश्च अर्थात् वस्तु-स्थिररूपसे अनभिज्ञ, दूसरा सपूर्ण विषयित पदार्थको जाननेवाला
और तीसरा एवदेश विषयित पदार्थको जाननेवाला । इनमेंसे पहला धोता अन्युत्पन्न होनेके
कारण विषयित पदार्थके अर्थको कुछ भी नहीं समझता है । दूसरा ‘यहा पर इस पदका वीनता
अर्थ अधिष्ठित है’ इसप्रकार विषयित पदार्थके अर्थमें रुद्ध करता है, अथवा, प्रकरणग्राम अर्थमें

१ अर्थात् जाण्णा इति वाट

२ अथ व ज जाण्णा निक्खेये निक्खेये निक्खेये । अथ हि अ न जानेया चउय निक्खेये उच ॥
अनु हा १, १

नामो मादमलम् ।

अथवा अधाभिधानप्रत्ययभगाविरिध मलम् । उक्तमर्थमलम् । अधिधानमल
तद्वत् । तयोः पक्षवृद्धि प्रत्ययमलम् । अथवा चतुर्विध मल नामस्थापना-
प्रत्ययभारमलभेदात् । अनवविध वा । न मते गाल्पयति विनाशयति रिधमयतीति
मलम् । अथवा भक्त गुण मन्त्रानि आदत्त इति वा मलम् । उक्त च-

मलम् । उपमूर्ति पुत्रापत्तनाभिधानम् ।

त गनीपुत्रे स्त्रीमल मलार्थमि ॥ १६ ॥

भेदोंमें विभक्त होने जानावनादि भाव प्रकारके कर्म भाव्यन्त द्रव्यमल है । भजान भार
भर्त्तन आदि परिणामोंको भावमल कहते हैं ।

अथवा, अध, अधिधान (गच्छ) और प्रत्यय (जान) के भेदसे मल तीन प्रकारका
होता है । अर्थमलको जो भाषा पहले कहा आये है अथान् जो पहले बाह्य द्रव्यमल, भाव्यन्त
द्रव्यमल भाव भावमल कहा गया है उसे ही अर्थमल समझना चाहिये । मलके पाक्षक शब्दोंको
अधिधान मल कहते हैं । तथा अर्थमल और अधिधानमलमें उत्पन्न हुई पुष्टिको प्रत्ययमल
कहते हैं ।

अथवा, नाममल, स्थापनामल, द्रव्यमल और भावमलके भेदसे मल चार प्रकारका है ।
अथवा, हर्षप्रकार विपरीतभेदसे मल भिन्न प्रकारका भी है । इसप्रकार ऊपर कहे गये मलका
जो गान्ध करे, विनाश करे या ध्वंस कर उसे मल कहते हैं ।

अथवा, मंग शब्द सुनवाची है उसे जो लाये, प्राप्त करे उसे मल कहते हैं ।
कहा भी है—

यह मंग शब्द पुण्यरूप अथवा प्रतिपादन करनेवाला माना गया है । उस पुण्यको जो
लाना है उसे मलके रूपमें सत्पुरुष मल कहते हैं ॥ १६ ॥

नामावगमवृद्धि जन्तिद्वयममिदधाराय । अवगमवृद्धि जन्तिद्वयमिदधाराय । नि प १, ११ १२

मात्रल नाद च अणालादनामिदधाराय ॥ नि प १, १३

२ अथवा अवगमवृद्धि नामावगमवृद्धि दन्तमावगमवृद्धि । नि प १ १४

तत्त मन्त्रं पृ जन्ति तदा मल मणिद्वय ॥ नि प १ १४

४ अथवा मंग शब्द लाने है मण्डल मंगल मन्त्र । मन्त्र क-जन्तिद्वय मंगलमणि मंगलमणि ॥

नि प १, १४ १५

५ पुनः जातिनिद्वयमण्डलं च जातिद्वयमणि । त जातिद्वय जाति तदा मलमणि ॥

नि प १, १६

न भस्मच्छन्नाग्निना व्यभिचारः तापप्रसादशयोस्तत्राप्युपलब्धम् । पर्यायत्वात्तेजसादीनां न स्थितिर्गतिश्चैव, अमुदात्तज्ञानमतानापेक्षया तत्सर्वपर्यस्य विरोधाभावात् । न छद्मस्थानान्तरापर्यायत्वादमुदात्तसमवेदशस्य भाङ्गव्यापारः तद्विशेषावयवानामप्यमुदात्तप्राप्ते । राजानुषा हानद्वान न मङ्गुर्लभ्यते तल्लानद्वानयोगव्यवसायिते चैव, ताम्प्या व्यतिरिक्त-योन्मयोरमत्वात् । मत्याप्योऽपि मन्तीति चैव, तद्व्यवसायानां मत्याप्यपदेशात् ।

हो ऐसा नहीं कहा जाता । किन्तु प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे भी उसके उपलब्धि होती ही है ।

यदा पर भस्मसे ढकी हुई अग्नि के साथ व्यभिचार होय भी नहीं आता है, क्योंकि, ताप और प्रकाश की यदा पर भी उपलब्धि होती है ।

विशेषार्थ—आवृत अवस्थामें भी केवलज्ञानादि पाये जाते हैं, क्योंकि, व जीवक गुण है, यदि इस अवस्थामें उनका अभाव माना जाये तो जीवका भी अभाव मानना पड़ेगा । इस अनुमानकी ध्यानमें रखकर साक्षात्कारका कहना है कि इस तरह तो भस्मसे ढकी हुई अग्निसे व्यभिचार हो जायेगा क्योंकि भस्माच्छादित अग्निमें अग्निरूप द्रव्यका सङ्गति तो पाया जाता है, किन्तु उसके धर्मरूप ताप और प्रकाशका सङ्गाय नहीं पाया जाता है । इस तरह हेतु विपर्यय हो जाता है, अतएव यह व्यभिचारिण हो जाता है । इसप्रकार साक्षात्कारका भस्मसे ढकी हुई अग्निसे साथ व्यभिचारका दोष देना ठीक नहीं है । क्योंकि याले ढकी हुई अग्निमें भी उसके गुणधर्म ताप और प्रकाशकी उपलब्धि अनुमानादि प्रमाणोंसे बराबर होती है ।

शङ्का—केवलज्ञानादि पर्यायरूप है, इसलिये आवृत अवस्थामें उनका सङ्गाय नहीं बन सकता है ?

समाधान—यह शङ्का भी ठीक नहीं है क्योंकि कभी भी नही दृष्टेयवाली ज्ञान सत्तानका अपेक्षा केवलज्ञानके सङ्गाय मान लेनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

छद्मस्थ अधातु अवस्थानियोंके ज्ञान और दर्शन अस्य होनेमात्रसे भगवत् नहीं हो सकते हैं, क्योंकि ज्ञान और दर्शनके पक्षदेशमें भगवत्पक्षका अभाव स्वीकार कर लेने पर ज्ञान और दर्शनके संपूर्ण अवयवोंकी भी भगवत् मानना पड़ेगा ।

शङ्का - आवरणसे युक्त जीवोंके ज्ञान और दर्शन प्रसङ्गभूत केवलज्ञान और केवल दर्शनके अवयव ही नहीं हो सकते हैं ?

समाधान—ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि केवलज्ञान और केवलदर्शनसे मिल ज्ञान और दर्शनका सङ्गाय नहीं पाया जाता है ।

शङ्का—केवलज्ञान और केवलदर्शनसे अतिरिक्त मतिज्ञानादि ज्ञान और चक्षुदर्शन आदि दर्शन या पाये जाते हैं । इनका अभाव कैसे किया जा सकता है ?

समाधान—उस ज्ञान और दर्शनसंबन्धी अवस्थाओंकी मतिज्ञानादि और चक्षुदर्शनादि माना सङ्गाय है । अर्थात् ज्ञानगुणकी अवस्थाविशेषका नाम मत्यादि और दर्शनगुणकी अवस्था

तयो केवलज्ञानदर्शनानुसङ्गयोर्मङ्गलत्वे मिथ्यादृष्टिरपि मङ्गल तत्रापि तौ न इति चङ्कतु
तद्वृत्तया मङ्गलम्, न मिथ्यात्वादीना मङ्गलम् । नत्र मिथ्यादृष्टय सुगतिमात्र
सम्यग्दर्शनमन्तरेण तज्ज्ञानस्य सम्यग्ज्ञानभाषितमङ्गलमात्रम् । कथं पुनस्तज्ज्ञानदर्शनयोर्मङ्गल
त्वमिति चेन्न, सम्यग्दर्शनाभाषणतात्पर्यरूपाणां केवलज्ञानदर्शनानुसङ्गनाशयान्वेनाध्ययसित्तज्ञो-
ज्ज्ञानदर्शनानामाभाषणविधिकानन्ततानदर्शनगुक्तिगचिता मम्मर्तृणां वा पापक्षय
कारित्वतस्तयोस्तद्वृत्तये । नोऽगाममभ्यन्तव्यमङ्गलापेक्षया वा मङ्गलमनाश्रयपर्यमानमिति ।
रत्नत्रयमुपादायादिनष्टेनज्ञानसिद्धम्बरूपापेक्षया नैगमनयेन सादृश्यमिति मङ्गलम् ।

विशेषका नाम अशुद्धानादि हैं । यथार्थमें इन सब अवस्थाओंमें रहनेवाले ज्ञान और दर्शन एक ही हैं ।

शुद्धा—केवलज्ञान और केवलदर्शनके अक्षुरूप छद्मस्थोंके ज्ञान और दर्शनको मंगल रूप मान लेने पर मिथ्यादृष्टि जीव भी मंगल सत्ताको प्राप्त होता है, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि जीव भी वे अक्षुर विद्यमान हैं ?

समाधान—यदि ऐसा है तो भले ही मिथ्यादृष्टि जीवको ज्ञान और दर्शनरूपमें मंगलपना प्राप्त हो, किन्तु इनमेंसे ही मिथ्यात्व, अविषय आदिको मंगलपना प्राप्त नहीं हो सकता है । और इसलिये मिथ्यादृष्टि जीव सुगतिको प्राप्त नहीं हो सकते हैं, क्योंकि, सम्यग्दर्शनके बिना मिथ्यादृष्टिोंके ज्ञानमें समीचीनता नहीं आ सकती है । तथा समीचीनताके बिना उन्हें सुगति नहीं मिल सकती है ।

शुद्धा—फिर मिथ्यादृष्टिोंके ज्ञान और दर्शनको मंगलपना कैसे है ?

समाधान—ऐसी शक्य नहीं करनी चाहिये, क्योंकि, आप्तके स्वरूपको जाननेवाले, छद्मस्थोंके ज्ञान और दर्शनको केवलज्ञान और केवलदर्शनके अवयवरूपसे निश्चय करनेवाले और आश्रय रहित अनन्तज्ञान और अनन्तदर्शनरूप शक्तिले युक्त आत्माका स्मरण करनेवाले सम्यग्दर्ष्टिोंके ज्ञान और दर्शनमें त्रिसप्रकार पापका क्षयकारीपना पाया जाता है, उसीप्रकार मिथ्यादृष्टिोंके ज्ञान और दर्शनमें भी पापका क्षयकारीपना पाया जाता है । इसलिये मिथ्यादृष्टिोंके ज्ञान और दर्शनको भी मंगल माननेमें विरोध नहीं है । अथवा, नोऽगाममाविष्ट मंगलकी अपेक्षा मंगल अनादि अनन्त है ।

विशेषार्थ—आत्मा धर्ममानस मंगलपर्यायसे युक्त तो नहीं है, किन्तु अविषय मंगलपर्यायसे युक्त होगा । उसके शक्ति की अपेक्षाम अनादि अनन्तरूप मंगलपना बन जाता है ।

रत्नत्रयकी धारणा करने की भी नष्ट नहीं होनेवाले रत्नत्रयके द्वारा ही प्राप्त हुए निन्द्य स्वरूपकी अपेक्षा नैगमनयसे मंगल सादि अनन्त है ।

विशेषार्थ—रत्नत्रयकी शान्तिम साधितपना और रत्नत्रय शान्तिसे अनन्तर निन्द्य स्वरूप

मादिमपर्ववर्गित मन्थ्यग्रनापेक्षया जघन्यनान्तर्मुहूर्तकालमुत्कृषण पक्षप्रमाणरा
देशोना ।

कतिविध मङ्गलम् ? मङ्गलमामान्याप्तदशविधम्, मृत्पात्रमृत्पभेदतो द्विविधम्,
मन्थ्यदर्शनज्ञानचाग्निभेदात्रिविध मङ्गलम्, धर्माभेदसाप्त्वहर्द्वेदाष्टविधम्, ज्ञानार्जन
त्रिगुणभेदाद्दश पञ्चविधम्, 'गमो विनाश' इत्यादिनानेकविध वा ।

अथवा मंगलम् इह ल अहियाराण दडा वचन्वा भरति । त जहा, मंगल
मंगल-कृता मंगल-करणीय मंगलोवायो मंगल-विहाण मंगल कलमिदि । तदेतिं छह पि
अयो उचदे । मंगलरथो पुण्युतो । मंगल-कृता चोदस विजा हाण-पारओ आहरियो ।
मंगल-करणीय भव-जणो । मंगलोवायो तिरपण-साहणाणि । मंगल विहाण गव-विहादि
पुण्युत्त । मंगल-फल देहिंता कय अञ्चुदय णिस्मेयस-मुहाइत्त । मंगल मुत्तस आदीए

पक्षी जो प्राणि हूँ है उसका कभी भ्रम आनवाला नहीं है । इसतरह इन दोनों धर्मोंको ही
विषय करनेवाले (न एक मन्थ्य मंगल) मंगलमन्थ्यकी अपेक्षा मंगल सादि भ्रमन्त है ।

सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा मंगल सादि-ज्ञान समझना चाहिये । उसका जघन्य काल
अन्तर्मुहूर्त है और उच्छिष्ट काल कुछ कम प्रयासके सागर प्रमाण है ।

मंगल किने प्रकारका है ? मंगल-सामान्यकी अपेक्षा मंगल एक प्रकारका है । मुख्य
और गानके भेदसे दो प्रकारका है । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य के भेदसे
तीन प्रकारका है । धर्म, सिद्ध साधु और भईलके भेदसे चार प्रकारका है । ज्ञान, दर्शन और
ज्ञान गुणों के भेदसे पांच प्रकारका है । अथवा 'जिने द्रव्यको नमस्कार हो' इत्यादि रूपसे
अनेक प्रकारका है ।

अथवा, मंगलके विषयमें छह अधिकाधिकारा सूत्रोंका कथन करना चाहिये । ये इस
प्रकार हैं । १ मंगल, २ मंगलकृता ३ मंगलकरणीय, ४ मंगल-उपाय, ५ मंगल भेद और
६ मंगल-फल । अब इन छह अधिकाधिकारा अर्थ कहते हैं । मंगलका अर्थ तो पहले कहा जा
चुका है । बौद्ध विचारधर्माके धारणामी आचार्य-परमेश्वरी मंगलकृता हैं । मन्थ्यजन मंगल करने
योग्य हैं । रत्नत्रयकी साधक सामग्री मंगलका उपाय है । एक प्रकारका मंगल, दो प्रकारका
मंगल इत्यादि रूपसे मंगलके भेद पहले कहा आये हैं । ऊपर कहे हुए मंगलविषयसे प्राप्त होने
वाले अभ्युदय और मोक्ष-सुखके आधीन मंगलका फल है । अथान् जितने प्रमाणमें यह जीव
मंगलके साधन मिलता है उतने ही प्रमाणमें उससे जो धन्ययोग्य अभ्युदय और निधेयस
सुख मिलता है वही उसके मंगलका फल है । एक मंगल प्रणयके आदि मन्थ्य और भ्रममें कहना

१ प्रतिपु नमो विनाश इति वाड ।

२ अहिनादि इति वाड प्रतिप्रावि ।

विष्णुं प्रणमति भव न जातु न दुष्टदेवा परितुष्टयन्ति ।

अपन्थेनैव सगं भक्तं त्रिनोतमनां परिश्रमेन ॥ २१ ॥

अग्निं मध्येऽवस्थाने च मङ्गलं मन्त्रितं युधे ।

तन्निन्दन्पुण्यस्तेन तन्निन्दयन्तिरप्ये ॥ २२ ॥

तब मंगल दुरिह निबद्धमणिबद्धमिदि । तब निबद्ध णाम, जो मुचस्मादीण मुच-वचारेण निबद्ध-देवदा-ममोवागे त निबद्ध-मंगल । जो मुचस्मादीण मुच-कचारेण कच-देवदा-ममोवागे तमनिबद्ध-मंगल । इदं पुन जीवहाण निबद्ध-मंगल । यतो ' इमेसि चोदमण्ड जीवममामा ' इदि एदस्म मुचस्मादीण निबद्ध- ' जमो अरिहताण ' इत्यादि-देवदा-ममोवाग-ममगादो ।

मुच विं मंगलमुद अमंगलमिति ? जदि ण मंगल, ण त मुच पायकारणस्स

जिने-उदेयदे गुणोंवा जीनेन करनेसे विप्र नामको प्राप्त होते हैं, कभी भी भय नहीं होता है, दुष्ट देवता आक्रमण नहीं कर सकते हैं और निरन्तर यथेष्ट पशार्योंकी प्राप्ति होती है ।

विज्ञान पुष्पोंन प्रारम्भ किये गये किसी भी वायके आदि, मध्य और अन्तमें मंगल करनेका विधान किया है । यह मंगल निविंम कर्पसिद्धिसे लिये जिनेन्द्र भगवानके गुणोंका जीनेन करना ही है ।

यह मंगल दो प्रकारका ॥ निबद्ध-मंगल और अनिबद्ध-मंगल । जो ग्रन्थके आदिमें ग्रन्थकारके द्वारा इष्ट-देवता ममस्कार निबद्ध कर दिया जाता ॥ अर्थात् स्तोत्रादिरूपसे रचा जाता है, उसे निबद्ध-मंगल कहते हैं । और जो ग्रन्थकारके द्वारा देवताको ममस्कार किया जाता है (किन्तु स्तोत्रादिके द्वारा समझ नहीं किया जाता है,) उसे अनिबद्ध मंगल कहते हैं । उनमेंसे यह ' अविस्थान नामका प्रथम मण्डागम निबद्ध-मंगल है, क्योंकि ' इमेसि चोदमण्ड जीवममामा ' इत्यादि आयुधानके इन मूत्रके पहले ' जमो अरिहताण इत्यादि रूपसे देवता-ममस्कार निबद्धरूपसे देखनेमें आता है ।

शुद्धा—मूत्र-ग्रन्थ स्वयं मंगलरूप है या अमंगलरूप ? यदि मूत्र स्वयं मंगलरूप नहीं है, तो यह मूत्र भा नहीं कहा जा सकता क्योंकि, मंगलके अभावमें पापका कारण होनेसे

१ नामनि विप्र भेदनि दहा ॥ १ ॥ न लपति । इहा अथा लप्सह विप्रनाम इवमवध ॥

वि प १ १०

२ आदम परित जो मुचस्मादीण मचकचारेण कचदेवदा-ममवाग न निबद्धमंगल । जो मुचस्मादीण मुचकचारेण निबद्धा कचदेवदा-ममवाग तमनिबद्धमंगल इति पाठ ।

३ जो मंगल कच कच मच ॥ सिद्धि मच-मार्ग ' तमिवावतापताक-मचदेव मचमंगल ॥ ॥

मंगल वि मंगलमुदा मंगल अहा पाठ । मंगलमिवावतापताक-मचदेव वि मच कच मचि ॥ वि म २ २१

मुत्त-विरोहादौ । अह मगल, कि तत्त्व मगलेण एगदो चैय कज्ज णिप्पत्तीदो इति । य ताव मुत्त ण मगलमिदि ? तारिम पडज्जाभावादो परिमेमादो मगल म । मुत्तम्माणि मगल पडिज्जदि, ण पुब्बुत्तदोसो ति दोण्ह पि पुब्ब पुब्ब विणासिज्जमाण-पाप-मणाणे । पढण-विग्घ विहायण मगल । मुत्त पुण ममय पडि अमरेज्ज-गुण-मेद्वीण पाव गामिप पच्छा सव्व कम्म उपय-कारणमिदि । देवतानमस्कारोऽपि चरमान्ध्याया कृत्स्नकर्मतय कारीति द्वयोरप्येकार्थमवर्तत्वमिति चेन्न, सूत्रप्रियपरिज्ञानमन्तरेण तस्य तथाभिघसामर्थ्याभावात् । शुद्धध्यानान्मोक्ष, न च देवतानमस्कार शुद्धध्यानमिति ।

इदानीं देवदाणमोक्षारमुत्तस्मत्स्थो उच्यते ।

‘ जमो अरिहताण ’ अरिहननादरिहन्ता । नरस्त्रित्यङ्गमानुष

उसका सूनपनेसे विरोध पड जाता है । और यदि सून स्वयं मगलरूप है, तो फिर उसमें अलगसे मगल करनेकी क्या आवश्यकता है, क्योंकि, मगलरूप एक सूत्र प्रत्यक्ष ही कार्यकी निष्पत्ति हो जाती है । और यदि कहा जाय कि यह सूत्र नहीं है, अतएव मगल भी नहीं है, तो ऐसा तो कहीं कहा नहीं गया कि यह सूत्र नहीं है । अतएव यह सूत्र है और परिशेष स्वायत्त मगल भी है । तब फिर इसमें अलग से मगल क्यों किया गया ?

ममाधान—सून के आदि में मगल किया गया है तथापि पूर्वात्त दोष नहीं आता है, क्योंकि, सूत्र और मगल इन दोनों से पृथक् पृथक् रूपमें पापोंका विनाश होता हुआ देखा जाता है ।

निषिद्ध और अनिषिद्ध मगल पठनमें आनेवाले जिम्मोंको दूर करता है, और सूत्र, प्रति समय अक्षरशत गुणित श्रेणीरूपसे पापोंका नाश करके उसके बाद संपूर्ण कर्मोंके क्षयका कारण होता है ।

धृता—देवता-नमस्कार भी अन्तिम अवस्थामें संपूर्ण कर्मोंका क्षय करनेवाला होता है, इसलिये मगल और सूत्र ये दोनों ही एक कार्यको करनेवाले हैं । फिर दोनोंका कार्य भिन्न भिन्न क्यों बतलाया गया है ?

ममाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि, सूत्रस्थित विषयके परिज्ञानके बिना देवता-नमस्कारमें कर्मक्षयकी सामर्थ्य नहीं है । मोक्षकी प्राप्ति शुद्धध्यानसे होती है, परंतु देवता-नमस्कार तो शुद्धध्यान नहीं है ।

विशेषार्थ—शास्त्रज्ञान शुद्धध्यानका साक्षान् कारण है और देवता-नमस्कार परंपरा कारण है, इसलिये दोनोंका अलग अलग कार्य बतलाये गये हैं ।

अथ देवता-नमस्कार सूत्रका अर्थ कहते हैं । ‘ जमो अरिहताण ’ अरिहत्तोंको नमस्कार हो । यदि अर्थात् दातृर्भक्तों के ‘ हननान् ’ अर्थात् नाश करनेसे ‘ अरिहत्त ’ यह संज्ञा प्राप्त होती

भस्मरजया पूरिताननानामिव भूयो मोहाग्रद्वामना विप्रमात्रोपममात्र ।
किमिति त्रितयस्यैव विनाश उपदिश्यत इति चेन्न अतदिनागम्य शेषरुर्मयिनागविना-
भावितात् । तेषा हननागरेहन्ता ।

रहस्याभावाद्वा अरिहन्ता । गृहस्यमन्तराय , तस्य शेषशान्तिप्रतिपत्तिविनाशविना-
शान्नो भ्रष्टर्नाशनि शक्तीकृताधातिरुर्मणो हननाग्रिहन्ता ।

अतिशयपूजाहत्ताद्वाहन्त । स्वर्गायतरणजन्माभिषेकरूपगिनिष्क्रमणरूपमानो रवि
परिनिर्माणेषु देवकृताना पूजाना देवासुगमानप्राप्तपूजाम्योऽतिरुणातिशयानामहन्ता-
द्योग्यत्वादहन्त ।

भस्मसे व्याप्त होता है उनमें जिह्मभाव अर्थात् कार्यकी मन्दता देखी जाती है, उमाग्रद्वार
मोहसे जिनका आत्मा व्याप्त हो रहा है उनके भी जिह्मभाव देखा जाता है, अर्थात् उनका
स्थानाभूतिमें कालुष्य, मन्दता या बुद्धिलता पाई जाती है ।

शुद्धा — यहाँ पर केवल तीनों, अर्थात् मोह, मयि, ज्ञानावरण और दर्शनावरण कनके
ही विनाशका उपदेश क्यों दिया गया है ?

समाधान — ऐसा नहीं समझना चाहिये, क्योंकि, शेष सभी कर्मोंका विनाश इन तीन
कर्मोंसे विनाशका अधिनाभाषी है । अर्थात् इन तीन कर्मोंके नाश हो जाने पर शेष कर्मोंका
नाश अवश्यभाषी है । इसप्रकार उनका नाश करनेसे अरिहत सत्ता प्राप्त होती है ।

अथवा, 'रहस्य' के अभावसे भी अरिहत सत्ता प्राप्त होती है । रहस्य अन्तराय
कर्मको कहते हैं । अन्तराय कर्मका नाश शेष तीन घातिया कर्मोंके नाशका अधिनाभाषी है
और अन्तराय कर्म के नाश होनेपर अघातिया कर्म भ्रष्ट बीज के समान नि शक्त हो जाते हैं ।
ऐसे अन्तराय कर्मके नाशसे अरिहत सत्ता प्राप्त होती है ।

अथवा, सातिशय पूजाके योग्य होनेसे अहन्त सत्ता प्राप्त होती है, क्योंकि, गर्भ, जन्म,
क्षीक्षा, केवल और निर्माण इन पाँचों कल्याणकोंमें देवोंद्वारा की गई पूजाएँ देव, असुर और
मनुष्योंको प्राप्त पूजाओंसे अधिक अर्थात् महान् हैं, इसलिये इन अनिष्टायोंके योग्य होनेसे अहन्त
सत्ता समझना चाहिये ।

१ अरुति शमाकार अरुति पूजा हस्तया लाम् । रज वा जित्ति य अरुता तण उच्यते ॥ मूलपा ५०५
अरिहन्त कदणमममाह अदिदि पूषणकार । निद्रियमण च अरिदा अरुता तण वुचति ॥ दत्ताष्टमशुद्ध आता
पूजा हस्तया जग्ग । आत्ता हता एव हता अरिहता तण वुचति ॥ वि मा ३५८४, ३५८५

२ अविघमान वा रह एकातरुणा दस अतथ मय्य गिरिगुहादीनां सबवदितया समस्तवस्तुमानमत्र
प्रच्छन्नवत्यामानन यथा त अरुतात्तर [अरुता] अववा अविघमानो ॥ रयन्दन सत्त्वपरिग्रहपणनपूत
अतथ विनाश जगपुनश्चपूना यथा त अणमता [अरुता] । अववा ' अरुताय ' ति कविदयाननिमगच्छन् ,

‘णमो सिद्धाण’ सिद्धाः निष्ठिता कृतकृत्या मिद्धमाध्या नष्टाष्टकमाण ।
सिद्धानामर्हता च को भेद इति चेन्न, नष्टाष्टकमाण मिद्धा. नष्टातिरुर्माणोऽर्हन् इति
तयोर्भेद । नष्टेषु घातिरुर्मस्याविर्भूताशेषात्मगुणन्याय गुणकृतस्तयोर्भेद इति चेन्न,
अघातिकर्मोदयसत्त्वोपलम्भात् । तानि, शुद्धध्यानाग्निनार्धदग्धत्वात्सन्त्यपि न स्वकार्य
कर्तृणीति चेन्न, पिण्डनिपाताभासान्यथानुपपत्ति आयुष्यादिशेषकर्मोदयास्तित्वमिद्ध ।

जिन्होंने सपूर्ण आत्मस्वरूपको प्राप्त कर लिया है और जिन्होंने दुर्नयका भजन कर दिया है, ऐसे
अरिहत्त परमेष्ठी होते हैं ॥ २३, २४, २५ ॥

विशेषार्थ—शैवमतमें महादेवको कामदेवका नाश करनेवाला, अपने तीन नेत्रोंमें
सफल पदार्थोंके स्मारको जाननेवाला, त्रिपुरका ध्वंस करनेवाला, मुनिग्रनी अर्थात् विगमर,
त्रिगुलको धारण करनेवाला और अश्वत्थसुरके कबधनृन्दका हरण करनेवाला माना है ।
महादेवके इन विशेषणोंको लक्ष्यमें रखकर नीचेकी दो गायार्थोंकी रचना हुई है । जिससे यह
प्रगट हो जाता है कि अरिहत्त परमेष्ठी ही सचे महादेव है ।

‘णमो सिद्धाण’ अर्थात् सिद्धोंको नमस्कार हो । जो निष्ठित अर्थात् पूर्णत अपने
स्वरूपमें स्थित है, हतहत्य है, जिन्होंने अपने साध्यको सिद्ध कर लिया है, और जिनके
मानावरणादि आठ कर्म नष्ट हो चुके हैं उन्हें सिद्ध कहते हैं ।

शुद्धा—सिद्ध और अरिहत्तोंमें क्या भेद है ?

समाधान—आठ कर्मोंको नष्ट करनेवाले सिद्ध होते हैं, और चार घातिया कर्मोंको
नष्ट करनेवाले अरिहत्त होते हैं । यही उन दोनोंमें भेद है ।

शुद्धा—चार घातिया कर्मोंके नष्ट हो जाने पर अरिहत्तोंकी आत्माके समस्त गुण
प्रगट हो जाने हैं, इसलिये सिद्ध और अरिहत्त परमेष्ठियोंमें गुणहत भेद नहीं हो सकता है ।

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि, अरिहत्तोंके अघातियाकर्मोंका उदय और सत्त्व दोनों
पाये जाते हैं, अतएव इन दोनों परमेष्ठियोंमें गुणहत भेद भी है ।

शुद्धा—ये अघातिया कर्म शुद्धध्यानरूप अभिके द्वारा अधगलेसे हो जानेके कारण
उदय और सत्त्वरूपमें विद्यमान रहते हुए भी अपना कार्य करनेमें समर्थ नहीं है ।

समाधान—ऐसा भी नहीं है, क्योंकि, शरीरके पतनका अभाव अन्यथा सिद्ध नहीं होता
है, इसलिये अरिहत्तोंके आयु आदि दोष कर्मोंके उदय और सत्त्वकी सिद्धि हो जाती है । अर्थात् यदि
आयु आदि कर्म अपने कार्यमें असमर्थ माने जाय, तो शरीर का पतन हो जाना चाहिये । परंतु
शरीर का पतन तो होता नहीं है, इसलिये आयु आदि दोष कर्मोंका कार्य करना सिद्ध है ।

१ सत्तावर्गोर्माण दग्ग म चेतयधचत्तयाप्पमि । मवति तग्ग कृतहल सम्बद्ध पुत्तथापमिद्धिमापण ॥

पु मि ११

ईदं कल्पयत्तु ॥ मिद्धा अष्टकम् । मिद्धा चत्ते निष्ठिते य मिद्धपदव्यवहार । मृदाका ५०७

तत्कार्यस्य चतुरर्शीतिलधयोऽन्यात्मकस्य जातिव्रामरणोपलक्षितस्य सप्तास्यामर्यातेषा-
मात्मगुणघातनसामर्थ्याभावात् न तयोर्गुणकृत भेद इति चेन्न, आयुष्पवेदनीयोदययो-
र्जीवोर्ध्वगमनमुखप्रतिबन्धकयो मन्त्रात् ।

नोर्ध्वगमनमात्मगुणस्तदभावे चात्मनो विनाशप्रसङ्गात् । सुखमपि न गुणस्त
एव । न वेदनीयोदयो दुःखजनक केवलित्वात् केवलित्वान्मघानुपपत्तेरिति वेदस्तेष्वमेव
न्यायप्रामाण्यम् । किंतु सत्तेष्वनिलेपत्वाभावाद् देशभेदाच्च तयोर्भेद इति सिद्धम् ।

शुद्धा—कर्मोंका कार्य तो चारोंसी सत्त्व घोरिन्मय अथ, जरा और मरणसे मुक्त
सत्त्वा है । यह, अघातिया कर्मोंके रहने पर भी अरिहत परमेष्टीके नहीं पाया जाता है । तथा,
अघातिया कर्म आत्माके अनुजीवी गुणोंके घात करनेमें असमर्थ भी हैं । इसलिये अरिहत और
सिद्ध परमेष्टीमें गुणहत भेद मानना ठीक नहीं है ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि, ऊर्ध्व के ऊर्ध्वगमन स्वभाव का प्रतिबन्धक आयु
कर्म का उदय और मुखगुणका प्रतिबन्धक वेदनीय कर्मका उदय अरिहतों के पाया जाता है ।
इसलिये अरिहत और सिद्धों में गुणहत भेद मानना ही चाहिये ।

शुद्धा—ऊर्ध्वगमन आत्माका गुण नहीं है, क्योंकि, उसे आत्माका गुण मान लेने पर
उसके अभावमें आत्माका भी अभाव मानना पड़ेगा । इसीकारण सुख भी आत्माका गुण नहीं
है । दूसरे वेदनीय कर्मका उदय केवलमें मुखको भी उत्पन्न नहीं करता है, अथवा अर्धत्
वेदनीय कर्मका दुःखोत्पादक भाव देने पर, केवली भगवान्के केवलपत्ता ही नहीं बन
सकता है ?

समाधान—यदि ऐसा है तो यही अर्धत् अरिहत और सिद्धोंमें गुणहत भेद सिद्ध
नहीं होता है तो मन होओ, क्योंकि, यह व्यायसंगत है । फिर भी सत्तेष्व और निर्लेपत्वकी
अपेक्षा और देशभेदकी अपेक्षा उन दोनों परमेष्ठियोंमें भेद सिद्ध है ।

विशेषार्थ—अरिहत और सिद्धोंमें अनुजीवी गुणोंकी अपेक्षा तो कोई भेद नहीं है ।
फिर भी प्रतिजीवी गुणोंकी अपेक्षा माना जा सकता है । परंतु प्रतिजीवी गुण आत्म के माय
स्वरूप धर्म नहीं होनेसे तद्गुण भेदका कोई मुख्यता नहीं है । इसलिये सत्तेष्व और निलपत्वकी
अपेक्षा अथवा देशभेदकी अपेक्षा ही इन दोनोंमें भेद समझना चाहिये । ऊपर ऊ, ऊर्ध्वगमन
और मुख आत्माके गुण नहीं हैं इसप्रकारका कथन किया है । यद्वा पर उन दोनों गुणोंका
साधर्म्य प्रतिजीवी गुणोंस है । ऊर्ध्वगमनसे अथगाहनत्व और मुखसे अथवायु गुणका प्रत्यय
करना चाहिये । क्योंकि प्रयागतमें आयु और वेदनीयके अभावसे होनपासे जिन गुणोंको
अथगाहन और अथवायु कहा है । उहें ही यद्वा पर ऊर्ध्वगमन और मुखके मायसे प्रतिपादन
किया है ।

विप्रमुन आचार्य ।

दशपण जगति जलोपर प्क्षायाम् बुद्धि-मुद्ध छायासा ।

महं च निम्नकपो गूरो पचाणमो वगो ॥ २५ ॥

दस कुं जाइ मुद्धो सोमगो मग भग उम्मुषो ।

गण ४५ गिरुवयेवा आइरियो एरिमा टोइ ॥ ३० ॥

मगद-गिरुव-मुमगे सुताय-रिसारओ पदिय किषी ।

भारण बारण-साहण-विरियु-नुतो इ आइरियो ॥ ३१ ॥

एवाविषेय्य आचार्यभ्यो नम इति यावत् ।

हैं उन्हें आचार्य कहते हैं । जो कोई वह विद्यार्थ्यामेंके पारंगत हों, ग्यारह भगके धारी हों अथवा आचार्यागमावके धारी हों अथवा तत्कालीन स्वसमय और परसमयमें पारंगत हों, मेरेके समान निष्काम हों, दृष्टिर्वाचे समान सद्गुणशालि हों, जिन्होंने समुद्रके समान मल अर्थात् दोषोंको बाहिर बेंच दिया हो, और जो साग प्रचारके भयसे रहित हों, उन्हें आचार्य कहते हैं ।

प्रयत्नरूपी समुद्रके जलके मध्यमें ज्ञान करनेसे अर्थात् परमात्मके परिपूर्ण अभ्यास और अनुभवसे जिनकी बुद्धि निर्मल हो गई है, जो निर्दोष वातसे छद्म भावद्वयोंका पालन करते हैं, जो मग पर्यंतके समान निष्काम हैं, जो शूरवीर हैं जो सिंहके समान निर्भीक हैं, जो धर्म अर्थात् धैर्य हैं, वेना, कुरु और जानिसे गुह्य हैं, सौम्यमूर्ति हैं, अन्तरंग और बहिरंग परिग्रहसे रहित हैं, आचार्यके समान निर्लेप हैं, येमे आचार्य परमेष्ठी होने हैं । जो सगके संग्रह अर्थात् शिक्षा और निग्रह अर्थात् शिक्षा या प्रायश्चित्त देनेमें कुशल हैं, जो सब अर्थात् परमात्मके अर्थमें पिशाच हैं, जिनकी कीर्ति सब जगह फैल रही है, जो सारण अर्थात् आचरण, धारण अर्थात् निषध और स्वाधन अर्थात् प्रतीति रक्षा करनेवाली मियाभोंमें निरन्तर उत्तुंग हैं, उन्हें आचार्य परमेष्ठी समझना चाहिये ॥ २९, ३०, ३१ ॥

येमे आचार्योंको नमस्कार हो ।

१ तन मीतिशिवानु लोच व वदनामयम् । अनुधी मीतरवान् रवानुधिसु पववी ॥ भानि रवाडा तथा मृदु मीतिशक्तिमके तन । जमा, रविनाथेति शयना मीतय स्मृता ॥ पचाया २ ५ ४ ५ ५

२ सुदृढाया ॥ ३ कनी अवनो अवतलन कम्ममावामं इति म्मुचपावति सापदिपादिनेवायं शब्दो वर्तन । व्याधिदान यादिना व्यापुला मन्वते अवच परवत् इति वाचम् । तेनाधि कर्तव्यं कर्मेति । अथवा अतलो' इयमप्य आवासयति । मनयमा मनीति कृत्वा सायाधि' अनुमिडनिस्त्वा वंदना प्रतिवर्णनं प्रदाभ्यान् म्मुत्तरं इयमी वदतवचानि ॥ मृदासा वा १२६ टीका

३ गगनगुह्यनुतो सुतयवितारओ पहिपिलो । किरियाचलनतडाया गाहुव आदक वपवो य ॥

मृदाया १५८

४ आ मयावया तत्रियवधिनयकृपा वयन्ते लम्बन्ते निनकातनाधी'वचनया तदाचक्षुमि इवाचार्य ।

‘ णमा न्ना मज्ज माहण ’ अन्नानादिगुहात्मस्वरूप माधयन्तीति माधय ।
 पञ्चमहाप्रपगमिगुमिगुमा अष्टाङ्गीलमहमधराधतुरागीति। तमहमगुणधराध माधय ।

॥-मय नमस्तेनित पतु माहुर मूरति मरिदु मणी ।

गिति उरगवर-मरिग प्रम यय रिमगया माहुर ॥ ३३ ॥

मन्त्रमधूर्मापृ पधेभ्यागिरालयोगारेभ्य माधुभ्यो नम

‘ णमो लेण मयवाहो ’ एव अथात् दारि दीपयता सर्व साधुभोंको ममस्कार हो ।
 जो भजन ज्ञानादिकप गुह्य भाभावे स्वरूपकी साधना करते ॥ ३५ साधु कहते हैं । जो पाप
 मत्तामताको धारण करने हैं, तान गुणियोंस सुरक्षित हैं, अगरह हजार दालके भेदको
 धारण करने हैं और धारार्थी लाभ उत्तर गुणोंका पालन करने हैं, वे साधु परमेशी होते हैं ।

विद्वहे समान पराधमी, गजके समान स्वाभिमानी या उग्रत बेलके समान भद्र
 प्रदरि, मृगके समान भान, पशुके समान निरीह गोवरी-युति करनेवाले, पपाके समान
 नि मय पर मय जगह बिना दयापत्रके विचरनेवाले, मूषके समान तेजस्वी या सफल तत्त्वोंके
 प्रवाहक, उदधि अर्थात् सागरके समान गर्भरि, मन्दराजल अर्थात् सुमेरु परतके समान परीपह
 भान उपमगोंके भान पर भव्य और अग्रेल गदनेवाले, चन्द्रमाके समान शान्तिदायक, मणिके
 समान प्रभा-युजयुन, भित्तिके समान मय प्रचारकी बाधाओंको सहनेवाले, उरग अर्थात् सर्पके
 समान हस्तेक बनाये हुए अनियम माधय-धम्मनिका आदिमें निवास करनेवाले, अम्बर अर्थात्
 आकाशके समान निरालम्बी या निरुप और लक्ष्मण परमपद अर्थात् मोक्षका अन्येषण
 करनेवाले साधु होते हैं ॥ ३३ ॥

मूर्ण कर्मभूमिषोम उत्पन्न ह्य भिक्खल्यती साधुभोंको ममस्कार हो ।

१ मन्त्रमधूर्मापृ पधेभ्यागिरालयोगारेभ्य माधुभ्यो नम इत्यदिपया पुस्तकपय इव निवर्त्तवा
 हुम्मा इव टिगिपिया विरग इव विमयका गणिकिनाय व मयजया मारुपस्वी व अपमसा कुजरा इव तागीता,
 वमसा इव जाडधिमो धाम इव दुद्धिया मन्त्र इव अयवपा सागय इव गमीता चरो इव सामलेता, वूरो इव
 निरुपया जयववग इव जावका वसुधता इव सत्यवगवियया मयवहुयलमा तयमा जलता जगता ।
 मूव २ १ ३ मन्त्रमिज्जन्ममागन्तवत्तन्मयममो अ जो हाह । मममियधरणिज्जन्मवरावपवपतमो
 अ ता मममा ॥ अ न ७

२ शिवात्ममाधन जग सन्त्र वजनि माधवा । समा सन्त्रेन मूणु तम्हा वे सन्त्रमाधवे ॥ मूलावा ५१२
 आ नि १ ५ साधयन्ति ज्ञानादिज्ञानमिमाभमिति साधव । सयती वा सवयन्तु प्यायतीति निरुतिवायात्
 माधव । यन्त्र निरुतिवायात् ज्ञान जम्हा सारनि साधुना । समा य मन्त्रमधु तम्हा वे साधवाहुना ॥ सारायक ॥
 मयमकाणा धारयन्तीति माधव । मयमय व मयवा गुणवतामविश्वमयीयतामिपादनायत् । जयता सर्वेभ्यो
 जीवन्त्या रिता साहा स च न माधवय साधमाधव । मारय वा अरैता न तु बुद्धाद माधव साधमाधव ।
 मवान वा मयवापय साधयन्ति वयन्ति साधान ॥ अरत साधयन्ति नन्त्रावरणासाधयन्ति मयिधाययन्ति ॥
 दुनयनिरावायां नि सवमाधव मयमाधव ॥ । जयता मययु धवकान् मयवेय जयता सन्त्रानि दक्षिणापद

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

... ..

परोधापरोधकृतो भेदो वस्तुपरिच्छिन्नं प्रत्येकत्वान् । नैकस्य ज्ञानस्यावस्थाभेदता भेदो निर्मलानिर्मलावस्थावस्थितदर्पणस्यापि भेदापत्ते । नावयवावयवविकृतो भेद अयपरम्या-वयविनोऽप्यतिरेकात् । सम्पूर्णरत्नानि देवो न तदेकदेश इति चेन्न, रत्नैकदेशस्य देवत्वाभावे समस्तस्यापि तदमत्वापत्ते । न चाचार्यादिस्थितरत्नानि कृत्वन्मर्मधूपकनृणि रत्नैरुदे-त्वादिति चेन्न, अमृतमूहकार्यस्य पलाशराशिदाहस्य तत्तृणादप्युपलम्भान् । तस्मादाचार्या दयोऽपि देवा इति स्थितम् ।

विगताशेषलपेषु मिदेषु सत्स्वईता मलपानापादौ विमिति नमस्कार त्रिपत् इति चेन्न दोष, गुणाधिकमिदेषु भेदाधिक्यनिबन्धनान् । अमत्यईत्याप्तागमपदार्थावगमो

अभाष्य होता जाता है, वैसे ही वैसे अमृत रत्नोंके दोष अवयव अपने आप प्रगट होने जाते हैं । इसलिये उनमें कारण-कार्यपत्ता भी नहीं बन सकता है । इसीप्रकार आचार्यादिक आर सिद्धोंके रत्नोंमें परोक्ष और प्रत्यक्ष अर्थ भेद भी नहीं माना जा सकता है, क्योंकि, वस्तुके ज्ञान सामान्यही भवेषा दोनों एक हैं । केवल एक ज्ञानके अवस्थाभेदमें भेद नहीं माना जा सकता है । यदि ज्ञानमें उपाधिहृत अवस्था-भेदसे भेद माना जाये तो निर्मल और मलिन दशाको प्राप्त दर्पणमें भी भेद मानना पड़ेगा । इसीप्रकार आचार्यादिक और सिद्धोंके रत्नोंमें अवयव आर अवयवों अर्थ भी भेद नहीं है, क्योंकि, अवयव अवयवोंसे सर्वथा भिन्न नहीं रहते हैं ।

गुरा—सपूर्ण रत्न अर्थात् पूर्णताको प्राप्त रत्नत्रयको ही देय माना जा सकता है, रत्नोंके एकदेशको देय नहीं माना जा सकता ।

समाधान—वेत्ता कहता भी उचित नहीं है, क्योंकि रत्नोंके एकदेशमें देयपताक अभाष्य मान लेने पर रत्नोंकी समग्रतामें भी देयपता नहीं बन सकता है । अर्थात् जो कार्य जिनके एकदेशमें नहीं देखा जाता है वह उसकी समग्रतामें कहासे आ सकता है ?

शुद्धा—आद्यादिद्वयमें स्थित रत्नत्रय समस्त जनोंके क्षय करनेमें समर्थ नहीं हो सकता है, क्योंकि उनके रत्न एकदेश है ।

समाधान—यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, जिसप्रकार पलाश-राशिदाहरूप अर्थात्-समूहका कार्य अग्निने एक जणस भी देखा जाता है, उसीप्रकार यहाँ पर भी समग्रता साक्ष्य है । इसलिये आद्यादिद्वय भी दृश्य है यह बात निश्चित हो जाती है ।

गुरा—सय प्रकारक कम-रूपमें रहित सिद्ध-परमेष्ठीके विद्यमान रहत हुए अघातिया जनोंके रूपसे युक्त अरिहत्ताको आदिमें नमस्कार क्यों किया जाता है ?

समाधान—यह बात सत्य नहीं है, क्योंकि, सबसे अधिक गुणवाले सिद्धोंमें भेदाका अभिज्ञात कारण अरिहत्त परमेष्ठी ही है अर्थात् अरिहत्त परमेष्ठीके निमित्तसे ही अधिक गुणवाले सिद्धोंमें सबसे अधिक भेदा उत्पन्न होती है । अथवा यदि अरिहत्त परमेष्ठी न हात ता हम लोगोंको भास आगम और पदार्थोंका परिज्ञान नहीं हो सकता था । किन्तु अरिहत्त परमेष्ठीके

न भवेदस्मत्पार्श्वानाम्, मनात्तथैतत्प्रमादादित्युपकारापेक्षया सादारहंस्त्वमस्मान् कियत् ।
न पञ्चपातो दोषाय पुमपक्षरुचे श्रेयोहेतुत्वात् । अद्वैतप्रधाने गुणीभूतद्वैते द्वैतनिवन्धनस्य
पथपातस्यानुपपत्तेश्च । आप्तश्रद्धाया आप्तागमपदार्थनिषयश्रद्धाधिस्यनित्यधनस्य
पनां सार्थनामानौ नमस्कार । उक्तं च—

जस्मन्निध धम्मन् गिम्मे तस्मत्तिथ येणइय पउज ।

समागं त भिरन्यत्तणं याएण ताया मणसि वि गित् ॥ ३४ ॥

मगलं धमं कायं मय ।

मरादि निमित्तमुच्यते । कस्म निमित्तं ? मुत्तादागम् । त कथं जाणिमि

प्रमाण इहैव रस बोधार्थं प्राप्ति हुई है । इत्यन्त्रिये उपकारकी अपेक्षा भी आदिम भविष्यत्को
ममस्कार किया जाता है ।

॥ १ ॥ कहे कि इत्यन्त्रिय आदिम भविष्यत्को ममस्कार करना तो पक्षपात है ? रस
का ध्यान उठा देने है कि पक्षा पक्षपात दोषोत्पादक नहीं है । किन्तु शुभ पक्षमें रहनेमें वह
काम्य है । तथा द्वैतार्थों में जो कस्मिं भक्तिकी प्रशस्ततामें लिखे गए ममस्कार
हैं, उनमें से एक भी तो नहीं निकलता है ।

निमित्तार्थ—काम्य नहीं समझें जहाँ वे। परन्तु अन्तर्धर्मों की प्रतीति और अधिक
से रहने के लिये है । परन्तु तथा परमार्थियों का ममस्कार करनेमें यदि प्रयत्नतया गुणोंकी भोज
करते हैं काम्यत्व का प्रशस्तता नहीं है । इत्यन्त्रिय तथा पक्षपात की प्रतीति भी समझ नहीं है ।

अन्तर्धर्म ध्यान है । भाव, भाग्य और पदार्थोंके विषयमें जो ध्यान उत्पन्न होती है
इस काम्य के लिये काम्य है । यही आदिम भविष्यत्को ममस्कार किया गया है । कहा भी है

उत्पन्नं धर्मं धर्मं ज्ञानं प्राप्तं च उच्यते सार्थं विनयं युक्तं होकर प्रगुणि काय
का । मगलं धमं कायं मय । अथ निमित्तका कथन करना है—
मगलं धमं कायं मय । अथ निमित्तका कथन करना है—

मगलं धमं कायं मय । अथ निमित्तका कथन करना है—

मगलं धमं कायं मय । अथ निमित्तका कथन करना है—

मगलं धमं कायं मय । अथ निमित्तका कथन करना है—

मगलं धमं कायं मय । अथ निमित्तका कथन करना है—

मगलं धमं कायं मय ।

मगलं धमं कायं मय । अथ निमित्तका कथन करना है—

मगलं धमं कायं मय । अथ निमित्तका कथन करना है—

मगलं धमं कायं मय । अथ निमित्तका कथन करना है—

मगलं धमं कायं मय । अथ निमित्तका कथन करना है—

मगलं धमं कायं मय । अथ निमित्तका कथन करना है—

सुसारदारुम् ॥ अण्णस्मेति ? पयसादो । ' भोयण वेलाण संधयमाणि ' ति वयणादो लोण इव । मद्ध-अध-अधकारणं सुव-भोकरा मोकरकारणाणि निस्सरेव-णप-पमाणाणि योग दारेहि आदिगम्म भविय-त्तणो जाणदु ति सुत्तमोडण्ण अत्थदो तित्थयरादो, मधदा मणहर-देवादो ति ।

द्रव्यभाराभ्यामकृत्रिमत्वरत्नं सप्त स्थितस्य धृतस्य कथमवतार इति चेत्तत्सर्वं मभविष्यद्यपि द्रव्यार्थिजनयोऽविबक्षिष्यत् । पर्यायार्थिजनयापेक्षायामवतारस्तु पुनर्युक्त एव ।

उत्पन्न-जन-पदस्ये सुय-णाणाश्च-दिप-त्तेष्व ।

पक्षस्तु भ-उ-जारा इव सुय-रविणो दरे उदयो ॥ ३५ ॥

साम्प्रत हेतुरूप्यते । तत्र हेतुद्विविधं प्रत्यक्षहेतुं परोक्षहेतुरिति । कस्य हेतु ?

श्रुता—यह कसे जाना जाता है कि यहाँ पर मृदावतारके निमित्तका कथन किया जाता है, अन्यथा नहीं ।

समाधान—यह बात प्रकरणसे जानी जाती है । जैसे भोजन करते समय ' स-अय हाभो ' इसप्रकारके घबनसे रुंधे समझका ही ज्ञान होता है उसीप्रकार यहाँ पर भी समझनेवाले कहिये कि यहाँ पर म-अयवतारके निमित्तका ही कथन किया जा रहा है ।

बज्र, ब-अध, ब-अधे कारण, सुव, मोक्ष और मोक्षके कारण, इन छह तत्त्वोंके निक्षेप, मय, प्रमाण और अनुयोगद्वारासे भलीभाँति समझकर म-अयजन उनके ज्ञाता बनें, इसलिये यह मूढ़ प्रथम अर्थ प्रकृष्टनाका अपेक्षा तीर्थकरसे और म-अयजननाकी अपेक्षा गणधरदेवसे अवतीर्ण हुआ है ।

श्रुता—द्रव्य और भाषासे अकृत्रिम होनेके कारण सत्यदा एकरूपसे अवस्थित भूतका अवतार कैसे हो सकता है ?

समाधान—यह शका तो तब बनती जब यहाँ पर द्रव्याधिक मयकी विवक्षा होती । परंतु यहाँ पर पर्यायार्थिक मयकी अपेक्षा होनेसे भूतका अवतार तो बन ही जाता है ।

अथ जीव भूतज्ञानरूपी सूर्यके दीप्त तेजसे छह द्रव्य और मय पराधोंको देनें अर्थात् भलीभाँति जानें, इसलिये भूतज्ञानरूपी सूर्यका उदय हुआ है ॥ ३ ॥

अब हेतुका कथन किया जाता है,

हेतु दो प्रकारका होता है, एक प्रत्यक्ष हेतु और दूसरा परोक्ष हेतु ।

श्रुता— यहाँ पर किसके हेतुका कथन किया जाता है ?

मनया अ निष् । ५ ४ ९ ३३

१ प्रतिपु यन्मस्य इति पाठ ।

२ उत्पन्नपदपरच लुप्तक-दुष्प्रसिद्धिजनकान् । देसर्गु म-उ-जारा अय-उ-जारा स-अय ॥

ति ५ २ ३४

अत्रादशसंख्यायां धेनीनामनिनिर्निषण्णाम् ।

राजा स्वामुकुटपरं कान्तकं सवन्तागाम् ॥ ३६ ॥

एतद्व्यवज्जतीओ गाहाओ—

द्वयं दृष्टि-रहा-द्विना सेनायु मति-सेहि-दंडय ।

पुर-भउत्ति-दग्ग-वइसा तद मइयरा येन ॥ ३७ ॥

गणराजमह-नगर पुरादिया दृष्टिदा मइमसा ।

अट्टाह मेणीओ पदादा मेडिया होनि ॥ ३८ ॥

पृथक्ता इण्डनयय-जर्गं गणिमुग्गणे-मइमात्राय ।

मत्रि पुरोहित-सेना-पनाल-तल्लर-मइयरा स्थु मेण्य ॥ ३९ ॥

पञ्च-गनरपनीनामगिराओऽधो-ररो मइति लेवे ।

राजसहमाधिपति मतीयतेऽमी मइराज ॥ ४० ॥

दिमइमराजनाया मनीविमिरय्येऽधमइरिक् ।

मन्त्रिकश्च तथा स्वाधु सहस्रान्नीशपति ॥ ४१ ॥

जो मन्त्रीभूत भटारह भेलियोका अधिपति हो मुहुटको धारण करनेवाला हो भार सथा करनेवालोंके लिये कल्पवृक्षके समान हो उसे राजा कहते हैं ॥ ३६ ॥

यहा मन्त्रणमें उपयोगी गाथाएँ उद्धृत की जाती हैं ।

घाहा, हापी, रथ इनके अधिपति, सेनापति, मन्त्री, भेरी, दण्डपति, गृह, क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, मन्दार गणराज अमात्य, तल्लर, पुरोहित स्वामिमान्नी महामात्र और पैदल सेना इसतरह सब मिलाकर अगारह भेलिया होती हैं ॥ ३७, ३८ ॥

अथवा हापी घाहा रथ और पदादे ये चार सेनाके अंग, दण्डनायक, ब्राह्मण, क्षत्रिय वश्य और गृह ये चार वर्ण दलिहपति गणराज महामात्र, मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, अमात्य तल्लर और मइयरा ये अट्टाह भेलिया होती हैं ॥ ३९ ॥

लोकमें पावसा राजाओंके अधिपतिओ अधिराज कहते हैं और एक हजार राजाओंके अधिपतिओ महाराज कहते हैं ॥ ४० ॥

पण्डितजन वा हजार राजाओंके स्वामाको अधमपन्नीक कहते हैं और चार हजार राजाओंके स्वामाको मण्डलीक कहते हैं ॥ ४१ ॥

वरणम् अथा मइममाणा गीत ४३ । दगा स्वा राजा जिनपत्त सवम्भ ॥ का. ५६

राजाय राजाव य मानया ४४ । एहस्त्वावइसा रव न त्र म रा परा ॥ मन्त्रावमिन्त्रावइसा मन्त्रा मन्त्रा ॥ मन्त्रावमिन्त्राव य अइयरा याने मन्त्रा ॥ पि १ ४२ ४४

१ तिर सिद्धिना दिगपर ररणिमम हम्ह पाण ।
 गिरि पर पर सारिण हम्ह चरित स वमनचित ॥ ४७ ॥
 मरु व गिरिकय गड-म वि-म उम्मु ।
 मम्हसमपुसमुररु परम मसा ॥ ४८ ॥
 ततो भेन सुहाइ सरगार देर मनुष गयराण ।
 उम्मु पड मम्ह पुड सिद्धि-मु नि परगामो ॥ ४९ ॥
 त्रिभ मादि रर चरणी चरणी तगपार दिगपरपो ।
 वम-म वडम पुसओ विग वपगमिगेरहा सुहयो ॥ ५० ॥
 चरणी त्रिभि ररण मुमविग हियपासविद गेहणप ।
 उम्मु-सपड रर सिद्धि-ररपर मम्ह ॥ ५१ ॥

रहित सुख तथा पुत्रोपयोग सिद्ध होना है ॥ ४६ ॥

जिन्होंने सिद्धान्तका उत्तम प्रकरणसे अभ्यास किया है वेसे पुण्योका ज्ञान तुर्यकी विरणोका समान निर्मल होता है और जिसमें अपने बिलको कदाचीन कर लिया है वेसा चन्द्रमार्गी विरणोके समान चारित्र होता है ॥ ४७ ॥

प्रयत्न अर्थात् परयात्मके अभ्याससे भेदके समान निष्कण्ड, अठ मल रहित, तीन मूढताओंसे रहित और अनुपम सत्यद्वयन भी होता है ॥ ४८ ॥

उक्त प्रयत्नके अभ्याससे ही देव मनुष्य और विद्याधरोंके सर्व सुख प्राप्त होते हैं तथा अठ कर्मोंके उन्मूलित हो जानेके बाद प्राप्त होनेवाला विशाल सिद्ध सुख भी प्रयत्नके अभ्याससे ही प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥

यह त्रिनागम जीवके मोहरूपी ईधनके भस्म करनेके लिये भौतिक समान है, अज्ञान रूपी गात्र अघकारकी मष्ट करनेके लिये सूर्यके समान है, कर्ममल अर्थात् इन्द्रियकर्म, और कर्मकतुल्य अर्थात् आवकर्मके प्राज्ञ करनेवाला समुद्र समान है और परम सुख है ॥ ५० ॥

अज्ञानरूपी अघकारकी हरण करनेवाले, अघकारियोंके इन्द्रियरूपी कर्मोंको विफल करनेवाले और संपूर्ण जीवोंके लिये यथ अर्थात् मोक्षमार्गको प्रकाशित करनेवाले वेसे सिद्धान्तरूपी दिवाकरकी भयो ॥ ५१ ॥

१ सोरठे त्रिचरण कथनात् नर व होवादि । अविषयमात्रसुखे तिसदमरुदये पत्ता ॥
 तन्मार्गादु जाल मरु कैल - जीवा । अन् वेहु उक्त चारन चित्त हरो मरा ॥ कदमभरणी
 मरुतनविदिद हयामल । जायल परमपण सत्यम-ब-म म ॥ १ प १ ४९ ५१

२ सत्यम-ब-म त-अ न सत्य जायामला । नरा त्रिचरण त्रिनागमध्यानुपदपत्ता ॥ १ प १, ५२

३ त्रिहु त्रिचरणविवादि १ इति पाठ

अथवा जिनपालितो निमित्तम्, हेतुमोक्ष, शिक्षाणा हपात्पादन निमित्तहेतुकथन प्रयोजनम् । परिमाणमुच्यते । अस्मिन् पय मत्राय पटित्ति-अणियोगादरेदि मनेन, अत्यन्ते जणत । पट पट्टञ्च जट्टारह पट-महम्म । शिक्षाणा हपात्पादनार्थं मतिव्याकुलता विनाशनाथं च परिमाणमुच्यते । णाम जीवट्टाणमिदि । कारण पुञ्च न वतव्य ।

तत्त्व कत्ता दुविहो, अत्य-कत्ता गय-कत्ता चेदि । तत्त्व अत्य-कत्ता दव्यादीदि चउहि पम्पिज्जट्टि । तत्र तस्य तावद् द्रव्यनिरूपण क्रियते । म्येद-रजो मल रक्तपत पट्टाक्षरमोघादि-अरीरगतागेपटोपादूषित समचतुरम्भमव्यन-अन्नवृषभमहनन-दिष्यमथ प्रमाणवित्तनखरोम निर्भूषणायुधाम्भमय-मौम्यउदमादि विगिष्टेदधर. चतुविधापमर्ग

अथवा, जिनपालितो ही इम भुताग्रकारके निमित्तं हे भोद उत्तका हेतु मोक्ष हे, भर्षात् मोक्षके हेतु जिनपालितके निमित्तमे इम भुतका भवता हुभा हे । यहा पर निमित्त भीर हेतुके कथन करनेमे पाठकजनोंको दर्पका उत्पन्न कराना ही प्रयोजन है ।

अथ परिमाणका व्याख्यात करने हे, अ रर, पद, संघात, प्रतिपत्ति भोद भुयोण डापेर्षी भवेता भुतका परिमाण संरघात हे भोद भये भर्षात् तद्वाच्य विदयर्षी भवेता भवता हे । पदर्षी भवेता भवता ह भवता प्रमाण है । शिक्षकजनोंको दर्प उत्पन्न करनेके लिये भीर प्रतिपत्तिर्षी व्याख्याता हूत करनेके लिये यन् पर परिमाण कहा गया है ।

नाम इम शास्त्रका नाम अवगन्त है ।

कारण कारणका व्याख्यात पहले कर जाये है । उर्माप्रगत यहा पर भी उमका व्याख्यात करना चाहिये ।

कर्महे दो भेद है, भर्षकर्ता भीर प्र वर्त्तता । इनममे भर्षकर्ताका द्रव्यादिष बार दारोंके शास्त्र निरूपण किया जाता है । उनममे पहले द्रव्यर्षी भवेता भर्षकर्ताका निरूपण करते हैं—

एवमेता, अन्न भर्षात् बाण कारणोंमे नरीरम उगवत् हुभा मत्र, मल भर्षात् शरीरमे उगवत् हुभा मत्र कम नेत्र भान कत्तामय बाणाका होवता अदि शरीरम होनेवात् मत्त होनेमे नरीर समअनुग्रह मव्यन, अन्नवृषभनागर मदनन, दिव्य गुण-धमरी, मत्त योग प्रमाणका मल मत्र वेमवने जन्मवण भगुत्त, मत्त भीर भवर्त्तित मीरय गुण भादिमे

१ विद्वत् २ विद्वत् ३ विद्वत् ४ विद्वत् ५ विद्वत् ६ विद्वत् ७ विद्वत् ८ विद्वत् ९ विद्वत् १० विद्वत् ११ विद्वत् १२ विद्वत् १३ विद्वत् १४ विद्वत् १५ विद्वत् १६ विद्वत् १७ विद्वत् १८ विद्वत् १९ विद्वत् २० विद्वत् २१ विद्वत् २२ विद्वत् २३ विद्वत् २४ विद्वत् २५ विद्वत् २६ विद्वत् २७ विद्वत् २८ विद्वत् २९ विद्वत् ३० विद्वत् ३१ विद्वत् ३२ विद्वत् ३३ विद्वत् ३४ विद्वत् ३५ विद्वत् ३६ विद्वत् ३७ विद्वत् ३८ विद्वत् ३९ विद्वत् ४० विद्वत् ४१ विद्वत् ४२ विद्वत् ४३ विद्वत् ४४ विद्वत् ४५ विद्वत् ४६ विद्वत् ४७ विद्वत् ४८ विद्वत् ४९ विद्वत् ५० विद्वत् ५१ विद्वत् ५२ विद्वत् ५३ विद्वत् ५४ विद्वत् ५५ विद्वत् ५६ विद्वत् ५७ विद्वत् ५८ विद्वत् ५९ विद्वत् ६० विद्वत् ६१ विद्वत् ६२ विद्वत् ६३ विद्वत् ६४ विद्वत् ६५ विद्वत् ६६ विद्वत् ६७ विद्वत् ६८ विद्वत् ६९ विद्वत् ७० विद्वत् ७१ विद्वत् ७२ विद्वत् ७३ विद्वत् ७४ विद्वत् ७५ विद्वत् ७६ विद्वत् ७७ विद्वत् ७८ विद्वत् ७९ विद्वत् ८० विद्वत् ८१ विद्वत् ८२ विद्वत् ८३ विद्वत् ८४ विद्वत् ८५ विद्वत् ८६ विद्वत् ८७ विद्वत् ८८ विद्वत् ८९ विद्वत् ९० विद्वत् ९१ विद्वत् ९२ विद्वत् ९३ विद्वत् ९४ विद्वत् ९५ विद्वत् ९६ विद्वत् ९७ विद्वत् ९८ विद्वत् ९९ विद्वत् १०० विद्वत् १०१ विद्वत् १०२ विद्वत् १०३ विद्वत् १०४ विद्वत् १०५ विद्वत् १०६ विद्वत् १०७ विद्वत् १०८ विद्वत् १०९ विद्वत् ११० विद्वत् १११ विद्वत् ११२ विद्वत् ११३ विद्वत् ११४ विद्वत् ११५ विद्वत् ११६ विद्वत् ११७ विद्वत् ११८ विद्वत् ११९ विद्वत् १२० विद्वत् १२१ विद्वत् १२२ विद्वत् १२३ विद्वत् १२४ विद्वत् १२५ विद्वत् १२६ विद्वत् १२७ विद्वत् १२८ विद्वत् १२९ विद्वत् १३० विद्वत् १३१ विद्वत् १३२ विद्वत् १३३ विद्वत् १३४ विद्वत् १३५ विद्वत् १३६ विद्वत् १३७ विद्वत् १३८ विद्वत् १३९ विद्वत् १४० विद्वत् १४१ विद्वत् १४२ विद्वत् १४३ विद्वत् १४४ विद्वत् १४५ विद्वत् १४६ विद्वत् १४७ विद्वत् १४८ विद्वत् १४९ विद्वत् १५० विद्वत् १५१ विद्वत् १५२ विद्वत् १५३ विद्वत् १५४ विद्वत् १५५ विद्वत् १५६ विद्वत् १५७ विद्वत् १५८ विद्वत् १५९ विद्वत् १६० विद्वत् १६१ विद्वत् १६२ विद्वत् १६३ विद्वत् १६४ विद्वत् १६५ विद्वत् १६६ विद्वत् १६७ विद्वत् १६८ विद्वत् १६९ विद्वत् १७० विद्वत् १७१ विद्वत् १७२ विद्वत् १७३ विद्वत् १७४ विद्वत् १७५ विद्वत् १७६ विद्वत् १७७ विद्वत् १७८ विद्वत् १७९ विद्वत् १८० विद्वत् १८१ विद्वत् १८२ विद्वत् १८३ विद्वत् १८४ विद्वत् १८५ विद्वत् १८६ विद्वत् १८७ विद्वत् १८८ विद्वत् १८९ विद्वत् १९० विद्वत् १९१ विद्वत् १९२ विद्वत् १९३ विद्वत् १९४ विद्वत् १९५ विद्वत् १९६ विद्वत् १९७ विद्वत् १९८ विद्वत् १९९ विद्वत् २००

वि १, १, १

१ विद्वत् २ विद्वत् ३ विद्वत् ४ विद्वत् ५ विद्वत् ६ विद्वत् ७ विद्वत् ८ विद्वत् ९ विद्वत् १० विद्वत् ११ विद्वत् १२ विद्वत् १३ विद्वत् १४ विद्वत् १५ विद्वत् १६ विद्वत् १७ विद्वत् १८ विद्वत् १९ विद्वत् २० विद्वत् २१ विद्वत् २२ विद्वत् २३ विद्वत् २४ विद्वत् २५ विद्वत् २६ विद्वत् २७ विद्वत् २८ विद्वत् २९ विद्वत् ३० विद्वत् ३१ विद्वत् ३२ विद्वत् ३३ विद्वत् ३४ विद्वत् ३५ विद्वत् ३६ विद्वत् ३७ विद्वत् ३८ विद्वत् ३९ विद्वत् ४० विद्वत् ४१ विद्वत् ४२ विद्वत् ४३ विद्वत् ४४ विद्वत् ४५ विद्वत् ४६ विद्वत् ४७ विद्वत् ४८ विद्वत् ४९ विद्वत् ५० विद्वत् ५१ विद्वत् ५२ विद्वत् ५३ विद्वत् ५४ विद्वत् ५५ विद्वत् ५६ विद्वत् ५७ विद्वत् ५८ विद्वत् ५९ विद्वत् ६० विद्वत् ६१ विद्वत् ६२ विद्वत् ६३ विद्वत् ६४ विद्वत् ६५ विद्वत् ६६ विद्वत् ६७ विद्वत् ६८ विद्वत् ६९ विद्वत् ७० विद्वत् ७१ विद्वत् ७२ विद्वत् ७३ विद्वत् ७४ विद्वत् ७५ विद्वत् ७६ विद्वत् ७७ विद्वत् ७८ विद्वत् ७९ विद्वत् ८० विद्वत् ८१ विद्वत् ८२ विद्वत् ८३ विद्वत् ८४ विद्वत् ८५ विद्वत् ८६ विद्वत् ८७ विद्वत् ८८ विद्वत् ८९ विद्वत् ९० विद्वत् ९१ विद्वत् ९२ विद्वत् ९३ विद्वत् ९४ विद्वत् ९५ विद्वत् ९६ विद्वत् ९७ विद्वत् ९८ विद्वत् ९९ विद्वत् १००

वि १, १, १

धुधादिपरीपह-रागद्वेष-प्रापेन्द्रियादिमग्नदोषगोचरसतिज्ञानं योननान्तरदूरसमीपस्थाष्टा-
दगभाषा-ममहतगतवभाषायुत निर्योगेवमनुष्यभाषाकारन्यूनधिक्-भावातीतमधुरमनोहर-
गम्भीरशिष्टवागतिशयमम्पन्न भवनशमिवाणव्यन्तर-ज्योतिष्-कल्पवासान्द्रि-विद्याधर
पत्रयति चत् नारायण राजाधिराज-महाराजार्धमहामण्डलीवेन्द्राभि ताम्र भूति सिंह-व्याता
त्रि-वे-विद्याधर मनुष्यपि निर्योगिन्नेम्य प्राप्तपूजातिशयो महावीरोऽर्धवर्णा ।

तत्थ येन विमिष्टात्य-कथा परुविजदि—

पच सेह पुरे रम्मे रिउते प इत्तमे ।

णाणा दुम-गमाएणे देर नणन बरिदे' ॥ ५२ ॥

महावीरेण यो वडिओ भरिय लोपस ।

अत्रोपयोगिनौ श्लोकी—

युक्त पक्षे विशिष्ट शरीरको धारण करनेवाले, देव, मनुष्य, निर्वैद्य और अचेतनकृत कार-
मकारके उपमर्ग, सुधा आदि बाविस परगह राग, द्वेष, कदाप और शत्रिय-विषय
आदि सपूर्ण दोषोंसे रहित, एक योगनके भीतर दूर भयया समीप बैठे हुए भठारह
महाभाषा और सातसो लघुभाषाओंसे युक्त ऐसे निर्वैद्य, देव और मनुष्योंकी भाषाके
रूपमें परिणत होनेवाली तथा शून्यता और अधिकतासे रहित, मधुर, मनोहर,
गम्भीर और विशद ऐसी भाषाके अनिशयको प्राप्त, भवनवासी, स्वमत, ज्योतिष्क,
कप्यासी देवोंके इन्द्रोंसे, विद्याधर, सम्यक्, बलदेव, नारायण, राजाधिराज, महाराज,
अधमण्डलक, महामण्डलक, राजाओंसे, इन्द्र, अग्नि, वायु, भूति, सिंह, व्याल आदि देव तथा
विद्याधर, मनुष्य, ऋषि और निर्योगोंके इन्द्रोंसे पूजाके अनिशयको प्राप्त भी महावीर तीर्थकर
अर्धवर्णा समझना चाहिये ।

अथ श्रेष्ठ विशिष्ट अर्धवर्णाका निरूपण करते हैं—

पंचशीलपुरमें (पञ्चपटार्द्ध अर्धान् पाव पर्यन्तसे शोभायमान राजपुत्र नगरके पास)
रमणीय, नानाप्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त, देव तथा इन्द्रियोंसे युक्त और सर्व पर्यन्तमें उत्तम देने
विपुलचल नामके पर्यन्तके ऊपर भगवान् महावीरने अर्ध वीर्योंको उपदेश दिया अर्धान् दिग्ग
ध्यानिके द्वारा भाषधृत प्रगट किया ॥ २ ॥

इमविपर्यमे द्वे उपयोगी श्लोक हैं—

१ नापचपमाहर्त्ताऽनिरियामांमपुनविबुधपिवाही । विदुषमुग्रमागता विठदिविबुधवत्पत्नीताही ॥

अ. तस्यहामीहा गुल्फमागता वि सतमवत्तमा । अक्षरत्रयकमपचपमणीवाहीव तवम्मातामी ॥ एरावि मावता
माउरदताऽकृतवाता । पारिषय एककाल भवजनावदकमाती ॥ ममपुनरजोविबुधकपवाही केनवदहि ।
विजाहीवि चरिष्युमहि पति नारा वि ॥ पदवि जगति विविदवराणांविदवराणी । विदुवत्तुनाये वरापी
अवराणा ॥ वि प २ ६ - ६४

२ जपवत्ताया गाथेन विदुवाचनविदे इति वपुषवरत्नामन्दरीरम्भदे । दुग्धेवरवदने दुग्धद

अङ्गिणि मीन्द्रादन्तं चतुर्भुजो धाम्निशिषि आ वेभार ।
 विजृम्भितैर्दन्तदुग्धो विहोमी रिपौ तत्र ॥ ५३ ॥
 अमुना त्रिभुजो बाह्यान्तं दसौर्ध्वेषु तत्र ।
 इत इतिरेतां दन्तु सौ वृक्षमष्टा ॥ ५४ ॥

एतं वेद-दन्तिरेते ।

एतं कान्तो यथ कमा पमविज्जादि —

विजृम्भितैर्दन्तदुग्धो विहोमी रिपौ तत्र ।
 अमुना त्रिभुजो बाह्यान्तं दसौर्ध्वेषु तत्र ॥ ५५ ॥

युगे विजृम्भितैर्दन्तदुग्धो विहोमी रिपौ तत्र ।
 अमुना त्रिभुजो बाह्यान्तं दसौर्ध्वेषु तत्र ।
 इत इतिरेतां दन्तु सौ वृक्षमष्टा ॥ ५६ ॥

अमुना त्रिभुजो बाह्यान्तं दसौर्ध्वेषु तत्र ।
 अमुना त्रिभुजो बाह्यान्तं दसौर्ध्वेषु तत्र ।
 इत इतिरेतां दन्तु सौ वृक्षमष्टा ॥ ५७ ॥

इत इतिरेतां दन्तु सौ वृक्षमष्टा ॥ ५८ ॥

अमुना त्रिभुजो बाह्यान्तं दसौर्ध्वेषु तत्र ।

अमुना त्रिभुजो बाह्यान्तं दसौर्ध्वेषु तत्र ।
 अमुना त्रिभुजो बाह्यान्तं दसौर्ध्वेषु तत्र ।
 इत इतिरेतां दन्तु सौ वृक्षमष्टा ॥ ५९ ॥

अमुना त्रिभुजो बाह्यान्तं दसौर्ध्वेषु तत्र ।
 अमुना त्रिभुजो बाह्यान्तं दसौर्ध्वेषु तत्र ।
 इत इतिरेतां दन्तु सौ वृक्षमष्टा ॥ ६० ॥

अमुना त्रिभुजो बाह्यान्तं दसौर्ध्वेषु तत्र ।

अमुना त्रिभुजो बाह्यान्तं दसौर्ध्वेषु तत्र ।

इत इतिरेतां दन्तु सौ वृक्षमष्टा ॥ ६१ ॥

अमुना त्रिभुजो बाह्यान्तं दसौर्ध्वेषु तत्र ।

अमुना त्रिभुजो बाह्यान्तं दसौर्ध्वेषु तत्र ।

अमुना त्रिभुजो बाह्यान्तं दसौर्ध्वेषु तत्र ।

अमुना त्रिभुजो बाह्यान्तं दसौर्ध्वेषु तत्र ।

अमुना त्रिभुजो बाह्यान्तं दसौर्ध्वेषु तत्र ।

अमुना त्रिभुजो बाह्यान्तं दसौर्ध्वेषु तत्र ।

अमुना त्रिभुजो बाह्यान्तं दसौर्ध्वेषु तत्र ।

४ सारन पन्थ मय पन्थे पम्पहि सावणे बहुते ।

परिचर पुन-निमे नियुक्ती दु अभिनिहि ॥ ५६ ॥

साता-बट्टा-परिचर हर मुष्टे सुहोदर रीतिगे ।

अभिनिस्म पन्थ-जोण जय जुगौशी मणेयज्जो ॥ ५७ ॥

तयो बालपरिच्छेदे ।

भारताऽर्पकता निरूप्यते, ज्ञानावरणादि-निधय व्यवहारापायातिशयनातानन्त
ज्ञान-रसुन-सुख-योगे धारिक मयस्कन्व-दान-साम भोगोपभोग-निधय-व्यवहार-प्राप्त्यति
प्राप्तभूत नय-वेदत-लक्षि परिणत । उक्त च—

हृष्यापभर्मे, प्रतिपदाक दिन ज्ञान बालके समय आकाशमें अभिजित् नक्षत्रके उदित रहने पर
तीर्थ अर्थात् धर्मतीर्थकी उत्पत्ति हुई ॥ ५६, ५७ ॥

आपणहृष्या प्रतिपदाके दिन दद्रुमूहर्मे सूर्यका नुम उदय होने पर आर अभिजित्
नक्षत्रक प्रथम योगमें जब युगाकी आदि हुई तभी तीर्थ की उत्पत्ति समझता चाहिये ॥ ५७ ॥

यह बाल-पारेच्छेद हुआ ।

अब भाषणी अपराध अथकताका निरूपण करते हैं—

ज्ञानावरणादि मात बर्माके निग्रय-व्यवहाररूप विनाश-कारणोंकी विशेषतासे उत्पन्न हुए
अनन्त ज्ञान, दान, सुख और तीर्थ तथा क्षाधिक-व्यवस्थ, दान लाभ भोग आर उपभोगकी
निधय-व्यवहाररूप प्राप्तिके अनिर्गम्यसे प्राप्त हुई न। केवल-लक्षियोंसे परिणत भगवान् महावीरने
भाषधुनका उपदेश दिया । अर्थात् निधय आर व्यवहारसे अमेद भेदरूप न। लक्षियोंसे युक्त
होकर भगवान् महावीरने भाषधुनका उपदेश दिया । कहा भी है—

। कामस्य पन्थस्य च न वदन्त्या न वदन्त्या न वदन्त्या । आमजालस्मत्तमि च उत्पत्ति भवति च ॥

ति प १ ६८-९

१ ५०० २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

। १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

दाणे लामे भोगे परिभोगे वीरिए य सम्भत्ते ।

णत्त केवल्ल-लद्धीओ दसण णाण चरित्ते य ॥ ५८ ॥

खीणे दसण-मोहे चरित्त-मोहे चउक्क पाइ तिप्प ।

सम्मत्त विरिय णाण खइयाइ होनि केवल्लिणो ॥ ५९ ॥

उप्पण्णहि अणने णत्तमि य छात्तुमयिप्प णाणे ।

णत्त-विह पयत्त-गमा दिव्वत्तुणी कहेइ मुत्तडं ॥ ६० ॥

एवविधो महारीरोऽर्थकर्ता । तेण महारीणे केवल्लणाणिणा ऋहिदत्तो तमिह चैव काले तस्यैव स्वप्ने खयोवमम-जणिद-चउत्तमल-बुद्धि-सपण्णेण बम्हणेण गोदम-गोतेण मयत्त दुस्सुदि पारएण जीवाजीन-विमय-मदेहं-विणामणद्धुमुरगय-वट्टमाण पाद-मूलेण इदमूणिणा बहारिदो' । उक्त च—

दाग, लाम, भोग, परिभोग, वीर्य, सम्यक्त्व, दान, ज्ञान और चारित्र ये तत्त केवल्ल लक्षणा समझना चाहिये ॥ ८ ॥

दानमोहनीय और चारित्रमोहनीयके भय हो जाने पर तथा मोहनीय कर्मके भय हो जानेके बाद चार घातिया कर्ममिमे दोष तीन घातिया कर्मोंके भय हो जाने पर केवली जितके सम्यक्त्व, वीर्य और ज्ञान ये क्षाधिक भाव प्रगट होते हैं ॥ ९ ॥

भायोपशमिक ज्ञानके नष्ट हो जाने पर और अनन्तरूप केवल्लज्ञानके उत्पन्न हो जाने पर भी प्रवृत्तके पदापेक्षे गर्भित दिव्यध्यानि मूर्तार्थका प्रतिपादन करती हैं । अर्थात् केवल्लज्ञान हो जाने पर भगवान्की दिव्यध्यानि निरनी हैं ॥ १० ॥

इसप्रकार भगवान् महार्षि और अर्थ-कर्ता हैं । इसप्रकार केवल्लज्ञानने विभूयित उन भगवान् महार्षिके द्वाप कहे गये भयको, उर्मा कागमें और उर्मा क्षेत्रमें भयोपशमिदोषसे उत्पन्न हुए चार प्रवृत्तके निर्मल ज्ञानमें युक्त, वर्णसे प्राक्तन, गौतमगोत्री, संपूर्ण दुःखनिर्मे पारगम, भार जीव भर्त्ताविविधक संदेहको दूर करनेके लिये थी वर्त्तमानके पादमूर्तमें उपस्थित हुए येन इन्द्रभूनिने अवधारण किया । कहा भी है—

१ अथ दमकइ य ॥ १०३ ॥ तत्त चारित्र । सम्मत्तणाव गवा खइया त दानि करिणा ॥ १०४ ॥ अ ॥ ५ ८ दमकइ य चरित्तमि य ॥ १०५ ॥ तत्त दसण णाण चरित्तमि य ॥ १०६ ॥ अ ॥ ५ ९ ॥

२ अत्त चउत्तमल बुद्धि सपण्णेण बम्हणेण गोदम गौतेण मयत्त दुस्सुदि पारएण जीवाजीन विमय मदेहं विणामणद्धुमुरगय वट्टमाण पाद मूलेण इदमूणिणा बहारिदो ॥ १०७ ॥ अ ॥ ५ १० ॥

३ अत्त चउत्तमल बुद्धि सपण्णेण बम्हणेण गोदम गौतेण मयत्त दुस्सुदि पारएण जीवाजीन विमय मदेहं विणामणद्धुमुरगय वट्टमाण पाद मूलेण इदमूणिणा बहारिदो ॥ १०८ ॥ अ ॥ ५ ११ ॥

४ अत्त चउत्तमल बुद्धि सपण्णेण बम्हणेण गोदम गौतेण मयत्त दुस्सुदि पारएण जीवाजीन विमय मदेहं विणामणद्धुमुरगय वट्टमाण पाद मूलेण इदमूणिणा बहारिदो ॥ १०९ ॥ अ ॥ ५ १२ ॥

५ अत्त चउत्तमल बुद्धि सपण्णेण बम्हणेण गोदम गौतेण मयत्त दुस्सुदि पारएण जीवाजीन विमय मदेहं विणामणद्धुमुरगय वट्टमाण पाद मूलेण इदमूणिणा बहारिदो ॥ ११० ॥ अ ॥ ५ १३ ॥

गोदण गोदमो विभो वाउन्नेय सङ्गति ।

पामेग इन्द्रमृदि ति सीत्त वङ्गुत्तमो ॥ ६१ ॥

पुणो तेजिन्द्रभृदिना भाव-सुद पञ्चय परिणदेण बारहमाण चोदस पुञ्जाण च गभाणमेवेण चैव मुत्तुत्तण वमेण रयणा वदा । तदो भाव-सुदस्म अत्थ पदाण च तित्थ यरा वत्ता । तिथयरादो सुद-पञ्जाण्ण गोदमो परिणदो वि दव्व-सुदस्स गोदमो वत्ता । ततो गय-रयणा जाणेत्ति । तण गोदमेण दुविहमवि सुदणाण लोहज्जस्स सचादि । तेण वि जव्वामिस्स सचादि । परिणाडिमस्सिदण एदे तिण्णि वि सयल-सु धारया भणिया । अपरिवाडीण पुण सयल सुद पारणा सखेज्ज-सहस्सा ।

गीतमगोत्री, विप्रवर्णी, चारों चेद आर चङ्गविद्याका पारगामी, शीलवान् भोः
प्रायणोम श्रेष्ठ वेत्ता धर्ममात्रमासीका प्रथम गणधर इन्द्रभूति इत नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ६१ ॥

अनन्तर भावधुनरूप पर्यायसे परिणत उच्च इन्द्रभूतिने बारह अग आर चौदह पूर्वरूप प्रयोंकी एक ही मूर्तमें वनसे रचना की । अन भावधुन और अर्थ पदोंके कर्ता तीथकर हैं । तथा तीर्थकरके निमित्तसे गीतम गणधर भूतपर्यायसे परिणत हुए इसलिये द्रव्यभुतके कर्ता गीतम गणधर हैं । इसतरह गीतम गणधरसे प्रप्ररचना हुई । उन गीतम गणधरने दोनों प्रकारका धृतज्ञान लोहाचार्यको दिया । लोहाचार्यने जम्बूस्वामीको दिया । परिपाटी-व्रमसे ये तीनों ही सकलभुतके धारण करनेवाले बने गये हैं । और यदि परिपाटी व्रमकी अपेक्षा न की जाय तो उस समय सत्त्वात् हजार सकल भुतके धारी हुए ।

प्रधानतः समवहरण सम यव प्रवृत्त्य च धातुमानसवाचने पञ्च किं जातमिति नास्ति वा शिगुण विद्या
कीर्त्ति । तदा जीवा रयता निधन भागुमदिन व्रमणा कता । ४० इत्यपनरुधर्तया त जीवादिस्तु
सङ्गात् । तिन्यध्वनिना हरति भूत समवित्तावत । ६ भूता ४५-६४ दव क्रियमाना समवनाल्लभना
भिमिा हृष्टाभ्यगत तानि भूमिभानि-आ भा भागवता 'मा मुक्ता विमव नागलारल्लग्य करयविवा-मूल
धावनि । ननु इन्द्रमुहल कथयतामवधनामा । महाल्लवमध इव गति ॥ समवतले प्रविता बारधर । परं च तव
धीर्वि रङ्गा इत्यम इव सङ्गाहने सन सुने भयन । तदा मयवता बीत्तामातिन रि वष अधि जीवा उराटु नाथ
वि समजा नु-स । कथयताम य अध न वाल्गा तानिमा अथा (आ रि १५) तत्र प्र नि मशय समना
प्रनयित । वि मा २ १८-२ २

१ गीतमा गा प्रह । रयता मा न मवर्तमाना । तां धनि तामधने च लमरत गात्रमा यत्र ॥
गीतमागिता दव र्वर्गीमा जमा वन । तन प्ररयभापानरुवभागागाम्यभुति ॥ इत्य भावपूत्र-इति नृपा स्वाम
यम । साक्षा मवत्तुपत्र वमापगतावापठव ॥ आ पु २ ५२ ५४

२ भावत-पञ्चवि परिहृमहना च वागवाण । चारणजुत्ताय तदा पञ्चपुटय विरवता विद्या ॥

गोमदेनो लोहज्जादरियो जग्गामी य ण्ढे तिण्णि वि मत्तविह
सपण्णा सयल-सुय-मायर-राग्या होऊण ऋलणाणमुपाय्य णिन्नु पत्ता
तदो णिण्ह णदिमित्तो अरराट्ठो गोमदणो भद्राहु ति ण्ढे पुग्गिमांली-
पच वि चोदम पुज्ज हग । तदो निमाहादरियो पोद्धिलो एत्तियो जया
णागादरियो मिद्धयदेनो पिदिमेणो निनयादरियो रुद्धिलो गग
धम्ममेणो ति एदे पुग्गिमांली-कमेण एरारम वि आदरिया एरारमण्डम
उत्पायपुच्छादि-दमण्ह पुज्जाण च पारया ज्ञाना, मेसुग्गिम-चदुण्ह पुज्जाणमेग-
य । तदो णसुत्तादरियो जयपालो णट्ठामी पुग्गमेणो रमादरियो ति एदे पुग्गि
कमेण पच वि आदरिया एरारमग पारया ज्ञाना, चोदमण्ह पुज्जाणमेग-
तदो सुभदो जमभदो जमराह लाहज्जो ति एदे चत्तागि वि आदरिया आपाग

गातमन्वामी, लोहाचार्य और जम्बूस्वामी ये तीनों ही माल प्रकारकी रुखियाँ और मन्त्रधुरूपी सागरके पारगामी होकर अन्तमें केन्द्रजालकी उत्पत्ति निर्माणकी प्राप्ति हुए। इससे बाद त्रिशु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन, और मन्त्रपात्रों ही आचार्य पण्डितों क्रमसे चावह पुरके धारी हुए।

तदनन्तर विज्ञानार्थ, प्रोष्टि, क्षत्रिय, जयार्थ, नागार्थ, मित्रार्थ, पुत्रि
त्रियाार्थ, युजि, गगदे अं धर्ममेत ये ग्याह ही महापुर पारिपटी क्रमे ग्याह
अं उपादपू आदि दश पूजै धारक तथा शाय शान पूजै पक्षदेशके धारक ह्ये ।

इसके बाद नन्दशार्ङ्ग, जयपाद, पाण्डुस्यामी, ध्रुवसेन, कम्पाशर्ष्य ये पात्रों ही आ
परिपाटी ब्रह्मणे संपूर्ण ग्यारह जगोंके नीर बौद्ध पूर्वोंके एकदशके धारक हुए। तद
सुभद्र, यशोमद्र, यशोधादु नीर गहार्ष्य ये चार ही आशर्ष्य संपूर्ण आशरामके धारक

[illegible]

२ वृत्तः च सङ्गच्छते । अथ यथा तद्वर्णनं । ३ अथ १०

८७ १ पक्षः वि० ८७ १२ १ क० १ वसुधैव कुटुम्बकम् १ ० । अथः १ १ १

[illegible]

१०२३ ३५ ११ ३४ ८१

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ॥ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

• $A_n = \frac{1}{n} \sum_{i=1}^n X_i$

[illegible][illegible]

ममग पुष्पाणमेग-ए पारया । तदो मन्त्रमिमग पुष्पाणमेग दसा आश्रिय परपराण आग
परापाणो धर्मेणाश्रिय मपनो ।

तेन वि मोहदृ शिमय गिरिणयर पट्टग-चदमुहा छिण्ण' अट्टग महाणिमिच पार
ण्य गध-चोन्तेणे' होहदि त्ति जाद भण्ण परयण-चन्डलेण दक्षिणावहाश्रियाण
मादिमाण मितियाण ल्हो पेमिणे । ल्हद द्विप धरमेग चयणमरधारिय तेहि वि आश्रिणिदि
पे मा' गहण चाण-समत्था परलामल-चद विह शिय विहमियगा मील-माला-हरा गुर
पेमणामण निन्ना देम-चन् जाद-सुद्धा सयल-कला-पारया निक्कमुत्तानुच्छियाश्रिया अघ
शिमय-येण्णापडाणे पेमिदा । तेसु आग-उमाणेसु रयणीण पठिमे भाण बुद्ध-मल्ल

शेष भग तथा पूर्वोक्ते एकदेशके धारक हुए। इसके बाद समा भग आर पूर्वोक्त एकदेश आचार्य
परपराय आता हुआ धर्मधन आचार्यको प्राप्त हुआ ।

श्रीराष्ट्र (गुजरात कान्ठियापाठ) देशके गिरिनगर नामके नगरका चन्द्रगुफामें रहने
वाले, भण्ण महाणिमिचके पारवामी प्रउदन पत्तन और भागे भग भुतका पिच्छेद्द हो
जायगा इसप्रकार उत्पन्न हो गया हू अथ चित्तको ऐसे उन धरमेनाचार्यने किसी धर्मात्मा आदि
निमित्तसे महिमा नामकी नगरीमें सम्मिलित हुए दक्षिणापथ के (दक्षिणदेशके निवासी)
आचार्योंके पास एक लेख भेजा । लेखमें लिखे गये धरमेनाचार्यके पत्रोंका भलाभाति समझ
कर उन आचार्योंन शास्त्रके अर्थके ग्रहण और धारण करनेमें समर्थ, नानाप्रकारकी उपाय
और निर्माण चित्तपथ विभूतिन भगवाले शास्त्रकी मालाके धारक गुदभों द्वारा प्रेरण (भेदने)
रूपा भोजनने नूम हुए देश, बल और जानिने गुण, अर्थान् उत्तम देश उत्तम कुल और उत्तम
जानिने उपाय हुए समस्त ब्राह्मणोंमें पारगत, और नील धार पूछा हू आचार्योंने निन्दने
(अर्थात् आचार्योंने तीन बार आज्ञा लेकर) ऐसे दो साधुओंको आश्रयमें बहनेवाली
धेनातदाक तन्मे भेजा ।

मार्गमें उन दोनों साधुओंके अति समय, जो बुद्धके पुण, व द्रमा और गन्धके समान

१ ल्होण स १५ काउण मग्गो मग्गसालिनि मग्गसालिनिवाइवाणि ६ ३ कम्माविधि विचारण

२ । जयध अ पू ११

३ देह त्त मग्ग । आनि रग्गानिरोज्जनात्त । च मग्गिनेवासा मग्गस पारपुमि १५ ॥

४ मग्गसालिनिवाइवाणि नचउत्तम । नचउत्तम परिचलननामा १ ॥ ६४ भग्ग १ ३ १ ४

५ वि वि भग्गसालिनिवाइवाणि १ ॥

६ ६४ ६४ मग्गिनिवाइवाणि १५ मग्गसालिनिवाइवाणि १५ मग्गसालिनिवाइवाणि १५

चण्णा सच्च-लक्षण-मपुण्णा अप्पणो ऋय-तिप्पयाहिणा पाण्णु पि, मुट्टिय पत्थिगा
 धमहा सुमिणतरेण धरमेण-भडागण्ण ण्डिहा । अत्रिह-सुमिण दट्ठण तुट्ठेण धरमेणाडिग
 'जयउ सुय-देउदा' ति मलपिय । तदिममे चेय ते दो वि जणा मपत्ता 'परमेणाडिग
 तदो धरसेण-भयवदो' ऋदियम्म ऋऊण दोणिण दिममे 'मोलापिय तत्थिय त्थिममे विण
 धरसेण भडाग-जो तेहि विण्णजो 'अणेण ऋजेणम्हा दो वि जणा तुम्ह पाप्मलमुगव
 ति । 'सुट्ठु भट्ट' ति मणिऊण धरमेण भडागण्ण ते वि आमामिदा । तणे वि
 भयवदा—

सेलण भगगड अडि-चाउणि मडेमाडि जाहय मुण्हि ।

मत्थि ममय ममाण उम्हाण जो मुद मोहा ॥ ६२ ॥

धद गारउ पडिउहो तिसयामिस रिम उमेण उम्मतो ।

सो म जोहि राहो ममद चिर भय-वणे मूणे ॥ ६३ ॥

मन्त्रे धर्मधाले है, जो समस्त लक्षणोंसे परिपूर्ण है, जिन्होंने आचार्य (धरसेन) की तीन प्रशंसा
 की है और जिनके अंग नञ्जित होकर आचार्यसे चरणोंमें पद मरे हे वेने दो बेलोंको धरसे
 भट्टारकने रात्रिके पिछले भागमें स्वप्नमें देखा । इसप्रकारके स्वप्नको देखकर सन्तुष्ट हुए धरसे
 आचार्यने 'श्रुतदेवना जयघस हो' ऐसा वाक्य उच्चारण किया ।

उसी दिन दक्षिणापथमे भेजे हुए ये दोनों साधु धरसेनाचार्यको प्राप्त हुए । उस
 बाद धरसेनाचार्यकी पादचन्दना आदि हतिर्म करने और दो दिन बितारकर तीसरे दिन उ
 दोनोंने धरसेनाचार्यसे नियेदन किया कि 'इस कार्यसे हम दोनों आपके पादमूलको प्राप्त
 ह' । उन दोनों साधुआके इसप्रकार नियेदन करने पर 'अजो हे, कथाण हो' इसप्र
 कहकर धरसेन भट्टारकने उन दोनों साधुओंको आभ्यान्न दिया । इसके बाद भगवान् धरसेन
 विचार किया कि—

शेलघन, भगगड, अडि (सर्प) चालनी, महिप, अवि (मेवा), जाहउ (जोंक) उ
 माटी और मडाक के समान श्रोताओंको जो मोहसे धुनका व्यावधान करता ह । यह मू
 गारपके आधीन होकर विषयोंकी श्रोतुपतारूपी विषके वशसे मूर्च्छित हो, बोधि भ
 रतप्रयकी प्राप्तिमे अग्र होकर भय उनमें विरकालनक परिधमण करता ह ॥ ६२, ६३ ॥

१ माताकात नर्माणु १-८, ४, १५८

२ जगमनदिन व तथा पुद्ग धरमनगुणिपि राता । नित्रपादया पतता धवलवृषारित सत्र
 नत्रप्रभगमापात्रयनु अंतवन्ति समुपपन्न । उद्विष्टदत्त प्राप्त सत्त्वानर्षित तपना की ॥ ६२ ॥ मुद्रा ११२, ११

३ इत्ययि वचनमि जग धम्म-वचनामया मगाभिस्सा । त तेमिमामग्गा मणि चो तेण मगगेत ॥
 नि मा १ १

४ सेंटपण वृद्धय चाग्नि परिपूण्य इत्यमिपमम य । ममम उद्म रिगर्ग जाग्य गो मरि आमीगि ॥
 वृ प मू ३३४, आ नि ११

विशेषार्थ—नीचनाम पापाणका ॥ भीर घन नाम मेघका है। जिसप्रकार पापाण, मेघके चिरकालनक वर्षा करने पर भी भार्द या मृदु नहीं होता है, उसीप्रकार कुछ ऐसे भी भोता होत हैं, जिन्हें गुञ्जन चिरका नक भी धमासूतके वर्षण या सिंगन द्वारा कोमल परिणामी नहीं बना सकते हैं वेने भोताओंको शीलघन भोता कहा है ॥ १ ॥ भ्रमघट पृष्ठ पहेको कहते हैं। जिसप्रकार पृष्ठे घड़में ऊपरमे भरा गया जल नायेकी ओरमे निकल जाता है भीतर कुछ भी नहा उठना, इसीप्रकार जो उपदेशको एक कानसे सुनकर दूसरे कानसे निकल देते हैं उह भ्रमघट भोता कहा है ॥ २ ॥ अहि नाम सापका है। जिसप्रकार मिथी मिथिन दूधके पाल करने पर भी सर्प धिक्का ही यमन करता है, उसीप्रकार जो सुन्दर, मधुर भीर हिनका उपदेशके सुनने पर भी धिक् यमन करता है मर्षान् प्रतिफल भाउरण करते हैं, उहें अहिसमान भोता समझना चाहिये ॥ ३ ॥ बालनी जैसे उत्तम आगेकी नीच गिरा देती है भीर भूमा या कोकरको अपने भीतर रख लेती है, इसीप्रकार जो उत्तम सारयुक्त उपदेशको तो बाहर निकाल देते हैं और नि सार तत्वको धारण करते हैं वे बालनीसमान भोता है ॥ ४ ॥ महिया भयान् भूमा जिसप्रकार जलाशयसे जल तो कम पीता है परन्तु बारबार डूबकी लगाकर उसे गद्ला कर दता है, उसीप्रकार जो भोता समामें उपदेश तो भरा ग्रहण करते हैं पर प्रसंग पाकर भाव या उदय उदयन कर दत है ये महियासमान भोता है ॥ ५ ॥ अधि नाम मेघ (मैदा) का है। जैसे मैदा पालनवालको ॥ मारता है, उसीप्रकार जो उपदेशवाताकी ही निन्दा करत है और समय आनेपर पालनक करत करत को उचल रहत है उहें अधिके समान भोता समझना चाहिये ॥ ६ ॥ जाहूक नाम सेही अर्द्ध अनेक जीवोंका है पर ग्रहनमें जौक अर्ध ग्रहण किया गया है। जैसे जौकको स्नानपर भी लगायें तो भी यह दूध न पीकर लून ही पीती है, इसीप्रकार जो उत्तम आचार्य या गुरुके समीप रहकर भी उत्तम तत्वको तो ग्रहण नहीं करत, पर अधम तत्वको हा ग्रहण करते हैं वे जौकके समान भोता है ॥ ७ ॥ गुक नाम तानेका है। तानेकी जो कुछ सिन्धाया जाता है यह सीक तो जाता है पर उस यथार्थ अर्थ प्रतिशसित नहीं होता, उसीप्रकार उपदेश स्मरणकर लेने पर भी जिनके हृदयमें भाव भासना नहीं होता है वे गुकसमान भोता है ॥ ८ ॥ मही जैसे जलके सयोग सिंगनपर ता कोमल हो जाती है पर जलके अभावमें पुन कगेर हो जाता है, इसीप्रकार जो उपदेश मिष्टने नक तो मृदु परिणामा बने रहने हैं और बादमें पूर्ववत् ॥ कगेर हृदय हो जाने हैं वे महीके समान भोता है ॥ ९ ॥ मशक भयान् मच्छर पहले कानोंमें भाकर गुन गुनाता है चरणोंमें गिरता है किन्तु अचसर पाते ही काट जाता है, उसीप्रकार जो भोता पहले तो गुन या उपदेशवाताकी प्रशंसा करेंगे, चरण-यचना भी करेंगे, पर अचसर भाते ही काट पिता न रहेंग उह मशकके समान भोता समझना चाहिये ॥ १० ॥ उक्त सभी प्रकारके भोता भयोग्य ॥ उहें उपदेश देना व्यर्थ है।

जिसा जिसा शास्त्रमें उन नामोंमें तथा अर्थमें भेद भा देखनेमें आता है, किन्तु भोताका भाव वहा पर नभाष्ट है।

इदि वयणादो जहाल्लदाईण निज्जा दाण ममाग्ग-भय-वट्ठणमिन्ति चित्तिऊण सुमिण-दसणेणेन अवगय पुरिसतरेण धरमेण-भयउदा पुणग्गि ताण परिग्गामा काउमादता ' सुपरिक्खता हियय णिचुड्ढकरोति ' । तदो ताण तेण दो निज्जाओ णिणाओ । तत्थ एया अहिय-क्खरा, अवरा विहीण-क्खरा । एदाओ छट्ठेणामेण माहेट्टु त्ति । तणे ते मिदं निज्जा निज्जा-देवदाओ पेच्छति, एया उट्ठतुरिया अउरेया काणिया । एमो देवणा महावो ण होदि त्ति चित्तिऊण मत-व्यायरण-मत्थ-कुमलेहि हीणाहिय-क्खराण तुहणाण यण निहाण काऊण पढतेहि दो नि देवदाओ महान-रूउ द्वियाओ दिट्ठाओ । पुणा तेहि धरमेण-भयउतस्स जहावित्तेण निणएण णिरेदिदे सुट्ठु तुट्ठेण धरमेण-मडाएण मोम तिहि णक्खत्त-वारे गथो पारदो पुणो ऋमेण वस्सणत्तेण आसाढ माम-सुक्क पस्स एवारीए पुच्छण्हे गथो समाणिदो । निणएण गथो समाणिदो त्ति तुट्ठेहि भूदेहि तत्थेयस्स महदी

इस घटनेके अनुसार यथाछन्द अर्थात् स्वच्छ-इतापूर्वक आचरण करनेवाले श्रीलोकों के विद्या देना ससार और भयना ही बढानेवाला है, ऐसा निवारक, गुप्त मयके देखने मात्रसे ही यद्यपि धरमेण भट्टारकने उन आये हुए दोनों साधुओंके अन्तर अर्थात् विशेषताको जान लिया था, तो भी फिरसे उनकी परीक्षा लेनेका निश्चय किया, क्योंकि, उसम प्रसार ले गई परीक्षा हृदयमें सतोषको उत्पन्न करती है । इसके बाद धरमेणाचार्यने उन दोनों साधुओंको दो विद्याएं दीं । उनमेंसे एक अधिक अक्षरवाली थी और दूसरी हीन अक्षरवाली थी । दोनोंको दो विद्याएं देकर कहा कि इनको पद्यमत्त उपवास अर्थात् दो दिनके उपवाससे सिद्ध करो । इसके बाद जब उनको विद्याएं सिद्ध हुईं, तो उन्होंने विद्याकी अधिष्ठानी देवताओंको देखा कि एक देवीके दान बाहर निकले हुए हैं और दूसरी कानी दे । ' चिट्ठाता होना देवताओंका स्वभाव नहीं होता है ' इसप्रकार उन दोनोंने विचारकर मात्र सपर्याय व्याकरण शास्त्रमें कुछ उन दोनोंने हीन अक्षरवाली विद्यामें अधिक अक्षर मिलाकर और अधिक अपरवाली विद्यामेंसे अक्षर निकालकर मात्रको पढना, अर्थात् फिरसे सिद्ध करना प्रारम्भ किया । जिससे ये दोनों विद्यादेयताएं अपने स्वभाव और अपने सुन्दर रूपमें स्थित दिग्लई गईं । तदनन्तर भगवान् धरमेणके समक्ष, योग्य विनय सहित उन दोनोंके विद्या सिद्धिसपर्याय समस्त वृत्तान्तके निवेदन करने पर ' बहुत अच्छा ' इसप्रकार सन्तुष्ट हुए धरमेण भट्टारकने गुप्त निधि, गुप्तनक्षत्र और गुप्तवारमें प्रथका पढ़ना प्रारम्भ किया । इसतरह प्रथमे व्याख्यान करते हुए धरमेण भगवान्मे उन दोनोंने आपाद मामके शुकुपगकी पञ्चादशीने पूर्वाद्रकाग्ने प्रथक प्रमाण किया । विनयपूर्वक प्रथक प्रमाण किया, इसलिये सन्तुष्ट हुए भूत जानिके अन्तर देवोंने

१ मयत्ता इमिन्निज्जाणि सवि वट्ठान्ता गति । तापिन्ति निवे दे हीमाधिस्वपणवो ॥

इत्त भुवा ११५०

पूजा पुष्प बलि मर-नर-रज-महुला कृता । त दह्म तस्म 'भूदधनि' नि भडागण
पाम क्य । अररस्म नि भूदेहि पूजितस्म अथ रिय-च द्रिय-नन पतिमायागिय भूदेहि
ममीरय-दतस्म 'पुष्पयनो' वि पाम क्य

पुणो तद्विषये येन पेमिना मनो 'गुरु रयणमलपाणिज' इति विनिर्दिष्टागमोद
अनुलेभरे बरिता कालो कओ । जाग ममाणीय विपशानिय नृपुण पुष्पयतागिदा क
वाम-रिमय गतो । भूदधलि भडागओ वि दमित-न्येय गतो । गतो पुष्पयतागिद
विपशानिदस्म दिक्क दाउग वीगदि-सुत्ताणि वगिय पद्मागिय पुणा गा भूदधनि भय
तस्म पाम पेमिदो । भूदधलि भयवदा विपशानिद-वामे निद-वीगदि सुत्ता अवाउडा नि
अरगय विपशानिदेण महायस्म पपाडि वाहुदस्म वोळदो होहादि नि ममुप-वृद्धि
पुणो दन्त-वमाणाशुगमवादि वाऊण गय रयणा कृता । तदा गय गद-गिदह गदह
भूदधलि-पुष्पयताहरिया वि कतागो उवाति ।

उन दोनोमिय एकको पुष्पावलीय तथा दान और मृग जातिव वाटाविनायक वाताय लान कर्हि
भारी पूजा की । उले दोनकर धरमन भूदधकन उनका 'भूदधनि' यह नाम रखना । मन्त्र
जिनको भूतोनि पूजा की है और अल पाल दलपेनिको नृ कयक धुनास (जिनक दान लडाव
कर दिय है) ऐसे लूलेका भी धरमन भूदधकन 'पुष्पयल' नाम रखना ।

मन्त्रकार उनो दिन घडांस भेजे गये उन दामोस 'गुरुके कबल भय न् गुरुको' अन्त
अलेपनीय होनी है 'येसा विचार कर अनि हुए भेजेकर (गुजरात) से कर दान विनया ।
पयावोगका समागकर और जिनपालिकको दोनकर (उलक करण) पुष्पयल आवाय न । वर
वातरको बले गये और भूदधनि भूदधक भी दमिल-काहा कर गद । लहमन पुष्पयल
आवायने जिनपालिकको दिसा देकर बीस मरुपण गावन लयवदलके मृग कलकर अ
जिनपालिकको पद्माकर अमलार उडे भूदधनि आवायक पात भडा । लहमन जिद
जिनपालिक पात बीस मरुपणगावन लयवदलके मृग दल है भाग पुष्पयल आवाय
अरपापु है लयवदल जिदोस जिनपालिकसे जान लिया है अन्तक मरुपणगावन दल
विपद हो जायगा लयवदल उलप दुर है बुद्धि जिनको दल अन्तक अन्तक लहमन
गुमक । अदि लहम लयवदलका की । इतिविद इत्य अन्तकलानक अन्तक लहमन ७.१
पुष्पयल आवाय भी अन्तक लहमन कद जाय है ।

तदो मूल-तन रक्षा बहुमाण मडारओ, अणुतन-रक्षा गोत्रम-मामी, उवत
कत्तारा भूदन्ति पुण्यतादयो वीय-राय-डोम-मोहा मुणिग। मिमं र्त्तो प्रम्यत
शास्त्रस्य ग्रामाण्यप्रदर्शनार्थम् 'उत्तृप्रामाण्यात् रचनप्रामाण्यम्' इति न्यायान्।

सपहि जीरदाणस्मं अणपारो उचंटे । त जहा, मो रि चउत्तिहो, उणम्म
णिक्खेमां णयो अणुगमो चेदि । तत्थ उणम्म मणिम्मामो । उपक्रम इत्यर्थमामन उ
समीप ब्राम्यति करोतीत्युपक्रमः । सो रि उणम्मो पचमिहो, आणुपुत्री णाम पमाण
वत्तच्चदा अत्थाहियारो चेदि । उच्च च—

तिगिहा य आणुपुत्रा दमहा णाम च उत्तिह माग ।

वत्तच्चदा य तिगिहा तिगिहो अत्थाहियारो रि ॥ ६४ ॥ इति ।

इसतरह मूलप्रथकर्ता यद्विमान मटारक है, अनुप्रथकर्ता गौत्रमन्मामी है और
उपप्रथकर्ता राग, द्वेष और मोहसे रहित भूतबलि, पुण्यदन्त इत्यादि अनेक आचार्य है।

श्रुता—यहा पर कर्ताका प्ररूपण किसलिये किया गया है ?

सामधान—शास्त्रकी प्रमाणताके दिखानेके लिये यहा पर कर्ताका प्ररूपण किया गया
है, क्योंकि, 'यत्ताकी प्रमाणतासे ही वचनोंमें प्रमाणता आती है' ऐसा न्याय है।

अब जीवस्थानके अवतारका प्रतिपादन करते हैं। अर्थात् पुण्यदन्त और भूतबलि प्राचा
धने जीवस्थान, शुद्धाबध, बध्मामिस्थ, वेदनाखण्ड, वर्गणाखण्ड और महाबध नामक चार
पदखण्डागमकी रचना की। उनमेंसे, प्रकृतमें यहा जीवस्थान नामके प्रथम खण्डकी उत्पत्ति
क्रम कहते हैं। यह इसप्रकार है—

यह अवतार चार प्रकारका है, उपक्रम, निक्षेप, नय और अनुगम। उन चारोंमें पहले
उपक्रमका निरूपण करते हैं, जो अर्थको अपने समीप करता है उसे उपक्रम कहते हैं। उप
उपक्रमके पाव भेद हैं, आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, धन-यता और अर्थाधिकार। कहा भी है—

आनुपूर्वी तीन प्रकारकी है, नामके दश भेद हैं, प्रमाणके छह भेद हैं, धनयताके
तीन भेद हैं और अर्थाधिकारके भी तीन भेद समग्रता चाहिये ॥ २७ ॥

१ इयमूलतत्राद्या मिश्रितारा इदमुदि निष्पन्न । उवतत कत्तारा अणुतनं सम जाहरिया ॥ निष्पदरा
दाया मर्मिणा दिव्यमुत्तकाया । किं वाण पमगिदा कटिदु सुखस्य पायण ॥ त्र प १ ८०, ८१

२ पुण्य-उत्तृत्वाग्म्यां प्रधानस्यागमस्य नाम 'वत्तच्च' इति । तस्य च १५ खण्डा — १ वावधान २ मुग्धा
बध ३ न भस्वामिचविचय ४ वदनागम ५ वर्गणागम ६ महाबध इति । एषां वर्णां खण्डानां मध्य प्रथम
तत्तावतावतस्थाननामकप्रथमखण्डस्यावतारानां निरूपणम् ।

३ प्रकृतस्यावतारस्य आनुपूर्विका समग्रणम् । उपक्रमानां निरूपणस्यावतारानां इत्यपि ॥ आ ॥ २ १ १
स चरयतेकस्मिन् उपक्रमे तत्र तस्मिन् च तथा वा । सचयमीतीत्यत्र आणवण नामद्वयम् ॥ वि भा ११४

पुण्यापुण्यी पञ्चापुण्यी जन्मपुण्यापुण्यी चेदि विविहा आणुपुण्यी । ज
मलाणे परिवाडीण उचये सा पुण्यापुण्यी । तिस्रे उदाहरण— 'उसहमविष च वदे'
इवेनमादि । ज उररीदे हेद्वा परिवाडीण उचदि सा पञ्चापुण्यी । निम्मे उदाहरण—
एत परेमि य पगम जियर रसरस ब्रह्मास ।

सेसा च विभाग सिन मुह कया विलोमणे ॥ ६५ ॥ इदि ।

जमपुलोम-विलोमोहि विणा जहा तहा उचदि सा जन्मपुण्यापुण्यी । तिस्रे
उदाहरण—

गन्धर्व-सत्त १३२२ पद्धर-सिद्धि-मउय भनर-सन्तमो ।
हरिउ-म पुरो सिन-माउन वउथो नउ ॥ ६६ ॥ इवेनमादि ।

पूर्यानुपूया, पञ्चादानुपूया आर यथानथानुपूया इत्येवम् आनुपूर्वीके तीन भेद ॥ जो
पस्तुका नियेवन मूलमे परिपाटीद्वारा किया जाता है उसे पूर्यानुपूया कहते हैं । उनका उदा
हरण इसप्रकार है 'करुणापथी यन्ता करता ह भतिनापथी यन्ता करता ह' इत्यादि वमसे
करुणापथी भादि लेकर महीरमासी पर्यन्त वमवार यन्ता करना सो यन्तासपथी
पूर्यानुपूर्वी उपरम ह । जो पस्तुका नियेवन उपरम अथान् मूलमे लेकर भादितक परिपाटी
क्रममे (प्रतिलोम-प्रक्रममे) किया जाता है उसे पञ्चादानुपूया उपरम कहते हैं । जैसे—

मोक्षभुम्भकी अभिलाषामे यह म जिनपरोंमे भेद वेसे वर्तमानमार्गीको नमस्कार
करता ह । आर विलोमक्रममे अथान् वर्तमानके बाद पाथेनापथी पाथनापथी बाद मेमितापथी
इत्यादि वमसे दोष चिने-द्रोंको भी नमस्कार करता ह ॥ ६७ ॥

जो वधन अनुगेम आर प्रतिलोम क्रमके विना जहा वर्दमि भी किया जाता है उसे
यथानथानुपूर्वी कहते हैं । जैसे—

हाथी भरणभय, चण्डवर्ण्य आर मयन मेघ, कावल, मयूरवा वण्ड आर भमरके

१ ज न ४०० ५१४ ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥

२ मयविर १ ४ १००० ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥

३ म ॥ ४ १००० ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥

४ ॥ ४ १००० ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥

५ ॥ ४ १००० ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥

६ ॥ ४ १००० ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥

७ ॥ ४ १००० ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥

८ ॥ ४ १००० ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥

९ ॥ ४ १००० ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥

१० ॥ ४ १००० ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥ १००० वा तस्य १००० वम ॥

इदं पुण जीवद्वाण गृह-मिद्वत पटुच पुत्राणुपुत्रीण द्विष्टं उष्टं मृदाण पदम-
जीवद्वाणमिति । वेदणा-रमिण पातुङ्ग-मज्जादो जणुलोम विलोम-रमेहि पिणा जीवद्वाण
मतादि-अहिंयारा अहिणिग्गया चि जीवद्वाण जत्यत-प्राणुपुत्रीण वि मटि । जीव
ण पञ्चाणुपुच्ची ममज्ज ।

णामस्म दम द्वाणाणि भवति । त जहा, गोणपदे गोमोणपदे जा
पटियस्मपदे जणाण्यमिद्वतपदे पापणपदे णामपदे पमाणपदे अययपदे मनोगपदे च

गुणाना मास गौण्यम् । तद् गौण्य पद स्थानमाश्रयो येषा नाम्ना तानि गौ
पदानि । यथा, जात्यित्यस्य तपनो भास्वर इत्यादीनि नामानि । नोगौण्यपद
गुणनिरपेक्षमनन्तर्यमिति यावत् । तद्यथा, चन्द्रस्यामी सूर्यस्यामी इन्द्रगाय इत्यादि

समान उर्णशाल, रगिरहाणे प्रज्ञाप, ओर शिरोदेयं मानाणे लाल ऐसे नेमिनाथ भगवान् ज्ञाप
दा ॥ ॥ इत्यादि य जान शतपुत्राणा उदाहरण समझना चाहिये ।

यद् जीवद्वाण नामक शास्त्र स्रष्टृमिद्वान्तकी अपेक्षा प्राप्तिपुत्र्यो प्रममे लिंगा
र्त, पयोकि, पञ्चगण्यगमम जीवद्वाण प्रथम स्रष्टृ हे । वेदनाक्षयप्राप्तिके मयमे भव
और विनामयमके चिना जीवन्धानके सन्, मरणा आदि अतिकार निकले हैं, इसी
जीवद्वाण यथानयानुपुर्थम भा ग्राभन हैं । किन्तु इस जीवद्वाण स्रष्टृमें केवल पद्यात्मक
समय नहीं है ।

नाम उपपन्नके द्वा भेद होने हैं । य इसप्रकार हैं-गौण्यपद नोगौण्यपद, प्रादुर्भा
प्रतिपक्षपद अनादिमिद्वान्तपद, प्राश्रयपद नामपद, प्रमाणपद अययपद और मनोगपद ।

गुणोंके भावके गौण्य कहते हैं । जो पदार्थ गुणकी मुख्यतासे व्ययहृत होने हैं वे गौ
पदार्थ हैं । ये गौण्य पदार्थ पद अर्थात् स्थान या आधार जिन नामाके होने हैं उन्हें गौण्य
नाम कहते हैं । अर्थात् जिन स्रष्टाके व्यरहात्म उपदे विशेष गुणका आधार लिया जाना
उत्ते गौण्यपदनाम कहते हैं । जस, सूर्यकी तपन और भाग गुणकी भवेत्ता तपन और भाग
इत्यादि स्रष्टा हैं । जिन स्रष्टाओंमें गुणकी तप तान है, अर्थात् जो अमार्थक नाम हैं उ
मर्त्यपदनाम कहते हैं । जस स्रष्टृनामा, सर्वस्यामी इन्द्रगोत्र इत्यादि नाम ।

१ ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

१ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

१ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

१ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

1
... ..
... ..
... ..
... ..
... ..

... ..
... ..
... ..
... ..
... ..

... ..
... ..
... ..
... ..
... ..

... ..
... ..
... ..
... ..
... ..

... ..
... ..
... ..
... ..
... ..

विरहितवृक्षेषु विरहाकृतप्राधायाचवृत्तपिपुमन्निरन्धनवान् । नामपदं नाम गौडोऽप्या
द्रमिल इति गौडान्धद्रमिलमापानामधामत्वान् । प्रमाणपत्नानि' अथ मन्त्र द्रोण गार्गी
पत्न तुला कर्पूरिनि प्रमाणनामा प्रमेयेप्रपलम्भान् ।

अथयपदानि' यथा । मोऽयपयो द्विविधः, उपरितास्पृशित इति । तत्राप
रितायपयनिरचनानि यथा, गङ्गाण्ड गिल्पीप लम्परण इत्यादीनि नामानि ।
अथयपचयनिरन्धनानि यथा, द्विस्पर्ण छिन्ननामिर इत्यादीनि नामानि । मयोग
पत्नानि यथा । न मयोगभृतुविधो द्रव्योत्तरादभारमयागमत्तान् । द्रव्यमयागपत्नानि
यथा, इक्षु गंध दण्डी छत्री गभिणी इत्यादीनि द्रव्यमयागनिरचनानि तथा ।

इत्यादि । यन्म अथ अधिष्ठित वृक्षां वदने वा भी विवशाम प्रयाननात् अथ आम आ
नामक वृक्षांके कारण आश्रयन आर निर्यजन आदि नाम व्यवहारम आने है ।

आ भाषाभेदमे नाम बोधे आने है उहें नामपदनाम कहन है । अथ गार्गी आश्र
द्रमिल इत्यादि । ये गार्गी आदि नाम गौडी आर्षी अथ द्रमिल भाषाभेद नाम के
भाषाभेद है ।

गणना भयवा मापक । ज्येष्ठामे जो वृक्षां प्रयानि है उहें प्रमाणपदनाम कहन है ।
जमे, सा, हजार, द्राण, गार्गी पत्र, तुला, कर्पू इत्यादि । ये सब प्रमाणनाम प्रमेयम पाव
जात है, अथान् इन नामोंके द्वारा न प्रमाण यन्त्रुता बोध होता है ।

अथ भयवयपदनाम कहते हैं । भयवय हा प्रकाश होत है उपरितायपय आर अथ
रितायपय । रोगादिके निमित्त मित्रने घर बिम्बी भयवयक बट आसन आ नाम बाट
आने है उहें उपरितायवयपदनाम कहते हैं । अथ गङ्गा गिल्पीप लम्परण इत्यादि ।
आ नाम भयवयोंके अथय अर्थान् उनके छिन्न है । आनेके निमित्तम व्यवहारम अर्थ है उहें
अधिव्यन, यवयपदनाम कहन है । अथ छिन्नकण, छिन्ननामिर इत्यादि नाम ।

अथ मयोगपदनामक । कथन करत है । द्रव्यमयोग क्षेत्रमेयान वानमदान अर्थ
आपतयोग के अर्थम प्रधान वार प्रवर्तक है । इक्षु गंध दण्डी छत्री गभिणी इत्यादि द्रव्य
मयोगपदनाम है वृक्षां यन्म अथ दण्डी छत्री इत्यादि द्रव्यम योगनाम य नाम व्यवहारम

१००१	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००
१००१	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००
१००१	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००
१००१	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००
१००१	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००

निषधनयमार्गताद्विगुणार्थानि नामानि तथा नामपदेऽन्तर्भावान् । न चैतेभ्यो घ्यतिरिक्त
नामाभ्यनुपलम्भान् ।

तत्पदस्म जीरद्वाणस्म णाम किं पद ? जीराण द्वाण-वण्णपादो जीरद्वाणमि-
गोण्णपद । भगन्तादिसु छसु अहिपासेषु वक्कणाणिजमाणेसु णाम धुत्तमेव । पुणो निमद्व

रूपमात्रों के कारण है क्योंकि यम, सिंह, भोते और राघव आदि सत्कार्य भावसंयोग पदरूप नहीं हो सकता है, क्योंकि, उनका नामपदमें अन्तर्भाव होता है। उस दृष्ट प्रकारसे नामों में भिन्न और जोर नामपद नहीं है, क्योंकि, व्यवहारमें इनके अतिरिक्त अन्य नाम नहीं पाये जाते हैं।

विशेषार्थ— षातिवृषभाद्याधने क्वायप्रभृतये नामके केवल छह भेद बताये ह। ये ये छ गौण्यपद, नौगौण्यपद, आदानपद, प्रलियपद, अपख्यपद और उपख्यपद। ऊपर जो नामके द्वा भेद बत आये ह। उनमेंसे, यहा पर अनादिस्तिज्ञानसबधी गुणसापेक्ष नामाका गौण्यपद और आदानपदमें तथा गुणनिरपेक्ष नामोंका लोपाण्यपदमें अन्तर्भाव किया ह। प्राधा-यपदनामोंका गौण्यपद और आदानपदमें अन्तर्भाव किया ह। प्रमाणपदनामोंका गौण्यपदमें नामपदनामाका नौगौण्यपदमें और स्वोपपदनामोंका आदानपदमें अन्तर्भाव किया ह। अपयपदनामोंका उपधितपदनाम और अपधितपदनामोंमें अन्तर्भाव हो ही जाता ह।

गुरु—उम पूवान ददा प्रकारके नामपदोंमें यह अविम्यान कौनसा नामपद है ?

ममाधान - जीपोंके स्थानोंका वर्णन करनेमें 'अधिस्थान' यह शैल्य सामग्र है।

शुद्धा—पहले मंगलदिवस छह अधिकारोंका व्याख्यान करते समय नामपद्धति

[illegible]

गयातदोरे णाम उवादि ति ? न, पृथग्विष्टम्य नाम्नाऽनेन पृथग्विष्टान ।

पमाण पचविह दव्य सेत-काउ मात्र णय पमाण भेदेहि । तत्र दव्य-पमाण सरोजममरोजमणतय चेदि । सेत पमाण एय पदेमादि । काउ पमाण समयात्रियादि । भाउ पमाण पचविह, जाभिणिनोहियणाण सुदणाण जोहियाण मणपज्जणाण केरुणाण चेदि । णय-पमाण मत्तविह, णेगम-मगह उवाहान्जुमुद-मद-ममभिन्ट एयभूत मेत्ति । अहंता णय पमाणमणेयविह—

जाउदिया उयण-नहा ताउदिया चउ हौति णय-यादा ।

जाउदिया णय-यादा ताउदिया चउ पर-ममया ॥ ६७ ॥ इदि वयणाणे ।

कथं नयाना प्रामाण्य ? न, प्रमाणकार्याणा नयानामुपचारत प्रामाण्याभिगोत्रात् ।

व्याख्यान कर ही आये हैं, फिर यहा पर ग्रन्थके प्रारम्भमें नामपदका व्याख्यान किमर्थ किया गया है ?

समाधान—ऐसा नहीं, क्योंकि, पूर्वम कहे गये नामका दशप्रकारके नामपदोंमें किसमें अन्तर्भाव होता है इसका इस कथनके द्वारा ही अन्वेषण किया है ।

द्रव्यप्रमाण, क्षेत्रप्रमाण, कालप्रमाण, भावप्रमाण और नयप्रमाणके भेदसे प्रमाणके पात्र भेद है । उनमें, सत्यात असत्यात जोर अनन यह द्रव्यप्रमाण है । एक प्रदेश आदि क्षेत्रप्रमाण है । एक समय, एक आउली आदि कालप्रमाण है । आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान, श्रुतज्ञान, अविज्ञान, मन पर्यवसान आर केवलज्ञानके भेदसे भावप्रमाण पात्र प्रकारका है । नगम, सप्रह, व्यवहार, ऋतुसूत्र, शब्द, समभिन्ट जोर एयभूतनयके भेदसे नयप्रमाण सात प्रकारका है । अथवा नयप्रमाण निम्न ध्यनके अनुसार अनेक प्रकारका भी समझना चाहिये ।

जितने भी ध्यन मार्ग है, उतने ही नयनाद, अर्थात् नयके भेद है । और जितने नयनाद है, उतने ही परममय है ॥ ६७ ॥

शुद्धा—नयोंमें प्रमाणता कसे सम्भव है, अर्थात् उनमें प्रमाणता कसे आ सकती है ?

समाधान—नहा, क्योंकि, नय प्रमाणके कार्य है, इसलिये उपचारसे नयोंमें प्रमाण ताके मान लेनेमें कोई विरोध नहा आता है ।

निष्पत्ति—शकाकारका अभिप्राय यह है कि जब नय वस्तुके एक अंशमात्रको ग्रहण करता है सयोदशरूपसे वस्तुको नहा जानता है तब उसे प्रमाण कसे माना जाय । इसका समाधान इसप्रकार किया गया है कि, यद्यपि केवल एक नय नय है प्रमाण नहीं है । किन्तु उनमें दूसरे नयाकी अपेक्षा रहनेसे वे प्रमाणका कार्य करते हैं, इसलिये उपचारसे उनमें प्रमाणता आ जाती है ।

य इदं जीवद्वाणं पदेसु पचसु पमाणेषु कदम पमाण ? भावपमाण । त्वं पि पचविह,
 य पचविहेसु भाव पमाणेषु सुद भाव पमाण । कर्त्तृनिष्पन्नया त्वाभ्य प्रामादनिष्-
 पेतमिति पुनरस्य प्रामाण्यनिष्पन्नगमनार्थकमिति चेत् सामान्येन तिनोन-सामान्यधानु-
 धित्वाऽऽगतर्त्तृविस्थानप्रामाण्यस्य निष्पन्नस्य बहुषु भावप्रमाणेष्विदं चोक्तं भूतना-
 माणमिति नापनार्थत्वात् । अहंवा पमाणं छविह, नामस्यापनाद्व्यभक्त्या भावप्रमा-
 णत्वात् । त्वं वा पमाणं पमाण-मण्णा । दूतणा पमाणं दुविह, मन्मात्र-दूतना-मना-
 मन्मात्र-दूतणा-ममाणमिति । आकृतिमिति मन्मात्रस्यापना । अनाकृतिमन्मात्रस्यापना ।
 व्यपमाणं दुविह आगमदो षोऽगमदो य । आगमदो पमाण-वाहुड जागो
 शुरुजो, मन्मात्रजागो जनाणत्त भद्र भिष्म मन्मात्रो वा । जागोमा त्रिविहा, जागो
 रीत मविष तत्त्वदिनिमित्ति । जाणुगमरीत च मविष च गय । तत्रदिनिमित्त-द्वय पमाण

गुरो—उक्तं पाठं प्रकाशके प्रमाणमने 'जीवस्थानं यद्वं वागता प्रमाणं ई ?

ममाधान—यद्वं भावप्रमाणं ई ।

मन्मात्रानादिरूपमे भावप्रमाणं ई । पाठं भेद ई । इत्येव उक्तं पाठं प्रकाशके भाव
 प्रमाणमने इत्येव जीवस्थानं वागता भवन्मात्रप्रमाणत्वं जानता आदिषे ।

गुरो—यद्वं कर्त्तृवा निरूपणं कर्त्तृ भावे ई इत्येव उक्तं पाठं प्रकाशके कर्त्तृ भावे ई
 त्वागता ई प्रमाणतावा निरूपणं हो जाना ई भवन्मात्र उक्तं प्रमाणतावा निरूपण
 त्वा निरूपण ई ?

ममाधान—तेना नदी बहना आदिषे कर्त्तृवा यद्वं जीवस्थानं वागता प्रमाणं ई
 यथा यद्वं जिनोद्वेववा कर्त्तृ । दूतना नदी हो वागता वा । इत्येव उक्तं पाठं प्रकाशके इत्येव जीव
 स्थानं वागता ई प्रमाणतावा निरूपणं कर्त्तृ भावे ई निरूपणं बहुषु प्रकाशके भाव प्रमाणं ई
 व्यपमाणं वागता भवन्मात्रप्रमाणत्वं ई इत्येव उक्तं पाठं प्रकाशके व्यपमाणं वागता ई
 प्रमाणतावा निरूपणं कर्त्तृ ।

अथवा, भावप्रमाणं व्यापनाप्रमाणं दूतप्रमाणं शब्दप्रमाणं वागप्रमाणं ई
 प्रमाणं भेदे प्रमाणं छवि प्रकाशका ई ।

उक्तं प्रमाणं वर्यं वागता भावप्रमाणं कर्त्तृ ई । व्यपमाणं व्यपमाणं ई
 दूतप्रमाणं व्यपमाणं ई । इत्येव उक्तं पाठं प्रकाशके इत्येव दूतप्रमाणं व्यपमाणं ई ।
 व्यपमाणं व्यपमाणं ई । व्यपमाणं व्यपमाणं ई । व्यपमाणं व्यपमाणं ई । व्यपमाणं व्यपमाणं ई ।
 व्यपमाणं व्यपमाणं ई । व्यपमाणं व्यपमाणं ई । व्यपमाणं व्यपमाणं ई । व्यपमाणं व्यपमाणं ई ।
 व्यपमाणं व्यपमाणं ई । व्यपमाणं व्यपमाणं ई । व्यपमाणं व्यपमाणं ई । व्यपमाणं व्यपमाणं ई ।
 व्यपमाणं व्यपमाणं ई । व्यपमाणं व्यपमाणं ई । व्यपमाणं व्यपमाणं ई । व्यपमाणं व्यपमाणं ई ।
 व्यपमाणं व्यपमाणं ई । व्यपमाणं व्यपमाणं ई । व्यपमाणं व्यपमाणं ई । व्यपमाणं व्यपमाणं ई ।

शिरसेरो उज्ज्विहो णाम-द्वरण-द्वय भार जीवहाण भेण । णाम-जीवहाण जीवहाण-मदो । द्वरण जीवहाण पुदीण समारोयिष चीवहाण-द्वय । द्वय चीवहाण दुविह आगम गोआगम भेण । तत्थ जीवहाण चाणओ अणुरनुतो आगम-द्वय जीवहाण । गोआगम-द्वय चीवहाण निविह जाणुगमरीर भयिष तत्थ-निरिच-गोआगम द्वय चीवहाण भेण । आनि-दुग सुगम । तत्थ-निरिच जीवहाणाहार भृदागास-द्वय । भार-चीवहाण दुविह आगम गोआगम भेण । आगम भार चीवहाण जीवहाण जाणओ उणनुतो । गोआगम भार चीवहाण मिलाइडियाणि चोदस चीर ममामा । तत्थ गो-आगम भार चीवहाण पयद । शिरसेरो मदो ।

नैर्पतिना लारुण्यवहारानुपपत्तेनया उच्यन्ते । तद्यथा, प्रमाणपरिगृहीताथस्त्रेशे धस्त्यप्यवमायो नय । म द्विषि, 'द्रव्याधिक पर्यायाधिक्यचेति' । द्रोप्यत्यदुद्रवनान्तान्पयापानिति द्रव्यम्, द्रव्यमेवार्थं प्रयोजनमस्तेति द्रव्याधिक ।

भाष्यार्थस्थान, स्थापनाभावस्थान, द्रव्यजलस्थान भेद भाष्यार्थस्थानके भेदसे निशेष पार प्रचारका ह । 'जावस्थान' इसप्रकारकी सज्ञाको नामजलस्थान कहते हैं । जिस द्रव्यमें पुष्टिसे जीवस्थानकी आरोपणा की हो उसे स्थापनाजावस्थान कहते हैं । आगम जावस्थान भार मो-आगमजावस्थानके भेदसे द्रव्यजलस्थान दो प्रकारका ह । उनमें, जीवस्थान आगमके जाननेवाले किन्तु धर्ममानमें उसके उपयोगसे रहित जीवको आगमद्रव्यजलस्थान कहते हैं । आगम-आर, भाषि आर नद्वयनिरिचके भेदसे मो-आगमद्रव्यजलस्थान तीन प्रकारका ह । इनमेंसे, आदिसे दो तर्थात् साद्व्यनिरिच आर भाषि सुगम हैं । जावस्थानोंके भध्या जीवस्थान आगमके आधारभूत भाषा-द्रव्यको मध्यनिरिचानो-आगमद्रव्यजलस्थान कहते हैं । आगम और मो-आगमके भेदसे भाष्यजलस्थान दो प्रकारका ह । जावस्थान शास्त्रके जानने वाल और धर्ममानमें उसके उपयोगसे युक्त जीवको आगमभाष्यजलस्थान कहते हैं । आर मिध्यादि आदि चाद्व जीवममल्लोंको मो-आगमभाष्यजलस्थान कहते हैं । इनमेंसे, इस जीव-स्थान शास्त्रमें मो-आगमभाष्यजलस्थान निशेष प्रहृत ह । इसतरह निशेषका धर्मन हुआ ।

मयोंके धिना लोक-वधद्वार नदी च-सञ्जता ॥ इसलिये यदा पर नयोंका धर्मन करते हैं । इन मयोंका गुलासा इसप्रकार ॥ प्रमाणके द्वारा प्रहृत की गई धस्तुके एक भरणे धस्तुका निश्चय करनेवाले ज्ञानको नय कहते ह । यह नय द्रव्याधिक आर पर्यायाधिकके भेदसे दो प्रकारका ह । जो भविष्यत् पर्यायाको प्राप्त होया आर भूत पर्यायोंको प्राप्त हुआ या उसे द्रव्य

१ अतिहासनावस्था वरुं आ । २ गुणिगता नय । ३ क मा पु २ ५

२ ॥ सामादिसमष्टि-नय । ३ यो विषया यथा न द्रव्याविक । ४ यथा विषया मय द्वास्तकस पारा या विषया यथा त पयायाविक । ५ ॥ पु ५ ॥

३ ॥ यथा मय न द्रव्यम पयाया द्वास्तक यथा त द्वास्तक पयायाति ॥ ५ ॥ ४ ॥ यथा मय ५ ॥ २ ॥

निमिजप-धस्तनस्थ-द्रव्या स्वभावविभाषणपार द्वाति भाष्यद्रव्यमयि दन्त । आ ५ ८०

परालयोरभावात् ।

पर्यायाधिका द्विविधः, अर्थनयो व्यञ्जननयधेति । द्रव्यार्थिकपर्यायाधिकनययो
हो भेदश्चेदुच्यते, क्रजुग्रन्थचननिच्छेदो मूलाधारो येषां नयानां ते पर्यायाधिका ।
अध्वनेऽस्मिन् काल इति निच्छेदः । क्रजुग्रन्थचन नाम वर्तमानरचन, तस्य निच्छेद
ग्रन्थचननिच्छेदः । स काला मूल आधारो येषां नयानां ते पर्यायाधिका । क्रजुग्रन्थ
चननिच्छेदोऽप्यत्र आ एकममयादस्तुभित्यप्यवसायिन पर्यायाधिरा इति यावत् ।

तस्य भेद विनोदकालका अभ्यासः ।

विशेषार्थः—एषभूतनयमे लेख ऊपर क्रजुग्रन्थ नय तत्र पूर्वं पूर्व नय सामान्य रूपसे
उत्तरोत्तर नय विनोदरूपमे घनमान कालधर्मी पर्यायको विषय बनते हैं । इसप्रकार
तस्य भेद विनोद दोनों ही काल द्रव्याधिक नयके विषय नहीं होते हैं । इस विषयभावे
आधिक नयके तीनों भेदोंको नित्यवादी कहा है । अथवा, द्रव्याधिक नयम कालभेदकी विषयभा
नहीं है, इसलिये उसमें सामान्य भेद विनोदकालका अभ्यास कहा है ।

अर्थनय भेद व्यञ्जन (शब्द) नयके भेदमे पर्यायाधिक नय दो प्रकारका है ।

प्रश्ना—द्रव्याधिकनय और पर्यायाधिकनयमें किसप्रकार भेद है ?

ममाधान—क्रजुग्रन्थके प्रतिपादक घटनोंका विच्छेद जिस कालमें होता है, वह
(काल) जिस नयोंका मूल आधार है वे पर्यायाधिकनय हैं । विच्छेद अथवा भेद जिस
में होता है उस कालको विच्छेद कहते हैं । वर्तमानयवनको क्रजुग्रन्थचन कहते हैं, और
जिसे विच्छेदको क्रजुग्रन्थचननिच्छेद कहते हैं । वह क्रजुग्रन्थके प्रतिपादक घटनोंका विच्छेद
काल जिस नयोंका मूल आधार है उह पर्यायाधिकनय कहते हैं । अर्थात् क्रजुग्रन्थके
प्रतिपादक घटनका विच्छेदरूप समयमे लेकर एक समय पर्यन्त धम्बकी स्थितिका निश्चय
मेवात् पर्यायाधिकनय है । इन पर्यायाधिक नयोंके अनिरुद्ध शेष गुणानुरूप द्रव्याधिक

शेषि कृष्णा मवा वा मगद । अथवा नके ममा वधाना वरु स र्विगम । तेषां सर्वे सदि वरिगमना
विधानाऽनुमति, सत्यतामाम्नि अनुवृत्त यावत्तावत्तावत्तुभूत व सावाचयिषेण प्रक्यादा व्यावृत्तावत्तावत्तुभूत
नेयं यद्विधि य विगमिना । तथा न पु १०० मिद्वन्नीया पुन वरु वरान्नवपगवत नयमव
हयवरायाऽन्तमाविवक्षणात् । तथा वना नयम सावाचयिपतिवराया न संघटेज्जमवति सावाचा दुव
ता विधाया युपगमनिपुन उपवत्ता । अ न पु ५ ५

इत्यमरः प्रदीप्तमम्यति याधय नद्वन्वपवतायेतामतात्तल्लममाना दन मितामर्षे व
व युपगमन द्यायाधक इति यावत् । या भेद क्रजुग्रन्थचनानुरूप जन गच्छति वरार्थ । स वयव अर्थ
जनमम्यति पर्यायाधिक साद्वन्वपवताम्यन विगमनिप व द्रव्याधिकानविवक्ष क्रजुग्रन्थचननिच्छेद वापद
याधिक इत्यवगत्य । नयव अ न पु १०

अपरे शुद्धाशुद्धव्यर्थिकाः । तत्रार्थव्यञ्जनपर्यायैरभिन्नलिङ्गमंगवाकालकाग्रपुण्यो
पग्रहभेदैरभिन्न वर्तमानमात्र उपपद्यन्त्यन्तोऽर्थनयाः, न अन्तर्भेदेनार्थभेद इत्यर्थः ।
व्यञ्जनभेदेन उस्तुभेदाध्ययमायिनो व्यञ्जननयाः । तत्रार्थनयः ऋजुसूत्रः । उत ?
ऋजु प्रगुण सूत्रयति सूत्रयतीति तत्तिमदे । नैगममग्रह-पत्रहारार्थनया इति चेत्,
सन्त्येतेऽर्थनयाः अर्थव्यापृतत्वात्, किंतु न ते पर्यायार्थिका द्वयार्थिकत्वात् ।

व्यञ्जननयस्त्रिविधः, अन्तः समभिरूढ उपभूत इति । अन्तःप्रपुण्योऽर्थग्रहणप्रमाण

नयः ह । यही उनम भेद है ।

उनमेंसे, अर्थपर्याय और व्यञ्जनपर्यायसे भेदरूप और लिंग, स्वर, काल, कारण,
पुरुष और उपग्रहके भेदसे अमेदरूप केवल वर्तमान समयकी वस्तुके निश्चय करनेवाले नयोंको
अर्थनय कहते हैं । यहाँ पर शास्त्रके भेदसे अर्थमें भेदकी विजया नहीं है । व्यञ्जन (शब्द) के
भेदसे वस्तुमें भेदका निश्चय करनेवाले नय व्यञ्जननय कहलाते हैं । इनमें, ऋजुसूत्र नयको
अर्थनय समझना चाहिये । क्योंकि, ऋजु सरल अर्थात् वर्तमान समयकी पर्यायमात्रको जो
समग्र करे अथवा सूचित करे उसे ऋजुसूत्र नय कहते हैं । इस तरह वर्तमान पर्यायरूपमें
अर्थको ग्रहण करनेवाला होनेके कारण यह नय अर्थनय है, यह बात निश्चय हो जाती है ।

शुद्धा—नैगम, समग्र और व्यवहारनय भी तो अर्थनय हैं, फिर यहाँ पर अर्थनयोंमें
केवल ऋजुसूत्रनयका ही ग्रहण क्यों किया ?

समाधान—अर्थको विषय करनेवाले होनेके कारण ये भी अर्थनय हैं, इसमें कोई
बाधा नहीं है । किंतु ये तीनों नय द्रव्यार्थिकरूप होनेके कारण पर्यायार्थिक नहीं हैं ।

व्यञ्जननय तीन प्रकारका है, शब्द, समभिरूढ और उपभूत । शब्दोंके ग्रहण करनेके

१ तत्र ऋजुसूत्रार्थक पर्यायः ऋजुसूत्र इति वदन्ते संप्रदायः । (अशुद्ध) ऋजुसूत्र पर्यायः ऋजुसूत्र इति
ऋजुसूत्र इति वदन्ति । यदस्ति न तद्व्ययमित्यत्र वदन्ति इति नैगमो नैगमः शब्दगान्तरमहापरिभाषाया
महापरिभाषायाः मयायुक्तमभिप्रेत्यतमानादिकमात्रेण स्थित्यापचारविषयः । जयप्र अ १ २७

२ वस्तुन रवरूप स्वयमेवेति भिदानाः अन्यः । अन्तर्भेदो वा, समद्वयस्य सव वस्तु इत्यत्र एव गच्छति
इत्यर्थः । जयप्र अ १ २७

३ ऋजुसूत्रवचनविच्छेदात्पित्ररूप वस्तुन वाचकमदन भक्त्यो व्यञ्जननयः । जयप्र अ १ २७

४ ऋजु प्रगुण सूत्रयति तत्रयति इति ऋजुसूत्रः । स हि १, २२ सूत्रपातः ऋजुसूत्रः । यथा ऋजु
सूत्रपातस्यापि ऋजु प्रगुण सूत्रयति तत्रयति ऋजुसूत्रः । त एव वा १, २२ ऋजुसूत्रं सगुणं सगुणं सगुणं सगुणं
ग्राह्यत्वेन ग्राह्यत्वात् द्रव्यत्वेन ग्राह्यत्वात् ॥ न भी वा १ २२ इति ऋजुसूत्रं (व्यास) वर्तमानभाष्यार्थ
सूत्रवर्णनगुह्यम् । स एव वा १ २२ नवमसूत्रमिति स्यात्तद्व्यवस्थायाः । नवमसूत्रं मातृव्यं माता पिता
विभागात् ॥ अतीतान्तादिकं रक्तं रक्तं रक्तं रक्तं । वनवान्तवा सगुणसूत्रं सगुणं ॥ ग न टी १ २२ २२२

शब्दनय लिङ्गमस्याकालसारकपुम्पोपग्रहव्यभिचारनिवृत्तिपरत्तान् । लिङ्गव्यभिचार
स्तारदुष्यते । स्त्रीलिङ्गे पुष्टिद्वाभिधान तारका स्वातिरिति । पुष्टिङ्गे स्यभिधान
अयगमो विद्येति । स्त्रीत्वे नपुंसकाभिधान घीणा आतोषमिति । नपुंसके स्यभिधान
आयुध शक्तिरिति । पुष्टिङ्गे नपुंसकाभिधान पटो वस्त्रमिति । नपुंसके पुष्टिद्वाभिधान
आयुध परगुरिति । मस्याव्यभिचार, एकत्वे द्वित्र नक्षत्र पुनर्नक्ष इति । एकत्वे
बहुत्र नभत्र शतभिषज इति । द्वित्वे एकत्र गोदौ ग्राम इति । द्वित्वे बहुत्र पुनर्नक्ष

माद भक्ष्य ग्रहण करनेमें समर्थ शब्दनय ह, यथोक्ति, यह नय लिंग, सख्या, काल, कारक, पुम्प
और उपग्रहके व्यभिचारों निवृत्ति करनेयत्ना है ।

स्त्रीलिङ्गके स्थानपर पुष्टिङ्गका कथन करना और पुष्टिङ्गके स्थानपर स्त्रीलिङ्गका कथन
करना आदि लिंगव्यभिचार है । जैसे, 'तारका स्वाति' स्वाति नक्षत्र तारका है । यहा पर
तारका शब्द स्त्रीलिङ्ग और स्वाति शब्द पुष्टिङ्ग है । इसलिये स्त्रीलिङ्गके स्थानपर पुष्टिङ्ग
बहनेसे लिंगव्यभिचार ह । 'अयगमो विद्या' ज्ञान विद्या ह । यहा पर अयगम शब्द पुष्टिङ्ग
और विद्या शब्द स्त्रीलिङ्ग है । इसलिये पुष्टिङ्गके स्थानपर स्त्रीलिङ्ग बहनेसे लिंगव्यभिचार
ह । 'घीणा आतोषम्' घीन, यात्रा आतोष बड़ा जाता है । यहा पर घीणा शब्द स्त्रीलिङ्ग
और आतोष शब्द नपुंसकलिङ्ग है । इसलिये स्त्रीलिङ्गके स्थानपर नपुंसकलिङ्गका कथन करनेसे
लिंगव्यभिचार है । 'आयुधं शक्ति' शक्ति आयुध ह । यहा पर आयुध शब्द नपुंसकलिङ्ग
और शक्ति शब्द स्त्रीलिङ्ग ह । इसलिये नपुंसकलिङ्गके स्थानपर स्त्रीलिङ्गका कथन करनेसे
लिंगव्यभिचार है । 'पटो वस्त्रम्' पट वस्त्र है । यहा पर पट शब्द पुष्टिङ्ग और वस्त्र शब्द नपु
सकलिङ्ग है । इसलिये पुष्टिङ्गके स्थानपर नपुंसकलिङ्गका कथन करनेसे लिंगव्यभिचार है ।
'आयुधं परगु' परमा आयुध है । यहा पर आयुध शब्द नपुंसकलिङ्ग और परगु शब्द पुष्टिङ्ग
ह । इसलिये नपुंसकलिङ्गके स्थानपर पुष्टिङ्गका कथन करनेसे लिंगव्यभिचार है ।

एक घबनकी जगह द्विघबन आदिका कथन करना सख्याव्यभिचार ह । जैसे, 'नक्षत्र
पुनघनम् पुनघनम् नक्षत्र ह । यहा पर नक्षत्र शब्द एक घबनान्त और पुनर्नक्ष शब्द द्विघबनान्त
ह । इसलिये एकघबनके स्थानपर द्विघबनका कथन करनेसे सख्याव्यभिचार है । नक्षत्र
गतभिषज गतभिषज नक्षत्र ह । यहा पर नक्षत्र शब्द एकघबनान्त और गतभिषज शब्द
बहुघबनान्त ह । इसलिये एकघबनके स्थानपर बहुघबनका कथन करनेसे सख्याव्यभिचार है ।

१ लिङ्गमस्यावचना । आभवावनाशपर छन्दस । न मि १ ३३ अथव्यवधानम् १११११

१० । न ग हा । वा । न ग व न व पितृशब्द । ता १ शब्दनय शब्दव्यवधानादुत्तरान् ॥

न भा वा १ ३ ६ ३१३ वा । ह्यम राभाधनापरवर्ग इत्यस्य सवर्गति कथा नव । क दा

पु २ । राभाधनिङ्गम यादम इति उपभाषणम् । तदर्थं मयमानाव कथ्य प्रवर्तिनी ॥ ता न ट पु ३१३

व्यभिचार, रमते विरमति, तिष्ठति सतिष्ठते, विश्रुति निविशति इति । एवमादयो व्यभिचारो न युक्तः अन्यार्थेभ्यः अन्यार्थेन सम्यग्वाभासात् । ततो यथातिष्ठ यथासंख्य यथासाधनादि च न्याय्यमभिधानमिति ।

नानार्थमभिरोहणात्ममभिरुद्ध । इन्दनादिन्द्र पूर्वार्थणात्पुनरुद् शब्दान्तरात् इति भिन्नार्थान्वक्तव्यते एवार्थवर्तिनः । न पर्यायशब्दाः सन्ति भिन्नपदानामेवार्थ-

कथन करनेको पुनर्यवभिचार कहते हैं । जैसे, 'यदि मये स्थेन यास्यसि नहि यास्यसि यातस्ते पिता' आभे, तुम समझते हो कि मैं स्थेन जाऊंगा परंतु अब न जाभोगे, तुम्हारा पिता खला गया । यहा पर 'मयमे' के स्थानपर 'मये' यह उत्तमपुनरुक्त और 'यास्यसि' के स्थानपर 'यास्यमि' यह मध्यमपुनरुक्त प्रयोग हुआ है । इसलिये पुनर्यवभिचार है ।

उपसर्गके निमित्तमे परस्मैपदके स्थानपर आत्मनेपद और आत्मनेपदके स्थानपर परस्मैपदके कथन कर देनेको उपग्रह्यभिचार कहते हैं । जैसे, 'रमते क' स्थानपर 'विरमति' 'तिष्ठति' के स्थानपर 'सतिष्ठते' और 'विश्रुते' के स्थानपर 'निविशते' का प्रयोग किया जाता है ।

इसनरुद्ध अतिने भी लिंग आदि व्यभिचार ऊपर दे आये हैं वे सभी अयुक्त हैं, क्योंकि, अथ अथवा अथ अथके साथ सब अथ नहीं हो सकता है । इसलिये समान लिंग, समान लक्षणा और समान साधन आदिका कथन करना ही उचित है ।

शाब्दभेदे जो नाना अर्थोंमें अभिरुद्ध होता है उसे समभिरुद्ध नव कहते हैं । जैसे 'इन्दुनाम्' अर्थात् परम वैश्वदेवता होनेके कारण इन्द्र 'पुनरुत्तनाम्' अर्थात् नगरोंका पिता बननेवाला होनेके कारण पुनरुद् और 'शब्दनाम्' अर्थात् सामर्थ्यवाला होनेके कारण शब्द । ये तानों शब्द भिन्नार्थवाचक होनेसे इन्हें एवार्थवर्ती नहीं समझना चाहिये । इस नयकी दृष्टिमें पर्यायवाची शब्द नहीं होते हैं, क्योंकि, भिन्न पदोंका एक पदार्थमें रहना स्वीकार कर लेनेमें

सुचारः अत्रपुनः साधनाम् अत्रपुनः अत्रपुनः । त एव वा पु २७३ तथा पुनर्यवभिचारः नरुद्धः तद्वत् इति एवम् इत्यादि । इति च प्रथमा न पुनः अति तु एवम् अथवा यथा स्थेन यास्यसि इत्यनेन पक्षान्ननमिच्छामः । स त पु २७३ प्रथम च यथापद मयैरुत्तम एवम् वा १४ ११ 'पुनः' इति वा स्थेन यास्यसि नहि यास्यसि इत्यनेन निता इति प्रथम यथापदमय निवृत्ति नात्र प्रविष्टापरिपक्षान्तिविधिचिन्तनमभि स्थेन यास्यसि इति भावना नोपपन्नता प्रथमा मयैरुत्तम । नहि यास्यसि इति बहिष्करणं प्रति पदम् । अत्रपुनः अत्रपुनः अत्रपुनः इति अत्रपुनः इति अत्रपुनः इति एवम् इति एवम् इति । एवम् इति एवम् इति ।

१ म ति २ न ग व ३ ४ पथापसन्दमनः । मथापसन्दमनः । नव सर्वान्तरुत्तम इति एवम् इति । नव १ वा २ ७ नानावात् सम यामेव पुनः समभिः । २ क वा पु २ तथापि अत्रपुनः अत्रपुनः अत्रपुनः । मने मयैरुत्तम नरुद्धः निवृत्तिः । स त पु २१३ २ प्रथम अत्रपुनः वा ।

शुचिनिरोधात् । नानिरोध पदानामेकत्रापचेरिति । नानार्थस्य भाव नानार्थता न समभिरुद्धत्वात्समभिरुद्ध ।

एव भेदे भवनादेरभ्युत । न पदाना समामोऽस्मि भिन्नकालवर्तिना भिन्नार्थवर्तिना चैकत्वनिरोधात् । न परस्परव्यपेक्षाप्यस्मि उर्णार्थमग्याकालादिभिर्भिन्नाना पदाना भिन्नपदापेक्षायोगात् । ततो न चाक्यमप्यस्तीति मिद्धम् । तत पदमेकमेवार्थस्य वाचकमित्यध्ययमाय एवभूतनय । एतस्मिन्नये एको गोशब्दो नानाथ न वर्तते एकस्यैव स्वभास्य चक्षुषु शुचिनिरोधात् । पदगतवर्णभेदाद्वान्यभेदाध्याध्ययमायकोऽप्येवभूत

विरोध आता है । यदि भिन्न पदोंकी एक पदार्थमें वृत्ति हो सकती है इनमें कोई विरोध नहीं है, ऐसा मान लिया जाये तो समस्त पदोंको एकत्रकी आपत्ति आ जायेगी । इसमें यह तात्पर्य निकला कि जो नय शब्दभेदसे अर्थमें भेद स्वीकार करता है उसे समभिरुद्ध नय कहते हैं । नाना पदार्थोंके भाव अर्थात् विरोधमाने नानार्थता कहते हैं । ओर उस नानार्थताके प्रति उक्त अभिरुद्ध है उसे समभिरुद्ध नय कहते हैं ।

एवमेव अर्थात् जिस शब्दका जो वाच्य है वह तद्रूप नियमसे परिणत समयमें ही पाया जाता है । उसे जो नियम करता है उसे एवभूत नय कहते हैं । इस नयकी दृष्टिसे पदोंका समान नहीं हो सकता है, क्योंकि, भिन्न भिन्न कालवर्ती ओर भिन्न भिन्न अर्थवाले शब्दोंमें एकपदेक विरोध है । इसीतरह शब्दोंमें परस्पर सापेक्षता भी नहीं है, क्योंकि, घर्ण, अर्थ, सत्या आदि कालादिकके भेदसे भेदके प्राप्त हुए पदोंके दूसरे पदोंकी अपेक्षा नहीं बन सकती है । जब कि एक पद दूसरे पदकी अपेक्षा नहीं रखता है तो इस नयकी दृष्टिमें वाक्य भी नहीं बन सकता ।

१ ' नानाधनमभिप्रायसमभिरुद्ध ' इति पाठमभिप्राय निरुद्धे सङ्गतिभिप्राय ।

२ यनामनाभूतस्त्वेवायवमाययनातिरुद्ध । स मि १ ३३ त रा वा १ ३३ तत्रियापतिनामधन धवति विनिश्चयान् । एवभूतन नायत्र नियतात्परात्सुम् । त रा वा १ ३३ ७५ एवमिध विनिश्चितनियतापिनाम प्रकारेण भूत परिणतमथ या मिनेति स एवभूतो नय । (निधाधयन भद्रमप्यमिधमावाच । शिष्यी) प्र क मा पु २ १ ७८ ग्यापि धनवाच्य सदा नानावचन । नियामदन निनवाचवृत्तामिधयत् । त रा वा १ ३३ ७८

३ एवमनाभूत । अस्मन्मय न पदानां समामा मि स्वरूपन काभदन न मिशानामकालावा । न पदानाभ्यन्तरात् शुचि समान प्रमाणानां धनमपिनां तदनपत्त । नैवाध शुचि समान भिन्नपदानाभेदात् शुच्यनपत्त । न वाममनाभ्यन्ति, तथापि पदममानदानमगात् । तत एव वण एकाधरावक इति वगन्तव्यमात्रा एकाध इत्यवृत्तामिधयान् एवमनाय । जयरा अ वृ २९ यामिधयिनिश्चितमनाप्यन, तामय विनिश्चितमनाप्यनमनाप्यन । एवमनाप्यन चानिधयिनिश्चित प्रमाण, तमवचन प्रायमिति क वा तनभेदभूतवृत्तानिधयिनामनाप्यनपदापेक्षादवचन । जयरा एवमनाप्यन चानिधयिनिश्चित प्रमाण तन्निश्चितमनाप्यन वरुनाभ्युपगमादवचन प्राय एवभूत । दुपरावचनानिधयिनाप्यन स एवभूत नय । अ रा वा १ (एवभूत)

एवम्भूते समुपपन्नत्वात् । एवमेते मज्ञेपेण नया सप्तविधा, अज्ञान-तरभेदेन पुनरुक्तयेया ।
एते च पुनर्व्यवहर्तभिरुपपन्नान्तर्गता अयमर्थप्रतिपादनायगमानुपपत्ते । उक्तं च—

णानि णएहि विण्ण सुख अण्णे म्म जिणस्समग्गहि ।

तो णय चादे णिउणा मुण्णिणे मिद्धतिया होति' ॥ ६८ ॥

सम्हा अटिगय सुत्तेग अय सपावणहि नयय' ।

अय गई वि य णय चाइग्गट्ठ-लीणा दुरहिपम्मा ॥ ६९ ॥

एत एव पञ्चरात्रा गदा । अनुगम वचइस्सामो—

एतो इमेसि चोइसण्ह जीव समासाण मग्गणट्ठदाए तत्थ
इमाणि चोइस चेव ट्ठाणाणि णायव्वाणि भवति ॥ २ ॥

है यह बात सिद्ध हो जाती है । इसलिये एक एक ही अर्थका वाचक होता है । इसप्रकारके विषय करनेवाले नयको एवम्भूतनय कहते हैं । इस नयकी दृष्टिमें एक गो दास्य माना अर्थोंमें नहीं रहता है, क्योंकि, एकव्यवसायवाले एक पदका अनेक अर्थोंमें रहना विच्छेद है । अथवा, पदमें रहनेवाले अर्थोंके भेदमें वाच्यभेदका निश्चय करनेवाला भी एवम्भूतनय है, क्योंकि, यह नय इसी रूपमें उत्पन्न होता है । इसनरद ये नय सशेषसे सान प्रकारके भोर अथातर भेदोंमें असम्यक्त प्रकारके समझना चाहिये । व्यवहारकुशल लोगोंको इन नयोंका स्वरूप अवश्य समझ लेना चाहिये । अथवा, अर्थान् नयोंके स्वरूपको समझे बिना पदार्थोंके स्वरूपका प्रतिपादन भार उमका ज्ञान अथवा पदार्थोंके स्वरूपके प्रतिपादनका ज्ञान नहीं हो सकता है । कहा भी है—

‘जिनेन्द्रमगयान्ते मतमें नयपादके बिना सूत्र भार अर्थ कुछ भी नहीं कहा गया है । इसलिये जो मुनि नयपादमें निपुण होते हैं वे स्वये सिद्धान्तक ज्ञाता समझने चाहिये । अतः जिनेन्द्र सूत्र अर्थान् परमागमको भलेप्रकार ज्ञान लिया है उसे ही अर्थसंपादनमें अर्थान् नय और प्रमाणके द्वारा पदार्थके परिज्ञान करनेमें प्रयत्न करना चाहिये, क्योंकि पदार्थोंका परिज्ञान भी नयपादरूपी अगममें अन्तर्निहित ॥ अतएव दुरधिगम्य अर्थान् ज्ञाननेके लिये कथित ॥ ६८, ६९ ॥ इसनरद नयप्रकरणका अर्थान् समाप्त हुआ ।

अब अनुगमका निरूपण करते हैं ।

इस द्रव्यधृत और भावधृतरूप प्रमाणसे इन चौदह गुणस्थानोंके अव्येपरूप प्रयो जनके होने पर ये चौदह ही मागणास्थान जानने योग्य हैं ॥ ८ ॥

१ मज्झिमनिरिण्ण सुत्तं अथा य जिग्गम विवि । ज्ञात्वा उ मोरारं वण मय वनरओ वृथा ॥

आ नि ६११

१ सुत्तं अचानियम न सुवनेवव अचरिअवणी । अचई उ पदवापएवग्गण मग्गिग्गमा ॥

सुहा अविगणुपेण अचणवाकणिय जइय ई । जारविअवग्गका हिं वहाण विविअ ॥ १ ॥ १, ६४ ६५

‘ एत्तो ’ एतस्मादित्यर्थ । कस्मात्, प्रमाणात् । कुत एतदप्रमप्यते ? प्रमाणस्य जीवस्थानस्याप्रमाणादप्रतारविरोधात् । नानलात्मसहिमरतो निपतज्जलात्मसंग्रह्या व्यभिचार अत्रयविनोऽत्रयस्यात्र त्रियोगापायस्य विरक्तिन्यात् । नात्रयविनोऽत्रयो भिन्ना विरोधात् । तदपि प्रमाण द्विविध द्रव्यभाजप्रमाणभेदात् । द्रव्यप्रमाणात् मय्येषा

‘ एत्तो ’ अर्थान् इसमे ।

प्रश्ना—यहा पर ‘ एतद् ’ पदमे किमका प्रहण किया है ?

मामधान—यहा पर ‘ एतद् ’ पदमे प्रमाणका प्रहण किया है, इसलिये ‘ इसमे ’ अर्थान् ‘ प्रमाणमे ’ ऐसा अभिप्राय समप्रना चाहिये ।

प्रश्ना—यह कैसे जाना, कि यहा पर ‘ एत्तो ’ पदका ‘ प्रमाणमे ’ का अर्थ लिया गया है ?

मामधान—क्योंकि प्रमाणरूप जीवस्थानका अप्रमाणमे अप्रतार अर्थान् उत्पत्ति नहीं हो सकती है, इसमे यह जाना जाता है कि यहा पर ‘ एत्तो ’ इस पदम दियत ‘ एतद् ’ पदमे प्रमाणका प्रहण किया गया है ।

यहा पर यदि कोई यह कहे कि कार्यमें कारणानुसू ही गुणधर्म पाये जाते हैं क्योंकि, यह कार्य है । इस अनुमानम जो कार्यरूप हेतु है, वह प्रमाणरूप कारणमे उत्पन्न हुए प्रमाणमक जीवस्थानरूप माध्यमे पाया जाता है, और अत्रत्यरूप हिमयामे उत्पन्न हुए उत्पन्नक गौणवर्तीरूप विषयमें भा पाया जाता है । अतएव इस कार्यरूप हेतुके पासमें रहत हुए ही विषयमें अत्र चलेक कारण व्यभिचार शेष आता है । अत यह कहना कि प्रमाणरूप जीवस्थानका उत्पत्ति प्रमाणमे ही हुई है, संगत नहीं है । इस शकानो मतमें निश्चय करके आचार्य भागे उत्तर देत है कि इसतरह अत्रत्यमक निमित्तामे निश्चयनी हुई उत्पन्नक गौण वर्तीमे भा व्यभिचार शेष नहीं आता है, क्योंकि, यह पर अवयवीम वियोगापायरूप अथाव अवयव मे मयोगका प्राप्त हुआ अवयव विधायित है । इसका कारण यह है कि अवयवीम अवयव मिय नहीं है, क्योंकि, अवयवाम अवयवका सर्वथा भिन्न मान लेनेम विरोध आत है ।

विशेषार्थ—यद्यपि हिमयान् पर्वत अत्रत्यमक है । परन्तु उत पर्वतके भिन्न प्रमाणम उत्पन्न नहीं निकला है वह मात्र उत्पन्न ही है । इसलिये यहा पर हिमयान् पर्वतम उत्पन्न उत्पन्नक अवयव प्रहण करना चाहिये । इसमे जो पर्वत व्यभिचार दाय व आगे है वह पर्वत का नहीं आता है क्योंकि यहा पर हिमयान् पर्वतका उत्पन्नमक भग ही प्रहण किया गया है अतः समस्त उत्पन्न उत्पन्न निकली है । अतएव इस विषय मे समग्रकर बताया ही आताका अर्थ है । इसतरह भिन्न ही उत्पन्न है कि प्रमाणरूप अ वर्यामकी उत्पत्ति प्रमाणम ही हुई है ।

उत्पन्नमक अत्रत्यमक अवयव यह प्रमाण का उत्पन्न है । उत्पन्नमक अथाव उत्पन्नमक अत्रत्यमक उत्पन्नमक अवयव, अवयवाम अत्रत्यमक उत्पन्नमक

जहणेण जावल्याए अमखेज्जटि-भागे भूट भविम्य च जाणदि । उवस्मेण अमखेज्जटि-भागे भूट भविम्य च जाणदि । उवस्मेण अमखेज्जटि-भागे भूट भविम्य च जाणदि । उवस्मेण अमखेज्जटि-भागे भूट भविम्य च जाणदि । उवस्मेण अमखेज्जटि-भागे भूट भविम्य च जाणदि ।

मगपज्जवमाणणाम पर मगो-वायड मुत्ति-उव्वाड तेम मगेण सह पवस्स जाणि । उवस्मेण मग-ममय ओगालिय-मगीरणिज्जव जाणदि । उवस्मेण मग-ममय पडिबद्धम्य कम्मइय-उव्वस्म अणतिम-माग जाणदि । खेत्टेण जहणेण गाउ पुरा उवस्मेण मागुम-खेत्तस्मते जाणदि, णो यडिडा । सान्ते जहणेण ते निगि भव

भक्तान् पदार्थोंको जानना है । मज्झिम्य भँर अनुट्ट (मध्यम) भय, धिक्कान, उव १ भँर उव्वाडके अन्तराज्जव कालभेदोंको जानना है । मायकी अवेसा अयधिक्षान द्रव्यप्रमाणमे पद निरूपण किंते गये द्रव्यकी गतिको जानना है ।

ओ मगोके मनेगन मूर्तोंके द्रव्योंको उव मनेके साथ प्रवृत्त जानना है उमे मग पदार्थकन कहते हैं । मग पदार्थकान द्रव्यकी अवेसा उव पदार्थमे एक समयमें होनेके भौतिकी-कारिके निमित्तकय द्रव्यकको जानना है । उव्वाडकमे कार्माणद्रव्यके अर्थान् मग पदार्थके एक समयमें कंध द्रव्य समयप्रवृत्तकय द्रव्यके अन्तर भागोंमेंसे एक भागकको जानना है । अवेसा अवेसा अयधिक्षानमे मगुनिट्टकय, अर्थान् वे, तीन कोस लक्ष क्षेत्रको जानना है । भँर उव्वाडकमे अनुपभेदके भँर लक्ष जानना है अनुपभेदके बाहिर नहीं जानना है । (बाहिर अनुपभेदके प्रयोगन निरूपकय अनुपभेदके है, यत्तकय अनुपभेदके नहीं है ।) बाहरी अवेसा अयधिक्षानमे वे, तीन अर्थोंका प्रमाण करना है, भँर उव्वाडकमे प्रमाण

१. मगपज्जवमाणणाम पर मगो-वायड मुत्ति-उव्वाड तेम मगेण सह पवस्स जाणि । उवस्मेण मग-ममय ओगालिय-मगीरणिज्जव जाणदि । उवस्मेण मग-ममय पडिबद्धम्य कम्मइय-उव्वस्म अणतिम-माग जाणदि । खेत्टेण जहणेण गाउ पुरा उवस्मेण मागुम-खेत्तस्मते जाणदि, णो यडिडा । सान्ते जहणेण ते निगि भव

एत्थ पुत्राणुपुत्रीण गणिज्जमाणे दन्त-भास सु पट्थ मिट्ठियादो, अय पत्त
पचमादो रेखलणाणाणे । पठाणुपुत्रीण गणिज्जमाणे दन्त-भास सु पट्थ चउमादो
सुद-पमाणादो । अत्थ पट्ठ पडमादो रेखलादो । जत्तनयाणुपुत्रीण गणिज्जमाणे
सुदणाणादो केवलणाणाणे य । सुदणाणमिदि गुणगम, अक्खम पड नपाद-पविनि
यादीहि सखेज्जमन्नादो अणत्त । एदम्म तदुमयत्तज्जडा ।

अत्याहियारो दुमिहो, अगमाहिरा जगपट्ठो चेदि । तय अगमाहिरम्म चो
अत्याहियाग । त जहा, मामाडय चउमीमत्तओ उदणा पट्टिकमण वेणइय किण्णिम
दमरेपालिय उत्तरज्जयण रूपपरहारो रूपारूपिय महारूपिय पुडगीय महापुडगी
णिमिहिय चेदि । तत्थ ज मामाडय त णाम-द्वयणा-दन्त-क्खेत्त राल मावेसु मम
निहाण ण्णेदि । चउमीमत्तओ चउमीमण्ह तिथयगण उदण-विहाण तण्णाम-मट्ठणु-
पव महारुल्लाण-चोत्तीम-अडमय-मरुव तिथयग-उदणाए महलत्त च वाणि

प्रमाणसे प्रयोजन है, ऐसा उत्तर देना चाहिये ।

पहापर पूर्वानुपूर्वमे गणना करनेपर द्रव्यभूत और भावभूतकी अपेक्षा तो भूत
भूतप्रमाणसे प्रयोजन है और जयकी अपेक्षा पावने केवलज्ञानप्रमाणसे प्रयोजन है । परन्तु
पूर्वमे गणना करनेपर द्रव्यभूत और भावभूतकी अपेक्षा चाये भूतप्रमाणसे प्रयोजन है
अर्थकी अपेक्षा प्रथम केवलप्रमाणसे प्रयोजन है । यथानयानुपूर्वमे गणना करनेपर भूतप्रमा
और केवलप्रमाण इन दोनोंमे प्रयोजन है ।

भूतज्ञान यह सार्यक नाम है । यह अमर, पद, सत्य और प्रतिपत्ति आदिकी अपेक्षा
सम्पन्नमेदरूप है और अर्थकी अपेक्षा अनन्त है ।

नील धतूयनाओंमेंसे इस भूतप्रमाणकी तदुपपन्नत्वना (स्वसमय-परमपवनत्वना)
ज्ञानना चाहिये ।

अर्थाधिकार दो प्रकारका है, अगवाण और अगप्रतिष्ठ । उन दोनोंमेंसे, अगवाणके बाद
अर्थाधिकार है । ये इसप्रकार हैं, सामायिक, अनुविशतिस्मय, चन्द्रना, प्रतिममण, धनयि
वृत्तिकर्म, द्वायकातिक, उत्तरावयन कल्पप्रयदार, कल्पाकल्प, महाकल्प, पुनरा
महापुनरीक और निषिद्धिका । उनमेंसे, सामायिक नामकी अगवाण अर्थाधिकार नाम
ख्यापना, प्रथ, क्षेत्र काल और माय इन छह भेदों द्वारा समतामायके विधानका ध्यान करना
है । अनुविशतिस्मय अर्थाधिकार उस उस कालमवधि अर्थोत्पत्ति सार्यकरोकी चन्द्रना करने
विधि उनके नाम मन्थान, उन्मेष पात्र महाकल्पानक, चालीस अनिशायोके अक्षर भा
सार्थकरोका चन्द्रनाका मन्थनाका ध्यान करना है ।

पण्णा पण निज निगालय विमय-वदण्णा निरवज्ज भाव वण्णेइ । पडिक्कमण काल पुरिस
च अस्मिऊण मत्तरिह पडिक्कमणाणि वण्णेइ । वेण्डय गाण दसण चरित्त-त्तोनपार-
विणए वण्णेइ । सिदियम्म अरहत सिद्ध आइरिय बहुसुद साहूण पृत्ता निहाण वण्णेइ ।
दसवेयालिय आपार-नोपरं सिद्धि वण्णेइ । उत्तरज्झमण उत्तर पदाणि वण्णेइ । कप्प-

पद्धता नामका अर्थाधिकार एक जिने द्रव्यसंबन्धी और उन एक जिने द्रव्यके अथ
लक्षणने जिनान्त्यभय-धी धर्माणा निरवयवभावेसे अर्थान् प्रशस्तरूपसे सांगोपाग वर्णन करता
है । (प्रमादहन द्यमित्त भादि दोषोंका निराकरण जिसके द्वारा किया जाता है उसे प्रतिक्रमण
कहते हैं । यह द्यमित्त, राशित्त, पाशित्त, आनुर्मासित्त, सावत्तरित्त, वेयापयित्त आदि आदि
मार्थिक्ये भेदने सात प्रकारका है ।) इन सात प्रकारके प्रतिप्रमर्णोंका प्रतिप्रमण नामका
अर्थाधिकार दु पमादि काल और उह सहनने युक्त स्थिर तथा भस्थिर स्वभाववाले
पुरुषोंका आश्रय लेकर वर्णन करता है । पमित्त नामका अर्थाधिकार ज्ञानमित्त, दर्शनमित्त
आश्रित्तमित्त, तत्त्वमित्त और उपसर्गमित्त इत्यन्तरह इन पांच प्रकारकी दियनोंका वर्णन करता
है । इतिवर्त नामका अर्थाधिकार भरिदत्त, सिद्ध, भाषाये, उपाध्याय और साधुकी पूजाधिकार
वर्णन करता है । पित्त कालको पिका कहते हैं । उसमें जो विरोधता होती है उसे पकालिक
कहते हैं । ये वैकालिक द्वा हैं । उन द्वा वैकालिकोंका द्वावकालिक नामका अर्थाधिकार वर्णन

१ प्रतिप्रमणे प्रमादहनं विमर्शविमर्शो निरुत्तिवने जवननि प्रतिप्रमणम् । तस्य दैवनिष्ठापिष्ठापिक-
थागुमाविमर्शनाद्वयपारिणीकाधिकारमसमिधम् । मत्तादिभिरं दु पमादिक्क वत्तन्तमवनिवृत्तिविमर्श
पुनर्मर्शन आश्रित्त तत्रविमर्शक साधमपि प्रतिप्रमणम् । गो जी जी ३, टी ११३

२ इह विप्राया क्व विज्ञान अस्मिन् वण्णु इति वडिडन । तस्य अग्निदावायवहुभुत्ताकादिन
दवनाइदनानिमित्तमाभीननामाद्विषयविमर्शविमर्श विमर्शमत्तादिनात्तन्तमनि यनविमर्शविमर्शविमर्श च वर्त
यात् । गो जी जी ३, टी ११३

३ आचारो साधममज्जानादिहकमस्य गवरो विम आचारोपर (आचार ७ अ १४) आचार
हाना विमर्श पञ्चधा गवरो अन्धकाराचारोपर आचारोपर विमर्शनात्तन्तमनि यनविमर्शविमर्शविमर्श
हाना विमर्शमत्तादिनात्तन्तमनि यनविमर्शविमर्शविमर्श विमर्शमत्तादिनात्तन्तमनि यनविमर्शविमर्शविमर्श
अभि रा का (आचारोपर)

४ विमर्श विमर्श विमर्शमत्तादिनात्तन्तमनि यनविमर्शविमर्शविमर्श विमर्शमत्तादिनात्तन्तमनि यनविमर्शविमर्शविमर्श
तस्य द्वाज्जाना आचारोपर विमर्शमत्तादिनात्तन्तमनि यनविमर्शविमर्शविमर्श विमर्शमत्तादिनात्तन्तमनि यनविमर्शविमर्शविमर्श
याद प न भवमपमया मा प ३ अ ११३ नना १३३ । विमर्श विमर्शमत्तादिनात्तन्तमनि यनविमर्शविमर्शविमर्श
उन्नाद्वया अन्तममज्जानात्तन्तमनि यनविमर्शविमर्शविमर्श विमर्शमत्तादिनात्तन्तमनि यनविमर्शविमर्शविमर्श
उपवमण । ७ आचारोपर विमर्शमत्तादिनात्तन्तमनि यनविमर्शविमर्शविमर्श विमर्शमत्तादिनात्तन्तमनि यनविमर्शविमर्शविमर्श
विमर्शमत्तादिनात्तन्तमनि यनविमर्शविमर्शविमर्श विमर्शमत्तादिनात्तन्तमनि यनविमर्शविमर्शविमर्श

५ पण्णा अथाप पण्णा प्रतिप्रमर्श उपाध्यायवत् । तस्य अग्निदावायवहुभुत्ताकादिन

अगपविष्टस्य अत्वाधिपारो वारमविहा । त जहा, आपारा मृष्यद टाग ममरापो
रिपाहवणगी पाहधम्मकहा उरामयङ्गयम अनपट्मा अनुमरागान्दिमा
पण्वायरण रिमामुत्त निदिमादो चेदि । मयापागममट्मागे पट महम्मति १८०००—

यम चरे यम चिहे यमामे यम मग ।

यम मुनेज मागेज यम पाग ण म ॥ ७० ॥

जद चरे जद चिहे जदामे जद म ।

जद मुनेज मागेज एव पाग ण म ॥ ७१ ॥

ममादिय मुणीममापार वणेदि ।

उदपद नाम अग उनीम यम महम्मति ३६००० पागविमय पणायग
कप्पाकपर जेदोवट्ठारण उवहारधम्मविरियाओ पग्गेद मममय पममय मग्ग य पग्गद ।

अगपविष्टे अर्वाधिहार वाहट्ट प्रहारक हे । य य हे अचर नृवत्त म्पम
ममवाय, क्पावमप्रवृत्ति, माधयममय, उवावममयम अग हट्ट अनुमरागान्दिम
ममवावट्टण, विपावमम अग हट्टिवाह । इममेव अचराय अगहट्ट हट्टार य व ट्टार ।—

विममहार कम्मा खादिये । विममहार मग्ग वट्टना खादिये । विममहार
विममा खादिये । विममहार हावम करना खादिये । विममहार माजम करना
खादिये । विममहार मममय करना खादिये अग विममहार पममय मग्ग
यममा हे । (इममहट्ट मममय मग्ग अगुमार) यमम अम्मा खादिये यममय मग्ग वट्टना
खादिये, यममे विममा खादिये, यममय हावम करना खादिये यममय मग्ग वट्टना मग्ग
यममे मममय करना खादिये । इममहार अगहट्ट करना पममय मग्ग मग्ग हे । य हे
॥ ७० ७१ ॥ इत्यादि कपते मुनियोव आचारका मग्ग करना ॥

मग्गवट्टना उनीम उट्टार पग्गो ट्टार मागमय पग्गवट्टना कम्पाकपर उट्टार पग्गवट्टना
और कपट्टारधम्मविवाका मग्गवट्टना करना हे । मग्गो पग्ग कपममय अग पममय मग्ग ॥ विममय

१ ७५ १० ।

२ १ ०

॥ ७५ १० ॥

१ ७५ १०

१ ७५ १०

१ ७५ १०

१ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥

१ ७५ १०

१ ७५ १०

१ ७५ १०

१ ७५ १०

१ ७५ १०

१ ७५ १०

१ ७५ १०

१ ७५ १०

१ ७५ १०

१ ७५ १०

१ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥

१ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥

१ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥

१ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥ ७५ १० ॥

ठाण णाम अग पायालीम-यद सहस्मेहि ४२००० ण्गाटि-एगुत्तर-ट्ठाणाणि ण्णेति ।
तस्मोदाहरण—

एको चेत्त मत्थो सो त्तिथियो नि लक्खणो भणिओ ।

चट्ठ-मक्रमणा-पुत्तो पचग्ग-गुण ण्हाणो य ॥ ७२ ॥

उत्तापज्जम-पुत्तो कममो सो मत्त भणि-म-भावे ।

अट्ठासरो णग्गे जीओ दस-टाणियो भणियो ॥ ७३ ॥

करता है । स्थानाग प्यालीस हजार पदोंके द्वारा पङ्क्तो आदि लेकर उत्तरोत्तर एक एक अधिक स्थानोंका वर्णन करता है । उसका उदाहरण—

महात्मा अर्थात् यह जीव द्रव्य निरन्तर चतुर्वर्ण धर्ममे उपयुक्त होनेके कारण उन्मर्श अपेक्षा एक ही है । ज्ञान और दर्शनके भेदसे दो प्रकारका है । कर्मफलचेतना, कर्मचेतना और ज्ञानोक्तनामे लक्ष्यमान होनेके कारण तीन भेदरूप है । अथवा उत्पाद, व्यय और धर्मिक भेदमे तीन भेदरूप है । चार गणियोंमें परिभ्रमण करनेकी अपेक्षा इसके चार भेद है । आदिगिह आदि पाय प्रधान गुणोंमे युक्त होनेके कारण इसके पात्र भेद है । भ्रमणमें सप्तमणके सप्त पूर्ण, अधिम, उत्तर, दक्षिण, उत्तर और नीचे इसतरह छह सप्तमलक्षण अप्रमर्शमे युक्त होनेका अपेक्षा छह प्रकारका है । अस्ति, नास्ति इत्यादि सात भ्रमणमे युक्त होनेका अपेक्षा सात प्रकारका है । ज्ञानायरणादि आठ प्रकारके कर्मोंके आश्रयमे युक्त होनेकी अपेक्षा आठ प्रकारका है । अथवा ज्ञानायरणादि आठ कर्मोंका तथा आठ गुणाका आश्रय होनेकी अपेक्षा आठ प्रकारका है । जीवादि नौ प्रकारके पदार्थोंको विषय करनेवाला, अथवा जीवादि नौ प्रकारके पदार्थोंका परिणामन करनेवाला, होनेकी अपेक्षा नौ प्रकारका है । पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, अवेक्यनस्पतिकायिक, माधारेणयनस्पतिकायिक, जीविकायिक, अजिवायिक, अनुजिवायिक और अवेजिवायिक के भेदसे दश स्थानगत होनेकी अपेक्षा दश प्रकारका कहा गया है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

१. ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

१. ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

विजय प्रजयन्त-जयन्तापगजित मर्गार्थमिद्वार्यानि पञ्चानुत्तराणि । अनुत्तरेणोपपात्तिः
 अनुत्तरावपात्तिः, ऋषिदास-धन्य मुनिरा-कार्तिकेयानन्द नन्दन शालिमित्रामय-चारिण
 चिलानपुत्रा इत्येते दश वर्द्धमानतीर्थस्मरतीथ । ऋषभमदीना प्रयोविशतेस्तीर्थधन्यस्य
 एवं दश दशानगारा. दाशानुपमर्गाचिचित्य विजयायनुत्तरेपृत्पन्ना इत्येवमनुत्तरावपा
 दिका दशास्या ऋष्यन्त इत्यनुत्तरावपादिकृदशा । पण्डितपरण नाम अग तेणउदि
 लक्ष-सोल्ह महम्म पदेहि ९३९६००० अस्तेयणी निस्तेयणी मयेयणी निजेयणी

अयम्, अपराजित भार मर्गार्थसिद्धि ये पाच अनुत्तर गिमान है । जो अनुत्तरोंमें उपपादक मन्
 पैदा होने हैं, उन्हें अनुत्तरावपादिक कहते हैं । ऋषिदास, धन्य, मुनिरा, कार्तिकेय, आनन्द, नन्दन, शालिमित्र, अमय चारिणेण आर चिलानपुत्र ये दश
 अनुत्तरावपादिक वर्द्धमान तीर्थकरके तीर्थमें हुए हैं । इसीतरह ऋषभनाथ
 भादि तीर्थीस तीर्थकरोंके तीर्थमें अथ दश दश महासाधु दास्य उपमर्गोंको जीतकर विजया
 दिक पाच अनुत्तरोंमें उपपन्न हुए । इसतरह अनुत्तराम उत्पन्न होनेजाले दश साधुओंका विमो
 वर्द्धन किया जाये उमे अनुत्तरावपादिकृदशा नामका भग कहते हैं ।

प्रदन्ध्याकरण नामका भग नेरामये लाल साग्रह हजार पदोंक द्वारा आपराणा, विष
 पन्ना, मयदमी धीर नियदमी इन चार कथारोंका तथा (मूल, भविष्यत् और वर्तमानकाल
 मन्त्रों धन, धातु, लाल, अन्तर्ग जीवित, मरण, जब और पराजय संवर्धी प्रसोक्त
 पृष्ठनेपर उनके) उपायका वर्णन करता है ।

॥ ५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

॥ १०१ ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ १२० ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ १३० ॥ १३१ ॥ १३२ ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ १४० ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ १५० ॥ १५१ ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ १५५ ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ १६० ॥ १६१ ॥ १६२ ॥ १६३ ॥ १६४ ॥ १६५ ॥ १६६ ॥ १६७ ॥ १६८ ॥ १६९ ॥ १७० ॥ १७१ ॥ १७२ ॥ १७३ ॥ १७४ ॥ १७५ ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ १७८ ॥ १७९ ॥ १८० ॥ १८१ ॥ १८२ ॥ १८३ ॥ १८४ ॥ १८५ ॥ १८६ ॥ १८७ ॥ १८८ ॥ १८९ ॥ १९० ॥ १९१ ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ १९४ ॥ १९५ ॥ १९६ ॥ १९७ ॥ १९८ ॥ १९९ ॥ २०० ॥

कपिलोत्तरु गार्ग्य व्याप्रभृति-वाडलि माठर-मौदृत्त्यायनादीनामक्रियावाट्टीना चतु
शीति, शारुल्य उत्तरु कुमुमि सात्यमुग्रि नारायण कण्य माध्यन्तिन मोद-पेप्पला-वाग
यण-स्येष्टकृदेतिहायन यमु जेमिन्यादीनामज्ञानिरुद्धीना मस्यष्टि, यष्टिष्ट पागाग चतु
कर्ण-वाल्मीकि-रोमहर्षणी मत्यदत्त यामलापुत्रापमन्यमन्द्रतायम्पूणातीना येनयि
दृष्टीना द्वात्रिंशत् । एषा दृष्टिगताना त्रयाणा त्रिपष्टशुत्तगणा प्रम्यण निग्र ४ त्रिंशते
क्रियते ।

एतथ क्रियायारादो, एत पुन्ठा मन्त्रेभि । षो जायगदो, एत वाग्ना मन्त्रा,
दिद्विनादादो । तस्म उत्तरमो पचनिहो, आणुपुत्री षाम पमाण उत्तरम जन्वादिषाम
चेदि । तत्त आणुपुत्री तिनिहा, पुव्वाणुपुत्री पन्ठाणुपुत्री जथतन्वाणुपुत्री चति ।

वाडलि, माठर ओर मोदृत्त्यायन आदि क्रियायादियोंके चौरासी मतोंका, शारुल्य, उत्तरु,
कुमुमि, सात्यमुग्रि, नारायण, कण्य, माध्यन्तिन, मोद, पेप्पला, वादरायण स्येष्टकृन्, येनिकायन
यमु ओर जेमिनी आदि अज्ञानयादियाके सरसठ मतोंका तथा द्वाष्टिष्ट, पागाशर, जनुकर्ण,
वाल्मीकि, रोमहर्षणी, सत्यदत्त, व्यास, एलापुत्र, ओपमन्यु, पेन्द्रदत्त और जयस्युण आदि
येनयिकयादियोंके बत्तीस मतोंका वर्णन और निराकरण किया गया है । ऊपर कहे हुए क्रिया
यादी आदिके कुल भेद तीनसी त्रेसठ होते हैं ।

इस शास्त्रमें क्या आचारागसे प्रयोजन है, क्या सूत्ररतागसे प्रयोजन है, इसतरह
चारह अगोंके विषयमें पूछा कम्नी चाहिये । और इसतरह पूछे जाने पर यहा पर न तो
आचारागसे प्रयोजन है, न सूत्ररताग आदिसे प्रयोजन है इसतरह सरका निषेध करके यहा
पर दृष्टिवाद अगसे प्रयोग है ऐसा उत्तर देना चाहिये । उसका उपनम पाच प्रकारका है,
आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, यत्तयता और अर्थाधिकार । इनमेंसे, पूर्वानुपूर्वी, पश्चादानुपूर्वी और
यथातथानुपूर्वीके भेदसे आनुपूर्वी तीन प्रकारकी है । यहा पूर्वानुपूर्वीसे गिनने पर चारहवें

परिचय सुहाई पुत्रगय अण्वाग त्रिंश । परिचय सतवि १००० । सुहाई अण्वागि मवनामि मवन्वागि १००० ।
पुत्रगय षट्मावई पात । अण्वाग दुत पात १००० । तण्ण तदण्ण चण्ण पुत्राण गुल्याग्रा सना
पुत्राद अण्णियाद मत्त गुल्याग । गम ग् १४०

१ कात्तल्लोत्तरदिशसिस्ति १२ मभुमीठयिस्सोमग्नानमुत्तपलावलादानी नियारादृष्टानामगानिहत् ।
मरिचमाराकापगगगा य यानभित्तिहत्ति मात्तमादृत्त्यायनानीनामक्रियावाट्टीना चतुरशीति । शारुल्यवाट्ट
कुम्भिनायमादृत्त्यायनानीनामक्रियावाट्टीना चतुरशीति । शारुल्यवाट्ट
वद्विपारादृष्टानामगानिहत्ति १२ मभुमीठयिस्सोमग्नानमुत्तपलावलादानी नियारादृष्टानामगानिहत्ति ।
उ त वा पृ १ वागमादृष्टानामगानिहत्ति १२ मभुमीठयिस्सोमग्नानमुत्तपलावलादानी नियारादृष्टानामगानिहत्ति ।
सहस्र १२ रवान मिश्रागय , ' चतुश्च ' रवान ' जनुश्च ' , ' जयस्व ' रवान ' अगस्व ' पाग
उत्तरदत्त । ग जी, जी २, टी २६०

पय धूम्रगताय यण्मण वृणद् । शूलिया पत्रिहा, जलगया धनगया मायागया रुवगया
आगामगया चदि । तत्त जलगया दो-बोहि-गय-लकर णउण-गय-सहस्य-वे सद
पदेदि २०९८९२०० जलगमण जल-धमण कारण-मत नत-तय-उरणणि वण्णेदि' ।
पयगया दाम तसिणहि चय पदेदि २०९८९२०० भूमि गमण-कारण-मत-मत तय-उर
णाणि वत्त रिज भूमि-मवधमण पि शुहागुह-कारण वण्णेदि' । मायागया तेसिणहि चय
पदेदि २०९८९२०० इद पालं वण्णेदि' । रुवगया तेसिणहि चय पदेदि २०९८९२००
गीह-इय-हरिणाणि मयापरेण परिणमण हेदु-मत-मत तय-उरणणि रिज-कट लेप्प-सेण-
व-मादि-लकरण च वण्णेदि । आगामगया दाम तेसिणहि चय पदेदि २०९८९२००
आगाम-गमण निमित्त मत-मत तय-उरणणि वण्णेदि' । शूलिया-सम्य पद-समामो दस-

पदों द्वारा उत्पाद, व्यय और धाव्य आदिवा वर्णन करता है ।

जलगता ध्वजगता, मायागता, रूपगता और आकाशगताके भेदसे शूलिका पाच
प्रकारकी है । उनमेंसे, जलगता शूलिका दो करोड़ नौ लाख नवासी हजार दोसी पदोंद्वारा
जन्में गमन और जलमगमनके कारणभूत मन्त्र तन्त्र और तपश्चर्यारूप अतिशय आदिका
वर्णन करती है । ध्वजगता शूलिका उतने ही २०९८९२०० पदोंद्वारा पृथिवीके भीतर गमन
करनेके कारणभूत मन्त्र, तन्त्र, और तपश्चर्यारूप आध्यात्म आदिका तथा वास्तुविद्या और भूमि
सम्बन्धी दूसरे गुप्त अगुप्त कारणोंका वर्णन करती है । मायागता शूलिका उतने ही २०९८९२००
पदोंद्वारा (मायारूप) इन्द्रजाल आदिके कारणभूत मन्त्र तन्त्र और तपश्चर्यारूपका वर्णन
करती है । रूपगता शूलिका उतने ही २०९८९२०० पदोंद्वारा सिंह, घोड़ा और हरिणादिके
स्वरूपके आकाररूपके परिणामन करनेके कारणभूत मन्त्र, तन्त्र और तपश्चर्यारूपका तथा चित्र
कर्म काष्ठकर्म, लेपकर्म और लेखकर्म आदिके लक्षणका वर्णन करती है । आकाशगता शूलिका
उतने ही २०९८९२०० पदोंद्वारा आकाशमें गमन करनेके कारणभूत मन्त्र, तन्त्र और तप
श्चर्यारूपका वर्णन करती है । इन पाँचों ही शूलिकाओंके पदोंका जोड़ दस करोड़ उनचास लाख

१ जलगता भू वा जलमगमनजलगमनानि स्मिन्नाभिप्रमथनापानानि वरुणादितारुण्यवनवपभरणादीन्
वर्णयति । गा जी जा प्र अ २६२

२ ध्वजगता शूलिका मण्डलसंज्ञकान्यान् प्रवर्धनकाप्रमथनात्कारणमन्त्रतपश्चर्यादीन् वर्णयति ।

गो जी, जी प्र, टी ३६२

३ मायागता शूलिका माया पञ्चजालादिविवाकारणमन्त्रतपश्चर्यादीन् वर्णयति ।

गा जी, जी प्र, टी ३६२

४ रूपगता शूलिका रूपादि (रूपककनकतदहसिगच्छकवृषभ-आदिदिग्भयप्राप्तवत्तत्तत्कारणमन्त्रतपश्चर्यादीन्
विचारात्त वा स्मनानि) लक्षणवाचकसंज्ञकवाचकादीन् वर्णयति । गो जी जी प्र, टी ३६२

आकाशगता शूलिका आकाशप्रमथनकारणमन्त्रतपश्चर्यादीन् वर्णयति । गा जी, जी प्र, टी ३६२

१००००००० नीच-काल योगमालाप्रस्ताव वय ध्रुवत वण्णेह । अग्नेणिय गाम पुन्य
 पादमण्ड वत्थूण १४ वे सयामीदि पाहुडाण २८० छण्णउद लक्ख पदेहि २६००००००
 अगालमग वण्णेह । वीरियाणुपवां गाम पुन्य अट्ठण वत्थूण ८ मट्ठि-सय पाहुडाण
 १६० मगरि-स्वग पदेहि ७००००००० अप्प विरिय पर विरिय उमप विरिय रोत्त
 विरिय भर विरिय तप विरिय वण्णेह । अथिणात्थिपवाद गाम पुन्य अट्ठारसण्ड वत्थूण १८
 मट्ठि ति-मद पाहुडाण ३६० मट्ठि-स्वग पदेहि ६००००००० नीचानीराण अत्थि गत्थित
 पण्णादि । न जहा, जीव स्वप्पधुयकालमाय स्यादस्ति, पण्डव्यधेनकालमावे
 स्यान्नास्ति, ताभ्यामप्रमणादिष्ट स्यादवक्तव्य, प्रथमद्वितीयधर्माभ्या प्रमेणादिष्ट
 स्यान्नास्ति च नास्ति च, प्रथममूर्तापधर्माभ्या प्रमेणादिष्ट स्यादस्ति चारक्तव्यध,
 द्वितीयमूर्तापधर्माभ्या प्रमेणादिष्ट स्यान्नास्ति चावक्तव्य, प्रथमद्वितीयमूर्तापधर्म

भार पुट्ट डायके उवाद् एव और प्रजाय वजन करता है। (अप्र मर्थात् द्वादशगोमें
 प्रधानभूत पशुके अथन मर्थात् छानको अप्रापण कहते हैं, और उसका कथन करना जिसका
 प्रयोजन हो उसे अप्रापणोपपत्ति कहते हैं।) यह पृथक् बीदह पशुगत होना अस्ति प्राभुतोंके
 छानने लगे पशु द्वारा अगोत्रे अप्र मर्थात् प्रधानभूत पशुओंका कथन करता है।
 पशुप्रापणपूर्व आठ पशुगत पशुओं साठ प्राभुतोंके सत्तर लाख पशु द्वारा भागवर्ष,
 पर्याय उमवर्षाये क्षेत्राये प्रवर्षाये और तपवर्षाया वजन करता है। अस्तित्वास्तित्वापूर्व
 अग्रेह पशुगत मानसा साठ प्राभुतोंके साठ लाख पशुद्वारा जीव और प्रजायके अस्तित्व और
 नास्तित्वधर्मका वर्णन करता है। जैसे जीव स्वप्न, स्वप्न स्वप्न और स्वप्नमायकी अपेक्षा
 कथिचिन् अस्तिरूप है। परन्तु परबाल और परभायकी अपेक्षा कथिचिन् नास्तिरूप है।
 जिसममय यह स्वप्न-पञ्चगुण और परबाल-पञ्चगुणद्वारा अग्रमसे मर्थात् युगपत् विवक्षित होता
 है उसममय स्यादस्तिरूप है। स्वप्न-पञ्चगुण प्रथमधर्म और परबालादिरूप द्वितीयधर्मसे
 जिसममय प्रथम उपविशित होता है उसममय कथिचिन् अस्ति नास्तिरूप है। स्यादस्तिरूप
 प्रथम धर्म और स्यादस्तिरूप तृतीय धर्मसे जिसममय विवक्षित होता है उसममय कथिचिन्
 नास्ति अथन-पञ्चगुण । स्यान्नास्तिरूप द्वितीय धर्म और स्यादस्तिरूप तृतीय धर्मसे जिस
 ममय प्रथम विवक्षित होता है उसममय कथिचिन् नास्ति अथन-पञ्चगुण है। स्यादस्तिरूप प्रथम

क्रमेणादिष्टः स्यादस्मि च नाम्नि चारुत्तय्यथ चीर इति । एतन्मन्त्राणां योऽपि यक्त्या ।
 णाणपनादं णाम पुत्र चारुमाद उच्यते १२ रि मन्त्राणां पाण्डुडाग २४० णाम
 कोटि-यदेहि ९९९९०९९ पत्र णाणाणि निष्णि अणाणाणि उणेदि । अत्र द्विपत्र
 वट्टिय-णय पडय अणाणि अणिहण-अणाणि अणिग्ण माट्टिअणिग्ण माट्टिमणिग्ण
 वणेदि, णाण णाणमन्त्र च उणेदि ।

मघपनाद पुत्र चारुमण्ड उच्यते १३ इ मय-गालीम पाण्डुडाग २४० उ
 अहिय-एग-योडि-यदेहि १०००००८६ रागमुत्ति रास्मम्भारगम प्रयोगो डागम
 भाषा यत्तारथ अनेकप्रकार सृष्टाभिधान दशप्रकारम मत्यमडागे यत्र निम्नितम्भन
 त्यप्रवादम् । व्यलीरुनिट्टिचिर्चाचा मयमरत्र रा वागमुत्ति । रास्मम्भारगमानि मि
 कण्टादीन्यष्टौ स्थानानि । रास्मप्रयोग शुभेतरलक्षण सुगम । अम्याप्यानक
 पैशुन्यापदप्रलापरत्यरत्पुपाधिनिकृत्यप्रणतिमेषमम्यदिम-पादश्रुनामिरा भाषा डादश्रुना
 अयमस्य कर्तेति अनिष्टरुचनमम्याप्यानम् । उल्लह प्रतीत । पृष्ठतो दोषाधिक्य

धर्म, स्यान्नास्तिरूप द्वितीय धर्म और स्यादजन्यरूप तृतीय धर्मसे निम्नतमय क्रमसे विभजित
 होता है उससमय कथचित् मस्ति-नास्ति भज्यस्वरूप और है । ईमानरह अज्ञानादिका म
 कथन करना चाहिये । ज्ञानप्रसादपूर्व बारह वस्तुगत दोस्रो चालीस प्राश्नोंके एकत्र एक
 करोड पदांशाय पाच ज्ञान और तीन अज्ञानोंका वर्णन करना है । तथा द्रव्याधिकतय और
 पर्यायाधिकतयकी अपेक्षा अनादि अनन्त अनादि स्थान, स्थानि अनन्त और सादि-स्थानरूप
 विकल्पाका तथा इसीतरह ज्ञान और ज्ञानके स्वरूपका वर्णन करना है । मत्यप्रसादपूर्व बारह
 वस्तुगत दोस्रो चालीस प्राश्नोंके एक करोड उद्ध पदांशाय वचनगुति, वाक्यस्कारके कारण
 वचनप्रयोग, बारह प्रकारकी भाषा, अनेक प्रकारके धना, अनेक प्रकारके अम-यवचन और
 दश प्रकारके सत्यवचन इन सबका वर्णन करना है । असत्य नहीं बोलनेको जयमा वचन
 स्वयम अर्थात् मौनके धारण करनेको वचनगुति कहते हैं । मस्तक, कण्ठ, हृदय, जिह्वाका मूल
 दात, नासिका, तातु और ओष्ठ ये आठ वचनसंस्कारके कारण हैं । शुभ और अशुभ लक्षणरूप
 वचनप्रयोगका स्वरूप सरल है । अम्याप्यानवचन, कल्हवचन, पैशुन्यवचन, अयदप्रलापरचन,
 रतियचन, अरतियचन, उपधियचन, निहृतिरचन, अप्रणतिरचन, मोघरचन, सम्यग्दर्शनरचन
 और मिथ्यादर्शनरचनके भेदसे भाषा बारह प्रकारकी है । यह इसका कर्ता है इसतरह अनिष्ट
 कथन करनेको अम्याप्यानभाषा कहते हैं । कल्हका अर्थ स्पष्ट ही है । (परस्पर रितोपे

१ ज्ञानार्थ प्रवाद प्रकरणपरिमिति ज्ञानवादम् । तत्र मतिभूतारमिभन वयवकृतज्ञाने पर
 मन्मथानाति । कमत्रिद्वयविमयाभ्यानि रीत्यज्ञानानि स्वस्वमम्यातिरिचछानि आभिय तेषां प्राज्ञाणां मन्त्र
 निर्माण क कथयति । या जी जी प्र, टी ३६९

२ इत आरभ्य उच्यते वादकानाम् यात्रु समप्रपाग-विद्वत्स्वप तत्वावसाववातुके वृ ५२ पट्टि ८३
 आरभ्य ३८ दशरथिचरन सद्ध उपलम्भ्यत ।

पैतृन्यम् । धर्मार्थराममोक्षासम्बद्धा वामरद्वप्रलाप । गन्दादिरिपयेषु रत्युत्पादिका
रतिराम् । तेष्वेशरत्युत्पादिकारतिषाक् । या वार श्रुत्या पमिग्रहार्जनरक्षणपादिशामज्यते
मोपधियार् । यणिग्यपरहारे यामवधार्य निवृत्तिप्ररण आत्मा भरति स निवृत्तिषाक् ।
या श्रुत्या तपोविज्ञानाम्पा' केचपि न प्रगमति साम्रणतिराम् । या श्रुत्या स्तेपे प्ररतेते
मा मोपराप् । सम्पगमापापदेष्टी सम्पगदर्शनवाम् । तद्विपरीता मिथ्यादर्शनराम् ।
यत्तारधाविनृत्तरवनृपर्याया ढीन्द्रियादय । द्रव्यक्षेत्रकालमात्राश्रयमनेरुपरारमनृतम् ।
दशविध सत्यमद्भार नाम-रूप-आपना-प्रतीत्य सवृत्ति सपोचना जनपद देश भाग सभय
मत्यभदन । तत्र सचेतनेतरद्रव्यस्यामत्यप्यर्थ सव्यवहारार्थ सञ्चारण तन्नाममत्यम्,
यथेन्द्र इत्यादि । यदयोमभिधानेऽपि रूपमात्रेणोच्यते तदपसत्यम्, यथा चित्रपुष्पादि-
परमरपि चैतन्योपयोगादार्यपुष्प इत्यादि । असत्यप्यर्थ यत्कार्यार्थं व्यापित धृताक्षा

बदलेपाते यवनोंको बलद्वयवन कहते हैं ।) पीछेसे होय प्रगट करनेको पञ्चद्वयवन कहते हैं ।
धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके सब-पक्षे रहित यवनोंको अव्यवस्थापयवन कहते हैं । इन्द्रियोंके
गन्दादि विषयोंमें राग उत्पन्न करनेवाले यवनोंको रतिपयवन कहते हैं । इन्द्रियोंके शब्दादि
विषयोंमें भवितो उत्पन्न करनेवाले यवनोंको भरतिपयवन कहते हैं । जिस यवनको सुनकर
परिग्रहके अर्थ और रक्षण करनेमें भासति उत्पन्न होती है उसे उपधिययवन कहते हैं । जिस
यवनको मयधारण करके जीव धाणिजमें उगनेरूप प्रवृत्ति करनेमें समर्थ होता है उसे निवृत्तिपयवन
कहते हैं । जिस यवनको सुनकर तप और ज्ञानसे अधिक गुणवाले पुष्टियोंमें भी जीव नष्टभूत
नहीं होता है उसे अप्रणतिपयवन कहते हैं । जिस यवनको सुनकर चर्यक्रममें प्रवृत्ति होती है
उसे मोपयवन कहते हैं । समीचीन मार्गका उपदेश देनेवाले यवनको सम्पगदर्शनयवन कहते
हैं । मिथ्यामागका उपदेश देनेवाले यवनको मिथ्यादर्शन ययवन कहते हैं । जिनमें यन्त्रपर्याय
प्रगट हो गई है उस ढीन्द्रियसे आदि स्वर सभी जीव यत्ता है । द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाषकी
भवेता भवत्य भवक प्रकाशका । नामसत्य रूपसत्य व्यापनामत्य, प्रतीत्यसत्य सवृत्तिसत्य
सयाजनामत्य जनपदमत्य दशम य आपमत्य और समयमत्यके भेद स्यायजन का
प्रकाशका है ।

मूल पदार्थक नदी रहने पर भी सचेतन और अचेतन द्रव्यके व्यवहारके लिये जो
समा का जाती है उस नामसत्य कहते हैं । जैसे पञ्चपादि गुणोंके न होने पर भी चित्रका
नाम इन्द्र पञ्चा रचना नामसत्य है । पदार्थक नदी होने पर भी रूपकी मुख्यतासे जो यवन
बढ़ जात है उस रूपसत्य कहते हैं । जैसे विषलिखित पुष्प आदिमें फल-य और उपकागा
इवक नहीं रहने पर भी अश्वपुष्प इत्यादि कहना रूपसत्य है । मूल पदार्थक नदी रहने पर
भी वायव लिय जो पनसब-भी अक्ष (पञ्चा) आदिमें स्थापना का जाता है उसे स्थापनामत्य

दिषु तत् स्थापनासत्यम् । साधनादीर्नामिहान् मासान् प्रतीत्य यद्वचस्तत्प्रतीत्य
सत्यम् । यद्योके भृत्याश्रित उच्यते तत्प्रतीत्यम्, यथा पृथिव्याश्रितेऽपि प्राणवति
मति पदे जात पद्मजमित्यादि । धूपचूर्णरामानुलेपनप्रार्थनादिषु पञ्चमसहस्रमर्तनोमद्वैत
व्युहादिषु इतरेतरद्व्याणा यथानिमागविबिम्बिनेशानिर्माकर यद्वचस्तत्प्रतीत्यम्
सत्यम् । द्वाविंशज्जनपदेऽप्यार्यानां नार्यभट्टेषु धर्माधर्ममोक्षाणा प्रापक यद्वचस्तत्प्रतीत्यम्
सत्यम् । ग्रामनगरराजगणपामण्डजातिगुलादिधर्माणा व्यपदेष्टु यद्वचस्तत्प्रतीत्यम्
उच्यते ज्ञानस्य द्रव्ययाथात्म्यादर्शनेऽपि मयतस्य मयतामयतस्य वा स्वगुणपरिपानना
प्राप्तुकामिदमप्राप्तुकामिदमित्यादि यद्वचस्तत्प्रतीत्यम् । प्रतिनियतपन्तयद्रूपपर्यायाणा
मागमगम्याना याथात्म्यानिष्करण यद्वचस्तत्प्रतीत्यम् ।

आदपवाद सोलमण्ट वरतूण १६ वीमुचर ति सय पाहुडाण ३०० छव्रीम-काणि
पदेहि २६००००००० आद उण्णेदि पेदे ति वा पिण्डु चि वा मोत्ते ति वा उद्व ति
वा उच्चाणि मरुणेण । उक्त च—

जीने कत्ता य उता य पाणी भोत्ता य पोगलो ।

पेदे पिण्डु सयभू य सरीरा तट माणरो ॥ ८१ ॥

कहते हैं । सादि और अनादिरूप ओषधमिक आदि भार्योकी अपेक्षा जो यवन बोला जाता है
उसे प्रतीत्यसत्य कहते हैं । लोकमें जो यवन सन्तुति अर्थात् कल्पनाके आश्रित बोले जाते हैं
उह सन्तुतिसत्य कहते हैं । जैसे, पृथिवी आदि अनेक कारणोंके रहने पर भी जो पक अर्थात्
कीचटमें उत्पन्न होता है उसे पकज कहते हैं इत्यादि । धूपके सुगन्धी चूर्णके अनुलपन और
प्रार्थनाके समय, अथवा पत्र, मकर, हस्त, सर्वतोभद्र और वाय आदिरूप व्युद्हरचनाके समय
सत्त्वेन अथवा अचेतन द्रव्योंके विभागानुसार विधिपूर्वक रचनाविशेषके प्रकाशक जो यवन
हैं उन्हें सयोजनासत्य कहते हैं । आर्य और अनार्यके भेदसे बर्तीस देशोंमें धर्म, अर्थ, काम
और मोक्षके प्राप्त करानेवाले यवनको जनपदसत्य कहते हैं । ग्राम, नगर, राजा, गण,
पालण्ड, जाति और गुल आदिके धर्मोंके उपदेश करनेवाले जो यवन हैं उन्हें देशसत्य कहते
हैं । छत्रम्होका ज्ञान यद्यपि द्रव्यकी यथार्थताका निश्चय नहीं कर सकता है तो भी अपने गुण
अर्थान् धर्मके पालन करनेके लिये यह प्राप्तुक है, यह अप्राप्तुक है इत्यादि रूपमें जो सयन
और प्रायश्चित्तके यवन हैं उन्हें भावसत्य कहते हैं । आगमगम्य प्रतिनियत छह प्रकारका द्रव्य
और उनकी पर्यायोंकी यथार्थताके प्रगट करनेवाले जो यवन हैं उन्हें समयसत्य कहते हैं ।

आत्मप्रवादपूर्व सोलह वस्तुगत तीनसो बीस प्राभुनोंके छत्रोत्स करोड पदोंद्वारा जीव
पेसा है विष्णु है, भोक्ता है, पुत्र है, इत्यादि रूपमें आत्माका वर्णन करता है । कहा भी है—
जीव कर्ता है, यत्ता है, प्राणी है, भोक्ता है, पुत्ररूप है, पेसा है, विष्णु है, स्वयम् है,

स्वयम्भू । मरीमेषस्म अन्धि ति मरीरी' । मनु ज्ञान, तत्र भव इति मानर' । मनु
सन्ध मित्त-वग्गादिमु सजदि ति मत्ता' । चउग्गड समारे जायदि जणयन्ति ति जू
माणो एयस्म अन्धि ति माणी' । माया अन्धि ति मायी' । जोगो अन्धि ति जागो
अइमण्ड-देह-यमाणेण सवुडदि ति मवुडो' । मज्ज लोमागाम नियापदि ति अवुडो
क्षेत्र स्वस्वरूप जानातीति क्षेत्रज. । अट्ट कम्मन्भवरो ति अवग्ग्पा ।

इसलिये जिण्डु है । स्वत ही उत्पन्न हुआ है इसलिये स्वयम्भू है । समार अज्ज्यामै इस
शरीर पाया जाता है, इसलिये शरीरी है । मनु ज्ञानको कहते हैं । उसमें यह उत्पन्न हुआ है
इसलिये मानर है । स्वयन्तसब-धी मित्र आदि जगमें आसक्त रहता है, इसलिये सत्ता है । वा
गतिरूप समारमें उत्पन्न होता है, इसलिये ज-तु है । इसके मानकपाय पारि जाती है, इसलिये
मानी है । इसके मायाकपाय पारि जाती है इसलिये मायी है । इसके तीन योग होने हैं, इसलिये
योगी है । अनिमूहम देह मिलनेसे सजुचित होता है इसलिये सजुट है । सपूर्ण लोकाका
प्यात करता है इसलिये असजुट है । लोकालोकरूप क्षेत्रको और अपने स्वरूपको जानता है
इसलिये क्षेत्रज है । आठ कर्मोंके भीतर रहता है इसलिये अन्तरमा है ।

१ यानि प्यवगण कम्मवशाद भव भव भवति पारममति, तथापि निधयेन स्वय स्वयम्भव इत्येतत्
स्वयम्भवे भवति पारममति इति स्वयम्भ । गा जा, जा प्र, गी ३१६

२ प्यवगण अद्विष्टादिवगणमस्यास्तीति शरीरं, निधयेनाशरीरं । गा जा, जा प्र, गी ३१६

३ प्यवगण मानवदिपयावगणित्वा धानव उपगमाभावात् त्रियं द्रव्यं । निधयेन मना भव
मानव । गी जा जी प्र, गी ३१६

४ प्यवगण स्वजनविनादिवगणित्वा स्वजनमिति मना निधयेनामना । गा जा, जी प्र, टी ३१६

५ प्यवगण चतुर्विधेयमात्रं नानाधामिज जायत इति जेतु समर्थाय च । निधयेनाज-तु । गी जी
प्र, गी ३

६ प्यवगण च नानाकाराणां भवति मना, निधयेनामना । गा जी जा प्र, टी ३१६

७ प्यवगण माया वचना द्रव्यात्मन माया निधयेनामाया । गी जी जी प्र, गी ३१६

८ प्यवगण च चतुर्विधेयमात्रं नानाधामिज जायत इति जेतु समर्थाय च । निधयेनाज-तु । गी जी
प्र, गी ३

९ १ प्यवगण च चतुर्विधेयमात्रं नानाधामिज जायत इति जेतु समर्थाय च । निधयेनाज-तु । गी जी
प्र, गी ३

१० प्यवगण च चतुर्विधेयमात्रं नानाधामिज जायत इति जेतु समर्थाय च । निधयेनाज-तु । गी जी
प्र, गी ३

११ प्यवगण च चतुर्विधेयमात्रं नानाधामिज जायत इति जेतु समर्थाय च । निधयेनाज-तु । गी जी
प्र, गी ३

च कथयति । पाणायाय नाम पुंस्त्व दमण्ड उत्पूह १० वि-म-पाहुडाण २०० तेम
कोडि पदेहि १३००००००० कायचिकित्सायाष्टाङ्गमायुर्वेद भूतिकर्म जादुलिप्रक्रम प्राण
पानविभाग चरित्राणै कथयति । किरियाविमाल नाम पुंस्त्व दमण्ड उत्पूह १० वि-म-
पाहुडाण २०० णय कोडि-पदेहि ९०००००००० लेणादिका दामसतिरुला खैणाथ
पट्टिगुणात् शिलानि काव्यगुणदोषक्रिया छन्दोभिन्नितिक्रिया च कथयति । लो
चिंदुसार नाम पुंस्त्व दमण्ड उत्पूह १० वि सय-पाहुडाण वारह-कांठि पण्णाम-ल
पदेहि १२५००००००० अष्टा व्यपहारान् चत्वारि रीतानि मोक्षगमनक्रिया मोमसु
च कथयति । सयल उत्थु समासो पचाणउदि-म १०५ मयल पाहुट-ममामो तिनि
सहस्सा णवय सया ३९०० ।

घटार आदि महाकल्याणकाका वर्णन करता है । प्राणायामपूर्व दश वस्तुगत दोसौ प्राश्रतों
तेरह करोड पदोंद्वारा शरीरचिकित्सा आदि अष्टांग आयुर्वेद, भूतिकर्म, अर्थात् शरीर आदि
रक्षाके लिये किये गये मसलेपन सूत्रयधनादि कर्म, जादुलिप्रक्रम (त्रिपत्रिचा) और प्राणायाम
भेद प्रभेदोंका विस्तारसे वर्णन करता है । त्रियाचिशालर्प दश वस्तुगत दोसौ प्राश्रतोंके
करोड पदोंद्वारा लेखनकला आदि बहत्तर कलाओंका, खसिअ-धी वासठ गुणोंका, शिल्पकला
काव्यसय-धी गुणदोषाधिकार और छन्दनिर्माणकलाका वर्णन करता है । लोकि
सारपूर्ण दश वस्तुगत दोसौ प्राश्रतोंके वारह करोड पचास लाख पदोंद्वारा आठ प्रकार
व्यवहारोंका, चार प्रकारके बीजोंका, मोक्षको ले जानेवाली क्रियाका और मोक्षसुखका वर्णन
करता है । इन चौदह पूर्वोंमें संपूर्ण वस्तुओंका जोड एकसौ पञ्चानवे है, और संपूर्ण प्राश्रतों
जोड तीन हजार मौसो है ।

१ शरीरमाणाकरणाव मरुपूनादिना य परितेन्द्रकरण त- भूतिकर्म । उन च ' भूत मटियाह व सुप
होह भूहम ॥ । वमहासारायपरकमा अभिभोगमाहजा । प्र सा पु पु १८१

२ प्राणनां आश्रद प्रकथयमिदंश्रिति प्राणवाह द्वादश पूर्व । तस वाचिकित्सायाष्टाङ्गमायुर्वेद भूतिकर्म
जादुलिप्रक्रम इलभिग-वपुस दिष्टप्रकारपाणापानविभाग दशप्राणानां उपरारणपकारप्र-पाणि गलाघनमान
कथयति । गा जी जी प्र, य ३६६

३ त्रियादिभि नृपाणि विमाल विमाल साममान वा त्रियाविमाल वषादश पूर्व । तस सप्त
सामदशकाशट्टिदामसतिरुला चतुषट्टिदामसतिरुला चतुस्रस्यविमालाधनादिका अणवसप्त सप्त
पदनादिका पञ्चसप्त दशदनादिका नियन्त्रेयिका त्रियाव वणयति । मो जी, जा प्र, य ३६७

४ त्रिडाक्षिण ५ पार इति पाठ । त्रिडाक्षिण विद्व अथवा सा च कथयत त्रिभिनि त्रिडाक्षिण ।
तस त्रिडाक्षिण व त्रिडाक्षिणमाणि अथ वषादश चत्वारि बाजानि साप्तस्वरूप तदमनकाणनिया मोमस
स्वरूप च कथयति ॥ गी जी, जा प्र, य ३६३ यत्राणी यत्राण्यवधारि खंजनि परिक्रमतात्रिक्रियाविभाग
सप्तभुजगपुदिगा तस्यु लाष्टिकिदमाए । त ॥ वा पु ५३.

तस्म उक्त्वमो पचविहो, आणुपुत्री नाम पमाण वत्तव्यदा अत्थाहियारो चि
 तत्थ आणुपुत्री तिविहा, पुव्वाणुपुत्री पच्छाणुपुत्री जत्थतत्थाणुपुत्री चेदि । प
 पुव्वाणुपुत्रीए गणिज्जमाणे पचमादो, पच्छाणुपुत्रीए गणिज्जमाणे ढममादो, ज
 तत्थाणुपुत्रीए गणिज्जमाणे चयणलद्धीदो । नाम चयण-विहि लद्धि विहिं च वणे
 तेण चयणलद्धि ति गुणणाम । पमाणमक्खर-पद मधाड पडिउत्ति णियोगदा
 सखेज्जमत्यदो अणत्त । वत्तव्यदा सममयत्त-वदा । अत्थाहियारो वीपदिविह
 एत्थ किं पदम-पाहुडादो, किं विदिय-पाहुडादो ? एन पुच्छा सव्वेमि णेयन्वा । णो प
 पाहुडादो णो विदिय पाहुडादो, एन गारणा सव्वेमि णेयन्वा । चउत्थ पाहुडाद
 तस्म उक्त्वमो पचविहो, आणुपुत्री नाम पमाण वत्तव्यदा अत्थाहियारो चेदि । त
 आणुपुत्री तिविहा, पुव्वाणुपुत्री पच्छाणुपुत्री जत्थतत्थाणुपुत्री चेदि । पुव्वाणुपु
 गणिज्जमाणे चउत्थादो, पच्छाणुपुत्रीए गणिज्जमाणे सत्तारममादो, जत्थतत्थाणुपु
 गणिज्जमाणे कम्मपयडिपाहुडादो । नाम कम्मण पयडि मक्ख वण्णेदि तेण क
 पयडिपाहुडे ति गुणणाम । वेयणकसिणपाहुटे ति नि तस्म विदिय णाममवि

उपमम पात्र प्रकारका है, आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वत्तव्यता और अर्थाधिकार । पूर्वाणुपु
 पश्चादानुपूर्वी और यथातथानुपूर्वीके भेदसे आनुपूर्वी तीन प्रकारकी है । उन तीनोंमेंसे, व
 पर पूर्वाणुपूर्वीसे गिनती करने पर पात्रमें अर्थाधिकारसे, पश्चादानुपूर्वीसे गिनती करने
 द्वायें अर्थाधिकारसे और यथातथानुपूर्वीसे गिनती करने पर स्वयन्लघि नामके अ
 धिकारसे प्रयोजन है । यह अर्थाधिकार स्वयन्विधि और लघ्विनिधिका वर्णन करता
 इसलिये स्वयन्विधि यह गण्यनाम है । अक्षर, पद, समात, प्रतिपत्ति और अनुयोगरूप द्वारा
 अपेक्षा मत्स्यान तथा अर्थकी अपेक्षा अनन्तप्रमाण है । स्वयन्मयका कथन करनेवाला होत
 कारण यह । पर स्वयन्मयवत्तव्यता है । स्वयन्लघिके अर्थाधिकार चीस प्रकारके हैं । उनमें
 यहा क्या प्रथम प्राधनमे प्रयोजन है, क्या दूसरे प्राधनसे प्रयोजन है ? इसतरह स्व
 पियवमें वृच्छा करना चाहिये । यहा पर प्रथम प्राधनमे प्रयोजन नहीं है, दूसरे प्राधनमे प्र
 जन नहीं है, इसप्रकार सबका नियेध कर देना चाहिये । किन्तु यहा पर चौथे प्राधनमे प्रयो
 है, देना उभर देना चाहिये ।

उपका उपमम पात्र प्रकारका है, आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वत्तव्यता और अर्थाधिकार
 उनमेंसे, पूर्वाणुपूर्वी, पश्चादानुपूर्वी और यथातथानुपूर्वीके भेदसे आनुपूर्वी तीन प्रकारकी है
 यहा पर पूर्वाणुपूर्वीसे गिनती करने पर पूर्वा प्राधनमे, पश्चादानुपूर्वीसे गिनती करने पर मध्य
 प्राधनमे और यथातथानुपूर्वीसे गिनती करने पर कर्मप्रतिप्राधनमे प्रयोजन है । यह कर्मों
 प्रतिपत्तिसे स्वयन्मय वत्तव्यता है, इसलिये कर्मप्रतिप्राधन यह गण्यनाम है । इस
 , वेदनाहृच्छाप्रधान' यह दूसरा नाम भी है । कर्मोंके उदयका वेदना करने है । उपका म

वेयणा कम्माणमुदयो त क्मिण निरउमेम वण्णेत्ति, अणे वेयणरमिणनादुडमिन्ति
 णत्तमवि गुणणासमेय । पमाणमकररय मयाय पडिउत्ति अणियोमदागहि मग्गेत्त
 मन्थणे अणत्त । वत्तच्च मममयो । अत्थाहिपारो चउवीमदिदिहो । न जहा, वणे
 वेदणाण फामे कम्मे पयडी सुवधणे निरधणे पउमे उरवम उण्ण माग्गे मग्गे तम्मा
 लेस्मायम्मे लेस्मापरिणामे मादममादे दाद रहम्मे मवधारणीए पागत्ता निरत्त
 मणिधत्त निराचिदमणिक्कादि कम्मद्विदी पच्छिमक्कउधत्ति । अप्पावण्ण न मच्चय,
 जेण चउवीसण्हमणियोमदाराण माहारणो वेण पुह अट्टियाग न दादि ति । एध किं
 कदादो, किं वेयणाणे ? एव पुच्छा सुव्वय कायव्व । नो कदादो णा वयणाणे, एव
 चारणा मज्जेत्ति नेयव्व । वधणादो । तस्म उव्वमो पचविहा, आणुपुच्छी पाथ पमा
 यत्तव्वदा अत्थाहिपारो चेत्ति । तत्थ आणुपुच्छी निरिहा, पुच्छाणुपुच्छी पच्छाणुपुच्छा
 जत्थनधाणुपुच्छी चेदि । तत्थ पुच्छाणुपुच्छीए मणिज्जमाणे एट्ठाए, पच्छाणुपुच्छीए

निरपणेयकपमे वर्णन करता है, इसलिये वेदनाद्वयप्रभुन यह भा वीकपनाम है । यह भाव
 पद, सपान, प्रतिपत्ति और अनुबोधरूप द्वाणोंकी अपेक्षा सख्यामप्रमाण और भाव
 भननाप्रमाण है । स्वसमयका ही कथन करनेवाला द्वाणके कारण हममें स्वसमयकनन्दन, है ।

कमप्रवृत्तिप्रभुनके अध्याधिकार आधीन प्रचारके हैं वे हमप्रचार हैं । इति कदा
 कपणे, कर्मे, प्रवृत्ति, लुब्धभन, निवर्धन, प्रकम उपवम उदय माहा सवम मया
 मेदयापरिणाम सातमसात, दीर्घद्वय अवधारणीय पुहल्लय निधत्त अनिधत्त निवर्धन
 अनिधत्तनिधत्त, कर्मस्मिन्ति और पच्छिमवधत्त । इन आधीन अधिचारोंमें अवयवद्वय एव
 आदिधे, कदाचित् आधीन ही अधिचारोंमें अवयवद्वय साधारण अध्यान् स्यात्तकपम है । इसलिये
 अवयवद्वयवत्तका पुच्छ अधिचार नहीं हो सकता है ।

यहां पर क्या इतिमे प्रयोजन है क्या वेदनामे प्रयोजन है ? इसका यह भवि
 कारोके विषयमें पूछा करना चाहिये । यहां पर न तो इतिमे प्रयोजन है न कदात्म है ।
 प्रयोजन है इसलिये सबका निषेध कर देना चाहिये । किन्तु क्या अधिचारम प्रयोजन है
 इसलिये उक्त देना चाहिये । उस क्या नामके अधिचारका उपवय पक्ष प्रचारका है जो
 पूर्वा नाम प्रमाण कलपना और अध्याधिकार । उनमेंसे पुच्छाणुपुच्छी एवकाराणुपुच्छी
 पच्छाणुपुच्छी अध्याणुपुच्छी नाम प्रचारकी है । उस नाममेंसे पुच्छाणुपुच्छी नामक

वर्णन करता है । यह भाव सवम मया मेदयापरिणाम सातमसात, दीर्घद्वय अवधारणीय पुहल्लय निधत्त अनिधत्त निवर्धन
 अनिधत्तनिधत्त, कर्मस्मिन्ति और पच्छिमवधत्त । इन आधीन अधिचारोंमें अवयवद्वय एव
 आदिधे, कदाचित् आधीन ही अधिचारोंमें अवयवद्वय साधारण अध्यान् स्यात्तकपम है । इसलिये
 अवयवद्वयवत्तका पुच्छ अधिचार नहीं हो सकता है ।

गणिजमाणे एगूणवीसदिमादो, जत्थतत्थाणुपुब्बीण गणिजमाणे वधणादो । प
 वधण्णणादो वधणो ति गुणणाम । पमाणमस्सर पय-मघाद पडिउत्ति अणिय
 गद्दरेहि सत्तेजमत्थदो अणत । उत्तव्वदा ससमयउत्तव्वदा । अत्थाधियारो चउत्ति
 त जहा, वधो उधगो उधणिज वधणिघाण चेदि । एत्थ कि वग्गादो ? एव पुब्ब
 म-वेसि कायव्वा । णो वग्गादो णो वधणिज्जादो । उधग्गादो उधणिघाणादो च । ए
 वधगे ति अहियारस्म एव्वारस्म अणियोगद्दाराणि । त जहा, एग्वीणेण सामित्त एग्वी
 वेण फालो एग्वीणेण अतर णाणाजीवेहि भगविचयो दच्चपमाणाणुगमो स्वेत्ताणुग
 पोमणाणुगमो णाणाजीवेहि कालाणुगमो णाणाजीवेहि अतराणुगमो भागाभागा
 गमो अप्पावहुणाणुगमो चेदि । एत्थ कि एग्वीणेण सामित्तादो ? एव पुब्बो सव्वे
 णो एग्वीणेण सामित्तादो, एव वारणा मव्वेमि । पचमादो । उ-पमाणाणे द-पमा
 णुगमो णिग्गादो ।

छटे अधिकारसे, यद्वादापुर्व्वर्त्तमे गितनेपर उन्नीसवें अधिकारसे और यद्वादापुर्व्वर्त्त
 गितनेपर बन्धन नामके अधिकारसे प्रयोजन है । यह बन्धन नामका अधिकार बन्धक व
 कता है, इसलिये इसका 'बन्धन' यह गौण्यनाम है । यह अक्षर, पद, संघात, प्रतिपा
 और अनुयोगरूप द्वारोंकी अपेक्षा सन्धानप्रमाण और अर्थकी अपेक्षा आ तत्प्रमाण
 स्वममयका वर्णन करनेवाला होनेसे इसमें स्वममयत्व-रूपता है ।

इसके अर्थाधिकार चार प्रकारके हैं, बन्ध, बन्धक, बन्धनीय और बन्धविधान
 यद्वापर क्या बन्धसे प्रयोजन है ? इत्यादि रूपसे चारों अधिकारोंके विषयमें पूछा कर
 चाहिये । यद्वापर बन्धसे प्रयोजन नहीं है और बन्धनीयसे भी प्रयोजन नहीं है, किन्तु बन्ध
 और बन्धविधानसे यद्वापर प्रयोजन है ।

इन बन्ध आदि चार अधिकारमेंसे बन्धक इन अधिकारके ग्यारह अनुयोगदार हैं । ये
 इसप्रकार हैं एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्वाणुगम, एक जीवकी अपेक्षा बाणानुगम, एक
 जीवकी अपेक्षा अतगणुगम जाला जीवोंकी अपेक्षा भ्रमविषयानुगम, द्रव्यप्रमाणानुगम
 क्षेत्रानुगम, स्वर्दानुगम, जाला जीवोंकी अपेक्षा बाणानुगम, जाला जीवोंकी अपेक्षा अतगणुगम
 भागाभागाणुगम और अप्पावहुणाणुगम । यद्वापर क्या एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्वाणुगमसे
 प्रयोजन है ? इत्यादि रूपसे ग्यारह अनुयोगदारोंके विषयमें पूछा करनी चाहिये । यद्वापर
 एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्वाणुगमसे प्रयोजन नहीं है, इत्यादि रूपसे सबका निरर्थक
 कर देना चाहिये । किन्तु यद्वा पावक द्रव्यप्रमाणानुगमसे प्रयोजन है, इसप्रकार उत्तर देना
 चाहिये ।

इस उक्तवचन-रूपमें जो द्रव्यप्रमाणानुगम नामका अधिकार है, यह इस स्वयं
 स्वयं बन्धक-रूप द्रव्यप्रमाणानुगम नामक पावके अधिकारसे निरूप्य है ।

वधविहाय चउचिह । त जहा, पयडिबधो द्विदिबधो अणुभागवधो पदेसवधो चेदि । तय जो सो पयडिबधो सो दुविहो, मृतपयडिबधो उत्तरपयडिबधो चेदि । तय जो मो मृतपयडिबधो सो धप्पो । जो सो उत्तरपयडिबधो सो दुविहो, एगेगुत्तर-पयडिबधो अन्वोगादुत्तरपयडिबधो चेदि । तय जो मो एगेगुत्तरपयडिबधो तस्म चउवसि अणियोगदाराणि वादन्नापि भवति । त जहा, समुक्तिपना सव्ववधो पोमवधो उरस्मवधो अणुवस्मवधो उहणवधो अजहण्यवधो सादियवधो अणादियवधो पुववधो अडववधो ववमामिचविवधो वधकालो वधतर वधसन्धिपामो णाणा जीवहि भगविवधो भागाभागानुगमो परिमाणानुगमो खेत्तानुगमा पोमणानुगमो ज्ञानानुगमो अन्तरानुगमो भावानुगमो अप्पावहुगानुगमो चेदि । एदेसु समुविचिणादो पयडिसमुविचिणा द्वापनमुविचिणा तिप्पि महादइया निग्गया । तेवीमदिमादो भावो णिगदो । जो मो अन्वोगादुत्तरपयडिबधो सो दुविहो, भुजगारवधो पयडिद्वानवधो चेदि । जो सो भुजगारवधो तस्म अहु अणियोगदाराणि मो धप्पो । जो मो पयडिद्वानवधो तय इमाणि अहु अणियोगदाराणि । त जहा, सतपरूवणा दवपमाणाणुगमो खेत्तानुगमो पोसणानुगमो ज्ञानानुगमो अन्तरानुगमो भावानुगमो अप्पावहुगानुगमो चेदि । एदेसु अहुसु अणियोगदारेसु उ अणियोगदाराणि निग्गयाणि । त जहा, सतपरूवणा

वधविहाय चार प्रकारका हैं, प्रहतिबध, विपतिबध, अनुभागवध, आर प्रेरणवध । उन चार प्रकारके बधमेंसे मूलप्रहतिबध और उत्तरप्रहतिबधके भेदसे प्रहतिबध हो प्रकारका है । उनमेंसे, मूलप्रहतिबधका ध्यान स्थित करके उत्तरप्रहतिबधके भेदोंका धर्पन करने हैं । यह उत्तरप्रहतिबध हो प्रकारका है, एकैकोत्तरप्रहतिबध और आवोगाद उत्तरप्रहतिबध । उनमेंसे जो एकैकोत्तरप्रहतिबध है उसके बायीस अनुयोगद्वार होते हैं । वे इसप्रकार हैं, समुत्कर्तन सर्ववध मोसवेवध उहएवध, अणुएवध, अणवध अजहण्यवध, सादिवध, अणादिवध धुववध अधुववध, वधसामित्यविवध, वधकाल, वधान्तर, वधसन्धिकर्ष, माना जायोंकी अपेक्षा भगविवध, भागाभागानुगम, परिमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, रूपरानानुगम, ज्ञानानुगम अन्तरानुगम, भावानुगम, आर अत्यवहुत्वानुगम । इन बायीस अधिकारोंमें जो समुत्कर्तन नामका अधिकार है उसमेंसे प्रहतिसमुत्कर्तन, स्थानसमुत्कर्तन आर तीन महादइव निबन्ते हैं आर तेथीसवें भावानुगमसे भावानुगम निबन्ता है ।

जो अन्वोगाद उत्तरप्रहतिबध है वह हो प्रकारका है, भुजगारवध और प्रहतिस्थानवध । उनमेंसे भुजगारवधके आठ अनुयोगद्वारोंके धर्पनको स्थित करके प्रहतिस्थानवधमें जो आठ अनुयोगद्वार होते हैं उनका धर्पन करने हैं । वे इसप्रकार हैं, सपरूपणा, द्रव्यमाणाणुगम क्षेत्रानुगम, रूपरानानुगम ज्ञानानुगम, अन्तरानुगम, भावानुगम आर अत्यवहुत्वानुगम । इन आठ अनुयोगद्वारोंमेंसे छह अनुयोगद्वार निबन्ते हैं । वे इसप्रकार हैं, सपरूपणा, क्षेत्रप्ररूपणा,

एतत्तद्वद्व्यापियोगस्य नि किं ण गहण कीरदि ति उच्ये ण, मिय्यादि-
आदि-गुणद्वानेहि णिणा एयस्म वधद्वान्णस्म वधया जीवा णचिया इदि सामानेण वुत्त
त्तादो । वधगे उच्च-द्व्यापियोगस्य गहण कीरदि, तच्च वधगा मिय्याद्वी एतिया
सामणादिया एतिया इदि उच्चत्तादो । वधमतोगे-गुणद्वान्णस्य अवधगस्य दन्व-मग्ना
परुविज्जदि ति ण एम दोमो, भूद पुच्च-गदमम्मिउण नस्य भाण-ममत्तादो । जीव
पयदि-सत्त-वधमहिउण उन्नामिदि वा । एव भावस्य नि वत्तन् । एव जीवद्वान्णस्य
अह अणियोगहार परुत्तण वद ।

प्रवृत्तिस्थान अधिधारमें बड़े गये द्रव्यानुयोगका प्रवृत्त इस अवस्थानमें क्यों नहीं
बिया है । अथान् प्रवृत्तिस्थान अधिधारके सदादि छद् अनुयागोंमेंसे अतिप्रकार जीवस्थानके
सदादि छद् अनुयोगद्वारोंकी उत्पत्ति वत्तन् है, उर्ध्वप्रकार प्रवृत्तिस्थानके प्रवृत्तानु
योगमेंसे जीवस्थानके द्रव्यानुयोगकी उत्पत्ति का वधन क्यों नहीं बिद्या गया है । इसप्रकार का
दावा करने पर आचार्य उत्तर देने हैं कि वेगी जावा करना ठाव नहीं है, क्योंकि, प्रवृत्ति
स्थानके द्रव्यानुयोग अधिधारमें मिरपारदि आदि गुणस्थानोंकी अपेक्षाके बिना ' इस वध
स्थानके वधक जीव इतने हैं ' ऐसा केवल सामान्यरूपसे वधन किया गया है । और वधक
अधिधारके द्रव्यानुयोग प्रवृत्तमें इस प्रवृत्तिस्थानके वधक मिरपारदि जीव इतने हैं अन्ततः
सम्बन्धदि जीव इतने हैं ऐसा विशेषरूपसे वधन किया गया है । इसविध वधक अधिधारमें
बड़े गये द्रव्यानुयोगका प्रवृत्त इस जीवस्थानमें बिद्या है । अथान् वधक अधिधारके द्रव्यानुयोग
प्रवृत्तसे जीवस्थानका द्रव्यप्रमाणागम प्रवृत्त निवन् है ।

मुक्ता — अयोगी गुणस्थानमें बर्तमानियोंका वध नहा होमा है इसविध उनका बर्त
प्रवृत्तिवधकी अपेक्षा द्रव्यस्थानका बर्त बड़ी आवेगी ।

समाधान — यह कोर दोर नहीं है क्योंकि भूतगुण व्यापक आधर स्वर अन्तर्
गुणस्थानमें भी द्रव्यस्थानका वधन सम्भव है । अथान् जो जीव परल मिरपारदि जीव
गुणस्थानोंमें प्रवृत्तिस्थानोंके वधक थे वे ही अयोगी है । इसविध अयोगी गुणस्थानमें ही
द्रव्यस्थानका प्रतिपादन बिद्या आ सक्ता है । अथवा जीवके सम्बन्ध प्रवृत्तिस्थानका आधर
हेकर अयोगी गुणस्थानमें द्रव्यस्थानका प्रवृत्त बिद्या गया है ।

आद्यागमका वधन भा उर्ध्वप्रकार समस्त होमा काहिय ।

विशेषाध — अधिधारकी आद्यप्रवृत्त प्रवृत्तिस्थानके आद्यागमके निवृत्त का
परिचयप्रवृत्तिस्थानके आद्यागमके अधिधार है इसका मतलब आद्यागमके निवृत्त का
इसका कारण यह है कि प्रवृत्तिस्थानके आद्यागमके आद्यागमके सम्बन्धरूपसे वधन है और
परिचयप्रवृत्तिस्थानके आद्यागममें आद्यागमके निवृत्तरूपसे वधन है । इसप्रकार उर्ध्वप्रकार
आद्य अनुयोगद्वारोंका निवृत्त बिद्या ।

‘इमेभि’ एतेषाम् । न च प्रत्यक्षनिर्देशोऽनुपपन्न आगमाहितमस्कारमाचार्य-
स्यापरोक्षचतुर्दशमात्रजीवममामस्य तन्निरोधात् । जीवा समस्यन्ते ण्यसि जीव-
समामा । चतुर्दश च ते जीवममामाश्च चतुर्दशजीवममामा । तेषां चतुर्दशानां
जीवसमामाना चतुर्दशगुणस्थानानामित्यर्थः । तेषां मार्गणां गवेषणमन्त्रपामित्यर्थः ।
मार्गणां एवार्थं प्रयोजनं मार्गणार्थस्तस्य भावो मार्गणार्थता तस्यां मार्गणार्थतायाम् ।
तस्यामिति तत्र । ‘इमानि’ इत्यनेन मात्रमार्गणव्यानानि प्रत्यक्षीभूतानि निर्दिश्यन्ते ।
नार्थमार्गणव्यानानि तेषां देशकालस्वभावाभिप्रायानां प्रत्यक्षतानुपपत्तेः । तानि च
मार्गणव्यानानि चतुर्दश भवन्ति, मार्गणव्यानमण्डपाया न्यूनाधिकमात्रप्रतिषेधजन-
कषकारः । किं मार्गणं नाम ? चतुर्दश जीवममामा मन्त्राभिविगिष्टा, माग्यन्तस्मिन्मन्त्र-
वेति मार्गणम् । उक्तं च—

‘एतो’ इत्यादि सूत्रं ज्ञेयं । ‘इमेभि’ पदं भाषा है उसने जो प्रत्यक्षानुपपन्न पदार्थका
निर्देश होता है वह अनुपपन्न नहीं है, क्योंकि, जिनकी आत्मा आगमाध्यात्म्य संरक्षण है वह
आचार्यके भाष्यरूप चौदह जीवसमामा प्रत्यक्षीभूत है । अतएव ‘इमेभि’ इस पदके प्रयोग
करनेमें कोई विरोध नहीं आता है । अतएव ‘इमेभि’ जीव भीत उनसे भूत प्रत्यक्षीभूत जिनमें प्रत्यक्ष विद्या
आज उद्धे जीवसमामा कहते हैं । ये जीवसमामा आदर होत है । उन चौदह जीवसमामा
यहां पर चौदह गुणस्थान विद्यमान हैं । अर्थात् जीवसमामा अथ वहां पर गुणस्थान तथा
आदिषे । मार्गणा, गवेषणा और अगवेषणा ये तीनों शब्द एकार्थवर्था हैं । आगमरूप प्रतीकवर्ती
मार्गणार्थ कहते हैं । आगमार्थ अर्थात् मार्गणरूप प्रतीकवर्ती अथ अर्थात् विरोधनाश । मार्ग-
णार्थता कहते हैं । उक्त मार्गणरूप प्रतीकवर्ती विद्य त होत पर, वहां पर इस अर्थसे ‘मन्त्र’
यह पद भाषा है । ‘इमानि’ इस पदसे प्रत्यक्षानुपपन्न आगमार्गणार्थताके प्रत्यक्ष प्रमाण आदिषे ।
प्रत्यक्षमार्गणार्थता प्रमाण नहीं । विद्या गया है क्योंकि प्रत्यक्षमार्गणार्थता का अर्थ स्वयं वही
अपेक्षा दूरवर्ती है । अतएव अत्यन्तानिर्घोषी उनका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सकता है । व आगम
व्यान भी चौदह ही होते हैं । यहां सूत्रं ज्ञेयं ‘यत्’ पद दिया है उसका अर्थ या प्रतीक
मार्गणार्थताकी श्रवणार्थे मनुष्याधिकभाषका विषय करना है ।

श्रवणं — मार्गणा विन्ने कहते हैं ।

समाधान — सर्व श्रवणा आदि अनुयोगद्वारासे युक्त आदर जीवसमामा जिससे वा
जिनसे प्राण व्योम जाने हैं उसे मार्गणा कहते हैं । कहा भी है—

‘वचसि च आनन्दस्य दृष्टिं दृष्ट्वा तन्मार्गणं उच्यते’ इति च आदि । कदाचन कदाचन कदाचन
जीवसमामा । अथवा जीवा त एवम् । आदि जीवसमामा इत्येव प्रमाणस्य इव स्वयंभूत वा प्रमाण-
वर्धनार्थने । ए ओ जी व ॥

नामपि गतिव्यपदेश स्यादिति चेन्न, गतिकर्मण समुत्पन्नस्यात्मपर्यायस्य तत्र कथञ्चिद्भेदादविभुद्रासित प्राप्तकर्मभावरस्य गतिर्याम्युपपत्ते पूर्वोक्तोपापुपपत्ते । भराद्भवसन्नान्तिरा गति । सिद्धगतिमद्विपर्यासात् । उक्त च—

गद वग्म-विणिन्वता ता चेत्ता ता गद मुणेष-ता ।

जीवा इ चाउरग गच्छति वि य गद होर ॥ ८४ ॥

प्रत्यक्षनिरतानीन्द्रियाणि । अधाशीन्द्रियाणि । अक्षमस्य प्रति वर्तत इति प्रत्यक्ष विषयोऽक्षजो बोधो वा । तत्र निरतानि व्यापृतानि इन्द्रियाणि । गृह्णन्पुनरगम्यगन्ध ज्ञानावरणकर्मणा ध्वयोपगमात् द्रव्येन्द्रियनिबन्धनाग्निर्याणीति यावत् । भारन्द्रिय कार्यत्वात् द्रव्यस्येन्द्रिय-यपत्ता । नेपमदृष्टपरिक्ल्पना कार्यकारणापचारास्य नगति

समाधान—येना कहना ठीक नहीं है, क्यावि, गति नामकमर्क उद्भवने जो भागमाव पपाय उत्पन्न होती है यह भागमावे कथंविन् भिन्न है अन उसकी प्राप्ति अविरत है । भार इत्यालिये प्राप्तिरूप विषाके कर्मपत्तेको प्राप्ति भारवादि भागमपपायके गतिपत्ता माननेम पृथक् दोर नहीं आता है ।

अथवा, एक भयसे दूसरे भयमें जानेको गति कहने है । ऊपर जो गतिनामा नामकमर्क उद्भवसे प्राप्ति होनेवाली परोपविशेषको अथवा एक भयसे दूसरे भयमें जानेको गति कह आर है, ठीक हमने विपरीतव्यमापवाली सिद्धगति होती है । कहा भी है—

गतिनामा नामकमर्के उद्भवसे जो जीवकी चेष्टाविशेष उत्पन्न होती है उस गति कहन है । अथवा, जिसके निमित्तसे जीव वस्तुनिर्गमे जाते है उसे गति कहने है ॥ ८४ ॥

जो प्रत्यक्षमें व्यापार करता है उन्में इन्द्रिया कहने है । जिसका वस्तुनामा इत्यवधार ह अक्ष इन्द्रियका कहने है, और जो अक्ष अक्षके प्रति अधात् प्रत्येक इन्द्रियका प्रति रहना ह उस प्रत्यक्ष कहने है । जो वि इन्द्रियोंका विषय अथवा इन्द्रियज्ञ-य ज्ञानरूप पटना है । उस इन्द्रिय विषय अथवा इन्द्रिय-ज्ञानरूप प्रत्यक्षमें जो व्यापार करता है उन्में इन्द्रिया कहने है । व हा-द्वारा दाम्, रूपी, रस, रूप और गन्ध नामके ज्ञानावरण कर्मके शयोपगमसे भार इन्द्रियोंके निमित्तसे उत्पन्न होती है । शयोपगमरूप भावेन्द्रियोंके होने पर जो इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होना है, इसलिये भावेन्द्रिया कारण है और इन्द्रियोंका कार्य है और इसलिये इन्द्रिया इन्द्रियोंके निमित्तसे उत्पन्न होती है, इसलिये भावेन्द्रिया कार्य है और इन्द्रियोंका कारण है । इसलिये भावेन्द्रियोंके इन्द्रिय यह संज्ञा प्राप्त है । अथवा उपपन्नरूप भावेन्द्रियोंकी उत्पत्ति इन्द्रियोंके निमित्तसे होती है, इसलिये भावेन्द्रिया कार्य है और इन्द्रियोंका कारण है । इसलिये भावेन्द्रियोंके इन्द्रिय यह संज्ञा प्राप्त है । यह कोई अदृष्टवस्तु नहीं है क्योंकि कारणतन धर्मका कारणमें और कारणगत धर्मका कारणमें उत्पन्न अगममें प्रसिद्धकालसे पाया जाता है ।

विशिष्टजीवा मृग्य, मृग्यस्यागतामासृजन्ति मृगयितुं रुग्णतामाश्रयानानि वा गतादि मार्गणम्, विनेयोपाध्यायाद्यो मार्गणोपाय इति । मृगं श्रेयत्रितयं परिहृतमिति मार्ग मरोक्तमिति चेन्न, तस्य देशमर्शरूपात्, तन्मार्गगीयस्वरूपात् ।

गम्यत इति गति । नानि-यासिन्नेष मिदं प्राप्यगुणामावात् । न केवलं ज्ञानादयः प्राप्यास्तथा मरैरश्मिन् प्राप्यप्रापकमात्रविशेषात् । कृपायादयो नि प्राया अपाधिररूपात् । गम्यत इति गतिरित्युच्यमाने गमनत्रियापरिणतनीवप्राप्यद्व्यादी

अर्थान् लोकोत्तर पदार्थोंका अ प्रेवण करनेवाला है । अर्थात् गुणव्याप्तिमें युक्त जीव मृग्य अर्थात् अन्येवण करने योग्य है । जो मृग्य अर्थात् अर्थात् गुणव्यापनविशिष्ट जीवोंके आधारभूत है, अथवा अन्येवण करनेवाले मृग्य जीवको अन्येवण करनेमें अत्यन्त सहायक कारण है ऐसा गति आदिक मार्गणा है । शिष्य अर्थात् उपाध्याय आदिक मार्गणके उपाय है ।

शुक्रा—इस सूत्रमें मृगयिता, मृग्य और मार्गणोपाय इन तीनोंको छोड़कर केवल मार्गणाका ही उपदेश क्यों दिया गया है ?

समाधान—यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि, गति आदि मार्गणोपायक पद देशमर्शक है, इसलिये इस सूत्रमें कहीं गई मार्गणार्थमें तत्सब भी शेष तीनोंका ग्रहण हो जाता है । अथवा मार्गणा पद शेष तीनोंका अविनाभावी है, इसलिये भी केवल मार्गणाका कथन करनेसे शेष तीनोंका ग्रहण हो जाता है ।

जो प्राप्त की जाय उसे गति कहते हैं । गतिका ऐसा लक्षण करनेसे सिद्धोंके साथ अति-प्राप्ति दोष भी नहीं आता है क्योंकि, सिद्धोंके द्वारा प्राप्त करने योग्य गुणोंका अभाव है । यदि केवलज्ञानादि गुणोंको प्राप्त करने योग्य कहा जाये, तो भी नहीं बन सकता, क्योंकि, केवलज्ञानस्वरूप एक आत्मामें प्राप्य प्रापकभावका विरोध है । उपाधिजन्य होनेसे कथाप्रादिक भावोंको ही प्राप्त करने योग्य कहा जा सकता है । परन्तु ये सिद्धोंमें पाये नहीं जाते हैं, इसलिये सिद्धोंके साथ तो अनिरुप्राप्ति दोष नहीं आता है ।

शुक्रा—जो प्राप्त की जाय उसे गति कहते हैं । गतिका ऐसा लक्षण करने पर गमनरूप क्रियामें परिणत जीवके द्वारा प्राप्त होने योग्य द्रव्यादिकों भी गति यह समा प्राप्त हो जायेगी, क्योंकि, गमनत्रियापरिणत जीवके द्वारा द्रव्यादिक ही प्राप्त किये जाते हैं ?

१ 'गम्यत इति गति' एवम् यमाने गमनत्रियापरिणतनीवप्राप्यद्व्यादानुवाप गति-पददेश स्थात् । तत्र गतिनामकर्मोदयश्चमर्शरूपपायस्त्वैव गतिनाम्युपगमात् । गमन वा गति । एव सति प्रामाणादिगमनसत्ता गतिश्च प्रतीयते । तत्र, अत्राद मवसकालत्वे तत्रविज्ज्ञान । गमनहेतुत्वा गतित्रियाप मयमाने छद्मगदय गतिन प्रामोति । तत्र मर्शतग्यमनहेतुगतिनामकर्मैव गतिनाम्युपगमात् । जा प्र, य खन मागता प्रकरण गतिनामकर्म न गमन, चमवसकालत्वादिति तत्रवत् नान्कादिपथाचैव समवाय । गा जी, न प्र, यी १४६

सुप्रातद्वस्योपलम्भात् । इन्द्रियैकव्यमनोज्ञरूपानानव्यवमायालोकायमात्रमाया
धयोपशमस्य प्रत्यक्षविषयव्यापारमात्रात्मनोऽनेन्द्रियस्य व्याप्तिरिति चेन्न, मन्त्राणां
गौरिति व्युत्पादितस्य गोशब्दस्यागच्छोपपत्त्याऽपि प्रवृत्त्युपलम्भात् । मन्त्रो
रुद्विगललाभादिति चेदत्रापि तल्लामादेनास्तु, न कश्चिदपि । 'निर्गतामात्रमेवा स
व्यतिरकरूपेण व्यापृतिः व्याप्नोतीति चेन्न, प्रत्यक्षे 'नीतिनियमिते रतानीति प्रतिपा
नात् । मङ्गलव्यतिरकरूप्या व्यापृतिनिराकरूपाय स्वविषयनिर्गतानीन्द्रियाणि इति वा
वक्तव्यम् । स्वेषां विषयः स्वविषयमत्र निश्चयेन निर्णयेन रतानीन्द्रियाणि । सगुणविषय

शंका—इन्द्रियोंकी विकल्पा, मनकी चञ्चलता, और अनव्यवमायके सङ्कापमें तथा
प्रकाशादिकके अमायक अवस्थामें अयोपशमका प्रयत्न विषयमें व्यापार नहीं हो सकता है,
इसलिये उस अवस्थामें आत्माके अनिन्द्रियपना प्राप्त हो जायगा ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि, जो गमन करती है उस गौ कहते हैं। इसका
'गो' शब्दकी व्युत्पत्ति हो जाने पर भी नहीं गमन करनेवाले गौ पदार्थमें भी उस शब्दकी
प्रवृत्ति पाई जाती है ।

शंका—अब ही गोपदार्थमें रुदिके बलसे गमन नहीं करती हुई अवस्थामें भी गो
शब्दकी प्रवृत्ति होगी । किन्तु इन्द्रियवत्स्यादिरूप अवस्थामें आत्माके इन्द्रियपना प्राप्त नहीं हो
सकता है ?

समाधान—यदि ऐसा है तो आत्मामें भी इन्द्रियोंकी विकल्पा आदि कारणोंके रतने
पर रुदिके बलसे इन्द्रिय शब्दका व्यवहार मान लेना चाहिये । ऐसा मान लेनेमें कोई दोष
नहीं आता है ।

शंका—इन्द्रियोंके नियामक विशेष कारणोंका अमाय होनेसे उनका सकर और
व्यतिकररूपसे व्यापार होने लगेगा । अर्थात् या तो ये इन्द्रिया एक दूसरी इन्द्रियके विषयको
ग्रहण करेंगी या समस्त इन्द्रियोंका एक ही साथ व्यापार होगा ?

समाधान—ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि इन्द्रिया अपने नियमित विषयमें ही रत
हैं, अर्थात् व्यापार करती हैं, ऐसा पहले ही कथन कर आये हैं। इसलिये सकर और व्यतिकर
दोष नहीं आता है ।

अथवा, सकर और व्यतिकरद्वारा विषयमें व्यापाररूप दोषके निराकरण करनेके लिये
इन्द्रिया अपने अपने विषयमें रत हैं, ऐसा लक्षण कहना चाहिये । अपने अपने विषयकी
स्वविषय कहते हैं । उसमें जो निश्चयसे अर्थात् अथ इन्द्रियके विषयमें प्रवृत्ति न करके केवल
अपने विषयमें ही रत हैं उन्हें इन्द्रिय कहते हैं ।

१ इति आरम्भ 'इन्द्रिय' शब्दस्य 'वाल्मीकि' याज्ञवल्क्य आश्रयमात्रेण 'मणि' आश्रय
इत्यादि १६५ तमभाषायां आश्रयप्रमाणानुसारं प्राप्य समान ।

२ सकरं युगपदादि सकर । परस्परविषयमन व्यतिकर । वा कु च पृ ३६०

३ 'नीति' इति पागे नास्ति । गो जी, जा प्र, टी १६५

पायस्याया निर्णयात्मकत्वेन भासात्मात्मनोऽनिन्द्रियत्वं स्यादिति चेन्न, रुद्धिबलभा-
दुभयत्र प्रवृत्त्यवरोधात् । अथवा स्ववृत्तिरतानीन्द्रियाणि । सप्रत्ययिपर्ययनिर्णयादौ वर्तन
वृत्ति, तस्या स्ववृत्तां रतानीन्द्रियाणि । निव्योपारायस्याया नेन्द्रियव्यपदेश स्यादिति
चेन्न, उच्चात्तरत्वात् । अथवा स्वार्थनिरतानीन्द्रियाणि । अर्थत इत्यर्थः, स्वेष्ट्य च निरतानी-
न्द्रियाणि, निरतपदवाधान्न वक्तव्यमस्ति । अथवा इन्दुनादाधिपत्यादिन्द्रियाणि । उक्त च—

अदमिता जट देवा भविषेस अहमिदं ति मण्णता ।

इसिनि एज्जेनस इहा इव हरिणं जाणं ॥ ८५ ॥

पूरा—सत्य और विपर्ययरूप ज्ञानकी अवस्थामें निर्णयात्मक रति अर्थात् प्रवृत्तिका
अभाव होनेसे उस अवस्थामें आत्माको अनिन्द्रियपनेकी प्राप्ति हो जायेगी ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, रुद्धि के बलसे निर्णयात्मक और अनिणयात्मक इन
दोनों अवस्थाओंमें इन्द्रिय शब्दकी प्रवृत्ति माननेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

अथवा, अपनी अपनी वृत्तिमें जो रत है उद्धे इन्द्रिया कहते हैं । इसका पुनरासा
इसप्रकार है । सत्य और विपर्ययज्ञानके निर्णय आदिके करनेमें जो प्रवृत्ति होती है उसे वृत्ति
कहते हैं । उस अपनी अपनी वृत्तिमें जो रत है उद्धे इन्द्रिया कहते हैं ।

पूरा—जब इन्द्रिया अपने विषयमें व्यापार नहीं करती हैं तब उद्धे व्यापाररहित
अवस्थामें इन्द्रिय सत्ता प्राप्त नहीं हो सकेगी ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना, क्योंकि, इसका उत्तर पहले दे आये हैं कि कल्पि
बलसे ऐसी अवस्थाम भी इन्द्रिय-व्यवहार होता है ।

अथवा, जो अपने अर्थमें निरत है उद्धे इन्द्रिया कहते हैं । 'अर्थते' अर्थात् जो निमित्त
विद्या जाय उस अर्थ कहते हैं । उस अपने विषयरूप अर्थमें जो व्यापार करती है उद्धे इन्द्रिया
कहते हैं । इन्द्रियोंका यह लक्षण निश्चय होनेके कारण इस विषयमें अधिक यत्नव्य कुछ भी
नहीं है । अर्थात् इन्द्रियोंका यह लक्षण इतना स्पष्ट है कि पूर्वोक्त दोषोंकी महा अवकाश ही
नहीं है ।

अथवा, अपने अपने विषयका स्वतन्त्र आधिपत्य करनेसे इन्द्रिया कहलाती है ।
कहा भी है—

जिसप्रकार प्रवयवादिमें उपपन्न ह्य अहमिदं ह्य म मेवञ्च ह अथवा स्वामा ह इत्यादि

पराया स्यामना । । न च कथन । नू उ तथा ह ह्य रति तादशियत् ॥

ना जा जा प्र । १६६ ह न न व बल दुनात्मनगतत्वात् । मावाहमना 'यदिह तत्किञ्च मावाभो ॥

वि भा २ । १७ अत्र १ । । नू ह-द्वन्द्व आमा (जाह) सवतिपरायत्वि (ज्ञान)

मात्राण्यस्य वयवा ॥ १७ । । म वावावा 'ह्यवलावृत्तय न य न ह्यप्यमना' चप्यवाव जावत्

लिङ्गमा दाम । अमि ग क । ।

२५ । जा । ४ ह्य । ५ जाता म वि द्वा अमवत्तय स्वात्मन वादिनिष्ठवत्त्व मयमाना

चीयत इति शाय' । नेष्टसाधितयेन यमिनां प्रियादिर्मभिगिति विना
णात् । औरिसादिर्मभि पुटलपिपासिभिगीया इति चेन्न, प्रियादिर्मभि
सहकारिणामभावे ततःनयनानुपपत्तेः । मर्मणगीग्याना नीयाना प्रियादिर्मभि
नोर्म्मपुटलाभादस्यायत्त स्यादिति चेन्न, तच्चयनेनोर्म्मगस्यापि मत्तनमन्यपस्या
न्याय्यत्वात् । अथवा जामप्रवृत्त्युपनिनपुटलपिण्ड शाय । अत्रापि म टोयो न निर्मात

विशेषभावे रक्षित अपनेको मानते हुए एक एक होकर अर्थात् यदि किसी की आत्मा अधिक
पराधीन न होने हुए मय्य आमीपनेको प्राप्त होने दे, उसीप्रकार इन्द्रिया भा अपने अपने
स्पर्शादिक नियमों का प्राप्त उत्पन्न करनेम समर्थ है नर ह्मसी इन्द्रियायी अपनेयाने रक्षित है,
अतएव अहमिन्द्रायी नरह इन्द्रिया जानना चाहिये ।

जो सचित किया जाता है उसे काय कहते हैं । यदा एव जा सचित किया जाता है
उसे काय कहते हैं ऐसी व्याप्ति बना लेने पर कायको छोड़कर ईद आदिके सचयरूप
विपक्षम भी यह व्याप्ति घटित हो जाती है, अनन्तर व्याभिचार दोष आता है । ऐसी शका मनमें
निश्चय करने जाचार्य कहते हैं कि इसतगर ईद आदिके सचयरूपे माध व्याभिचार दाय भा नहीं
आता है, क्योंकि, पृथिवी आदि र्मोंके उदयसे इतना विशेषण जोड़कर ही 'जो सचित
किया जाता है' उसे काय कहते हैं ऐसी व्याख्या की गई है ।

शुक्रा—पुटलपिपासी ओदारिक आदि र्मोंके उदयसे जो सचित किया जाता है उस
काय कहते हैं, शायरी ऐसी व्याख्या क्यों नहीं की गई है ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि, सहकारीरूप पृथिवी आदि नामर्म्मके अभाव
रहने पर केवल ओदारिक आदि नामर्म्मके उदयसे नोर्म्मर्मणाओंका सचय नहीं हो
सकता ॥

शुक्रा—मर्मणकाययोगमें स्थित जीवके पृथिवी आदिके द्वारा सचित हुए नोर्म्म
पुटलका अभाव होनेसे अकायपना प्राप्त हो जायगा ?

समाधान—ऐसा नहीं समझना चाहिये, क्योंकि, नोर्म्मरूप पुटलोंके सचयका कारण
पृथिवी आदि र्म्मसदृश ओदारिकादि नामर्म्मका उदय मर्मणकाययोगरूप अवस्थामें भी
पाया जाता है, इसलिये उस अवस्थामें भी कायपनेका व्यवहार बन जाता ॥

अथवा, योगरूप आमाकी प्रवृत्तिसे सचित हुए ओदारिकादिरूप पुटलपिण्डको काय
कहते हैं ।

शुक्रा—कायका इमप्रकारका लक्षण करने पर भी पहले जो दोष दे आये हैं, वह
नूर नहीं होता है । अर्थात् इमनरह भी जीवके मर्मणकाययोगरूप अवस्थामें अकायपनेका
प्राप्ति होती है ।

पक्ष भूता आत्मा मरपत्तना सन इवन प्रभवति स्वामिमात्र अवाप्त, तथा स्वानादाद्रियाण्यपि ससाधि
स्वस्वविषयज्ञानमत्पादावनुमासत पगलपण्या प्रमरति, तन काणादहमिना इर इन्ध्यापि सत ।
जी प्र टी

दश स्यादिति चतु, अत्रापि रुद्धिराग्रेनाया कर्मणामन्यस्यैव येन्यपम्रातु । अदरा
त्मप्रवृत्तमनमम्मोहोत्पादा चेत् । उक्तं च—

येदमुत्तराण्य वाउत्त पुन त्रिय उ ममो ।

थानु पुनरुत्त त्रिय ये त्रि नवा हर येन ॥ ८० ॥

सुखदुःखवृत्तस्यैव कर्मणां विनाशाय । 'रुद्धिराग्रेनाया' इति
श्रुतिरिति न ध्युपासितं कथायुग्मद्वयेन, नतु मंगळग्रहणं प्रतिशक्तिमात्रमप्ययम् ।
उक्तं च—

अथवा, भाग्यप्रवृत्तिर्यथा भाग्यात् विनाशाय विनाशाय वाप्ययम् अथवा भाग्यप्रवृत्तिर्यथा
विनाशाय विनाशाय वाप्ययम् अथवा भाग्यप्रवृत्तिर्यथा विनाशाय विनाशाय वाप्ययम्

गुणः—इत्यप्रकारेण लक्षणं कर्मणं परं भाग्यं भाग्यं उच्यते । यद्वा भाग्यं
नो जायेत यद्यपि, यद्यपि तद्वत् भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं

समाधान—येन नो जायेत कर्मणां विनाशाय विनाशाय वाप्ययम् अथवा भाग्यं
उच्यते इति चेत् तद्वत् भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं

अथवा, भाग्यप्रवृत्तिर्यथा भाग्यात् विनाशाय विनाशाय वाप्ययम् अथवा भाग्यं
उच्यते इति चेत् तद्वत् भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं

येदमुत्तराण्य वाउत्त पुन त्रिय उ ममो ।
थानु पुनरुत्त त्रिय ये त्रि नवा हर येन ॥ ८० ॥

सुखदुःखवृत्तस्यैव कर्मणां विनाशाय विनाशाय वाप्ययम् अथवा भाग्यं
उच्यते इति चेत् तद्वत् भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं

गुणः—इत्यप्रकारेण लक्षणं कर्मणं परं भाग्यं भाग्यं उच्यते । यद्वा भाग्यं
नो जायेत यद्यपि, यद्यपि तद्वत् भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं

समाधान—येन नो जायेत कर्मणां विनाशाय विनाशाय वाप्ययम् अथवा भाग्यं
उच्यते इति चेत् तद्वत् भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं भाग्यं

सुदृशय सुदृशय सम्मानन कर्मणि ॥ १० ॥

समाप्त दृशय तय कर्माया विषय ॥ १० ॥

भूतार्थप्रकाशक ज्ञानम् । मिथ्यादर्शनात् भूतार्थप्रकाशमिति चेन्न, मयि
मिथ्यादर्शनात् प्रकाशस्य समानोपलब्धमात्र । न । पुनस्तत्त्वज्ञानिन इति चेन्न, मिथ्या
त्वोदयात्प्रतिभासितेऽपि स्मृतुनि मयिपरिपर्यायानध्ययमायानिर्गतितन्मेवामानितोक्त ।
एव मति दर्शनात्प्रकाश ज्ञानाभावात् स्यादिति चेन्न दोष, इष्टवान् । सत्यमयं न

सुख, दुःख आदि अनेक प्रकाशके धारणे उपर्य कर्तव्यते तत्र निश्चय समाप्त
मयादि अयत्न दृष्टे मेमे कर्मरूपी क्षेत्रज्ञो जा कर्तव्य कर्मा है उक्त कथाय रहते है ॥ १० ॥

समाप्तका प्रकाश करनेवाली ज्ञानविशेषको ज्ञान कहते हैं ।

शुद्धा—मिथ्यादर्शियोंका ज्ञान भूतार्थका प्रकाशक कैसे हो सकता है ?

समाधान—वेसा नहीं है, क्योंकि, सम्यक्त्वदि अर्थ मिथ्यादर्शियोंका प्रकाशमें समावृत्त
पाई जाती है ।

शुद्धा—यदि दोनोंके प्रकाशमें समावृत्त पाई जाता है, तो फिर मिथ्यादर्शियोंका
अज्ञानी कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—यह शरा ठीक नहीं है, क्योंकि, मिथ्यात्वकर्मके उद्भवमे उक्तके प्रति
भासित होनेपर भी मयि, परिपर्याय और अनपेक्षमायरी निवृत्ति नहीं होनेसे मिथ्यात्वप्रियोंको
अज्ञानी कहा है ।

शुद्धा—इसतरह मिथ्यादर्शियोंको अज्ञानी मानने पर दर्शनोपयोगकी अवस्थामें ज्ञानका
अभाव प्राप्त हो जायगा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, दर्शनोपयोगकी अवस्थामें ज्ञानोपयोगका
अभाव इष्ट ही है ।

शुद्धा—यदि वेसा मान लिया जाये तो इस कथनका कारणयोगमें जाये हुए अज्ञान

१ या जा २८२ अत्र मिथ्यादर्शनादिचारमकल्पणामप्यत्र प्रवृत्तिरित्यनमात्रमन्वयवत्
लक्षणं तत्र उच्यते आदिप्रमाणनामात्रस्य न पुनरपि सारदिव्यमप्राप्तमिति (पादसु लक्षणवत्प्रवृत्तिवत्तत्त्व
अनाद्यनिर्धनमसामान्यमानि यथा मुक्त्यानि मवते तत्रा उपपत्तिरिति इति विवक्षित इत्यत्र
भावाविच्छेदनाय गृह्यते निगन्तुं कथयन्तु दर्शयामिरूपण आचार्य उच्यते । जी ॥ २०, कथं ज्ञान
प्राप्ता पुन पुनः प्रवृत्तिमात्रमनुभवति कथापत्यमात्रमनुभवति । कथं सत्ता तत्रावस्थानात्तत्त्वमन्वयवत्
ममन इति कथाया । यथा कथाया इव कथाया यथा वि तुल्यिका इत्यत्रावस्थानात्तत्त्वमन्वयवत्
विर वावृत्तिरिति तद्वत्कथापत्य आमनि कथं मवत्तत्त्व विर मित्रिक च जायते, तदावस्थानात्तत्त्वमन्वयवत् । अने रा ॥

(कथा)

२ कथापत्यमात्र कथापत्यमात्रात् वादय । तत्र अज्ञानावस्थानात्तत्त्वमन्वयवत्तत्त्वमन्वयवत्तत्त्वमन्वयवत् ।

करणत्वारोप इति । उक्त च—

आण्ड तिस्रसु संहिए दत्र गुणे पञ्च ए य उद्ग-भेए ।

पचकल च परोक्ष्य अणेण णाणे सि ण वेति ॥ ९१ ॥

सयमन संयम । न द्रव्ययम सयमस्तस्य 'स' शब्देनापादितत्वात् । यमन समितय' सन्ति, तास्वमतीषु सयमोऽनुपपन्न इति चेन्न, 'स' शब्देनात्ममात्तृताग्रपममिति त्वात् । अथवा त्रतममितिरूपायदण्डेन्द्रियाणा धारणानुपालननिग्रहत्यागनया सयम । उक्त च—

लेनेमें कोई निरोध नहीं आता है ।

विशेषार्थ—यदि धर्मको धर्मसे सर्वथा भिन्न माना जाये तो दोनोंका स्वतंत्र सत्ता मिट्ट हो जानेके कारण यह धर्म है और यह धर्मों है अथवा यह धर्म इस धर्मों है, इस प्रकारका व्यवहार ही नहीं बन सकता है । इसलिये निश्चित धर्मके अभावमें यस्तुके विनाशका प्रमेय माना है । और यदि धर्मके धर्मसे सर्वथा अभिन्न माना जाये तो धर्म और धर्मों इस प्रकारका भेदरूप व्यवहार नहीं बन सकता है, क्योंकि, सर्वथा अमेद मानने पर इन दोनोंमें किना पक्षका ही भस्मत्व मिट्ट होगा । उनमसे यदि केवल धर्मका ही भस्मत्व मान लिया जाये तो उसके लिये आधार आदिसे, क्योंकि, कोई भी धर्म आधारके विना नहीं रह सकता है । और यदि केवल धर्मोंका भस्मत्व मान लिया जाये तो धर्मके विना उनकी स्वतंत्र सत्ता नहीं मिट्ट हो सकती है । इसलिये धर्मको धर्मसे कथित्वा भिन्न और कथित्वा अभिन्न ही मानना चाहिये । इस तरह अनेकानेक मानने पर ही धर्म धर्मों व्यवस्था बन सकता है और धर्म-धर्मों व्यवस्थाके मिट्ट हो जाने पर मानके साधकत्व कारण माननेमें किना प्रकारका विरोध नहीं आता है । कहा भी है—

जिगमे द्वारा जीव त्रिकाग्विषयक समस्त द्रव्य उनके गुण और उनकी अनेक प्रकारकी पर्यायोंका प्रकाश और परीक्षकत्व आने उनकी जान कहने है ॥ ९२ ॥

सयमन करनेको संयम कहते हैं । सयमका इस प्रकारका लक्षण करने पर द्रव्ययम भेदोंन् भाववाग्विषय द्रव्यवाग्विषय सयम नहीं हो सकता है, क्योंकि, संयम शब्दमें प्रहण दिये गये स शब्दमें उसका निगूहण कर दिया है ।

उदा—यहां पर सयम समितियोंका प्रहण करना चाहिये, क्योंकि, समितियोंका ही हान पर सयम नहीं बन सकता है ?

समाधान—यहां शब्द गीक नहीं है, क्योंकि, सयममें दिये गये 'स' शब्दका भाव समितियोंका प्रहण हो जाता है ।

अथवा शब्द प्रयोग का धारण करना, याच समितियोंका पाठन करना प्रयोग व्यवस्था निग्रह करना मन चकन और वाचक्य तीन दृष्टियोंका त्याग करना और तब त्रिदृष्टिक विषय का जीवन सयम है । कहा भी है—

प्रमाणम् । अस्तु प्रमाणाभास इति चेन्न, प्रमाणाभासे सर्वसाधारणप्रमद्धान् । अस्तु चेन्न, तथापि पलम्भान् । ततः सामान्यविशेषात्मकसाधारणग्रहणं ततः, तत्प्रात्मस्वरूपग्रहणं दर्शनं मिति मिदम् । तथा च 'ज सामण्यं ग्रहणं न दमणं' इति वचनेन विरोधः स्यादिति चेन्न, तत्प्रात्मनः सर्वसाधारणमाधारणं न सामान्यव्यपनेनमात्रं ग्रहणम् । तथापि कथमवसीयत इति चेन्न, 'भाषाणं णेरुद्धु आयार' इति वचनम् । न च धा, भाषाणां साधारणतामात्रं प्रतिस्मरणव्यवस्थामकृत्या यद् ग्रहणं तदनेनम् । अर्थसार्थस्य पुनरपि

शुद्धा—यदि ऐसा है, तो प्रमाणका अभाव ही क्यों कहा मान लिया जाय ?

समाधान—यह ठीक नहीं है, क्योंकि, प्रमाणका अभाव मान लेने पर प्रमेय, प्रमाणाभासि समीक्षा अभाव मानना पड़ेगा ।

शुद्धा—यदि प्रमेयादि समीक्षा ही अभाव होता है तो ही भा ?

समाधान—यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि प्रमेयादिका अभाव दृश्यमें नहीं आता है किन्तु उनका सङ्गाय ही दृष्टिगोचर होता है । अतः सामान्यविशेषात्मक बाह्य पदार्थको ग्रहण करनेवाला ज्ञान है और सामान्यविशेषात्मक आत्मरूपको ग्रहण करनेवाला ज्ञान है यह सिद्ध हो जाता है ।

शुद्धा—उन प्रकारसे दृश्य और ज्ञानका स्वरूप मान लेने पर 'परबुद्धा ओ सामान्य ग्रहण होता है उसको दर्शन कहते हैं' परमात्मके इस वचनका साथ विरोध आता है ।

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि आत्मा स्वयं बाह्य पदार्थोंमें लक्षणात्माके पाया जाता है, इसलिये उन वचनमें सामान्य सङ्गाथी ज्ञान आत्माका है सामान्य पदम ग्रहण किया गया है ।

शुद्धा—यह कैसे जाना जाय कि यहाँ पर सामान्य पदम आत्माका है ग्रहण किया है ?

समाधान—ऐसा जाना करना ठीक नहीं है क्योंकि 'परबुद्धा अकार अर्थम् भेदको नहीं करते' इस वचनमें उन कथनकी पुष्टि हो जाती है । इसको स्पष्ट करने के भावोंसे, अर्थात् बाह्य पदार्थोंके आकाररूप प्रतिबन्धमयवस्थाको कहा करके अर्थम् भेदकाम प्रत्येक पदार्थको ग्रहण कहा करके ओ (सामान्य) ग्रहण होता है उसका दृश्य कहते हैं । फिर भी इसी अर्थको यह कहना है कि यह अमुक पदार्थ है यह अमुक पदार्थ

यनस्य वृत्तिरालोचनवृत्ति स्वयवेदन, तदर्धनिमित्तिरूप्यनिष्ठा । प्रज्ञावृत्तिर्गोचरनिष्ठम् ।
अस्य गमनिसा, प्रज्ञागोचरानम्, तदर्धमात्मनो वृत्ति प्रज्ञावृत्तिस्मद्वानम् । विषयविषयि
मपातात् पर्यायस्था दर्शनमित्यर्थ । उक्तं च—

न सामान्य गृहण भागण जेव वृद्ध आचार ।

अविसेसिऊण अत्थे दसगमिदि भण्णदे सम ॥ ९२ ॥

लिप्पतीति लेदया । न भूमिलेपिस्त्रयाअनिव्याप्तिदोष कमभिगमानमित्यप्या
हारापेनित्तात् । अथमात्मप्रवृत्तिमस्त्रेपणरी लेदया । नात्रातिप्रवृत्तौ प्रवृत्तिमस्त्रेपण
र्मपयायान् । अथवा कथायानुराजिता कायवाहमनोयोगप्रवृत्तिरप्या । तत्र न वरा

भालोचनवृत्ति या स्वयवेदन कहते हैं, और उसका दर्शन कहते हैं । यदा एव दर्शन इस
नद्वे रूप्यका निष्ठा किया है । अथवा, प्रज्ञावृत्ति को दर्शन कहते हैं । इसका अर्थ
इसप्रकार है कि प्रज्ञा ज्ञानको कहते हैं और उस ज्ञानके अर्थ जो आत्माका व्यापार होता
है उसे प्रज्ञावृत्ति कहते हैं, और यही दर्शन है । अथवा विषय और विषयक व्यापार दर्शन
हानेकी पर्यायस्थाका दर्शन कहते हैं । कहा भी है—

सामान्यविशेषात्मक वाता पदार्थोंको भग्न भग्न भेदरूपस प्रहण नहीं करके जो
सामान्य प्रहण अर्थात् स्वरूपमात्रका अध्ययन होता है उसका परमागममें दर्शन
कहा है ॥ ९३ ॥

जो लिप्पन करता है उसे लेदया कहते हैं । यदा एव आलिप्पन करता है वह
अपण भूमिलेपिका (जिसके द्वारा ज्ञान लीपा जाता है) में खरा जाता है इसअर्थ रूप्यभूत
लेदयाको छोड़कर लक्षणके अन्तर्धर्मों पर ज्ञानके कारण अनिश्चय होकर जाता है । धर्म
निकाको मतम उठाकर आचार्य कहते हैं कि इसप्रकार लेदयाका लक्षण करने पर भी
अनिश्चय होकर नहीं जाता है क्योंकि, इस लक्षणमें 'कर्मोंसे आत्माको इनमें अन्तर्धर्मों
मपेक्षा है । इसका यह तात्पर्य है, कि जो कर्मोंसे आत्माका लिप्पन करता है उसका लक्षण करना
है । अथवा जो आत्मा और प्रवृत्ति अर्थात् कर्मका सम्बन्ध करनेवाली है उसका लक्षण करना
है । इसप्रकार लेदयाका लक्षण करने पर अनिश्चय होकर भी नहीं जाता है क्योंकि यदा एव
प्रवृत्ति नाम् कर्मका पर्यायवाची प्रहण किया है । अथवा कथायसे अनुराजित कायवाहमनो
योग और मनोयोगकी प्रवृत्तिकी लेदया कहते हैं । इसप्रकार लेदयाका लक्षण करने पर वर

१) ३१ ४ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥

१४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥

१४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥

१४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥

१४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥ १४९ ॥

रूपयो लेख्या, नापि योग", अपि तु रूपायानुविद्धा योगप्रगतिरपि सिद्धम् । न रीतगमाणा योगो लेख्येति न प्रत्यक्षमेव तन्त्राचार्योक्तम्, न रूपायामत्र विग्रहः स्वतन्त्रस्य प्राधान्याभावात् । उक्तं च—

अपि जीवमिदं तन्त्रं गिर्यं पुण्यं तान् च ।

जीवो नि हो' उम्मा उम्मा-गुणं तान् च ॥ ११ ॥

निर्याणपुम्फनो भय । उक्तं च—

मिदं तन्त्रं योगो न जीवो ते ह्यपि भाषिता ।

ण उ मउ विगमे गिर्यो तान् वगमे' तन्त्रमिदं ॥ १५ ॥

कथाय और केवल योगको लेखा नहीं कह सकते हैं किन्तु रूपायानुविद्ध योगप्रगतिको लेखा कहते हैं, यह बात सिद्ध हो जाती है । इसमें बारम्बार अपि गुणम्यानन्तरी यानगिर्योके कथन योगको लेखा नहीं कह सकते हैं ऐसा निश्चय नहीं कर लेना चाहिये, क्योंकि, श्रव्यो योग प्रदानता है । कथाय प्रदान नहीं है, क्योंकि, यह योगप्रगति का विशेषण । अन्तरात् प्रदानता नहीं हो सकती है । कहा भी है—

जिसके द्वारा जीव पुण्य और पापमें अपनेको लिप्त करना है, उनके प्राप्ति करने हेतु उसको लेखा कहते हैं, ऐसा लेखाके स्वरूपको जाननेवाले गणपदेव आदिने कहा है ।

जिसने निर्याणको पुरस्कार किया है, अर्थात् जो मिद्धिपद प्राप्त करने का प्रयत्न उसको भय कहते हैं । कहा भी है—

जो जीव मिद्धि, अर्थात् स्वयं कर्मसे रहित भुक्तिरूप अवस्था पानेके योग्य है उसे भयमिद्ध कहते हैं । किन्तु उसके कर्तव्य अर्थात् स्वर्णपापाणके समाप्त करना नाम ही नियम नहीं है ।

विशेषार्थ—मिद्धिपदकी योग्यता रखने हुए भी कोई जीव मिद्धि अवस्थाको प्राप्त करने हेतु और कोई जीव मिद्धि अवस्थाको नहीं प्राप्त कर सकते हैं । जो भय होते हुए मिद्धि अवस्थाको नहीं प्राप्त कर सकते हैं, उनके लिये यह कारण बन गया है कि त्रिमयस्वर्णपापाणमें सोना रहने हुए भी उसका अन्त किया जाना निश्चित नहीं है, उसीप्रकार मिद्धि अवस्थाकी योग्यता रखने हुए भी तदनुसृत सामग्रिके नहीं मिलनेसे मिद्धिपदकी प्राप्ति नहीं होती है ।

१ गा १५ ४० । किन्तु गिर्यपुण्यपापं च 'इयं गिर्यपुण्यपुण्यं च' पाठ ।

२ गा ३५ ५० । किन्तु मिद्धितन्त्रस्य इति स्थानं 'मन्त्रतन्त्रम्' इति पाठ ।

३ मन्त्रं मन्त्रा नामानि च जीवन्तानि । तन्त्रं मन्त्रा । जहं नामानि विदित्वा मन्त्रं न कालं विदित्वा । जहं वा स एव पातयन्मन्त्रं विदित्वा नामानि । न । तन्त्रं मन्त्रा विदित्वा मन्त्रं विदित्वा जन्म संपन्नं ॥ किं पुनः नाम संपन्नं नाम जन्मस्य न । अत्रान्तम् । न । नो मन्त्रा विदित्वा नाम मन्त्रान् न इत्यर्थः ॥

वि मं २१३, २१५

उ षच णर विहाण अत्याण निणरोरइण ।

आणाण हिगमेग य सदहण होइ सम्मत्त ॥ ९६ ॥

मम्यं जानातीति सन्न मन, तदस्याप्तीति सन्नी । नैरेन्द्रियादिनाविप्रमत्त
तम्य मनमोऽमायात् । अथवा शिवाक्रियोपदेशालापग्राही सन्नी । उक्तं च—

सिक्खा किशियुपदसाढ्यागगाही मणोउल्लेख ।

जो जीरो से सण्णा तयिरीये असण्णा दु ॥ ९७ ॥

शरीरप्रायोग्यपुद्गलपिण्डग्रहणमाहार । सुगममेतत् । उक्तं च—

આહરદિ સરીરાણ તિણ્હ ણગદર વગળાઓ જ ।

मामा मणस्स णियद तम्हा आहारओ मणिओ^४ ॥ ९६ ॥

निनेत्र भगवान्के द्वारा उपदेश दिये गये छह द्रव्य, पाच अस्तिनाय आर नय परा
 योका भाषा अर्थात् आत्मजन्के आश्रयसे अथवा अधिगम अर्थात् प्रमाण, नय, निरोध और
 निरतिरूप अनुयोगद्वारोंमे ध्यान करनेकी सम्पत्क कहते हैं ॥ १६ ॥

जो भलीप्रकार जानता है उसको सब अर्थात् मन कहते हैं। यह मत जिसने पाया जाता है उसको सत्री कहते हैं। यह लक्षण एकेन्द्रियादिकमें चला जाएगा, इसलिये अनेकप्रकार से भ्राज्यगा यह बात भी नहीं है, क्योंकि, एकेन्द्रियादिकके मन नहीं पाया जाता है। भ्राज्या, जो शिक्षा, प्रिया उपदेश और आलापको ग्रहण करता है उसको सत्री कहते हैं। क्या भी है—

आ जीव मनके अग्रगण्यमे शिक्षा, त्रिया, उपदेश और आलापको ग्रहण करता है उन मर्मा कहते हैं। और जो इन विधा आदिको ग्रहण नहीं कर सकता है उसको अर्थात् कहते हैं ॥ ७५ ॥

भारतवादि शास्त्रके योग्य पुस्तकविषयके ग्रहण करनेको आदार कहते हैं। (गण)
अर्थ माल है। क्या मी है—

भौतिक, वैज्ञानिक और आध्यात्मिक इन तीन शरीरोंमें उदयको प्राप्त हुए विना

१ - अं ३० अथवा अथवा प्रमाणानुसारिना इतिवत्तम् । ज्ञातमप्यत्र यथा
अथवा अथवा अथवा नि यथा अथवा अथवा । इतिवत्तम् । अथवा

[illegible]

॥ श्री गणेशाय नमः ॥
 ॥ श्री गणेशाय नमः ॥

১৪ ৫ ১১ ১২ ১৩ ১৪ ১৫ ১৬ ১৭ ১৮ ১৯ ২০ ২১ ২২ ২৩ ২৪ ২৫ ২৬ ২৭ ২৮ ২৯ ৩০ ৩১ ৩২ ৩৩ ৩৪ ৩৫ ৩৬ ৩৭ ৩৮ ৩৯ ৪০ ৪১ ৪২ ৪৩ ৪৪ ৪৫ ৪৬ ৪৭ ৪৮ ৪৯ ৫০ ৫১ ৫২ ৫৩ ৫৪ ৫৫ ৫৬ ৫৭ ৫৮ ৫৯ ৬০ ৬১ ৬২ ৬৩ ৬৪ ৬৫ ৬৬ ৬৭ ৬৮ ৬৯ ৭০ ৭১ ৭২ ৭৩ ৭৪ ৭৫ ৭৬ ৭৭ ৭৮ ৭৯ ৮০ ৮১ ৮২ ৮৩ ৮৪ ৮৫ ৮৬ ৮৭ ৮৮ ৮৯ ৯০ ৯১ ৯২ ৯৩ ৯৪ ৯৫ ৯৬ ৯৭ ৯৮ ৯৯ ১০০

तद्विपरीतोऽनाहार । उक्तं च—

निन्दन्मन्त्रा केनचित् समुद्रा यत्नो य ।

मिदं य आदरा सेना चकारा वास ॥ ९९ ॥

अन्विष्यमाणगुणव्यानानामनुयोगद्वारप्ररूपणार्थमुत्तरत्रमाह—

एदेसि चैव चोदसण्ण जीवसमासाण परूवणट्ठदाए तत्थ इमाणि

अट्ठ अणियोगद्वाराणि णायव्वाणि भवन्ति ॥ ५ ॥

‘तथ इमाणि अट्ठ अणियोगद्वाराणि’ एतदेवात् ‘तैपस नान्तर्गम्य’ आदिनि
‘तैपस दोष मन्दबुद्धिमत्त्वानुग्रहार्थत्वात् । अनुयोगो निषेगो भाषा विभाषा वार्तिके
त्यर्थः’ । उक्तं च—

एक द्वारके योग्य तथा भाषा और मनके योग्य पुद्गलपिण्डाओंके ओ निष्क्रमे ग्रहण
करना है उसको आहारक कहते हैं ॥ ९८ ॥

आहारक आदि द्वारके योग्य पुद्गलपिण्डके ग्रहण नहीं करनेको अनाहार कहते हैं ।
कहा भा है—

विग्रहगतिको प्राप्त होनेवाले वारों गतिवे जाय प्रवर आरंभकगुण समुदायको ग्रहण
हूय सयोगिकेयला तथा भये गिकेयली आर सिद्ध ये नियमने अनाहारक होने हैं । तैप अर्थोंको
आहारक समझना आदिष्टे ॥ ९९ ॥

अन्विष्य किये जानेवाले गुणस्थानोंके आठ अनुयोगद्वारोंके प्ररूपण करनेके लिये
भागका सूत्र कहते हैं—

इन दो चौदह जीवसमासोंके (गुणस्थानोंके) निरूपण करने हुए प्रोक्तको हानवर
पहा भागे कहें जानेवाले ये आठ अनुयोगद्वार समझना आदिष्टे ॥ ५ ॥

गुरु — ‘तथ इमाणि अट्ठ अणियोगद्वाराणि’ इतना सूत्र बनना ही पर्याप्त था
क्योंकि, सूत्रका दोष भाग इसका अधिनाशका है । अतएव उसको हटाने ग्रहण हो जाता है ।
उसे सूत्रमें निहित करनेको कोई आवश्यकता नहीं थी ।

समाधान—यह जोह दोष नहीं है, क्योंकि, मन्दबुद्धि प्राणिजोंके अनुग्रहे के लिये दोष
भागको सूत्रमें ग्रहण किया गया है ।

अनुयोग निषेग भाषा विभक्ता अर वार्तिक ये पाँचो पदोंपदका नाम है ।
कहा भी है—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

निविभूतयः पित्रस्य कर्मिणश्चिद्वचनमपि तद्वचन इति ज्ञाननिधयः पृच्छान्तरमाह—

तं जहा ॥ ६ ॥

अप्यन्तःशक्तौति ननुनरविज्ञानिभ्यः । तन् अज्ञानामनुयोगशक्त्या निदध् ।
यथैव दृष्टा । एव दृष्टव्यं पिप्पल्यस्य मदहापोऽनार्थमुच्यते इति—

संतपस्वणा दब्धपमाणाणुगमो संताणुगमो फोसणाणुगमो
कालाणुगमो अंतराणुगमो भावाणुगमो अप्याहुगाणुगमो चेदि ॥ ७ ॥

अहंमनीषोऽपराधमाश्रमि किमिदं मत्तदप्यत्र चेप उच्यते । न, मनापि
योगो सेनापि योगश्चाप्य ज्ञेयं ज्ञेयैर्भूते तेन पदम मनापि योगो चेद भगवदे ।

मममोक्षा इति नदी है। सधना है। येन मुनयेनने सिद्धये उन मत्त अनुयोगशक्तये नानके
विज्ञाने साप उच्यते है। सधना है। इसप्रकारका निश्चय होने पर भावापि पृच्छासूचये
करते हैं—

ये मत्त मधिष्ठार कौनसे है ॥ ६ ॥

कहा अनेवर्ण विद्वत् भगवत् होनेसे 'समन्ते ननुमहम्' इस निश्चयसे धनमे
रगहर भावयते नद्' यह ननुमहम् निश्चय किया है, जो कि भयो की अनेवर्ते उन
भाहो ही अनुयोगशक्तये निश्चय करन, है। 'यप' यह पद पृच्छाके मत्त करता है।
अथान् वे मत्त अनुयोगशक्तये कौनसे है' इसप्रकार पूछनेवाले सिद्धये सदेवके दूर करनेके
लिने भयोका सूच करते हैं—

सप्तमस्कन्धे द्वावध्यानायुगमो रेवध्यानायुगमो ध्यानायुगमो ध्यानायुगमो,
मनायुगमो ध्यानायुगमो ध्यानायुगमो ये मत्त अनुयोगशक्तये होते हैं ॥ ७ ॥

शुद्धी—अथ अनुयोगशक्तये मदिमे सप्तमस्कन्धे ही क्यों क्यों गई है ?

ममाधान—येन नद्। कदम, क्योंकि सप्तमस्कन्धे अनुयोगशक्तये जिन
कारणसे वे अनुयोगशक्तये निविभूत (मूक्तकारण) हैं उन्म,कारण सबम एते सप्तम
पत्रा ही निरूपण किया है ।

१. सप्तमस्कन्धे द्वावध्यानायुगमो रेवध्यानायुगमो ध्यानायुगमो ध्यानायुगमो,
मनायुगमो ध्यानायुगमो ध्यानायुगमो ये मत्त अनुयोगशक्तये होते हैं ॥ ७ ॥
२. सप्तमस्कन्धे द्वावध्यानायुगमो रेवध्यानायुगमो ध्यानायुगमो ध्यानायुगमो,
मनायुगमो ध्यानायुगमो ध्यानायुगमो ये मत्त अनुयोगशक्तये होते हैं ॥ ७ ॥
३. सप्तमस्कन्धे द्वावध्यानायुगमो रेवध्यानायुगमो ध्यानायुगमो ध्यानायुगमो,
मनायुगमो ध्यानायुगमो ध्यानायुगमो ये मत्त अनुयोगशक्तये होते हैं ॥ ७ ॥

सत्तपरूपणाणतर किमिदि दव्वपमाणाणुगमो उच्चते ? ण, णिय-मया गुणितागाढण
 सेत्त सेत्त उच्चदे दि । एद चेत्त अदीदं फुमणेण मह फोमण उच्चदे । ततो दो वि अदि
 यारा सत्ता-जोणिणो । णाणेम-जीरं अस्सिउत्त उच्चमाण-कालत्त परूणा वि मया चणी ।
 इद धोममिदं च उदुममिदि भण्णमाण अप्पाउद्दुग पि सत्ता चणी । तेण एदाणमाइहि
 दव्वपमाणाणुगमो भण्ण-जोग्गो । एत्थ भाया किमिदि ण उच्चते ? ण, तम्म उदु
 वण्णणादो । कथं भायो उदु-वण्णणीयो ? ण, कम्म उम्मोत्तय परूणाहि विणा
 तम्म परूणाभारादो । छ उदुद्दि हाणि द्विप भाय मयमत्तेरेण भाय वण्णणाणुवत्तीणे या ।
 उदुमाण फास उण्णेदि सेत्त । फामण पुण अदीदं उदुमाण च उण्णेदि । अगगय उदुमाण
 फासो सुहेण दो वि पच्छा चागदु चि पोसगपरूणादो होदु णाम पुत्त सेत्तम्म

शुद्धि—सत्परूपणाके बाद उच्चप्रमाणानुगमरा कथन क्यों किया गया है ?

समाधान—यह शंका भी ठीक नहीं है, क्योंकि, अपनी अपनी सत्तामें गुणित
 अत्रागहनारूप क्षेत्रको ही क्षेत्रानुगम कहते हैं । और अपनी अपनी सत्तामें गुणित अत्रा
 हनारूप क्षेत्र ही भूतकालीन व्यक्तिके साथ स्वर्णानुगम कहा जाता है । इसलिये इन
 दोनों ही अधिकारोंका सत्ताधिकार (उच्चप्रमाणानुगम) योनिभूत है । उन्मीप्रकार माना
 जाय भीत एक जीवकी अपेक्षा वर्णन की जानवाली कालपरूपणा और अन्तरपरूपणाका
 भी सत्ताधिकार योनिभूत है । तथा यह अल्प है, यह बहुत है, इसप्रकार कहे जानेवाले
 अल्पबहुत्वानुयोगकारका भी सत्ताधिकार योनिभूत है । इसलिये इन सबके आदिमें उच्च
 प्रमाणानुगमका ही वर्णन करना योग्य है ।

शुद्धि—यहां भावपरूपणाका वर्णन क्यों नहीं किया गया है ?

समाधान—उसका वर्णन करना योग्य नियम बहुत है, इसलिये यहाँ भावपरूपणाका
 वर्णन नहीं किया गया है ।

शुद्धि—यह कम जाना जाय कि भावपरूपणा बहुवचनीय है ?

समाधान—जसा जका नहः कत्ता । तात्थि कयोक्क कम भाय कमाद्वयक निकल्पण
 विना भावपुपागकारका निकल्पण नहीं है । सकत्ता है इत्था । भाव बहुवचनीय है पर
 समझना चाहिये । अत्रा, यत्तुणी हान और यत्तुणी गाढम । अत्रा भावका सत्ता । अत्रा
 भावपरूपणाका वर्णन नहीं है । सकत्ता है इत्था । यी यत्तु भावपरूपणाका वर्णन नहीं । यत्तु
 गाढा है ।

शुद्धि—आज्ञापनाय वर्तमानकालीन स्वरूपका वर्णन करता है । भाव वर्तमानकालीन
 वर्तमान भाव वर्तमानकालीन स्वरूपका वर्णन करता है । । अत्रा वर्तमानकालीन स्वरूपका जान
 लिया है यह वर्तमान वर्तमानकालीन स्वरूपका वर्णन । अत्रा वर्तमानकालीन स्वरूपका वर्णन ।

परमार्थ, न पुनः शालतेहिती ? इति न, जगद्वयं यत्न कोमलम् तत्रांतर जायन्तुमाया
भासाते । य च मनमत्तयामसो न परमं तन्म अन्वयसत्तपसगादा । जगत्त
तत्रान्तर पट्टिज्जोति चेण, तत्पट्टे निरोहमासात् । तदा भावपादुगाग पि
परमार्था गेत्त-कोमलागुगममत्तरेण न तत्पिमया होति चि पुव्वमत्त गेत्त-यामन परम
पापया । सेमाहिपारेसु सतम् व मोत्तुण रिमद्द राग पुव्वमत्त उव्व ? य ताव
अनपरमार्था नय भगण नागा काउ नाणितादी । न भासा रि तन्म नत्त हाट्टिम
अट्टियार चोणितात् । य अत्तावद्दुग पि तन्म रि समानियाम नागितात् । यमिममात्ता
पालो चैव तथ परमार्था भागा ति । भावपादुगाग जाणितात्ता पुत्तमत्तपरमार्था

स्पष्टान् प्रकपणाक पट्टे क्षत्रप्रकपणाका पणन वदा भावे इत्येवं काह आपनि नदी परमु काउ
भीर अन्तरप्रकपणाके पट्टे क्षत्रप्रकपणाका पणन सभय ना । ६ ।

समाधानं—नदी, क्योंकि जितन क्षेत्र भीर कर्णनका नदी जाता है उसे
नदीबन्धी काउ भीर अन्तरक जातनका कोह भी उपाय नहीं प्राप्त हो सकता है । भाव
भागम, जित प्रकाशमे वस्तु व्यवस्था है, उसप्रकाशमे प्रकपण नदी बने पट्टा नदी सकता
है । यदि ऐसा नदी माना जाये तो उस भागमही अधोपत्य अधो अमधकपणपत्र प्रकाश
मात्र हो जायगा ।

शरा—तो भी क्षेत्र भीर उपदानप्रकपणाक पत्रात् काउ भीर अन्तरप्रकपणाक पत्रात्
मात्र नहीं होता है ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि, क्षेत्र भीर कर्णनके काउ काउ भीर अन्तर
प्रकपणाके पत्रात् कर्णन कोह पिण्ड नहीं आता है ।

उत्ताप्रकाश भाव भीर अधोपत्यकी भी प्रकपणा क्षेत्र भीर कर्णनागुगम विना
क्षेत्र भीर उपदानका विषय कर्णनकारी नदी हो सकता है इसाग्य इन सबके पत्र ही
क्षेत्र भीर कर्णनागुगमका पत्रात् कर्णन कर्णना प्याट्य

पट्टी—अन्तर्गत गप भावकागव वही हूय भा उ ह उपरक कर्णनागुगमका
पत्रात् पट्टी क्यों कर्णना गया ?

समाधान—यदापि (उपदानप्रकपणाक पत्रात्) अधोप्रकपणाका कर्णन ना है
नदी तो सकता है कर्णनाक अधोप्रकपणाका मुत्त भा गार (याने कर्णनाप्रकपणा हो
कर्णनाप्रकपणाका काउ भावप्रकपणाका ही पणन नहीं कर सकता है कर्णना कर्णनाप्रकपणा
नाउका अधोपत्य (न कर्णना उपाय) भावप्रकपणाका यानेक व अधोपत्य अधोप्रकपणा
पणाक काह अधोपत्य उपदानका भाव उने नदी कर्णना कर्णनाक कर्णना कर्णना
(भावनागुगम) अधोपत्य उपदानका ही नदीक है इसाग्य उ उह कर्णनाप्रकपणा कर्णना
है पर भाव भीर अधोपत्य उ कर्णनाक कर्णना भाव प्रकपणा नदी कर्णना कर्णना
गावय पत्रा पत्रा ही प्रकपणा कर्णना कर्णना कर्णना कर्णना कर्णना कर्णना कर्णना

उना । जप्यावहृत् ज्ञोषितादो पुत्रमेव भावपश्यणा उच्यते । सुते तदा पर्यया सिमिदि
 ष सिमिदे ? ष, सुतस्मत्पश्यणमेव भावसादो । तदाहृत्पिया सिमिदि ष उच्यते ।
 ष, अत्राग्नयममथाण सिम्याण सपहि अभासादो तदोपमाभासादो य । अत्यंत मग्नि
 मतादिरोगो । मताग्रियोगमिह जमयित उच तस्य पमाण पर्येदि द्रव्याधियागो ।
 तस्मिन् अवगय मत-पमाणाण यदुमाणागाहण पर्येदि रोताधियागो । पुनो तेहिना
 वन्द-मत पमाणा-रोताग अदीद साल सिमिद्वि फाम पर्येदि कामाणुगमो । तस्मिन्
 अत्राप-मत-पमाणा सत्त-फेमणाग द्विदि पर्येदि सालाधियागो । तस्मिन् नर सिमि
 द्वादि अत्रागियागो । तस्मिन् नर भाव पर्येदि भावाधियागो । तेन नर धीर-वत्
 वत्ति अत्रावहृत्पिया । उत च—

५०५५ पुनः सप्त अक्षरस्य ग तद्धा परिम ग ।

॥ १०३ ॥

[illegible]

प्रश्न—गुरुदेव प्रसन्नताभावा कर्मजन इन्द्रजाल कथा सहित विचार क्या है ?

मन्त्र—ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ଦିବା - ବଂଶୀ ଗୀତ ହେଲା ଯୁକ୍ତ । ଭାବନା ତୁମ ପ୍ରବାସର ପ୍ରଦର୍ଶନୀ । ଶାନ୍ତ୍ୟାମ ସମ୍ପାଦନା
 କଲି ବାବୁ ହେ ।

उत्तर-प्रश्न - क्या आप नहीं जानते कि यह सब किसके लिए है ?
 उत्तर - मैं नहीं जानता कि यह किसके लिए है । मैं तो केवल एक किसान हूँ ।
 प्रश्न - तो आपको पता नहीं चलता कि ये सब किसके लिए है ?

[illegible][illegible]

प्रतीत्यादि । जगामित्प्रसाचरो ग्राह्य । निदेशः प्ररूपण विरूपण व्याख्यानमिति
यावत् । न द्विविधो द्विप्रसार, ओषेन आदेशेन च । ओषेन सामान्येनाभेदेन प्ररूपण-
मेव । अपर आदेशेन भेदेन विशेषेण प्ररूपणमिति । न च प्ररूपणायास्तृतीय प्रसारोऽस्ति
सामान्यविशेषव्यतिरिक्तस्यानुपलब्धमावत् । विशेषपत्यतिरिक्तमामान्याभावाद्देशप्ररूपणाया
एव ज्ञानमिति स्यादिति न द्विविध व्याख्यानमिति चेन्न, सक्षेपस्मिन्नविशेष
पर्यायाधिक्यमन्तानुग्रहार्थत्वात् । ज्ञानममम इति किम् ? ज्ञाना सम्यगामतेऽस्मिन्निति
ज्ञानममम । इमते ? गुणेषु । के गुणा ? औदयिकौपशमिकृशाधिकृशाभ्यां पणमिक

मय कहते हैं। वहीं पर 'सन्' शब्द अस्तित्वात्क भी पाया जाता है। जैसे, यह सयन अस्तित्वात्क मद्रासम मनी है। इनमसे यहा पर 'सन्' शब्द अस्तित्वात्क ही लेता पादिये।

निर्द्वन्द्व, प्रकृष्ट, विग्रह और व्याख्यान ये राय पर्यायवाची नाम हैं। यह निर्द्वन्द्व भाव और भवेत्वाकी ओरवा द्वा प्रकाश है। ओय, सामान्य या अभेदमे निरूपण करना पहली भावप्रकृष्टता है, और भवेत्वा, भेद या विशेषरूपमे निरूपण करना दूसरा भावप्रकृष्टता है। इन द्वा प्रकाशकी प्रकृत्यभाषाको छोड़कर यस्तुके विशेषतका और का तात्पर्य प्रकाश केमे नहीं है, यथाकि, यस्तुमे सामान्य और विशेष धर्मको छोड़कर और कोई तीसरा धर्म नहीं पाया जाता है।

प्रश्न—विशेषकर एम्पायर नामक स्थान पर नहीं पाया जाता है, इसलिये आश्चर्य
है कि वहाँ से ही सामाजिकशास्त्र का जन्म हो जायगा। अतएव श्री प्रचारक क्या बात बताना
चाहते हैं ?

समाधान—यह भाषा की टीका मराठी, कन्नड़, जहाँ से यह संविधान शाब्दिक है
 व प्रत्येक भाषा में समानप्रकारणों का संयोजन जानना पड़ता है। और जो हिन्दी
 भाषा में है वह इस भाषा में भी समानप्रकारणों के द्वारा संयोजन समानता प्राप्त है
 इससे इन सभी प्रकार के संविधान अनुसूक्त नियमों पर ध्यान प्रकाश प्रकाशनाभावा
 प्राप्त होगा।

शुद्ध—आवधमान हिम काल ११

सम्मान — जिसमें आठ लाखका हस्त दे भर्तृनि पाद आर्द्र दे उग श्रीगणेशाय
बहान दे

सुद्धि-अथ चत्वारः सुद्धयः ।

सङ्ग्रह — सङ्ग्रह — सङ्ग्रह ६।

५५५ - नमो भगवते वासुदेवाय ॥

[illegible]

पारिणामिका इति गुणः । अस्य गमनिका, कर्मणामुदयादुत्पन्नो गुण आदिक, तेषामुपशमार्णपशमिका, ध्यातव्याधिक, तत्तथाप्युपशमाद्योत्पन्ना गुण क्षायोपगमिका । कर्मोदयोपशमसप्तपक्षयोपशममन्त्रेणोपस्य पारिणामिका । गुणमहचरितन्वादाभापि गुणमहा प्रतिलभते । उक्तं च—

जेदि दु लम्बिज्जत उदयादिमु समोदि मरेदि ।

आग ते गुण सग्गा जिदिता सव्वरिदि ॥ १०४ ॥

आपनिदशार्थमुत्तरयत्रमाह—

ओघेण अत्थि मिच्छाद्वी' ॥ ९ ॥

पयोदेदसुखा निर्देग इति न्यायात् आपाभिधानमन्त्रणापि आपाज्जगन्त

प्रकारके गुण अर्थात् भाव है । इनका गुणवत्ता इस प्रकार है । जो कर्मोंके उत्पन्न उत्पन्न होता है उसे भीदधिक भाव कहते हैं । जो कर्मोंके उपशमन उत्पन्न होता है उसे आपशमिका भाव कहते हैं । जो कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होता है उस क्षयिक भाव कहते हैं । जो धर्मेमान समयमें सर्वपानी स्वर्धर्मेके उद्वाभायी क्षयसे और अनागत कालमें उद्घर्मे आनेवाले सर्वपानी स्वर्धर्मेके स्वर्धर्माक्षय उत्पन्नसे उत्पन्न होता है उस क्षायोपगमिका भाव कहते हैं । जो कर्मोंके उद्घ उत्पन्न क्षय और क्षयत्वमर्था अपशमिका पिता जीके सम्भावमात्रसे उत्पन्न होता है उस पारिणामिका भाव कहते हैं । इन गुणोंके साहचर्यसे आत्मा भी गुणसङ्गात प्राप्त होता है । कहा भी है—

द्वन्द्वमोहनाय आदि कर्मोंके उद्घ उत्पन्न आदि अवस्थाओंके होने पर उत्पन्न हुए जिन परिणामोंसे गुण जो आप एवं जात है उन आपोंके स्वयम्भूत उसा गुणसङ्गाता कहा है ॥ १०४ ॥

अथ भाव अध्याय गणस्थान प्रकरणका कथन करनेके लिये आगवा सूत्र कहते हैं—

सामान्यसे गणस्थानका अपक्षा मिथ्यादाए जाय ॥ १०५ ॥

उक्तं— उद्घात अनुसार है । निर्देग होता है इस व्यापक अनन्त भाव इस ग्राहक कह । यना भी भाव वा काल ही हो जाता है इसलिये उसका सूत्रम प्रत्यक्ष

त मि उच्च जहमसदृश्य तच्चय होइ अथाग ।

समदरमभिग्राहिष अत्रमिग्राहिद नि त निदि ॥ १०७ ॥

इत्यानी द्वितीयगुणस्थाननिरूपणार्थं श्रूयमाह—

सासादनसम्माडट्टी ॥ १० ॥

आसादन मय्यस्त्यगिराधनय, उच्च आसादनन वतउ इति सामान्या विनाशित मय्यस्त्यनोऽप्राप्तमिध्यानवर्ममदयचनितपरिणामा मिध्या-त्राभिमुख सासादन इति श्रूयते । अथ स्यात् मिध्यादृष्टिग्य मिध्यास्त्यवर्मण उच्यमावान्, न मय्य-दृष्टि मय्य-स्तेरभावात्, न मय्यगिमिध्यादृष्टिम्पविषयस्तेरभावात् । न च चतुर्था दृष्टिमि

नहीं होना है उसीप्रकार उसे पदार्थ धर्म अच्छा मान्दम नहीं होना है ॥ १०६ ॥

जो मिध्याय कर्मके उद्भवसे तत्प्राप्तके विषयमें अधिदान उत्पन्न होता है अर्थात् विषयात अधिदान होता है उसको मिध्या-य कहते हैं । उनसे सन्निविन अभिगृह्यत आर अनभिगृह्यत इत्यप्रकार तीन भेद है ॥ १०७ ॥

अथ दूसरे गुणस्थानके कथन करनेके लिये गृह्य कहते हैं—

सामान्यसे सासादनसम्पददृष्टि ज्ञेय है ॥ १० ॥

सम्यक्त्वकी विराधनाके आसादन कहते हैं । जो इस आसादनम युक्त है उस सासादन कहते हैं । अनन्तानुबन्धी बिम्बा एवं कल्पके उद्भवसे विराधा सामान्यतः नष्ट हो गया है, किन्तु जो मिध्या-य कर्मके उद्भवसे उत्पन्न हुए मिध्यायक्य परित्यागको नहीं मान्ते हुआ है फिर भी मिध्या-य गुणस्थानके अभिमुख है उसे सासादन कहते हैं ।

दुर्था—सासादन गुणस्थानपाला आप मिध्यायक्यका उद्भव नहीं होना । मरदा दृष्टि नष्टा है समाप्तान दृष्टिका अभाव होनेसे सम्पददृष्टि भी नष्टा है तथा इन दानोका विषय करनेपाला सम्यगिमिध्या-यक्य दाबका अभाव होनेसे सम्पदग्राह्यताए भी नष्टा है । समद

सम्यग्गम्यगुणयदृष्ट्यालम्बनमनुव्यतिगिक्तमनुपलम्बान् । ननाऽमन एष गुणानि
न, विपरीताभिनिवेशतोऽमृष्टिमान् । नहि मिथ्यादृष्टिर्भवत्य नाम मामादनस्य
इति चेत्, सम्यग्दर्शनसारित्रप्रतिबन्धनलानुबन्धुषापात्रिविपरीताभिनिवेशस्य तत्र
सत्त्वाद्भवति मिथ्यादृष्टिरपि तु मिथ्यापरमात्म्यचनितविपरीताभिनिवेशमात्रान्न तत्र
मिथ्यादृष्टिव्यपन्नः, किन्तु मामादन इति व्यपदिश्यते । इमिति मिथ्यादृष्टिर्गिति

अतिरिक्त और कोई चीज़ दृष्टि है नहीं, क्योंकि, समीचीन, असमीचीन और उभयपक्ष
दृष्टिके आलम्बनभूत वस्तुके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु पाई नहीं जाती है । इसलिये मामादन
गुणस्थान अमररूप ही है । अर्थात् मामादन नामका कोई स्वतन्त्र गुणस्थान नहीं
मानना चाहिये ।

समाधान—ऐसा कहा है, क्योंकि मामादन गुणस्थानमें विपरीत अभिप्राय रहता
है, इसलिये उसे अमृष्टि ही समझना चाहिये ।

शुद्धा—यदि ऐसा है तो इसे मिथ्यादृष्टि ही कहना चाहिये, मामादन कहा देना
उचित नहीं है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्यग्दर्शन और स्वरूपावरण सारित्रका प्रतिबन्ध कर
नेवाली अनन्तानुबन्धी कथायके उदयसे उत्पन्न हुआ विपरीताभिनिवेश दूसरे गुणस्थानमें
पाया जाता है, इसलिये द्वितीय गुणस्थानयती जीव मिथ्यादृष्टि है । किन्तु मिथ्यात्वकर्मके
उदयसे उत्पन्न हुआ विपरीताभिनिवेश यहाँ नहीं पाया जाता है इसलिये उसे मिथ्यादृष्टि
नहीं कहते हैं, केवल मामादनमम्यदृष्टि कहते हैं ।

निशेधार्थ—विपरीताभिनिवेश दो प्रकारका होता है, अनन्तानुबन्धचनित और मिथ्या
त्यज्जनित । उनमेंसे दूसरे गुणस्थानमें अनन्तानुबन्धीजनित विपरीताभिनिवेश का पाया जाता
है, इसलिये इसे मिथ्यात्वगुणस्थानसे स्वतन्त्र गुणस्थान माना है ।

१ यदि त्ववस्थितदा सम्यग्गम्यगुणा यथैव दृष्टव्यम् । १६४ । शब्दा १-१० चमत्कार मय
प्राप्तिरेवामा, यथैवमयवस्थितम् आशङ्क्यते म्यात् । या वा म प्र १ १९

२ मनु सम्यग्दर्शनघातकस्यानुरागिनः कथं ज्ञानम् इत्यादि । १७-१८ न तस्य चरित्रप्राप्तं
पुत्रानामागमद्विधा पारमार्थिकस्यैव यत् कथं । ता तस्मात् सव्यवस्थितं च १७-१८ न तस्य चरित्रप्राप्तं
यथावत्प्रवृत्तत्वात् । यथावत्प्रवृत्तत्वात् । १७-१८ न तस्य चरित्रप्राप्तं
निरूपयति मामादनं च मन्वानां पारमार्थिकमात्रं यथैव । पारमार्थिक स्वभावः १७-१८ पारमार्थिकं न १७
नन्दर कथमनन्तानुबन्धवत्तस्मात्प्राप्तमित्यर्थः १७-१८ न तस्य चरित्रप्राप्तं
अनन्तानुबन्धवत्तस्य सम्यग्दर्शनविनाशमयत्वं तदुदयात्प्राप्तं १७-१८ न तस्य चरित्रप्राप्तं
सम्यक्स्वरूपविनाशमाशङ्कितमयत्वं मिथ्यादृष्टिप्राप्तम् १७-१८ न तस्य चरित्रप्राप्तं
ज्ञा, म प्र, टी १९

न व्यपदिश्यते चेन्न, अनन्तानुबन्धिना द्विष्यभावत्तत्प्रतिपादनफलत्वात् । न च दानमोहनीयस्योदयादुपशमात्क्षयात्क्षयोपगमाद्वा सामान्यपरिणाम प्राणिनामुपनायते यन्मिथ्यादृष्टि सम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टिरिति चोच्येत । यस्माच्च विपरीताभिनिवेशोऽभूदनन्तानुबन्धिनो, न तद्दर्शनमोहनीय तस्य चारित्र्यारणत्वात् । तस्योभयप्रतिषेधस्तदाभयव्यपदेशो न्याय्य इति चेन्न, इष्टत्वात् । एवमेव तथाऽनुपदेशोऽप्यपितनयापेक्ष । विपक्षितदर्शनमोहोपगमक्षयक्षयोपगममन्तरेणोत्पन्नत्वात्पारिणामिक सामान्यगुण ।

श्रीश्री—ऊपरके कथनानुसार अब यह मिथ्यादृष्टि है तो फिर उसे मिथ्यादृष्टि मन्त्रा क्यों नहीं ही गई है ?

समाधान—वेसा नहीं है, क्योंकि, सासादन गुणस्थानकी स्वतन्त्र कहनेसे अनन्तानुबन्धी प्रतीतिपूर्वी द्विष्यभावताका कथन मिथ्य हो जाता है ।

विशेषार्थ—सासादन गुणस्थानकी स्वतन्त्र माननेका फल जो अनन्तानुबन्धी है, द्विष्यभाषता बतलाई गई है, यह द्विष्यभाषता दो प्रकारसे हो सकती है । एक तो अनन्तानुबन्धी कथन सम्यक्त्व और चारित्र्य इन दोनोंकी प्रतिषेधक माना गई है, और यह उचित द्विष्यभाषता है । इसी कथनकी पुष्टि यहां पर सासादन गुणस्थानकी स्वतन्त्र मानकर भी गई है । दूसरे, अनन्तानुबन्धी जिसप्रकार सम्यक्त्वके विधानमें मिथ्यात्वप्रवृत्तिका काम करता है, उसप्रकार यह मिथ्यात्वके उत्पादमें मिथ्यात्वप्रवृत्तिका काम नहीं करती है । इसप्रकार द्विष्यभाषताकी निज करनेके लिये सासादन गुणस्थानकी स्वतन्त्र माना है ।

दर्शनमोहनीयके उद्भव उत्पन्न शय और शयोपगमसे जीवोंके सासादनरूप परिणाम तो उत्पन्न होता नहीं है जिससे कि सासादन गुणस्थानकी मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि कहा जाता । तथा जिस अनन्तानुबन्धीके उद्भवसे दूसरे गुणस्थानमें जो विपरीताभिनिवेश होता है, यह अनन्तानुबन्धी दर्शनमोहनीयका भेद न होकर चारित्र्यका आधारन करनेवाला होनेसे चारित्र्यमोहनीयका भेद है । इसलिये दूसरे गुणस्थानका मिथ्यादृष्टि न कहकर सासादनसम्यग्दृष्टि कहा है ।

श्रीश्री—अनन्तानुबन्धी सम्यक्त्व और चारित्र्य इन दोनोंका प्रतिषेधक माना जा रहा है । अतएव (सम्यक्त्वचारित्र्यमोहनाय) मन्त्रा देना व्यापसंग है ?

समाधान—यह भाग्येव टाक नहीं क्योंकि, यह तो हमें इस ही है अर्थात् अनन्तानुबन्धीके सम्यक्त्व और चारित्र्य इन दोनोंका प्रतिषेधक माना जा रहा है । फिर भी परमार्थमें मुख्य नयकी अपेक्षा इसतरहका उपरी नहीं दिया है ।

सासादन गुणस्थान विधीन कर्मके अर्थात् दर्शनमोहनीयके उद्भव उत्पन्न शय और शयोपगमके बिना उत्पन्न होता है इसलिये यह परिणामिक है । अब सासादनरूप

पदिश्यते चेन्न, अनन्तानुबन्धिना द्विष्यमाणप्रतिपादनफलमात्रम् । न च दर्शन
योग्योदयादुपशमात्क्षयवोपशमाद्वा सामान्यपरिणाम प्राणिनामुपजायत येन
गृहादि सम्यग्गृहादि सम्यग्मिध्यादादित्तिनि चोत्प्रेत । यस्माच्च विपरिणामिनि
अभूदनन्तानुबन्धिनो, न तद्दर्शनमोहनीय तस्य चारित्र्यावरणमात्रम् । तस्योपपत्तिरपि
दुर्भयव्यपदेशो न्याय्य इति चेन्न, इष्टमात्रम् । यत्र तथाऽनुपपत्तेः स्यादपि न योपपन्नम् ।
तेतद्दर्शनमोहोदयोपशमक्षयवोपशममन्तरणोत्पन्नत्वाप्राणिनामिह सामान्यगुणः ।

श्रीशङ्करः—ऊपरके कथनानुसार अब यह सिद्धादादि दाईं मो निग उन सिद्धादादि
क्यों नहीं हो गई है !

समाधान—वेसा नहीं है, क्योंकि, साक्षात् गुणस्थानको व्यक्त कहना असंभव
भी प्रदानियोंकी द्विष्यभाषणाका कथन निरुद्ध हो जाता है ।

निर्णयार्थ—साक्षात् गुणस्थानको व्यक्त माननेका कारण आ अनन्तानुबन्धीको
प्रभाषता बतलाइ गई है, यह द्विष्यभाषणाको प्रचारमे हो सकती है । जब मो असंभव
भी कथाय सम्यक्च और आदिह इन दोनोंको प्रतिबंधक माना गई है, और यही उपपन्न
प्रभाषता है । इसी कथनको पुष्टि यहा पर साक्षात् गुणस्थानको व्यक्त मानकर है ।
हमारे, अनन्तानुबन्धी जितप्रकार सम्यक्चय विधानमें सिद्धात्प्रवृत्तिका काम करना
जितप्रकार यह सिद्धात्प्रवृत्ति उत्पन्नमें सिद्धात्प्रवृत्ति का काम नहीं करती है । इस प्रकार
प्रभाषताको निरुद्ध करनेके लिये साक्षात् गुणस्थानको व्यक्त माना है ।

दर्शनमोहनीयके उदय, उपसम शय और शयोपशमसे आर्षोच साक्षात्प्रवृत्ति पर
उत्पन्न होता नहीं है जिसमें कि साक्षात् गुणस्थानको सिद्धादादि, गृहादादि अवस्था
मिध्यादादि कहा जाता । तथा जित अनन्तानुबन्धीके उदयम दूसरे गुणस्थानमें आ
दीताभिनिवेश होता है, यह अनन्तानुबन्धी साक्षात्प्रवृत्ति पर और दावत आदि
रण करनेवाला होनेमें चारित्र्यमोहनीयका भेद है । इसलिये दूसरे गुणस्थानको सिद्धादादि
हवा साक्षात्प्रवृत्ति कहा है ।

श्रीशङ्करः—अनन्तानुबन्धी सम्यक्च और आदिह इन दोनोंका प्रतिबंधक दावत दाव
प्रकार (सम्यक्चचारित्र्यमोहनाय) कहा देना व्यापकता है ।

समाधान—यह आरोप ठीक नहीं क्योंकि यह मो हमें इष्ट ही है अर्थात् अनन्तानुबन्धी
को सम्यक्च और आदिह इन दोनोंका प्रतिबंधक माना दावत दाव । फिर भी प्रवृत्तिमें दूसरे
की भेदता इसपरदाव उपपन्न नहीं होता है ।

साक्षात् गुणस्थान विधीयत करने के लिये साक्षात्प्रवृत्ति पर और दावत दाव
शयोपशमके विना उत्पन्न होता है इसलिये यह चारित्र्यमोहक है । और अनन्तानुबन्धी

सम्यग्गमम्यगुभयदृष्ट्याऽन्यनुपलम्भान् । ततोऽयम् एव गुणानि
न, विपरीताभिनिवेशतोऽमदृष्टिमान् । तर्हि मिथ्यात्वमिदं तस्य नाम मामात्मन्यस्य
इति चेन्न, सम्यग्दर्शनचारित्र्यविवरणनानुसंग्युत्पात्तविपरीताभिनिवेशस्य न
सत्त्वादिति मिथ्यादृष्टिरपि तु मिथ्यात्वं सत्यनित्यविपरीताभिनिवेशामात्मानं न तस्य
मिथ्यादृष्टिव्यपदेशः, किन्तु मामादन इति व्यपदिश्यते । किमिति मिथ्यात्वमिति

अतिरिक्त और कोई चीज दृष्टि में नहीं, क्योंकि, सर्वमान्य, अस्मत्पर्यन्त और उसका
दृष्टिके आलम्बनभूत वस्तुके अनिरिक्त दूसरी कोई वस्तु यदि नहीं जाना है । इसलिये मामादन
गुणस्थान अस्तत्स्वरूप ही है । अर्थात् मामादन नामका कोई स्वतन्त्र गुणस्थान नहीं
मानना चाहिये ?

समाधान—ऐसा कहा है, क्योंकि मामादन गुणस्थानमें विपरीत अभिप्राय रहता
है, इसलिये उसे अमदृष्टि ही समझना चाहिये ।

शुद्धा—यदि ऐसा है तो इसे मिथ्यादृष्टि ही कहना चाहिये, मामादन सदा देना
उचित नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्यग्दर्शन और स्वरूपाचरण चारित्र्यका प्रतिबन्ध कर
नेवाली अनन्तानुबन्धी कथापत्रे उदयसे उत्पन्न हुआ विपरीताभिनिवेश दूसरे गुणस्थानमें
पाया जाता है, इसलिये द्वितीय गुणस्थानमें ही तब मिथ्यात्व है । किन्तु मिथ्यात्वकर्मक
उदयसे उत्पन्न हुआ विपरीताभिनिवेश कहा नहीं पाया जाता है, इसलिये उसे मिथ्यादृष्टि
नहीं कहते हैं, केवल सासादनसम्यग्दृष्टि कहते हैं ।

निशेपार्थ—विपरीताभिनिवेश दो प्रकारका होता है, अनन्तानुबन्धीजनित और मिथ्या
त्यजनित । उनमेंसे दूसरे गुणस्थानमें अनन्तानुबन्धीजनित विपरीताभिनिवेश ही पाया जाता
है, इसलिये इसे मिथ्यात्वगुणस्थानसे स्वतन्त्र गुणस्थान माना है ।

१ यदि तच्च विरक्तं सम्यग्दर्शनात् यच्च वस्तुवत्त्वं विद्यायां रसना नृगमयनमनसं मादि
ध्यातिरेतामा उपनमयत्किरन्ता आभासा स्यात् । मा वा म प्र ११

२ मन सम्यग्दर्शनपातकम्यानवानुश्रितं कव द्वाभवा शब्दात् । न च न तस्य चारित्र्यगतं न
समानमागमिष्य चारित्र्यमा उपयय दत्तं वा । ता तस्मात् सम्यग्दर्शनान्नाना इति वा । न तत्तत्त्वं नृप मादि
परावृत्तिरूपसत्तात्त्विकत्वात् वि मिथ्यात्वकमादयः। अथ सत्यं सम्यग्दर्शनान्नानासमवायं । न तत्त्वं वि शब्दं
विरपभतया मामात्मन व भवनात् पारलौकिकमात्र उपनमू । पारलौकिक स्वभाव तस्मात्तत्र पारलौकिक न सत्यं ।
नन्वव कथमनतान्न यत्तस्माद्वारावितगम्यत इत्ययं इति च न । मा वा शब्दपातकमनसं । न
अनन्तानुबन्धुत्वरस्य सम्यग्दर्शनान्नानात्वमन नद्वैत्यात्मात्मात्मा इति उपनमयगमात् । न च नृना नृनानात्वमन
सम्यक्त्वान्नानात्वमभ्यवृत्तिगमत् वि मिथ्यात्वकमादयः । स यत् नृमाय यत्तत्तत्तत्त्वं नृमात्मा नृमात्मा ।
अ, म प्र, टी ११

न च्यपदिश्यते चेन्न, अनन्तानुबन्धिना द्विभवावत्प्रतिपादनफलत्वात् । न च दर्शनमोहनीयस्यादयादुपशमात्तस्योपशमाद्वा सासादनपरिणाम प्राणिनामुपनायते येन मिथ्याराष्टि सम्यगराष्टि सम्यग्मिथ्याराष्टिरिति चोपेत । यस्माच्च विपरीताभिनिषेगोऽभूदनन्तानुबन्धिनो, न तद्दर्शनमोहनीय तस्य चारित्रावरणत्वात् । तस्योभयप्रतिषेधपरादुभयच्यपदेशो न्याय्य इति चेन्न, इष्टत्वात् । अथ तथाऽनुपदेशोऽप्यर्पितनयापेक्ष । विरहितदर्शनमाहोदयोपशमस्योपशममन्तरेणोत्पद्यतात्पारिणामिक सासादनगुण ।

श्रीका—ऊपरके बधनानुसार जब यह मिथ्याराष्टि ही है तो फिर उसे मिथ्याराष्टि मन्ना क्यों नहीं का गई है ?

समाधान—वेना नहीं है, क्योंकि, सासादन गुणस्थानकी स्वतन्त्र कहनेसे अनन्तानुबन्धी प्रवृत्तियोंका द्विभवावत्ताका बधन निवृत्त हो जाता है ।

विशेषार्थ—सासादन गुणस्थानकी स्वतन्त्र माननेका पर जो अनन्तानुबन्धीका द्विभवावत्ता कहलाई गई है, यह द्विभवावत्ता दो प्रकारसे हो सकती है । एक तो अनन्तानुबन्धी बन्धन सम्यक्त्व और चारित्र्य इन दोनोंकी प्रतिबन्धक माना गई है, और यही उसकी द्विभवावत्ता है । इसी बधनकी पुष्टि यहां पर सासादन गुणस्थानकी स्वतन्त्र मानकर की गई है । दूसरे, अनन्तानुबन्धी जिनप्रकार सम्यक्त्वके विधातमें मिथ्यात्वप्रवृत्तिका काम करता है, उसप्रकार यह मिथ्यात्वके उत्पादमें मिथ्यात्वप्रवृत्तिका काम नहीं करती है । इसप्रकारकी द्विभवावत्ताकी निवृत्ति करनेके लिये सासादन गुणस्थानकी स्वतन्त्र माना है ।

द्विभवावत्ताके उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशमसे जीवोंके सासादनरूप परिणाम नो उत्पन्न होता नहीं है जिससे कि सासादन गुणस्थानकी मिथ्याराष्टि सम्यगराष्टि भयवा सम्यग्मिथ्याराष्टि कहा जाता । तथा जिस अनन्तानुबन्धीके उदयसे दूसरे गुणस्थानमें जो विपरीताभिनिषेग होता है, यह अनन्तानुबन्धी दर्शनमोहनीयका भेद न होकर चारित्र्यका आवरण करनेवाला होनेसे चारित्र्यमोहनीयका भेद है । इसलिये दूसरे गुणस्थानकी मिथ्याराष्टि न कहकर सासादनसम्यगराष्टि कहा है ।

श्रीका—अनन्तानुबन्धी सम्यक्त्व और चारित्र्य इन दोनोंका प्रतिबन्धक होनेसे उसे उपवर्णक (सम्यक्त्वचारित्र्यमोहनाय) मन्ना देना वापसगत है ?

समाधान—यह भाग्य ठाक नहीं, क्योंकि, यह तो हमें इष्ट ही है, अर्थात् अनन्तानुबन्धीके सम्यक्त्व और चारित्र्य इन दोनोंका प्रतिबन्धक माना ही है । फिर भी परमागममें मुख्य नयकी अपेक्षा इसतरहका उपदेश नहीं दिया है ।

सासादन गुणस्थान विपक्षित कामके अर्थात् दर्शनमोहनीयके उदय उपशम, क्षय और क्षयोपशमके बिना उत्पन्न होता है, इसलिये यह पारिणामिक है । और सासादनासदित

न व्यपदिश्यते चेन्न, अनन्तानुबन्धिना द्विगभावरूपप्रतिपादनफलत्वात् । न च दर्शनमोहनीयमोदयादुपशमात्संशयोपगमाद्वा सासादनपरिणाम प्राणिनामुपजायते येन मिथ्यादृष्टि सम्यग्दृष्टि सम्पन्निध्यादृष्टिरिति चोच्येत । यस्माच्च विपरीताभिनिवेशोऽभूदनन्तानुबन्धिनो, न तद्दर्शनमोहनीय तस्य चारित्रावरणत्वात् । तस्योभयप्रतिबन्धश्चादुभयव्यपदेशो न्याय्य इति चेन्न, इष्टत्वात् । अत्र तथाऽनुपदेशोऽव्यर्पितनवापेक्ष । विरक्षितदर्शनमोहोदयोपशमसंशयोपगममन्तरेणोत्पन्नत्वात्प्राणिनामिदं सासादनगुण ।

श्रीका—ऊपरके बधनानुसार जब यह मिथ्यादृष्टि ही है तो फिर उसे मिथ्यादृष्टि कहा क्यों नहीं ही गई है ?

समाधान—वेसा नहीं है, क्योंकि, सासादन गुणस्थानको स्वतन्त्र कहनेसे अनन्तानुबन्ध प्रदानोंकी द्विगभापताका बधन मिट्ट हो जाता है ।

विशेषार्थ—सासादन गुणस्थानको स्वतन्त्र माननेका फल जो अनन्तानुबन्धीकी द्विगभापता बतलाई गई है, यह द्विगभापता ही प्रचारसे हो सकती है । एक तो अनन्तानुबन्धी कथाय सम्यक्त्व और चारित्र इन दोनोंकी प्रतिबन्धक मानी गई है, और यही उसका द्विगभापता है । इसी बधनकी फुटि यही पर सासादन गुणस्थानको स्वतन्त्र मानकर कहा गई है । दूसरे, अनन्तानुबन्धी जिसप्रकार सम्यक्त्वके विषयमें मिथ्यात्वप्रवृत्तिका काम करता है, उसप्रकार यह मिथ्यात्वके उत्पादमें मिथ्यात्वप्रवृत्तिका काम नहीं करती है । इसप्रकारकी द्विगभापताको मिट्ट करनेके लिये सासादन गुणस्थानको स्वतन्त्र माना है ।

दर्शनमोहनायके उदय, उपशम, शय और शयोपशमसे जीवोंके सासादनरूप परिणाम नो उत्पन्न होता नहीं है जिससे कि सासादन गुणस्थानकी मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि अथवा सम्पन्निध्यादृष्टि कहा जाता । तथा जिस अनन्तानुबन्धीके उदयसे दूसरे गुणस्थानमें जो विपरीताभिनिवेश होता है, यह अनन्तानुबन्धी दर्शनमोहनीयका भेद न होकर चारित्रका आवरण करनेवाला होनेसे चारित्रमोहनीयका भेद है । इसलिये दूसरे गुणस्थानकी मिथ्यादृष्टि न कहकर सासादनसम्यग्दृष्टि कहा है ।

श्रीका—अनन्तानुबन्ध सम्यक्त्व और चारित्र इन दोनोंका प्रतिबन्धक होनेसे उसे उभयरूप (सम्यक्त्वचारित्रमोहनाय) कहा देना व्यावसगत है ?

समाधान—यह आरोप ठाक नहीं, क्योंकि, यह तो हमें पट ही है, अर्थात् अनन्तानुबन्धीके सम्यक्त्व और चारित्र इन दोनोंका प्रतिबन्धक माना ही है । फिर भी परमाणुमें मुख्यत्वकी अपेक्षा इसतरहका उपदेश नहीं दिया है ।

सासादन गुणस्थान विरक्षित कामके अर्थात् दर्शनमोहनीयके उदय उपशम, शय और शयोपशमके बिना उत्पन्न होता है, इसलिये यह पाणिनामिक है । और सासादनादित

सामान्यवर्ती सम्यग्दृष्टि सामादनसम्यग्दृष्टि । विपरीताभिनि-
रूप सम्यग्दृष्टिरामिति चेत्, भूतपूर्वगत्या तस्य तद्व्यपत्त्यापनगिति ।
सम्मत स्थग-यस्य मित्रागे मित्र भूमि समभिनुत् ।
णामिय सम्मतो मो मासा नामो मुपय-तो ॥ १०८ ॥
व्यामि ररचिगुणप्रतिपादनार्थं प्रमाद—

सम्मामिच्छादृष्टी ॥ ११ ॥

दृष्टि. श्रद्धा रचि प्रत्यय इति यावत् । समीचीना च मिथ्या च द-
सम्यग्मिथ्यादृष्टि । अत्र व्याप्तेरस्मिन् चान्न नामन समीचीनासमीचीन-
समसो विरोधात् । न प्रमेणापि सम्यग्मि-यादृष्टिगुणयोग्यान्तर्भागाति ।
सम्यग्दृष्टि होनेके कारण उसे सामादनसम्यग्दृष्टि कहते हैं ।

शुद्धा—सामादन गुणस्थान विपरीत अभिप्रायसे दृष्टि है, इसलिये उसके सम्य-
पना कैसे बन सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पहले यह सम्यग्दृष्टि ग, इसलिये भूतपूर्व व्यापका अ-
उमके सम्यग्दृष्टि मझा बन जाना है । कहा भी है—

सम्यग्दर्शनरूपी रक्षागिरिके शिखरसे गिरकर जो जीव मिथ्यास्वरूपी भूमिके अभिमु-
द्वे, अतएव जिसका सम्यग्दर्शन नष्ट हो चुका है परन्तु मिथ्यात्वानकी प्राप्ति नहीं हुई है, उ-
सामन या सामादनगुणस्थानवर्ती समप्रज्ञा चाहिये ॥ १०८ ॥

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके प्रतिपादन करनेके लिये मूल कहते हैं—
सामान्यसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव है ॥

दृष्टि, श्रद्धा, रचि और प्रत्यय ये पर्यायवाची नाम हैं । जिस जातके समाधान और
मिथ्या दोनों प्रकारका दृष्टि होती है उसको सम्यग्मिथ्यादृष्टि कहते हैं ।

शुद्धा—एक जीवमें एकसाथ सम्यक् भाग मिथ्यारूपदृष्टि सम्भव नहीं है, क्योंकि इन
दोनों दृष्टियोंका एक जीवमें एकसाथ रहनेमें विरोध आता है । यदि कहा जाय कि य दोनों
दृष्टिया प्रथमे एक जीवमें रहना हैं तो उनका सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि नामक स्वतन्त्र

१ गा जी २०

२ छान्दोग्यसंहितासंस्कृत-भाष्यविशेष-अथ सदनकाश्व-पानात् वि यावन्मा नाय इत् छात्रात्ता
पिवा क्वाति उद्धमप-दमविगुद चति । नव तयाता पुत्रानां सभ्य वनाव-उद्ध पुत्र दान पुत्र सभ्य वना
रवाधविगद्वे जिनमन्त्रउद्धमद्वेन सवति तन मन्त्रा मन्त्रानिगा-गिन्त्रस्थानवतमन्त्रकाले मन्त्रान् वन
का (सम्मामिच्छादिदृष्ट्याह)

कथं मिथ्यात्वः सम्यग्मिथ्यात्वगुण प्रविपन्नमानस्य तत्तद्व्यति । तथा, मिथ्यात्व-
कर्मणः सर्वपापनिवर्द्धनानामुत्पत्त्यन्यागस्यैव न तावत्तत्तद्व्यतिगामात्म्यमिथ्यात्व-
कर्मणः सर्वपापनिवर्द्धनोत्पत्त्यन्यथा इति सम्यग्मिथ्यात्वगुण क्षयोपशमि । यतो
सम्यग्मिथ्यात्वादयेन आदयिक इति किमिति न न्यपदिश्यत इति चेन्न, मिथ्या-
त्वादयान्त्रियोः सम्यक्त्वस्य निरन्वयप्रतिपादनानुपलम्भान् । सम्यग्मिथ्यात्वनिरन्वयप्रतिपादना-
सम्यग्मिथ्यात्वस्य कथं सर्वपापनिवर्द्धनमिति चेन्न, सम्यग्मिथ्यात्वः साध्यप्रतिविज्ञानमप-
त्तस्य तत्त्वोपपन्नान् । मिथ्यात्वक्षयोपशमादित्यन्तानुपपत्तिनामपि सर्वपापनिवर्द्धनस्य
पदमाज्ञातमिति सम्यग्मिथ्यात्वं किमिति नोच्यत इति चेन्न, तस्य चाग्रिमप्रतिपत्ति-

समाधान—तीसरे गुणस्थाने साध्योपशमिक भाव है ।

श्लोका—मिथ्यात्वोऽपि गुणस्थाने सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानका प्राप्त दानेया जीव-
साध्योपशमिक भाव के सम्यक्त्व है ?

समाधान—यह इस प्रकार है, कि वर्तमान समय में मिथ्यात्वकर्मके सर्वपापी स्वर्ग-
वा उदयाभासी क्षय होनेसे, सत्तामं ब्रह्मेया उगी मिथ्यात्व कर्मके सर्वपापी स्वर्ग-
उदयाभासी क्षय उपशम होनेसे अतः सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके सर्वपापी स्वर्ग-
सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान प्राप्त होता है, इसलिये यह साध्योपशमिक है ।

श्लोका—तीसरे गुणस्थान में सम्यग्मिथ्यात्व प्रवृत्तिके उदय होनेसे यह आदयिक भाव
कथा नहीं कहा है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मिथ्यात्वप्रवृत्तिके उदयसे अतःप्रकार सम्यक्त्वका निरन्वय
मात्र होता है, अतःप्रकार सम्यग्मिथ्यात्वप्रवृत्तिके उदयसे सम्यक्त्वका निरन्वय मात्र नहीं
पाया जाता है, इसलिये तीसरे गुणस्थान में आदयिक भाव न ब्रह्मकर साध्योपशमिकभाव
कहा है ।

श्लोका—सम्यग्मिथ्यात्वका उदय सम्यग्मिथ्यात्व निरन्वय विनाश तो करता नहीं है,
निर उत सर्वपापी कथा कहा ?

समाधान—यही शेष ही नहीं, क्योंकि, यह सम्यग्मिथ्यात्व पूर्णताका प्रतिपत्ति
करता है, इस अर्थसे सम्यग्मिथ्यात्वका सर्वपापी कहा है ।

श्लोका—अतःप्रकार मिथ्यात्वके साध्योपशमसे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानकी उत्पत्ति
बतलाई है अतःप्रकार यह भगवन्तानुपपत्ति कर्मके सर्वपापी स्वर्ग-
मात्र कथा नहीं कहा ?

विदुषस्य अहंकारमज्ञानमथा सम्यक्त्वं आत्मादमज्ञानादया मिथ्यात्वमुपपन्नमित्यभेदात्तत्वात्
सम्यग्मिथ्यात्वमिति वदन्त्येवम् । या ती म १, टी २२

२ अति १ दिवा १ एति पाठ ।

त्वात् । य एतन्तानुबन्धिष्योपशमादुपचित् प्रतिज्ञानत तत्र सामादनगुण औदायिकः
स्यात्, न चैतन्मनस्युपगमात् । अथवा, सम्यक्स्वरूपमणो देशघातिस्पर्धरसानामुदयक्षयेण
तेषामेव सतामुदयाभारलक्षणोपशमेन च सम्यग्मिध्यागस्वरूपेण सर्वघातिस्पर्धरोदयेन च
सम्यग्मिध्यागगुण उच्यते इति क्षायोपशमिक । सम्यग्मिध्यागस्य क्षायोपशमिकत्वं
मनुष्यते चानजनपुत्रपादनार्थम् । वस्तुनस्तु सम्यग्मिध्यागस्वरूपमणो निगन्वयेनाप्तागम
पदार्थैरिपपरिहृतन प्रत्यममर्थस्योदयात्मदसद्विषयश्रद्धोपपन्न इति क्षायोपशमिक
सम्यग्मिध्यागगुण । अन्यधोपगमसम्यग्प्रवृत्तौ सम्यग्मिध्यागगुण प्रतिपत्ते सति
सम्यग्मिध्यागस्य क्षायोपगमिरत्यमनुपपन्न तत्र सम्यक्स्वरूपमिध्यागज्ञानानुबन्धिना
मुदयधायामारात् । तत्रोदयाभारलक्षण उपगमोऽस्तीति चेन्न, तस्यापगमिरत्यमनुपपन्नत्वात् ।

ममाधान—नहीं, क्योंकि, अनन्तानुबन्धी कथाय चारित्रिका प्रतिबन्ध करती है, इस
लिये वहाँ उसके क्षयोपशमसे नृतीय गुणस्थान नहीं कहा गया है ।

जो आचार्य अनन्तानुबन्धी कर्मके क्षयोपशमसे तीसरे गुणस्थानकी उत्पत्ति मानते हैं,
उनका मतसे सासादन गुणस्थानको आदयिक मानना पड़ेगा । पर ऐसा नहीं है, क्योंकि, दूसरे
गुणस्थानकी आदयिक नहीं माना गया है ।

अथवा सम्यक्प्रवृत्तिकर्मके देशघाती स्पर्धकोंका उदयक्षय होनेसे, सत्तामं स्थित उन्हीं
देशघाता स्पर्धकोंका उदयाभावरक्षण उपशम होनेसे और सम्यग्मिध्याग्य कर्मके सर्वघाती
स्पर्धकोंके उदय होनेसे सम्यग्मिध्याग्य गुणस्थान उत्पन्न होता है, इसलिये वह क्षायोपशमिक
है । वहाँ इसलिये जो सम्यग्मिध्याग्य गुणस्थानकी क्षायोपशमिक कहा है वह केवल सिद्धान्त
के पाठका प्रारम्भ करनेवालोंके परिज्ञान करानेके लिये ही कहा है । वास्तवमें तो सम्यग्मि
ध्याग्य कर्म निरन्तररूपसे आपन आगम और पदार्थ विषयक श्रद्धाके माता करनेके प्रति
असमर्थ है, किन्तु उसके उदयसे सन्-समीचीन और असन्-प्रसमीचीन पदार्थोंको युगपद्
विषय करनेवाली भडा उत्पन्न होती है, इसलिये सम्यग्मिध्याग्य गुणस्थान क्षायोपशमिक
कहा जाता है । यदि इन गुणस्थानमें सम्यग्मिध्याग्य प्रवृत्तिके उदयसे सन् और असन्
पदार्थोंको विषय करनेवाली मिथ्य रविरूप क्षयोपशमता न मानी जाये तो उपशमसम्यग्प्रवृत्तिके
सम्यग्मिध्याग्य गुणस्थानकी प्राप्ति होने पर उस सम्यग्मिध्याग्य गुणस्थानमें क्षयोपशमपता
नहीं बन सकती है, क्योंकि, उपगम सम्यक्प्रवृत्तिसे नृतीय गुणस्थानमें आये हुए जीवके ऐसी
अवस्थामें सम्यक्प्रवृत्ति मिध्याग्य और अनन्तानुबन्धी इन तानोंका उदयाभावी क्षय नहीं
पाया जाता है ।

शुद्धा—उपशम सम्यक्प्रवृत्तिसे आये हुए जीवके नृतीय गुणस्थानमें सम्यक्प्रवृत्ति,
मिध्याग्य और अनन्तानुबन्धी इन तानोंका उदयाभावरूप उपगम तो पाया जाता है ?

ममाधान—नहीं क्योंकि इसलिये तो तीसरे गुणस्थानमें आपशमिक भाव
मानना पड़ेगा ।

हेट्टिल्लाण सयल गुणद्वानाणममनदत्त परूवेत्ति । उवरि अमजमभाय किण्ण परूवेदि ति
उत्ते ण पम्भदि, उवरि सच्चरथ सनमासत्तम-सत्तम विमेषणोत्तमादो वि । उत्त च—

मम्माइ^१ जीया उत्तइ परयण ॥ सरहदि ।

सरहदि 'सत्तमा' अज्ञानमाणो गृह णियोगा^२ ॥ ११० ॥

णो इदिणु विरिओ णो जीये पारे तसे चारि ।

चो सरहदि जिणुत्त सम्माइइ अरिणे सो ॥ १११ ॥

एद मम्माइइ वयण उत्तमि सच्च गुणद्वानेसु अणुत्तइ गगा-गई पराहो प्य ।
देमरिइ-गुणद्वान पम्भणइमुत्तर-सुत्तमाइ—

सजदासजदा ॥ १३ ॥

संपताथ ते अमपताथ सयतामपता । यदि सयत, नासावमपत । अथामपत ,

लिये यह अपनसे मीचेके भी समस्त गुणस्थानोंके असयतपनेका निरूपण करता है ।

यह असंयत यह ऊपर अर्थात् पाचवें आदि गुणस्थानोंमें असयमभावका प्ररूपण क्यों
नहीं करता है इसप्रश्नकी शकाके होने पर आश्चर्य उत्तर देता है कि पाचवें आदि गुणस्थानोंमें
यह असयत यह असयमभावका प्ररूपण नहीं करता है क्योंकि, ऊपर सब जगह सयमासयम
और सयम विशेषण ही पाया जाता है । कहा भी है—

सम्यग्गदि जाय जिने द्र अणुपानके द्वारा उपदिष्ट प्रयत्नका तो भ्रमण करता ही
है, किंतु जिसा तत्वको नहीं जानता हुआ गृहके उपदेशसे विपरीत अर्थका भी भ्रमण कर
लेता है ॥ ११० ॥

जो इन्द्रियोंके शिष्योंसे तथा प्रस और स्थावर जीवोंकी हिंसासे विरक्त नहीं है,
किंतु जिनेन्द्रियद्वारा कथित प्रयत्नका भ्रमण करता है यह अविरतसम्यग्गदि है ॥ १११ ॥

इस सूत्रमें जो सम्यग्गदि पद है यह गगा नदीके प्रवाहके समान ऊपरके समस्त
गुणस्थानोंमें अनुपृक्षितो प्राप्त होता है । अर्थात् पाचवें आदि समस्त गुणस्थानोंमें सम्यग्दर्शन
पाया जाता है ।

अब देवद्विरति गुणस्थानके प्ररूपण करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

सामान्यसे सयतामपत जाय होने है ॥ १३ ॥

जो संयत होने हुए भी असयत होते हैं उन्हें सयतामपत कहते हैं ।

द्वारा—जो संयत होता है यह असयत नहीं हो सकता है, और जो असंयत

नामा मयत इति विरोधान्नाय गुणो षट् इति चेत्तु गुणाना परस्परपरिहारात्प्रति-
विरोध इष्टत्वात्, अन्यथा तेषा स्वरूपहानिप्रसङ्गात् । न गुणाना समानस्यानङ्गयोगो विग-
ममपत्ति, सम्प्रवेष्टा न सम्प्रमि तन्मनस्तन्निवन्तनान् । यदर्थत्रियासि तदन्तु ।
या च नैरान्ते एतानेसाभ्या प्राप्तनिष्पितानस्याभ्यामर्थत्रियाविरोधात् । न चेतन्या
चेतन्याभ्यामनेरान्तस्तयोर्गुणसामानात् । महद्भूतो हि गुणा, न चानयो मभूतिगमि
अमति विरन्वर्थनुपलम्भात् । भवति च विरोध समाननिवन्तननेमति । न चात्र विग-
मयमायमयोरैरङ्ग यतिनोममभ्यामनिवन्तनान् । अत्रापिद्विष्ट पचमु गुणेषु न
गुणसाधित्य मयमायमगुण ममुत्पन्न इति चेत्तथाप्यपशमिर्ज्ञेय गुण अप्रत्याख्याना

होता है यह संयत नहीं हो सकता है, क्योंकि, स्वयमभाव और असममभावका परस्पर
विरोध है । इसलिये यह गुणज्ञान नहीं बनता है ।

समाधान—विरोध दो प्रकारका है, परस्परपरिहारात्मक विरोध और महानस्या
लक्षण विरोध । इनमेंसे एक द्रव्यके अनन्त गुणोंमें परस्परपरिहारात्मक विरोध इष्ट ही है,
क्योंकि, यदि गुणोंका एक दूसरेका परिहार करके अस्तित्व नहीं माना जाये तो उनके
स्वरूपकी हानिका प्रसंग आता है । परन्तु इनने मात्रमें गुणोंमें महानस्यालक्षण विरोध
सम्भव नहीं है । यदि नाना गुणोंका परस्पर रहना ही विरोधस्वरूप मान लिया जाये तो
वस्तुका अस्तित्व ही नहीं बन सकता है, क्योंकि, वस्तुका सङ्काय अनेकान्त निमित्तक ही
होता है । जो अर्थत्रिया करनेमें समर्थ है वह वस्तु है । परन्तु यह अर्थत्रिया एकान्तपरममें नहीं
भन सकती है, क्योंकि, अर्थत्रियाको यदि एक रूप माना जाये तो पुन पुन उसी अर्थत्रि-
याकी प्राप्ति होनेसे, और यदि अनेकरूप माना जाये तो अनस्य दोष होनेसे एकान्तपरममें
अर्थत्रियाके होनेमें विरोध आता है ।

ऊपरके वचनसे चैतन्य और अचेतन्यके साथ भी अनेकान्त दोष नहीं आता है,
क्योंकि, चैतन्य और अचेतन्य ये दोनों गुण नहीं हैं । जो सहजानी होते हैं उन्हें गुण कहते
हैं । परन्तु ये दोनों सहजानी नहीं हैं क्योंकि वधरूप अस्वभावके नहीं रहने पर चैतन्य और
अचेतन्य ये दोनों एकसाथ नहीं पथे जाते हैं । दूसरे विद्वद्दो धर्मोंकी उत्पत्तिका कारण
यदि समान अर्थात् एक मान लिया जाये तो विरोध आता है, परन्तु स्वयमभाव और अन-
यमभाव इन दोनोंको एक आत्मामें स्वीकार कर लेने पर भी कोई विरोध नहीं आता है ।
क्योंकि, उन दोनोंकी उत्पत्तिके कारण भिन्न भिन्न हैं । स्वयमभावकी उत्पत्तिका कारण प्रस-
हिंसामे विरतिभाव है और असममभावकी उत्पत्तिका कारण स्थायरहित्ताने अविरतिभाव
है । इसलिये सयतासयत नामका पाचवा गुणस्थान बन जाता है ।

शुद्धा—भौतिक आदि पाच भावोंमेंसे किस भावके आश्रयसे स्वयमायम भाव पदा
होता है ?

समाधान—स्वयमायम भाव क्षयोपशमिक है, क्योंकि, अप्रत्याख्यानात्तर्णीय

परणीयस्य सर्वपातिम्पद्भवानामुदयनयात् मतां चोपशमात् प्रत्याग्यानात्परणीयोदया
दप्रत्याग्यानोत्पत्ते । सयमायममपाराधिदृतसम्यग्गतानि क्रियन्तीति चेत्त्रापिप्रज्ञापोष-
शमिर्ज्ञापशमिस्तानि श्रीयपि भरन्ति पर्यायेण नाप्यन्तरणाप्रत्याग्यानस्योत्पत्तिरोधान् ।
सम्यक्स्वरूपन्नेशापि दक्षयत्यो हृदयन्त इति चेत्, निर्गतमुक्तिः कान्तानिदृशमिषयपिपा
मस्याप्रत्याग्यानानुपपत्ते । उक्तं च—

जो तस दहाउ विरभो ओभिरभो तह य थार दहाओ ।

एक समग्रहि जीतो विरपाविओ निजेऊर्द ॥ ११२ ॥

सयतानामादिगुणस्थाननिरूपणार्थमुत्तरग्रन्थमाह—

पमत्तसजदा ॥ १४ ॥

प्रमत्तं यत्ता, प्रमत्ता, स सम्यग् यता' विरता सयता । प्रमत्ताश्च ते सयताश्च

कथायके धर्तमान कालिक सर्वपाती रूपद्वयके उद्याभावा सय होनेसे, आर आगामी कालमें
उद्यममें आने योग्य उद्वाके मध्यस्थारूप उपशम होनेसे तथा प्रत्याग्यात्परणीय कथा
यके उद्यमसे सयमासयमरूप अग्रवाक्यान चारित्र उत्पन्न होता है ।

श्रुति—सयमासयमरूप देशचारित्रकी धारासे सबंध रखनेवाले कितने सम्यग्
वृत्त होते हैं ?

समाधान—ज्ञातिक, ज्ञायोग्यतामिक आर आपराधिक ये तीनोंमेंसे कोई एक
सम्यग्दर्शन विकसित होता है । क्योंकि, उनमेंसे किसी एकके बिना अप्रत्याख्यान चारित्रका
प्रादुर्भाव ही नहीं हो सकता है ।

श्रुति—सम्यग्दर्शनके बिना भी देशसयमा देखनेमें आने है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, जो जीव मोक्षकी आकांक्षामें रहित है और जिनका
विषय विषासा दूर नहीं हुई है, उनके अप्रत्याख्यानसयमकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है ।
कदा भा है—

आ जाय जिनेन्द्रियमें अद्वितीय भ्रष्टाके रहना हुआ एक ही समयमें प्रसन्नार्थका
हिंसासे विरत आर स्वाध्याय जीवोंकी हिंसामें अविरत होता है उसको विरताविरत
बहुते हैं ॥ ११३ ॥

अब सयताके प्रथम गुणस्थानके निरूपण करनेके लिय आगता सूत्र कहत है—

सामान्यसे प्रमत्तसयत जीव होते हैं ॥ १४ ॥

प्रश्नसे मन्त्र जाणोंको प्रमत्त कहते हैं और अच्छी तरहसे विरत या स्वयमको प्राप्त
जाणोंको सयत कहते हैं । जो प्रमत्त होते हुए भी संयत होते हैं उन्हें प्रमत्तसंयत कहते हैं ।

प्रमत्तमयता* । यदि प्रमत्ता न सयता स्वप्न्यामनेदनात् । अथ मयता न प्रमत्ता मयमस्य प्रमादपरिहाररूपत्वादिति नेप टाप , सयमो नाम हिमान्तमेयान्नक्षपरिश्रेष्ठ्या पिरति गुप्तिममित्यनुगमित , नामा प्रमादेन विनाश्यते तत्र तस्मान्मलोत्पत्ते । मयमस्य मलोत्पात्त एवात्र प्रमादो विरहितो न तद्विनाशक इति वृत्तोऽवर्णीयत इति चेत् मयमाविनाशन्ययानुपपत्ते । न हि मन्दतम* प्रमाद क्षणायी मयमविनाशकोऽमिति निगन्धर्यनुपलब्धे । प्रमत्तचनमन्तरीपकृपाच्छेपातीनमर्गुणेषु प्रमादास्तित्व सूचयति । पञ्चसु गुणेषु क गुणयाश्रित्याथ प्रमत्तमयत गुण उत्पन्ननेत्मयमापेक्षया आयोपशमिन् । कथम् ? प्रत्यानयानावरणसर्वातिस्पर्धसोदयत्तयात्तेपामेव मतामुन्धामात्रलोपशमात्

शरी— यदि छट्ये गुणस्थानयती जीव प्रमत्त है तो सयत नहीं हो सकते ह, क्योंकि, प्रमत्त जाँघोंको अपने स्वरूपका सनेदन नहीं हो सकता ह । यदि ये सयत है तो प्रमत्त नहीं हो सकते ह, क्योंकि, सयमभाव प्रमादके परिहारस्वरूप होता है ।

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, हिंसा, अमत्य, स्तेय, अग्रह और परिग्रह इन पाच पापोंमें विरतिभावको सयम कहते हैं जो कि तीन गुति और पाच सामि नियोंमें अनुरोधित हैं । यह सयम वास्तवमें प्रमादसे भेद नहीं किया जा सकता है, क्योंकि, सयममें प्रमादसे केवल मलकी ही उत्पत्ति होती ह ।

शरी— छट्ये गुणस्थानमें सयममें मल उत्पन्न करनेवाला ही प्रमाद विरहित है, सयमका नाश करनेवाला प्रमाद धिक्कित नहीं है, यह बात कैसे निश्चय की जाय ?

समाधान— छट्ये गुणस्थानमें प्रमादके रहते हुए सयमका सङ्गाय अन्यथा बन नहीं सकता है, इसलिये निश्चय होता है कि यहा पर मलको उत्पन्न करनेवाला प्रमाद हा अभाव है । दूसरे छट्ये गुणस्थानमें होनेवाला स्वल्पकालवर्ती मन्दतम प्रमाद सयमका नाश भा नहीं कर सकता है, क्योंकि, सकलसयमका उक्तरूपमें प्रतिबंध करनेवाले प्रत्यानयानावरणके अभावमें सयमका नाश नहीं पाया जाता ।

यहा पर प्रमत्त शब्द अनर्दीपक है, इसलिये यह छट्ये गुणस्थानमें पहलके संपूर्ण गुणस्थानोंमें प्रमादके अन्विषको स्थित करता है ।

शरी— पात्र भाषोंमें किम भावका आश्रय लेकर यह प्रयत्नमयत गुणस्थान उत्पन्न होता है ?

समाधान— सयमकी प्रेरणा यह गुणस्थान आयोपशमिक है ।

शरी— प्रमत्तमयत गुणस्थान आयागमिक किम प्रकार है ?

समाधान— क्योंकि वर्तमानमें प्रत्यानयानावरणक सर्वघाती स्पर्धवाके उद्वाप हानिमें धीर धागामी कर्ममें उद्दम आनयात् सत्ताम स्थित उद्वाप उद्दम न मानेक उद्दमम तथा स्वल्पक कयापक उद्दम प्रत्यानयान (सयम) उत्पन्न होता है, इसलिये

अन्तर्लनादप्यप्यप्रत्याग्यानाममुपपत्ते । मज्जलनोदयात्मयमो भरतीत्यौदयिक व्यप-
 त्ताप्य किं न स्यादिति चेन्न तत्र सयमस्यात्पक्षेभावात् । अतः व्याप्ययत इति
 प्रत्याग्यानापरणमरपानिस्पर्द्धकोदयध्वसमुत्पन्नमयमलोत्पादने तस्य व्यापार ।
 सयमनिर्वाधनमभ्यस्त्यापेक्षया क्षापिकभायोपगामिरूपशमिकगुणानिवन्धन । सम्यक्त्व-
 न्नरेणापि सयमोपलब्धनार्थं सम्यक्त्वानुवर्तननेति चेन्न, आप्ताममपदार्थेष्वनुत्पन्नश्रद्धस्य
 प्रेमृष्टालीढचेतसः सयमानुपपत्तः । द्रव्यमयमस्य नाप्रोपादानमिति कुतोऽनगम्यत
 ति चेन्मम्यद्वाया अद्याप्यन मयत इति व्युत्पातितमद्वगन्तः । उक्तं च—

सायोपशमिक ई ।

शुद्धा—सज्जलन कयायके उदयसे सयम होता है, इसलिये उसे आश्विक नामसे
 क्यों कहा जाता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि, संजलन कयायके उदयसे सयमकी उत्पत्ति नहीं
 होता है ।

गङ्गा—तो सज्जलनका व्यापार कहा पर होता है ?

समाधान—प्रत्याग्यानापरण कयायके सर्वघाता स्पर्द्धकोंक उद्याभाथी क्षयसे (आर
 द्यस्थान्य उपगमने) उत्पन्न हुए सयममें मलके उत्पन्न करनेमें सज्जलनका व्यापार
 होता है ।

सयमके कारणभूत सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा तो यह गुणस्थान क्षापिक, क्षायोपशमिक
 आर आप्तामिक भावनिमित्तक है ।

शुद्धा—यहां पर सयमदर्शनपद की जो अनुवृत्ति बतलाई है उससे क्या यह तात्पर्य
 बतलता है कि सयमदर्शनके बिना भी सयमकी उपलब्धि होती है ?

समाधान—वेत्ता नहीं है, क्योंकि भात आगम आर पदार्थोंमें जिस जीवके अद्वा
 त्पन्न नहीं हुई, तथा जिसका विसर्त तर्ज मूर्त्तामोंसे व्याप्त है उसके सयमकी उत्पत्ति नहीं
 हो सकती है ।

शुद्धा—यहां पर द्रव्यमयमका ग्रहण कहा किया है, यह कैसे जाना जाय ?

समाधान—क्योंकि, मलप्रकार जानकर आर अज्ञान कर जो यमसादित है उसे सयत
 कहत है । सयत गन्दका हमप्रकार व्युत्पत्ति करनेसे यह जाना जाता है कि यहां पर द्र-
 व्यमका ग्रहण नहीं किया है । कहा भी है—

१ विमिश्रितस सज्जलन सयम स्यान्मदवद्व्याप्यसज्जलनस्य द्रव्य सज्जलनस्य सज्जलनस्य
 विमिश्रितस्य द्रव्यात्तस्य सज्जलनस्य सज्जलनस्य सज्जलनस्य सज्जलनस्य विमिश्रितस्य
 सज्जलनस्य सज्जलनस्य सज्जलनस्य सज्जलनस्य सज्जलनस्य सज्जलनस्य सज्जलनस्य
 सज्जलनस्य सज्जलनस्य सज्जलनस्य सज्जलनस्य सज्जलनस्य सज्जलनस्य सज्जलनस्य

यत्तावत् पमां जो उम पमत्तसयने होइ ।

सयउ-गुण सीउ वञ्चिओ मन्त्रइ चित्तअपणो ॥ ११३ ॥

मिहह तहा वमाथा इदिय गिण तेहे पणवा य ।

चउ-चउ पणगेमेग होति पमां य पणगरमा ॥ ११४ ॥

भाषोपशमिक्रमयमेपु शुद्धमयमंगलभितगुणस्थाननिरूपणार्थमुत्तमउमा—

अप्पमत्तसंजदा ॥ १५ ॥

प्रमत्तसयता पूर्वाक्तलभणा, न प्रमत्तसयता अप्रमत्तसयता पञ्चश्रमा^१
रहितसयता इति यावत् । शेषशेषभयतानामन्तर्गतान्तर्मात्राच्छेषमयतगुणस्थानानामपि
स्यादिति चेन्न, सयतानामुपगृह्यन्प्रतिपद्यमाननिशेषगानिशिष्टानामन्तर्गतामिह

जो व्यक्त अर्थात् स्वस्वमेव और अव्यक्त अर्थात् प्रवृत्तहानिपूर्वके ज्ञानद्वारा जानने
योग्य प्रमादमें पास करता है, जो सम्पद उ, सत्तादि सपूर्ण गुणोंमें और मर्तोंके रक्षण करनेमें
समर्थ ऐसे शीलोंसे युक्त है, जो (देशसयतकी अपेक्षा) महाप्रती है और नित्यका आचरण
प्रमादमिश्रित है, अथवा विप्रल सारगको कटने है, इसलिये जिसका आचरण सारगके समान
शयलित अर्थात् अनेक प्रकारका है, अथवा, विममें प्रमादको उपाय करनेवाला विमका
आचरण है उसे प्रमत्तसयत कहते हैं ॥ ११३ ॥

श्रीकथा, भक्तकथा, राष्ट्रकथा और अरतिपालकथा ये चार विकृष्टाष्ट क्रोध, मान,
माया और लोभ ये चार कषाय, स्पर्शन, रसना, घ्राण, बभ्रु और श्रोत्र ये पांच इन्द्रिया, निद्रा
और प्रणय इसप्रकार प्रमाद पञ्चद प्रकारका होता है ॥ ११४ ॥

अथ क्षायोपशमिक्रमयमेपु शुद्ध सयमसे उपलभित गुणस्थानके निरूपण करनेके
लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

सामान्यसे अप्रमत्तसयत जीव होते हैं ॥ १ ॥

प्रमत्तसयतोंका स्वरूप पहले कह आये है, जिनका सयम प्रमाद सहित नहीं होता
है उहें अप्रमत्तसयत कहते हैं, अर्थात् सयत होने हुए जिन जीवोंके पञ्चद प्रकारका प्रमाद
नहीं पाया जाता है, उहें अप्रमत्तसयत समझना चाहिये ।

शुद्धा—बाकीके सपूर्ण सयतोंका इसी अप्रमत्तसयत गुणस्थानमें अन्तर्भाव हो जाता
है, इसलिये शेष सयतगुणस्थानोंका अभाव हो जायगा ?

समाधान—जैसा नहीं है, क्योंकि, जो आगे खलकर प्राप्त होनेवाले अनूयकर्णोंदि

१ गं जा ३३ विष प्रमादमिह लताति विष विषउ आचरण यस्यामा विषमाचरण । प्रवर्त
विषउ माग मन्त्र वशान्त आचरण यस्यामा विषउआचरण । अथवा विष लताति विषउ, विषउ आचरण
दत्तर्मा विषउआचरण । जी ३ गं

२ गं जी ३४

सत नमः शिवायुवागदरे गुणगणतया

सतत्पराध्यायान्तरं गुणानाम् ।
 तत्तद्वर्णनमप्यत इति चन, उपरिष्ठात्तनमप्यत गुणानाम् ।
 नुपपत्तितत्तद्वर्णनम् । एषोऽपि गुण ध्यापयामि प्रत्य
 कर्मण सर्वधातिस्पर्द्धात्पक्षयात्तमम् मता पूरयद्वयमात्र
 प्रत्याग्यानात्तत्तत् । मयमनिरन्धनमप्यत रापक्षया तस्यैकप्रतिष्ठा
 क्षयोपशमापन्नमजगुणानिरन्धनम् । उक्तं च—
 जगत्समम् पमात्रे

अथुरमममा अक्षरमा साधु गि ।

अपुन्यकरण पाविट्ट सुद्धि-सज्जयेत् ॥ ११७

[illegible]

तमाधान - नहीं क्योकि यदि यह क...

समाधान - नहीं, क्योंकि यदि यह न माना जाय तो आगत भवन गुणवत्ता
निरूपण बन नहीं सकता, है इन्ट्रिन्सिक यह मान्य पड़ता है कि यहाँ पर भूवैज्ञानिक
परीक्षणोंसे रहित केवल अस्मत्त भवन गुण धारका ही ग्रहण किया गया है।
ऐत आगामी कागज उद्घरणे आनखार उन्नीसवाँ पन्ना पर भूवैज्ञानिक
परीक्षणोंसे रहित केवल अस्मत्त भवन गुण धारका ही ग्रहण किया गया है।

[illegible]

[Faint handwritten notes at the bottom of the page, mostly illegible.]

अथ आशि क्षीरशालादि लव उपायान् विनयेः
 प्रथम गुणधामनं त्रिकपाल कर्मणः । १५ भागै रूचि चर्तुः
 मृदुकलत्राय च ७ भागै रूचि चर्तुः ८ भागै रूचि चर्तुः

स्यादिति चेन्न, अगति प्रतिबन्धनि मरणे नियमेन चारित्रमोहवपणोपशमकारिणा तदुन्मुखानामुपचारमात्रमुपलम्ब्यात् । क्षणोपशमननिबन्धनत्वाद् भिन्नपरिणामाना कथमेकत्वमिति चेन्न, क्षणोपशमकरपरिणामानामपूर्यत्वं प्रति साम्यात्तदेकत्वोपपत्त । पञ्चसु गुणेषु कोऽप्रतनगुणश्चेत्क्षणस्य धारिणः, उपशमकरोपशमिनि । कर्मज्ञ क्षणोपशमाम्यामभावे कथं तयोस्तत्र सत्त्वमिति चेन्नैष दोष, तयोस्तत्र सत्त्वमोपचार निबन्धनत्वात् । सम्यक्त्वापेक्षया तु क्षणस्य धारिणो भाव दर्शनमोहनीयमवविधाप क्षणकध्रेण्यारोहणानुपपत्ते । उपशमकरोपशमिनि धारिणो वा भाव, दर्शनमोहोपशम

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रतिबन्धक मरणके अभावमें नियमसे चारित्रमोहका उपशम करनेवाले तथा चारित्रमोहका क्षय करनेवाले अन्तर उपशमन और क्षयके समुत्पन्न हुए और उपचारसे क्षणक या उपशमक सत्ताको प्राप्त होनेवाले जीवोंके आठवें गुणस्थानमें भी क्षणक या उपशमक सत्ता बन जाती है ।

निशेपार्थ—क्षणकध्रेणीमें तो मरण होता ही नहीं है, इसलिये यहाँ प्रतिबन्धक मरणका सर्वथा अभाव होनेसे क्षणकध्रेणीके आठवें गुणस्थानवाला भाग वञ्चित नियमसे चारित्रमोहनीयका क्षय करनेवाला है । अतः क्षणकध्रेणीके आठवें गुणस्थानवर्ती जीवके क्षय सत्ता बन जाती है । तथा उपशमध्रेणीस्य आठवें गुणस्थानके पहले भागमें तो मरण नहीं होता है । परन्तु द्वितीयादिक भागमें मरण समग्र है, इसलिये यदि येमे जीवके द्वितीयादि भागमें मरण न हो तो यह भी नियमसे चारित्रमोहनीयका उपशम करता है । अतः हमें भी उपशमक सत्ता बन जाती है ।

पुरा—पाप प्रकारके मायोंमेंसे इस गुणस्थानमें कौनसा भाग पाया जाता है ?

समाधान—क्षणकके क्षाणिक और उपशमकके औपशमिक भाग पाया जाता है ।

पुरा—इस गुणस्थानमें न तो कर्मोंका क्षय ही होता है और न उपशम ही होता है येसी अवस्थामें यहाँ पर क्षाणिक या औपशमिक भागका सत्ताप कैसे हो सकता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, इस गुणस्थानमें क्षाणिक और औपशमिक भागका सत्ताप उपशमसे प्राप्त होता है ।

सम्बन्धनार्थ—अवेद्या तो क्षणकके क्षाणिकभाव होता है, क्योंकि, ज्ञानसे दर्शन मोहनीयका क्षय नहीं किया है यह क्षणक ध्रेणीपर नहीं खट सकता है । और उपशमकके औपशमिक या औपशमिक भाव होता है, क्योंकि, ज्ञानसे दर्शनमोहनीयका उपशम भवना क्षण

१ उपशमकरोपशमिनि धारिणो भाव दर्शनमोहनीयमवविधाप क्षणकध्रेण्यारोहणानुपपत्ते । उपशमकरोपशमिनि धारिणो वा भाव, दर्शनमोहोपशम

अथाभ्या विनोपगम प्रणारोहणानुपलम्भान् । उक्तं च—

मिग्य-समय द्विदि दु जीवेदि ण हाइ स उदा मरेमा ।

बरणेहे एक-समय-दिदि ॥ रेमो विमरेमो य ॥ ११६ ॥

एदिदि गुगडाणे विमरेम-समय-दिदि उं गदि ।

पुत्रमरवा जग्हा हेंति अजु ॥ इ परिणमो ॥ ११७ ॥

तरिम परिणम-मि य जावा इ मिगदि गमि-निमिदि ।

महेश्वर पुत्रकरणे मन्त्रगुणमगुग्मो मनेया ॥ ११८ ॥

इदानीं सादरपायेषु चरमगुणव्यानप्रतिपादनार्थमाह—

अणियादि नादर-सापराइय पविट्ट सुद्धि मजदेमु अन्ति उपममा

खवा ॥ १७ ॥

समानममयासंस्थितनीरपरिणामाना निर्भेन कृति निरुति । अथा निरुति-

महीं विद्या हे, यह उपगमश्रेणीपर महीं खट खजता हे । बटा भी हे—

अपूर्वकरण गुणस्थानमें भिन्न समयवर्ती जीवोंके परिणामोंके अवकाश नहीं है । अद्वितीयता नहीं पाई जाती है, किन्तु एक-समयवर्ती जीवोंके परिणामोंकी अपेक्षा अद्वितीयता अधिक होती पाई जाती है ॥ ११६ ॥

इस गुणस्थानमें विमर्श अर्थात् भिन्न भिन्न समयमें रहनचाल जीव आ पूर्यमें क्या भी नहीं प्राप्त हुए थे वेसे अपूर्व परिणामोंके ही धारण करन है (इत्यन्तिव इत्यन्तरात् नवा नाम अपपकरण हे) ॥ ११७ ॥

पृथक् अपूर्व परिणामोंके धारण करनेवाले जीव आदनीय बचर्वा इव प्रदान हे । धारण अथवा उपगमन करनेमें उद्यत होने हे ऐसा अज्ञानकारी अन्धकारसे स्वयं पाइन जिन उपपन्न बटा है ॥ ११८ ॥

अथ सादर कथायामां गुणस्थानोंमें अन्तिम गुणस्थानक प्रविशान करनक १२६ गुण कहते हैं—

अनिर्वाण-सादर-सापराइय पविट्ट सुद्धि स्वर्गोंमें उपगमक भी होने हे अथ अपवर्ग भी होने हे ॥ ११७ ॥

समान-समयवर्ती जीवोंके परिणामोंकी अद्वितीयता कृति-निरुति कहन है । अद्वि-

१. १. १७

१. १. १७

१. १. १७

मिगदि स उदा मरेमा ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ १२० ॥

व्यावृत्ति, न विग्रह निवृत्तियथा तेऽनिवृत्तयः । अपूर्वकगणाः ताः नानि मन्यन्ति
तेषामप्यय उपदेशे प्राप्तेर्नानि चेत्, तेषां नियमामात्रान् । ममानममयन्ति
परिणामानामिति कथमभिगम्यन् इति चेत्, 'अपूर्वकग' इत्यनुवर्तनान्तरं द्वितीयादि
ममयन्तिर्नानि सह परिणामापेक्षा भेदमिदं । माम्परायाः स्यात्, तासां स्यूता,
पादराशे ते माम्परायाश्च तासां माम्परायाः । अनिवृत्तयश्च ते तादृग्माम्परायाश्च अनिवृत्ति
पादरमाम्परायाः । तेषु प्रविष्टा शुद्धियथा मयनानां तेऽनिवृत्तिनाम्परायाश्च प्रविष्ट
शुद्धिमयता । तेषु सन्ति उपशमका क्षपराश्च । ते सन्त्येव गुणोऽनिवृत्तिमिति ।
यान्त परिणामास्तान् एव गुणां किञ्च मन्यन्तीति चेत्, तथा व्यपहारानुपपत्तिना

निवृत्तिशब्दा अर्थः 'व्यावृत्ति' भी है । अनन्तर जिन परिणामोंकी निवृत्ति अर्थात् 'व्यावृत्ति' नहीं
होती है उन्हें ही अनिवृत्ति कहते हैं ।

शरी — अपूर्वकरण गुणस्थानमें भी तो चितने ही परिणाम इत्यप्रकारके होते हैं, अनन्तर
उन परिणामोंकी भी अनिवृत्ति सत्ता प्राप्त होनी चाहिये ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, उनके निवृत्तिरहित होनेका कोई नियम नहीं है ।

शरी — इस गुणस्थानमें जो जीवोंके परिणामोंकी भेदरहित वृत्ति चलती है, वह
समान समयवर्ती जीवोंके परिणामोंकी ही विवक्षित है यह कैसे जाना ?

समाधान — 'अपूर्वकरण' पदकी अनुवृत्तिसे ही यह सिद्ध होता है, कि इस गुण
स्थानमें प्रथमादि समयवर्ती जीवोंका द्वितीयादि समयवर्ती जीवोंके साथ परिणामोंका
अपेक्षा भेद है । (अनन्तर इससे यह तात्पर्य निकल आता है कि 'अनिवृत्ति' पदका सत्यत्व
एकसमयवर्ती परिणामोंके साथ ही है ।)

सापरायशब्दा अर्थः कथय दे, और पादर स्यूतको कहते हैं, इत्यन्ति स्यूत
कथार्योंकी पादर-सापराय कहते हैं । और अनिवृत्तिरूप पादर सापरायक
अनिवृत्तिपादरसापराय कहते हैं । उन अनिवृत्तिपादरसापरायरूप परिणामोंमें जिन
समयवर्ती विशुद्धि प्रविष्ट हो गई है उन्हें अनिवृत्तिपादरसापरायप्रविष्टशुद्धिमयत्व कहते
हैं । ऐसे समयवर्ती उपशमक और क्षपक दोनों प्रकारके जीव होते हैं । और उन सब समयवर्ती
मित्रकर एक अनिवृत्तिकरण गुणस्थान होता है ।

शरी — चितने परिणाम होते हैं, उनमें ही गुणस्थान क्यों नहीं होते ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, चितने परिणाम होते हैं, उनमें ही गुणस्थान यदि मान

१ गुणस्थान, बुद्धिमानक प्राप्तिमाना गुणस्थानों का स्थान मया यम बुद्धिमानक प्राप्तिमाना गुणस्थान
अतिवृत्ति । मनकान्तक गुणस्थानका स्थान मया यम बुद्धिमानक प्राप्तिमाना गुणस्थान
समयवर्ती पति समानमनवि मयाय कथार्य । X X तत्र नानुवर्तन पादर समानमनवि मयाय
का बुद्धिमानकानि मयाय । उद्यमकानि निमित्तकानि बुद्धिमानकानि मयाय । यमि रा ना (मया
यमि बुद्धिमानकानि मयाय)

द्रव्याद्यनयसमाश्रयणात् । वादग्रहणमन्तर्गीषत्वाद् यताशेषगुणव्यानानि वाद-
रूपायाणीति प्रनापनार्थम्, 'सति समये व्यभिचारे च विशेषमर्थरुद्धवति' इति
न्यायात् । सयतग्रहणमन्तर्धरमिति चेन्नैष दोषः, सयमस्य पञ्चम्यपि गुणेषु सम्भर एव न
व्यभिचार इत्यस्यान्यस्याधिगमोपायस्यामारवस्तदुक्ते । आत्र सयतग्रहणमनुवर्ते,
ततस्तद्वसीयत इति चेत्तमस्तु जडननानुग्रहार्थमिति । यद्येवमुपशान्तरूपायादिष्वपि
सयतग्रहणमस्तिरिति चेन्न, सप्रपायस्तेन सयतानाममपतै साधर्म्यमस्तीति मन्दधियामथ
संशयोत्पत्तिरुपपन्नान् । नोपशान्तरूपायादिषु मन्दधियामप्यारेतेत्युच्यते । धीणोपशान्त
रूपाया सयता, भावतोऽभयतैस्मयताना साधर्म्यामारान् । काश्चित्कृत्योपशमयति,

जाय तो व्यथहार ही नहीं बल सकता है, इसलिये द्रव्याधिक नयकी अपेक्षा नियत-सख्याया-
ह्य गुणस्थान कहे गये हैं ।

मूर्ध्नि जो 'वाद' पदका ग्रहण किया है, यह अन्तर्ज्ञापक होनेसे पूर्णतः समस्त
गुणस्थान वादरूपाय है इस बातका ज्ञान करानेके लिये ग्रहण किया है ऐसा समझना
चाहिये, क्योंकि, जहां पर विशेषण समय हो अर्थात् लागू पड़ता हो और न देने पर व्यभि-
चार आता हो, ऐसी जगह दिया गया विशेषण सार्थक होता है, ऐसा न्याय है ।

शुद्धा — इस मूर्ध्नि सयत पदका ग्रहण करना व्यर्थ है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, सयम पावा ही गुणस्थानोंमें लैभ्य है,
इसमें कोई व्यभिचार दोष नहीं आता है, इसप्रकार जाननेका दूसरा कोई उपाय नहीं होनेत
यहां सयत पदका ग्रहण किया है ।

श्रीरा — 'ममलसजडा' इस मूर्ध्नि ग्रहण किये गये सयत पदकी यहा अनुवृत्ति
होती है, और उसमें ही उक्त अधिका ज्ञान भी हो जाता है, इसलिये विरुद्धे इस पदका ग्रहण
करना व्यर्थ है ?

समाधान — यदि ऐसा है तो सयत पदका यहा पुन प्रयोग मन्दबुद्धि जनोंके
अनुग्रहके लिये समझना चाहिये ।

श्रीरा — यदि ऐसा है तो उपशान्तरूपाय आदि गुणस्थानोंमें भी सयत पदका
ग्रहण करना चाहिये ?

समाधान — नही क्योंकि ऐसा गुणस्थानतक सभी जाय कथायमदिन होनेके
कारण कथायकी अपेक्षा सयताकी असयतोंके साथ सहजता पाई जाती है इसलिये भविष्य
दशमें गुणस्थानतक मन्दबुद्धि जनोंका स्थाय उत्पन्न होनेकी सम्भावना है । अतः सयत
नियामणके लिये सयत विशेषण देना आवश्यक है । किंतु ऊपरके उपपन्नकथाय मन्द गुण
स्थानोंमें मन्दबुद्धि जनोंकी भी जाय उत्पन्न नहीं हो सकती है क्योंकि, यहां पर सयत शान
कथाय अधया उपपन्नकथायका होना है इसलिये आशंकी अपेक्षा भी सयतोंकी सम्भावना
सहजता नही पाई जाती है । अतएव यहां पर सयत विशेषण देना आवश्यक नहीं है ।

इदानीं कुशीलेषु साध्यात्यगुणप्रतिपादनाभ्युत्तरस्यमाह —

सुहृम सापराड्य पविट्ट सुद्धि संजदेसु अति उवसमा स्या ॥१८॥

सुहृमश्चासौ सापराड्यश्च सुहृमसापराड्य । न प्रविष्टा पुद्धियथा भयताना
ते सुहृमसापराड्यप्रविष्टपुद्धियवता । तेषु सन्ति उवसमस्य क्षणश्च । सव त एव
गुण सुहृमसापराड्य प्रत्यभेदात् । अपूर्व इत्यनुसर्तने अनिरतिरिति । न नन्माभ्या
सुहृमसापराड्यो विशेषयितव्य । अन्यथातीतगुणेभ्यस्तन्माधिक्यवानुवसत । प्रकृती

तथा ये आत्मन निम्न ध्यानरूप अक्षिप्त निम्नाभ्येते कर्मयवको भयम वरनेराले होते
है ॥ ११०, १०० ॥

अथ पुनः जातिके मुनियोंने मन्त्रिम गुणस्थानके प्रतिपादन करनेके लिये आगवा
कर कहने है—

सुहृम सापराड्य प्रविष्ट पुद्धि स्वयतोमे उपगमक भित् क्षण क्षण है ॥ १८ ॥

सुहृम सापराड्य प्रविष्ट पुद्धि स्वयतः उपगमक भित् क्षण क्षण है । उसमें जिन स्वयतः पुद्धिने प्रवृत्ति विषय
है उद्धे सुहृमसापराड्य प्रविष्ट पुद्धि स्वयतः उपगमक भित् क्षण क्षण है । उसमें उपगमक भित् क्षण क्षण है ।
भित् क्षण क्षण है । अथ पुनः जातिके मुनियोंने मन्त्रिम गुणस्थानके प्रतिपादन करनेके लिये आगवा
कर कहने है—

विशेषार्थ — यदि सापराड्य गुणस्थानम अपूर्व विषयकी अनुकूलि मही दागी न, उसमें

प्रतिपक्ष अपूर्व अपूर्व परिणामोंकी सिद्धि नहीं हो सकती। और अनिवार्य विचारणीय अनुकूलि
नहीं मानने पर एव समस्यगी जागीके परिणामोंमें समानता और सम्यक् इत्येव और इव
गमनक योग्यता सिद्ध नहीं दागी। इसलिये पूरा गुणस्थानोंमें हममें स्वयतः अपूर्व अपूर्व ही
पात्रताम प्राप्त है इस बातकी सिद्धि करनेके लिये अपूर्व और अनिवार्य इव न, अपूर्व अपूर्व ही
का ज्ञान प्राप्त है। इसप्रकार हम गुणस्थानम अपूर्वतः माननापराध और हम सम्यक्साधनमपू
। पत्रता । मरु ही जागी ८ ।

१ १ १

४ १ १

४ १ १

४

४

४

४

काश्चिदुपशमयति क्षययिष्यति क्षपिताश्चेति क्षायिरुगुण । काश्चिदुपशमयति उपशमयिष्यति
उपशमिताश्चेत्यापशमिरुगुण* । सम्यग्दर्शनापेक्षया क्षयक क्षायिरुगुण, उपशमक
औपशमिरुगुणः क्षायिरुगुणो वा द्वाभ्यामपि सम्यक्त्वाभ्यामुपशमश्रेण्यारोहणमस्मिन् ।
सयत्तग्रहणस्य पर्यन्तताफल्यमुपदेष्टव्यम् । उक्तं च —

पुत्रापुत्रस्य रुदस्य अणुमाणादो अणन गुण हीणे ।

छोहाणुमिह त्रियओ हद सुटुम सापरओ सो' ॥ १२१ ॥

साम्प्रतमुपशमश्रेण्यन्तगुणप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह—

उपसंत-कसाय वीयराय-छटुमत्या ॥ १९ ॥

उपशान्त* कषायो येषां त उपशान्तरूपाया । वीर्यो विनष्टो रागो यथा ते
रीतरागा । छत्र ज्ञानद्वयारणे, तत्र निष्ठन्तीति छत्रम्या । रीतरागाश्च ते छत्रम्याश्च
वीतरागछत्रम्या । एतेन सगमछत्रम्यनिराकृतिरुपशान्त-या । उपशान्तरूपायाश्च ते रीत

इमं गुणस्थानमर्जयन्ति नही प्रतिधियां। क्षय करता है, भागे क्षय करेगा और पूर्वमें
क्षय कर चुका, इसलिये इसमें क्षायिकभाव है। तथा विनती ही प्रतिधियां। उपशम करता है,
भागो उपशम करेगा और पक्षे उपशम कर चुका, इसलिये इसमें औपशमिक भाव है।
सम्यग्दर्शनही अवेग्य क्षयक धेन्याया आधिकभावमहित है। और उपशमधेन्याया
औपशमिक तथा क्षायिक इन दोनों भावोंमें युक्त है, क्योंकि, दोनों ही सम्यक्त्वोंसे उपशम
धेन्याया यथा सम्यग्वै । इस मूलमें प्रदण किये गये सयत्त पक्षी पूर्ववत् भयान्
अतिवृत्तिवत् गुणस्थानमें यत्तार्हि गरी मयत्त पक्षी सत्त्वताके समान सत्त्वता सम्य
त्वेना यादिय । कहा भी है—

पूर्ववत्तक और अपूर्ववत्तकके अनुभागमें अनन्तगुणे हीन अनुभागपक्षे गुण
लोभमें जो स्थित है उसे गुणमापणय गुणस्थानवर्त, जिय समझना चाहिये ॥ १० ॥

अब उपशमधेन्याके अन्तिम गुणस्थानक प्रतिपादनार्थे भागक सूत्र कहते हैं—

सामान्यमें उपशान्त-कषाय यतिगम उपशम्य जिय होले है ॥ १९ ॥

विनश कषाय उपशान्त हो गई है उहें उपशान्तकषाय कहत है । विनश राग नष्ट
हो गया है उहें यतिगम कहत है । छत्र ज्ञानारण और दर्शनारणके कहत है, इनमें प्र
गते है उहें छत्रम्य कहत है । जो यतिगम होत हुए भी छत्रम्य होत है उहें यतिगमउपशम
कहत है । इसमें भाव हुए यतिगम उपशमन गुण स्थान नष्ट गरागउपशम
विगमस्य समझन चाहिये । जो उपशान्तकषाय होत हुए भी यतिगमउपशम होत है उहें

अथान्नस्योपपत्तिरिति गम्यते । अनेनोपपत्तिरिति गम्यते ।
अथोपपत्तिरिति गम्यते । अथोपपत्तिरिति गम्यते ।
अथोपपत्तिरिति गम्यते । अथोपपत्तिरिति गम्यते ।
अथोपपत्तिरिति गम्यते । अथोपपत्तिरिति गम्यते ।

अथोपपत्तिरिति गम्यते । अथोपपत्तिरिति गम्यते ।

अथोपपत्तिरिति गम्यते । अथोपपत्तिरिति गम्यते ।

निर्गन्तव्यगुणप्रतिपादनाभिमतस्यमाह —

शीलं कसाय वीर्याय रुद्रुमत्ता ॥ २० ॥

शीलं यथायथा न शीलं यथायथा । शीलं यथायथा न शीलं यथायथा ।

अथान्नस्योपपत्तिरिति गम्यते । अथान्नस्योपपत्तिरिति गम्यते ।

अथान्नस्योपपत्तिरिति गम्यते । अथान्नस्योपपत्तिरिति गम्यते ।

अथान्नस्योपपत्तिरिति गम्यते । अथान्नस्योपपत्तिरिति गम्यते ।

अथान्नस्योपपत्तिरिति गम्यते । अथान्नस्योपपत्तिरिति गम्यते ।

अथान्नस्योपपत्तिरिति गम्यते । अथान्नस्योपपत्तिरिति गम्यते ।

अथान्नस्योपपत्तिरिति गम्यते । अथान्नस्योपपत्तिरिति गम्यते ।

प्रीतिगगा । उग्रनि प्रारणे तिष्ठन्तीति छद्मव्या । श्रीणरूपायप्रीतिगगाश्च ते छद्मव्याश्च
श्रीणरूपायप्रीतिगगच्छद्मव्या । छद्मव्याग्रहणमन्तरीषरूपादन्तीनाशेषगुणानां सावरणत्वस्य
सूत्रमित्यगन्तव्यम् । श्रीणरूपाया हि प्रीतिगगा एव स्वभिवाराभावाद्प्रीतिगगग्रहण
मनर्थकमिति चेत्, नामादिश्रीणरूपायप्रीतिगगच्छद्मव्यात् । यच्चतु गुणेषु स्मात्स्य
प्रादुर्भावं इति चेत्, इत्यभावाद्देविष्यादुभयात्मस्मोहनीयस्य निरन्तरप्रतिनाशात्क्षयिगुण
निरन्तर । उक्तं च —

गिस्मेम श्रीण-मोहो कडिवापड भायगुदय-ममचित्तो ।

श्रीण रुमायो मग्गइ गिग्गयो श्रीराएहि ॥ १२३ ॥

स्नातकगुणप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह —

सजोगकेवली ॥ २१ ॥

प्रीतिगगा होने के उद्देश्ये श्रीणरूपायप्रीतिगगा कहते हैं । जो छद्म अर्थात् प्रान्तरण और दर्शना
पणमें रहते हैं उद्देश्य छद्मस्य कहते हैं । जो श्रीणरूपाय प्रीतिगगा होने हुए छद्मस्य होत हैं
उद्देश्य श्रीणरूपाय प्रीतिगगा छद्मस्य कहते हैं । इस सूत्रमें भाषा हुआ छद्मस्य पद प्रत्यक्ष है,
इत्यत्रिये उक्तं पूर्ववत्, समस्त गुणस्थानोंके सावरणत्वके सूत्र समझना चाहिये ।

पूरा — श्रीणरूपाय जीव प्रीतिगगा ही होत है, इसमें किसी प्रकारका भावप्रतिपत्ति
नहीं भाना, इत्यत्रिये सूत्रमें प्रीतिगगा पदका प्रत्यक्ष करना निश्चय है ?

समाधान — नहीं, क्याकि, नाम, स्वरूपना आदि रूप श्रीणरूपायकी निगुणित करना
पदा । इस सूत्रमें प्रीतिगगा पदके प्रत्यक्ष करनेका कष्ट है । अर्थात् इस गुणस्थानमें नाम
स्वरूपना और स्वरूप श्रीणरूपायका प्रत्यक्ष नहीं है, किन्तु भाष्यरूप श्रीणरूपायोंका ही प्रत्यक्ष
है, इस बातके प्रत्यक्ष करनेके लिये सूत्रमें प्रीतिगगा पद दिया है ।

शुद्धा — यावत् प्रकारके भाष्योंमें किम् मात्रम इस गुणस्थानकी उत्पत्ति होती है ?

समाधान — मोक्षार्थ कर्मके दा भेद है, द्रव्यमहनीय और भावमहनीय । इस
गुणस्थानके लिये दोनों प्रकारके भावनीय कर्मोंका निश्चय (सर्वथा) भाव हो जाना है, अतएव
इस गुणस्थानकी उत्पत्ति साविक गुणमे है । क्या भी है —

त्रिमय सपूर्ण अर्थान् प्रकृत त्रिदश अनुभावा भाव प्रदे । यद्यप्येव महनीय कर्मका
मत्त का दिया है, यद्यप्य त्रिमय त्रिमय अर्थकर्मनिर्देश निम्न भावनामें रहने हुए त्रिमय
मत्त निम्न है यमे निर्देशक । प्रीतिगगाद्वय भावप्रत्यक्षमगन्तव्य नहीं कहा है ॥ १३ ॥

यह स्मरण होना गुणस्थानके प्रत्यक्ष करनेके लिये भाषा ही सूत्र कहा है —

समस्तस्य सवरावयवो श्रीव दान ॥ २४ ॥

१२३-१२४ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ १३० ॥ १३१ ॥ १३२ ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ १४० ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ १५० ॥ १५१ ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ १५५ ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ १६० ॥

केवल कलानाम् । कथं नामैकदेशात्मकलानाम् प्रतिपद्यमानस्यार्थस्यावगम इति चेत्, चलदेवशब्दवाच्यस्यार्थस्य तदेकदेशदेवशब्दादपि प्रतीपमानस्योपलम्भात् । न च दृष्टेऽनुपपन्नता अव्यवस्थापते । कवलममहायमिन्द्रियालोकमनस्सारनिरपक्षम्, तदेवामस्तीति केवलिन । मनोरावायप्रवृत्तियाग, योगेन सह वतन्त इति सयोगा । सयोगाश्च ते केवलिनश्च सयोगकेवलिन । सयोगग्रहणमधस्तनमरुलगुणाना मयागव- प्रतिपादकमन्तर्दीपस्तान् । धृषिताशेषपातिकर्मस्तान्नि गुक्तीकृतपेदनीयवान्तराष्टरमीर यरपटिर्मन्त्राद्वा क्षायिस्त्रुण । उक्तं च—

केवलज्ञान दिशपर किरण रश्मि पद्मासि-अण्णाणा ।
गण केवल-रूपम पुनरपि परमं वरुणो ॥ ११४ ॥

केवल पदसे यदा पर केवलज्ञानका प्रद्वण किया ह ।
शक्ति—नामके एकदेशके कथन करनेसे सपूर्ण नामके द्वारा कहे जानगल अथवा बाध कले समय है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि चलदेव शब्दके वाच्यभूत अथवा उसके एकदेशके देव शब्दसे भी बोध होना पाया जाता है । और इसतरह प्रतापि-सिद्ध ज्ञानमें यह नहीं बन सकता है । इसप्रकार कहना निश्चल है अथवा सब जगह अव्यवस्था हो जायगी । जिसमें इन्द्रिय, आलोक और मनकी अपेक्षा नहीं होती है उसे केवल अथवा असहाय कहते हैं । यह केवल अथवा असहाय ज्ञान जिनके होता है, उन्हें केवल कहते हैं । मन, यवन आदि वायकी प्रवृत्तिको योग कहते हैं । जो योगके साथ रहते हैं उन्हें सयोग कहते हैं । इसतरह जो सयोग होने हुए केवल ह उन्हें सयोगकेवल कहते हैं । इस तरुमें जो सयोग पदका प्रद्वण किया ह यह अन्तर्दीप कहलस नावके स्वरूप गुणस्थानों के सयोगपनेका प्रतिपादक ह । वारों धानिया कर्मों के सब कर इनसे येदनाय कर्मों के नि गल कर इनसे अथवा भाओं का कर्मों के अवयवरूप साठ उत्तर कम प्रहानियों के कर इनसे इस गणस्थानमें शक्ति भाव होता ह ।

निष्पाप—यद्यपि अहम परमपुत्र वारों धानिया कर्मों के मतानाम नामकमय यह आदि आयुक्रमकी तान इसतरह प्रसन्न प्रहानियोंका अभाव होता ह । पर मा यदा मात्र प्रमहानियोंका अभाव बनलावा ह इसका ऐसा अभिप्राय समझना साहचर्य है आयुका तान तनयों के माता के लिए प्रयत्न नडा करना पडता ह । मुनि का प्राप्त होलावा जायव यह प्यायुका छादकर अथ आयुका मला हा नडा पाव जाता ह इसलिये यदा पर आयुक्रमका प्रहानियोंकी अविवश करक मात्र प्रहानियोंका नाम बनलावा गया ह । कथा ५। ह—
। जिसका केवलज्ञानरूप। मयका । कथना के समूहसे अज्ञानरूप। अथकार सवधान

प्रतिपादनकृतं वा । यथ वस्तुतस्तस्मिन्मर्यादा इति चेद्युष्मास्तम्भोदेरमित्य-
 वधमर्यादा ? तत्र प्रमाणस्य यथानुपपत्तेरनुष्मा समुपलब्धमस्तीति चेत्तर्ह्यनुप-
 पन्नस्य प्रामाण्यस्य यथानुपपन्न समस्ति वस्तु वाच्यमिति समानमेतत् । यच्चनस्य
 प्रामाण्यमपि तस्य वस्तु विमर्शददर्शनादिति चेन्न, चतुषोऽपि प्रामाण्यमपि तस्य
 वस्तुविमर्शददर्शनस्य प्रति ततोऽप्रतिपत्तिः । यद्विमर्शादि चतुस्तत्प्रमाणमिति चेन्न,
 यद्विमर्शस्य चतुषा मर्यादा मर्यादा विमर्शादनुपपत्तमेतत् । यत्र यद्विमर्शाद् समुपलब्धमे-
 तत्तदनुपपन्नं तत्र तस्य प्रामाण्यमिति चेद्यदि वस्तुविमर्शादिनानुपपत्तेरनुपपत्तिः प्रामाण्य-
 मित्येते तदा तद्विषय मर्यादा विमर्शादिनो वस्तुस्य प्रामाण्य किमिति नेष्यते ?

इति श्रद्धा विस्तरे चेदानीं पदवा प्रष्टव्यं विद्या ।

प्रश्न—इस श्रद्धा में चेदानीं इस घटनके प्रमाण करनेमात्रसे अयोग्य-प्राप्तके केवल
 ज्ञानका भस्मिन्व केने जाना जाता है ?

समाधान—यदि यह प्रमाण हो तो हम भी प्रमाण है कि वस्तुमें स्तम्भ आदिके
 भस्मिन्वका ज्ञान केने होता है ? यदि कहा जाय कि वस्तु ज्ञानमें अवस्था प्रमाणता नहीं आ
 सकती इसलिये वस्तुद्वारा प्रमाण स्तम्भादिकका भस्मिन्व है, ऐसा मान लेते हैं ।
 ना हम भी कह सकते हैं कि अवस्था घटनमें प्रमाणता नहीं आ सकती है, इसलिये
 घटनके रहने पर उसका प्रमाण भी विद्यमान है, ऐसा भी क्यों नहीं मान लेते हो, क्योंकि,
 दोनों बातें समान हैं ।

प्रश्न—घटनका प्रमाणता भस्मिन्व है, क्योंकि, कहाँ पर घटनमें विसर्गद वेना
 जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, इस पर तो हम भी ऐसा कह सकते हैं, कि वस्तुकी
 प्रमाणता भस्मिन्व है, क्योंकि, घटनके समान वस्तुमें भी कहाँ पर विसर्गद प्रमात होता है ।

प्रश्न—आ वस्तु अविसर्गदा होता है उसे ही हम प्रमाण मानते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, किसी भी वस्तुका सब देश और सर्व कालमें अविसर्गदा
 पना नहीं पाया जाता है ।

प्रश्न—जिस देश और जिस कालमें वस्तु अविसर्गद उपलब्ध होता है, उस देश
 और उस कालमें उस वस्तुमें प्रमाणता रहता है ?

समाधान—यदि जिस देश और जिस कालमें अविसर्गद वस्तु प्रमाणता मानने
 हो तो प्रत्यक्ष और परीक्षा विषयमें सर्व-देश और सब कालमें अविसर्गदा ऐसे विवक्षित
 घटनको प्रमाण क्यों नहीं मानते हो ।

जट्टविषये क्वचिद्विमतोपलम्भात् तस्य सर्वत्र सर्वदा प्रामाण्यमिति चेत्, तत्र यत्रत्या
पराधामाराचम्बरूपानुगन्तु पुष्पस्य तत्रापराधोपलम्भात् । न ह्यन्यदाग्न्य
परिगृह्यते अव्ययस्थापते । उक्तरेव तत्रापराधो न उच्यते इति कथमत्राग्न्यतः शी
चेत्, तस्मान्न्यस्य वा तत्र एव प्रवृत्तस्य पश्चादर्थप्राप्त्युपलम्भात् । अप्रतिपक्षविमर्शा
विमर्शात्स्यात् उच्यते प्रामाण्यं कथमत्रमीयत इति चेन्नैव दोषः, आपीययनेन प्रतिपक्षा
विमर्शेन सदापीययस्यापययिद्वारेणापक्षैक्यजन्यमत्यन्तसंगते । इधुष्ण्डवतानाग्न

प्रश्नः—किमी परोक्षविषयमे विमर्शाद् वाया जाता है, इसलिये सगन्देश भीत
सर्वे कामे पवनमे प्रमाणता नहीं आ सकती है ?

समाधान—यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि, उसमें पवनका भयान्य नहीं
ह किन्तु परोक्ष विषयक स्वरूपको नहीं समझनेवाले पुष्पका ही उसमें भयान्य वाया जाता
है । पुष्प दूधका दागने दूधका ता पड़ता नहीं आ सकता है, अथवा भाग्यवस्था प्राप्ति
है । उक्तम् ।

प्रश्नः—परोक्ष विषय आ विमर्शाद् उत्पन्न होता है, इसमें पवनका ही दाग है पय
नका नहीं यह कैसे जाना ?

समाधान—नहीं क्योंकि, उसी पवनमें पुन अधिक निर्णयम प्रगुति करताया
है । अथवा किमी दूधका पुष्पका दूधकी बाह आनेकी प्राप्ति कराकर देखी जाती है । एतत्
कथन हुआ है कि उक्त पर मध्य निर्णयम विमर्शाद् उत्पन्न होता है पयन पर पवनका ही दाग
है कथनका नहीं ।

प्रश्नः—किम् पवनकी विमर्शाद्वा या अविमर्शादिनाया निर्णय नहीं हुआ उगरी
उत्पन्नका निर्णय हम किया जाय ?

समाधान—यह कोई दाग नहीं है क्योंकि, जिसकी अविमर्शादिनाया निर्णय
है उक्त दाग पयन का दाग पवनका दाग किया है आरक्ष भयान्यपयन पवनका भी
अविमर्श का दाग पवनका दाग जाता है इसीसे निर्णय भयान्यपयन पवनकी भयान्यका
दाग है उक्तम् ।

प्रश्नः—उक्तम् या भयान्यपयन है या भयान्यपयन भयान्यपयन है, इसीसे भयान्य
उत्पन्नका दाग पयन का दाग पवनका दाग जाता है ।

प्रश्नः—उक्तम् या भयान्यपयन है या भयान्यपयन भयान्यपयन है, इसीसे भयान्य
उत्पन्नका दाग पयन का दाग पवनका दाग जाता है ।

विषय आदिनि चक्ष, वाच्यताभेदेन तस्य नानान्वयमुपगमान् । तद्वत्सत्यामत्यकृत-
भेदादपि तस्यास्तिरिति चेत्, अत्रयदिद्वारेणैकस्य प्रवाहरूपेणाप्यपेयस्यागमस्यामत्यत्व-
विरोधात् । अपरा न तावदयं चेद स्वस्याथ स्वयमाचष्टे स्वयमपि तदवगमप्रमत्तात् ।
अस्तु चक्ष चक्ष, तथानुपलम्भात् ।

अपान्ये व्याचक्षते, तेषां तदर्थविषयपरिज्ञानमस्मि ता नति निरुल्लापयान्तर ?
न द्वितीयादिनिरुल्लापयान्तरमस्मिन् व्याचक्षते विरोधात् । अत्रिध वा सर्व सर्वस्य
व्याचक्षतास्त्वज्ञान प्रत्यविरोधात् । प्रथमविरुद्धेर्मा मरतो वा स्यादमरतो वा ? न
द्वितीयादिनिरुल्लापयान्तरमस्मिन् व्याचक्षते विरोधात् ।

तेना आदिषे ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वाच्य वाच्यके भेदने उभयें मानापना माना हुआ है ।

शब्द—निरुल्लापयान्तरमस्मिन् व्याचक्षते भेदने आदिषे तेषां भेद माना जाता है, उसी
प्रकार एवर्णोम तस्य भवत्यहम् भी भेद मान लेना आदिषे ।

समाधान—नहीं, क्योंकि, अत्रयरीरूपसे प्रवाद-कर्मसे आये हुए अपौरुषेय
वच आगममें अस्मावपना स्वीकार करनेमें विरोध आता है ।

अथवा, यह चेद (आगम) अपने वाच्य-भूत अर्थको स्वयं नहीं कहता है । यदि यह
स्वयं कहने लगे तो तर्फीको उम्हका ज्ञान हो जानेका प्रमाण भा वाच्यता इत्यलिये भी यन्त्राक
दोषने यद्यनमें होय मानना आदिषे ।

प्रश्न—यदि तर्फीको चेदका ज्ञान स्वयं हो जाय तो इसमें क्या हानि है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, इत्यप्रकारकी उपलब्धि नहीं होता है ।

कोई लोग ऐसा व्याख्यात करते हैं कि यन्त्राको चेदके वाच्यभूत विषयका परि-
ज्ञान है या नहीं ? इत्यनन्द ही विचार उपपन्न होते हैं । इत्येसे दूसरा विचार तो बन
नहीं सकता है क्योंकि जो यन्त्रा अथ ज्ञानमें रहित है उसकी चेदका व्याख्याता माननेमें
विरोध आता है । यदि कहो कि इसमें कोई विरोध नहीं है तो तर्फीको सपूर्ण शब्दोंका
व्याख्याता हो जाना आदिषे क्योंकि अज्ञानना समाप्त करार है । यदि प्रथम विचार लेने
है कि यन्त्राका चेदक अर्थका ज्ञान है तो यह ज्ञान स्वयं है कि अस्मत् ? इत्येसे दूसरा
विचार तो माना नहीं जा सकता क्योंकि ज्ञान विज्ञानमें रहित जानका कारण जिसने स्वयं
प्रमाणताका प्राप्त नहीं किया उस व्याख्याताके यन्त्रा प्रमाणरूप नहीं हो सकते हैं ।

१	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००
---	---	---	---	---	---	---	---	---	---	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	-----

मनसं समुत्पद्यमानमुत्पन्नं श्रुतं वा, यन्निर्माणेनाप्यत्र । तस्याप्युत्पत्तिरिति वा
 कचि मनस उत्पद्यते । मनसाऽमात्राद्भवतु तस्यैवामात्रं, न केवलस्य तस्यानव्याप्यत्वं
 रमात्रात् । तद्योगस्य सति मनसं समुत्पद्यमानं समुत्पन्नमिति चेन्न न
 व्याकरणस्यादुत्पन्नस्यात्रमस्य पुनरुत्पत्तिरिति चेन्न । तान्त्रिकानामप्युत्पत्तिरिति चेन्न
 मप्येवमेव केवलमिति चेन्न, तदपि तस्याप्युत्पत्तिरिति चेन्न । तस्याप्युत्पत्तिरिति चेन्न
 मानानर्थानपि गच्छामि केवलं कथं पण्डितैर्निरूपितं चेन्न, नैयममपि परिचितं सत्यं
 तदपि रोधात् । नैयमस्तत्तथापि परिचितमानस्य केवलस्य सत्यं पुनर्निरूपितमिति चेन्न
 केवलोपयोगसामान्यापेक्षया तस्योत्पत्तिरमात्रात् । त्रिपक्षोपेक्षया च नैयमस्य
 मनोऽस्यस्तदुत्पत्तिरिति तत्रागम्यं चेद्विरोधात् । केवलमनस्यत्वात् तस्यैवमप्युत्पत्तिरिति

किम्बुते सुता ही, जिसमें कि यह शका उत्पन्न हो सके । क्षायोगेनापि ज्ञान आद्य इति चेन्न
 पर (मन्त्री पक्षे त्रिपक्षे) मनसे उत्पन्न होता है । इसलिये अयोगके उत्पत्ति के मतका जमा
 होनेसे क्षायोगेनापि ज्ञान ही अमात्र सिद्ध होगा, न कि केवलज्ञान ही, क्योंकि, ज्यों
 के त्रिपक्षों के मनसे केवलज्ञान ही उत्पत्ति नहीं होती है ।

शुद्धा—सयोगके उत्पत्ति के तो केवलज्ञान मनसे उत्पन्न होता हुआ उत्पन्न होता है ?

समाधान—यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि, जो ज्ञान ज्ञानावरण कर्म
 अथवा उत्पन्न है और जो अममवर्त्ता है, उसकी मनसे पुन उत्पत्ति मानना निरुद्ध है ।

शुद्धा—जिसप्रकार मति आदि ज्ञान, स्वयं ज्ञान होनेसे अपनी उत्पत्तिमें कारण
 अपेक्षा करने है, उसीप्रकार केवलज्ञान भी ज्ञान है, अतएव उसे भी अपनी उत्पत्तिमें कारण
 अपेक्षा करनी चाहिये ।

समाधान—नहीं, क्योंकि, क्षाधिक और क्षायोगेनापि ज्ञानमें साधक्य नहीं पाया
 जाता है ।

शुद्धा—अपरिवर्त्तनशील केवलज्ञान प्रत्येक समयमें परिवर्त्तनशील पदार्थों के ज्ञान
 जानता है ?

समाधान—ऐसी शका ठीक नहीं है, क्योंकि, प्रत्येक पदार्थों के ज्ञान के लिये तदनुकूल
 परिवर्त्तन करनेवाले केवलज्ञान के ऐसे परिवर्त्तन के ज्ञान ज्ञान कोई विरोध नहीं आता ।

शुद्धा—प्रत्येक परत-तनासे परिवर्त्तन करनेवाले केवलज्ञान की फिरसे उत्पत्ति क्यों
 नहीं मानी जाय ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, केवलज्ञानरूप उपयोग सामान्य की अपेक्षा केवलज्ञान ही
 पुन उत्पत्ति नहीं होती है । विशेष की अपेक्षा उसकी उत्पत्ति होने हुए भा यह (उपयोग)
 इन्द्रिय, मन और आत्मा रूप उत्पन्न नहीं होता है, क्योंकि, जिसके ज्ञानावस्थादि कम नष्ट हो
 गये हैं ऐसे केवलज्ञानमें इन्द्रियादिक की महायत्ना माननेमें विरोध आता है ।

दूसरी धारा यह है कि केवलज्ञान स्वयं अमहाय है, इसलिये वह इन्द्रियादिकों

मिद्धा चेदि ॥ २३ ॥

मिद्धा निष्ठिता निषन्ता कृतकृत्या मिद्धमाध्या इति यावत् । निगमनागे
रमो गो साधार्यनिगमनान्तानुपममहत्वाप्रतिपक्षमुपमा निरुपलेषा श्रितिलिप्तस्य
मन्त्रागुणातीना नि नेकगुणानिधाना चमदेहाक्रिञ्चिन्मूनस्येहा कोणमिनिगत
मारसोपमा लोभगिसगनियामिन मिद्धा । उक्त च—

अग्निं सम्मिदुग सौ मूदा गिरत्ता गिरा ।

अग्निं किदकिषा लेयम गिरामिना मिदा ॥ १७७ ॥

मन्त्राय अग्निं चि मरधो सायव्यो । 'च' मदे। ममुगवद्वो । 'इति' मदा लीया
नि चेद गुणद्वानाणि चि गुणद्वानाण ममचि-सारधो ।

मन्त्रायगे गिर जीय होने है ॥ २३ ॥

मिद्ध मिणिग निषन्ता कृतकृत्या और मिद्धमाध्या ये पदार्थोंका नाम है । मिद्धोने
मन्त्राय कमोका निगमन कर दिया है, मिद्धान वायु पदार्थोंकी अपेक्षा रहित भव
अनुपम समानार्थ और प्रतिपक्षार्थ गुणको प्राप्त कर दिया है, जो निगम है, भव
मन्त्राय प्रत्य है, मन्त्रों अपगुणाने रहित है, मन्त्र गुणोंके निधान है, मिद्धा कृतकृत्य अपा
अपेक्षा अपेक्षा मन्त्र मन्त्राणा गुण गुण है, जो वाताय निगम हुए वाताय मन्त्राय विन म
है ॥ २३७७७ मन्त्रायगे निगम करन है उक्त मन्त्र है । कदा भी है—

अ मन्त्राय दि आत्त कमोम मन्त्रे म मन्त्र है, मन्त्राय (मन्त्र मन्त्राकी शक्ति म
मन्त्र) है निगम है निगम है ज्ञान, बुद्धि, शक्ति, धर्म, अज्ञात मन्त्राय मन्त्राय और
मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्र है, मन्त्राय है और मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय निगम करन है
॥ २३७७७ ॥ १ ३ ॥

अ मन्त्राय मन्त्राय 'मन्त्राय मन्त्राय' मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय

अ मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय
मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय
मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय मन्त्राय

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००
---	---	---	---	---	---	---	---	---	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	-----

पादगण्ड गुणद्वाराण ओष परवण काउण आदेस परवण्ड सुसमाह—

आदेसेण गदियाणुवादेण अत्थि णिरयगदी तिरिक्खगदी
मणुसगदी देवगदी सिद्धगदी वेदि ॥ २४ ॥

आदेशग्रहण सामर्थ्यलभ्यमिति न वाच्यमिति चेन्न, स्पष्टीकरणार्थत्वात् ।
रत्नलक्षणा, तस्या चन्त वाद । प्रसिद्धस्याचार्यपरम्परागतस्यार्थस्य अनु पश्चात् आदेश-
पात् । गनेरनुवादो गत्यनुवाद्, तेन गत्यनुवादेन । 'हिंसादिष्वसदनुष्ठानेषु
निरतान्ता गतिर्निरतगतिः । अथवा नरान् प्राणिन कायति पातयति खलोकान्ते
नरक कर्म, तस्य नरकस्वापत्यानि' नारकान्तेषा गतिर्नारकगति । अथवा सन्त
सरलाभुभरमणामुदपस्य महकारिकारण भवति सा नरकगति । अथवा

वर्षाद गुणस्थानोंका सामान्य प्रकरण करके अब विशेष प्रकरण है—

आदेश प्रकरणकी अपेक्षा गत्यनुवादे नरकगति, तिर्यचगति और मिजगति है ॥ २४ ॥

गुरा—आदेश परका ग्रहण सामान्य-लभ्य है, इसलिये इस कथन पर
ग्रहण नहीं करना चाहिये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, स्पष्टीकरण करनेके लिये आदेश ग्रहण
किया है ।

गतिका लक्षण पहल कह आये है । उसके कथन करनेका पराते
पराते आये हुए प्रसिद्ध अर्थका तदनुसार कथन करना आचार्य परंपराके
अनुसार कथन करना गत्यनुवाद् है, उसमें बल आदि गतिवा
आदि गतिवा होता है । जो हिंसादि अस्मदीयान कायों
आर उनका गतिको निरतगति कहत है । अथवा, जो नरक
अर्थान् गिराता ह, पीसता ह उसे नरक कहत हैं । नरक
उत्पत्ति होती ॥ उनका नारक कहत है और उनका
अथवा जिस गतिका उद्भव संपूर्ण भूभ कर्मोंके उद्भव
कहत है । अथवा जो द्रव्य क्षेत्र बाल और भावों

भावात्तद्विषयः न विना सातः तत्रैव विद्यमानत्वात् । तत्र च

78 1-10 1961

[illegible]

महानिदकसामोसविनिमित्तं विने मणि । तस्मात्ति । तस्मिन् शतार्धे
 त्रिकसामोसविनिमित्तं । तस्मात्ति । तस्मिन् शतार्धे त्रिकसामोसविनिमित्तं
 त्रिकसामोसविनिमित्तं । तस्मात्ति । तस्मिन् शतार्धे त्रिकसामोसविनिमित्तं

$$[1^p] = T^p \cdot [1] = 1 \cdot [1] = [1] \quad \text{for } p \geq 1$$

॥ १५३ ॥

अथ मनुष्याणां निरुद्धाणि । अथ मनुष्याणां निरुद्धाणि । अथ मनुष्याणां निरुद्धाणि ।
मनुष्याणां निरुद्धाणि । अथ मनुष्याणां निरुद्धाणि । अथ मनुष्याणां निरुद्धाणि ।

झींगल नहीं बरसने दे। उधर बरसने दे और उसकी मांगों को सम्भालने दे।
बदाभी है—

जिस कारणसे जून १९४७ का ३१ मास में जो वर्ष लगा पड़ता है वही भी प्रत्येक मास में ही इन्हीं उक्त मास व ३१ ॥

[illegible]

आ मन, यथन और कायकी कुटिलताका प्राप्ति है चित्तकी आन्तरादि अवधार मुद्रण है, जो निरुद्ध अवस्थानी है और चित्तके अत्यन्तिक पापका बहुमुद्रा पारि पाय उनका निर्धन कहत है ॥ १० ॥

जो मनुष्यकी मंथून पर्यायोंमें उत्पन्न करनी है उस मनुष्यगति कहते हैं। अथवा, मनुष्यगति नामकर्मके उदयम प्राप्त हुए मनुष्य पर्यायोंके समूहका मनुष्यगति कहते हैं। यह लक्षण कार्यमें कारणके उपकारम किया गया है। अथवा, जो मनम निपुण है, या मनम

१ मरुगतिमन्त्र यशस्वानां च सुखान्दाय तः सप्तमा श्लाघ्यमानका इति पद्यावलीमाह। वा. प्र.
जी. प्र. रा. १४७

२ अथवा नियन्त्राय पुण्यं यन्त्र निराश तथा गति नित्यगति । गी श्री डा प्र दी १५३

३ गा जा १५७

४ गा ना १८८ यस्याऽङ्गाय य वावा हात्रिमहा आगहागायद्रममाथना शनाममप

अथविशुद्ध्यादिमिरयायम्ब्रानहृष्टा ह्यपादयज्ञानाणि नर्तन वाग्गना नियमिमा विनय्या जयतुययव्या
तस्मात् प्राणात् तावा निरमाव कुट्टिमाव मायापतिगाम अत्रनि गच्छन्ति इति नियमा मणिना मवन्ति। ज्ञा य य

५ प्रतिषु ' कायकारण ' इति पाठः ।

उत्तरदा इति वा मनुष्या, तेषां गतिः मनुष्यगतिः । उक्तं च —

मग्नानि ज्ञानाणि च मर्जयन्ति तेषां मनुष्याः ।

मनु उच्यते यः स ते मग्नः ते मनुष्या भविष्यः ॥ १३० ॥

अणिमाद्यष्टगुणायष्टम्भबलेन दीप्यन्ति श्रीऽडन्तीति देवाः । दत्तानां गतिरुपगतिः ।

अत्रा देवगतिनामस्मादप्योऽणिमादिदेवाभिधानप्रत्ययव्यवहारसिन्धुनपर्यायाभावात्
देवगतिः । दशगतिनामस्मादयन्नितपर्यायो वा देवगतिः साप्यवस्थापराभावात् ।

उक्तं च —

त्रिंशति जरा निश्चयं गुणैः ज्ञेयं ददति भोदेहि ।

भासयति रराया तद्भासे वणिष्या देवाः ॥ १३१ ॥

मिद्विः स्वस्वोपलब्धिं मरुत्तुर्गुणं स्वस्वनिष्ठा सा एव गतिः मिद्विगतिः ।

उक्तं अर्थान् गुरुमविशारं आदि सानिधय उपयोगसे युक्तं उक्तं मनुष्य कहने हैं, और
उनकी गतिको मनुष्यगति कहने हैं । कहा भी है—

विसर्कारण जो सदा देय उपादेय आदिका विचार करने हैं, अथवा, जो मनस
गुण-बोधादिकका विचार करनेमें निपुण हैं अथवा, जो मनमें उक्त अर्थान् गुरुज्ञान, गुरुम
विशार, विशाल धारण आदि रूप उपयोगसे युक्त हैं, अथवा, जो मनुषी मन्त्राल हैं, इसलिये
उक्तं मनुष्य कहने हैं ॥ १३० ॥

जो भोगमा आदि आठ क्रियाओंका प्राप्तिसे बलसे पावा करने हैं उक्तं देय कहने हैं,
और देयोंकी प्राप्तिसे देवगति कहने हैं । अथवा जो भविष्यादि क्रियाओंसे युक्त 'देव' इस
प्रकारके गुरु ज्ञान और व्यवहारमें कारणभूत पण्यका उत्पादक हैं ऐसे देवगति नामकमने
उक्तकी देवगति कहने हैं । अथवा देवगति नामकमने उक्तसे उत्पन्न हुई पर्यायको देवगति
कहने हैं । यदा वायमें कारणक उपयोगमें यह लक्षण किया गया है । कहा भी है—

कर्मोक्तं च द्रष्टव्यं भाग्यप्रत्यय आणमादि आठ विषय गुणोंक द्वारा निश्चित कीजा
करने ॥ भाग्य उनका द्वारा प्रकाशमान तथा 'देव' उक्त इसलिये उक्त देव कहने हैं ॥ १ ॥

नामस्य स्वस्वोपलब्धिः प्राप्तः भवति न्यूनं स्वर्ग्य गुणान्नाम आत्मस्वरूपमास्थितं दानका सिद्धि
कहने हैं । स्वस्व सिद्धिस्वरूप प्राप्तका स्वस्वोपलब्धि कहने हैं । यदाच स्वस्व नामकमात्र प्राप्त

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००

—

सर्वज्ञानं भवति सर्वज्ञानं भवति ।

सर्वज्ञानं भवति सर्वज्ञानं भवति ॥ १२२ ॥

सर्वज्ञानं भवति सर्वज्ञानं भवति । प्रतिज्ञासक्यस्येत्युपयोग्यं करोति ।
सर्वज्ञानं भवति सर्वज्ञानं भवति । प्रतिज्ञासक्यस्येत्युपयोग्यं करोति । न रिपयः
सर्वज्ञानं भवति सर्वज्ञानं भवति । प्रतिज्ञासक्यस्येत्युपयोग्यं करोति ।

सर्वज्ञानं भवति सर्वज्ञानं भवति । प्रतिज्ञासक्यस्येत्युपयोग्यं करोति ।

नेमिस्तु ननु नृपणेषु आन्ति मिच्छादृष्टी मामणमम्मादृष्टी
नेमिस्तु ननु नृपणेषु आन्ति मिच्छादृष्टी मामणमम्मादृष्टी ॥ २५ ॥

२५० श्री श्रीचरणे ॥ मिच्छादृष्टी नृपणेषु आन्ति मिच्छादृष्टी करोति ।

मिच्छादृष्टी नृपणेषु आन्ति मिच्छादृष्टी करोति । मिच्छादृष्टी नृपणेषु आन्ति मिच्छादृष्टी करोति ।

मिच्छादृष्टी नृपणेषु आन्ति मिच्छादृष्टी करोति ।

मिच्छादृष्टी नृपणेषु आन्ति मिच्छादृष्टी करोति । मिच्छादृष्टी नृपणेषु आन्ति मिच्छादृष्टी करोति ।

मिच्छादृष्टी नृपणेषु आन्ति मिच्छादृष्टी करोति । मिच्छादृष्टी नृपणेषु आन्ति मिच्छादृष्टी करोति ।

मिच्छादृष्टी नृपणेषु आन्ति मिच्छादृष्टी करोति ।

॥ २५ ॥

मिच्छादृष्टी नृपणेषु आन्ति मिच्छादृष्टी करोति । मिच्छादृष्टी नृपणेषु आन्ति मिच्छादृष्टी करोति ।

तत्र मर्यामिति चेन्न, पर्याप्तनरकगत्या सहापर्याप्तया इव तस्य विरोधाभावात् । किमित्यपर्याप्तया विरोधेत्स्वभावोऽयं, न हि स्वभावा परपर्यनुयोगार्हा । तर्ह्यन्यामपि मानेऽपर्याप्तकालेऽस्य सत्यं मा भूतेन तस्य विरोधादिति चेन्न, नारकापर्याप्तकालेन त्रेधापर्याप्तपर्यायं मह विरोधाभिदे । सम्पत्तिभ्यान्तगुणस्य पुन मर्यादा मर्यादा पर्याप्तादाभिर्विरोधमत्र तस्य मर्यादप्रतिपादकार्यभावात् । किमित्यगमे तत्र तस्य मर्यादा नोक्तमिति चेन्न, आगमस्यानर्कगोचरत्वात् । कथं पुनस्तयोस्तत्र मर्यामिति वचः, परिणामप्रत्ययेन तदुपपत्तिभिदे । तर्हि सम्पत्तिप्रत्ययोऽपि तथैव सन्तीति चेन्न, इष्टत्वात् ।

ममागम — नदी, कर्षिक, जिनप्रकार नरकगतिमें अपर्याप्त अवस्थाके साथ साक्षात् गुणस्थानका विरोध है, उन्मत्तप्रकार पर्याप्त अवस्था सति नरकगति के साथ साक्षात् गुणस्थानका विरोध नहीं है । अर्थात् नारकियों के पर्याप्त अवस्था में दूसरा गुणस्थान उत्पन्न हो सकता है । यदि कहो कि नरकगति में अपर्याप्त अवस्था के साथ दूसरे गुणस्थानका विरोध क्यों है ? तो उत्तरका यह उत्तर है, कि यह नारकियोंका स्वभाव है, और स्वभाव गुणों के द्वारा ही जाना नहीं हो सके है ।

अहं — यदि ऐसा है तो अन्ध सन्तियों के अपर्याप्त काल में भी साक्षात् गुणस्थानका उत्पन्न होना क्या है, अपर्याप्त काल के साथ साक्षात् गुणस्थानका विरोध है ।

ममागम — यह कहना गीत नहीं, क्योंकि, जिनप्रकार नारकियों के अपर्याप्त काल में अन्ध सन्तियों के गुणस्थानका विरोध है, उन्मत्तप्रकार सन्तियों के अपर्याप्त काल के साथ साक्षात् गुणस्थानका विरोध नहीं है । अर्थात् सत्यगिरियों के गुणस्थानका ही सदा ही सन्तियों के अपर्याप्त काल के साथ विरोध है, क्योंकि, अपर्याप्त काल में सत्यगिरियों के गुणस्थानका उत्पन्न होना ही भाग्यका भाग्य है ।

अहं — भाग्य में अपर्याप्त काल में मिथ गुणस्थानका उत्पन्न क्या नहीं होता ?

ममागम — नहीं, क्योंकि, भाग्य नहीं का विषय नहीं है ।

अहं — हा किन्तु स्वभाव ही मिथ गुणस्थानका नरकगति में उत्पन्न हो सकता है ।

अहं — यह क्यों कि नारकियों के निमित्त नरकगति की पर्याप्त अवस्था ही स्वभाव ही है ।

अहं — हा किन्तु सम्पत्ति ही उन्मत्तप्रकार ही है तथा साक्षात् सत्यगिरियों के भाग्य

१. १. २१. १. २. ३. ४. ५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.

सामादनस्येव सम्यग्दृष्टेरपि तत्रोत्पत्तिमा भूदिति चेन्न, प्रथमपृथिव्युत्पत्तिं प्रति निषेधा-
भारात् । प्रथमपृथिव्यामिव द्वितीयादिषु पृथिवीषु सम्यग्दृष्टय किन्तोपपन्न इति
चेन्न, सम्यक्त्वस्य नवन्यापर्याप्तादया मह विरोधात् । नोपगमिगुणानां तत्र सम्भ-
वेना सयमावयवमयमपर्यायस्य सहाय विरोधात् ।

नियन्तारं गुणव्यानान्येपर्यायमुत्तरमुब्रमाह—

तिरिक्त्वा पञ्चसु दृणेषु अधि मिच्छादृष्टौ सासणसम्मादृष्टौ
सम्माभिच्छादृष्टौ असंजदसम्मादृष्टौ संजदासजदा त्रि ॥ २६ ॥

विषग्रहणं शेषगतिनिराकरणार्थम् । पञ्चसु गुणव्यानेषु मन्तीति वचनं
पडादिमत्याप्रतिषेधकम् । मिथ्यादृष्ट्यादिगुणानां नामनिर्देशं सामान्यवचनं

नरकगतिर्मे पर्याप्त अवस्थामे सम्यग्दर्शनकी भी उत्पत्तिं मानना चाहिये ?

समाधान—नहीं क्योंकि यह जान तो हमें यह ही है, अर्थात् सागो
पृथिवीपर्योकी पर्याप्त अवस्थामे सम्यग्दृष्टिपर्योका सद्भाव माना गया है ।

शुद्धा—जिसप्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि नरकमे उत्पन्न नहीं होते हैं उसीप्रकार
सम्यग्दृष्टिपर्योका नरकर नरकमे उत्पत्ति नहीं होती चाहिये ?

समाधान—सम्यग्दृष्टि नरकर प्रथम पृथिवीमे उत्पन्न होते हैं, इसका आगममे
निषेध नहीं है ।

शुद्धा—जिसप्रकार प्रथम पृथिवीमे सम्यग्दृष्टि उत्पन्न होते हैं, उसीप्रकार द्वितीयादि
पृथिवीपर्योके सम्यग्दृष्टि और क्यों उत्पन्न नहीं होते हैं ?

समाधान—नहीं क्योंकि, द्वितीयादि पृथिवीपर्योकी अपर्याप्त अवस्थाके साथ
सम्यग्दर्शनका विरोध है इसलिये सम्यग्दृष्टि द्वितीयादि पृथिवीपर्योके उत्पन्न नहीं होते हैं ।

इनकार गुणस्थानोंके अतिरिक्त ऊपरके गुणस्थानोंका नरकमे सद्भाव नहीं है
क्योंकि, सयमावयव और सयम-पर्यायके साथ नरकगतिमे उत्पत्ति होने का विरोध है ।

अब निर्धन गतिमे गुणस्थानोंके अन्वेषण करनेके लिये आवश्यक सूत्र कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि अमदनसम्यग्दृष्टि और सयना
सयत इन पांच गुणस्थानोंमे निर्धन होते हैं ॥ २६ ॥

शेष गतिपर्योके निवारण करनेके लिये 'निर्धन' पदका ग्रहण किया है । यह गुण
स्थान आदिनि निवारण करनेके लिये पांच गुणस्थानोंमे होते हैं यह पद दिया है । निर्धन

समुत्पद्यमानमवयवनिर्गमार्थः । उद्वापुर्गमयतमम्यग्दृष्टिमाग्रादनामिदं न तन्मिथ्यादृष्टिसंयतामयताना च तत्रापर्याप्तकाले सम्भवं ममस्मि तत्र तयोर्विरोधात् । अथ स्यात्तिर्यञ्च पञ्चविधा, तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियापर्याप्ततिर्यञ्च इति तत्र न ज्ञायते केमानि पञ्च गुणस्थानानि मन्तीति ? उच्यते, न तत्राप्यप्यपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पञ्च गुणा मन्ति, लक्ष्यपर्याप्तेषु मिथ्यादृष्टि यतिगिक्तशेषसम्भवाद् । तत्तुतोऽवगम्यत इति चेत् 'पञ्चिन्द्रिय निरिस्तर अपञ्चत मिच्छाङ्गी दपमाणेण केरडिया, अमरोज्जा इति, तत्रैस्स्येन मिथ्यादृष्टिगुणस्य सत्त्वाया प्र

पाच गुणस्थानोंमें होते हैं' इस सामान्य ध्वननसे सशय उत्पन्न हो सकता है कि ये पाच गुणस्थान कौन कौन हैं, इसलिये इस सशयको दूर करनेके लिये मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंका नाम निदर्श किया है ।

जिसप्रकार बद्धायुक्त असंयतसम्यग्दृष्टि और साक्षात्त गुणस्थानवालोंका निर्धारण गतिके अपर्याप्तकालमें सद्भाय समग्र है, उसप्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सपनामेवमेव निर्धनगतिके अपर्याप्तकालमें सद्भाय समग्र नहीं है, क्योंकि, निर्धनगतिके अपर्याप्तकालमें सत्त्वाय सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सपनासंयतका विरोध है ।

प्रश्ना—तिर्यच पाच प्रकारके होते हैं, सामान्य तिर्यच, पञ्चेन्द्रिय तिर्यच, पञ्चेन्द्रियपर्याप्त तिर्यच, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यचकी और पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त तिर्यच । परन्तु यह जान नहीं आया कि इन पाच भेदोंमेंसे किस भेदमें पूर्वात्त पाच गुणस्थान होते हैं ?

समाधान—उन शका पर उत्तर देने है कि अपर्याप्त पञ्चेन्द्रिय तिर्यचोंमें ती पाच गुणस्थान होते नहीं हैं, क्योंकि, लक्ष्यपर्याप्तकोंमें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थानको छोड़कर पाच गुणस्थान ही असंभव हैं ।

प्रश्ना—यह कैसे जाना कि लक्ष्यपर्याप्तक पञ्चेन्द्रिय तिर्यचोंमें पहला ही गुणस्थान होता है ?

समाधान—'पञ्चेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं' इसप्रकारकी जाका होन पर द्रव्यप्रमाणानुगममें उत्तर दिया कि 'असंख्या' है । इसलिये द्रव्यप्रमाणानुगममें लक्ष्यपर्याप्तक पञ्चेन्द्रिय तिर्यचोंक एक ही मिथ्यादृष्टि गुणस्थानकी संख्याका प्रतिपादन करनेवाला भावसंयत मिलता है । इसमें पता चलता है कि लक्ष्यपर्याप्तकोंक एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है और शेष चार प्रकारक तिर्यच पञ्चों ही गुणस्थान होत हैं । यदि पाच चार भेदोंमें पाच गुणस्थान न मान जाय, तो चार प्रकारक तिर्यचोंमें पाच गुणस्थानोंकी संख्या आदिक प्राप्तादत्त करनेवाला प्रमाण

पादस्पर्शान् । प्रपु पञ्चापि गुणस्थानानि सन्ति, अन्यथा तत्र पञ्चाना गुणस्थानाना मग्यादिप्रतिपादङ्ग-याचारस्याप्रामाण्यप्रसङ्गात् । अत्र पञ्चनिधास्तिर्यञ्चनं चिन्त निरूपिता इति चिन्त, 'आहृष्टाण्येपरिशेषविषय सामान्यम्' इति द्रव्यार्थिकनयार लभ्यमाना । निरर्थोपपर्याप्ताद्याया मिव्याहृष्टिमासादना एव सन्ति, न शेषास्तत्र तद्विम्पराभावात् । भग्न नाम सम्पत्तिमध्याहृष्टिसयतासयताना तत्रागम्य पर्याप्ताद्याया मेरेति नियमोपलम्भात् । कथ पुनरसयतसम्पत्तिमध्याहृष्टिनामसत्त्वमिति न, तत्रासयतसम्पत्तिमध्याहृष्टिनामुत्पत्तेरभावात् । तत्तुतोऽगम्यत इति चेत्—

उतु हेडिमातु पुन्योतु जोरस वण भरण सत्र इत्योतु ।

गेतेतु समुपगमइ समाहरी इ जो जीये ॥ १३३ ॥ इत्यार्षात् ।

भादि भागममें भ्रममाणताका प्रमग आचार्यग ।

धृता—प्रथम निर्धनसामान्यके स्थानपर पात्र प्रशरके तिर्यचोंका निरूपण क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'अपनेमें समग्र संपूर्ण विशेषोंको विषय करनेवाला सामान्य होता है' इस व्यापके अनुसार द्रव्यार्थिक अर्थात् सामान्य नयके अलम्बनसे संपूर्ण भेदोंका तिर्यच-सामान्यमें आत्मभाव कर लिया है, अतएव पाचों भेदोंका भग्न अलग निरूपण नहीं किया, किन्तु तिर्यच इतना सामान्य पद दिया है ।

तिर्यचनियोंके अपर्याप्तकालमें मध्याहृष्टि और सासादन ये दो गुणस्थानवाले ही होते हैं, शेष तीन गुणस्थानवाले नहीं होते हैं, क्योंकि, तिर्यचनियोंके अपर्याप्तकालमें, शेष तीन गुणस्थानोंका निरूपण करनेवाले भागमका अभाव है ।

धृता—तिर्यचनियोंके अपर्याप्तकालमें मध्याहृष्टि और संयतासयत इन दो गुणस्थानाचार्यका अभाव रहा भवे क्योंकि ये दो गुणस्थान पर्याप्तकालमें ही पाये जाते हैं, वेसा नियम मिलता है । परन्तु उनके अपर्याप्त कालमें अमयतसम्पत्तिमध्याहृष्टि जीयोंका अभाव कैसे माना जा सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, तिर्यचनियोंमें असंयतसम्पत्तिमध्याहृष्टियोंकी उत्पत्ति नहीं होती है, इसलिए उनके अपर्याप्त कालमें सीधा गुणस्थान नहीं पाया जाता है ।

गुता—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—'जो सम्पत्तिमध्याहृष्टि जीय होता है, वह प्रथम शुद्धिपूर्वक विना नर्धकई एह शुद्धिविधामें उपोतिथी व्यवहार और भवनधामी द्वयोंमें, और अर्थ प्रशरकी त्रिवयोंमें उत्पन्न नहीं होता है' ॥ १३३ ॥

मनुष्यगतौ गुणव्याजान्वेषणार्थमुत्तम्यमाह —

मणुस्सा चोदससु गुणट्टाणेषु अत्थि मिच्छाइट्टी, सासणसम्मा
इट्टी, सम्मामिच्छाइट्टी, असंजदसम्माइट्टी, सज्जदासंजदा, पमत्तसज्जदा,
अप्पमत्तसंजदा, अपुब्बकरण पविट्ठ-सुद्धि संजदेसु अत्थि उवसमा
सवा, अणियट्ठि-चादर सापराइय पविट्ठ-सुद्धि-संजदेसु अत्थि उवसमा
सवा, सुहुम-सांपराइय-पविट्ठ-सुद्धि-संजदेसु अत्थि उवसमा सवा,
उवसंत-कसाय-वीयराय-छट्ठमत्था, सीण-कसाय वीयराय-छट्ठमत्था,
सजोगिकेवली अजोगिकेवलि त्ति ॥ २७ ॥

एयस्म सुत्तस्म अत्थो पुत्त उच्चो त्ति णेदाणि उच्चद जाणिं नाणारणे फणा
भाजान्ते । पुत्तमुत्तमुत्तमामण सखग-विहिं एत्थ सवद्धधुरमामण सखग मत्तर नाणा
उणट्ठ सखेवदो भणिम्मामो । त जहा, तत्थ तार उवमामण विहिं उचडस्सामा ।
अणताणुनयि-कोध माण माया-लोभ मम्मत्त सम्मामिच्छत्त मिच्छत्तमिदि एत्थाया मत्त
पयटीओ जमनदमम्माट्ठि-प्पहुटि जाय अप्पमत्तमनदो त्ति तार एत्थेसु जो वा सा वा

इस आर्ष पत्रने जानने है कि असत्यमस्यगृहस्थ जीव निर्यत्रनियमों उपग न
दोते हैं ।

अथ मनुष्यगतिम गुणव्याजके अत्रेवण करनेके लिये भागिका मय करने है—

मिथ्याणि, नामादानस्यग्नि मयगमिरयाणि, असत्यमस्यग्नि, मयतामय,
प्रमत्तमयन, अप्रमत्तमयन, अपूर्वकरण अत्रिणि विगुहिरयताम उपशमक और क्षयक, मान
शुनिवादरमापराय प्रविष्ट विगुहिरयताम उपशमक और क्षयक, मयमापराय प्रविष्ट विगुहिर
मयताम उपशमक और क्षयक, उपशानकयाय योनिराग छमस्य, क्षीणकयाय योनिराग
छमस्य, मयगमिरयनी और अयोगिकेयनी इसतरह इन चारद गुणव्याजामें मनुष्य पद
जाने है ॥ २७ ॥

इस सूत्रका अर्थ पत्र क्या वा शुका है इसत्रिरे अथ नहा करने है क्योंकि
जिनका ज्ञान हो गया है उनका निरन ज्ञान करानम कर विनाय पत्र नहीं है । पत्र
उपशमन और क्षयविधिका व्यवस्था नहा क्या है इसत्रिरे उपशमक और क्षयक व्यवस्था
ज्ञान करानेके लिये यहा पर संवत्तमान उपशमन और क्षयविधिका संलपन कर
है । यह इसप्रकार है । उनमें भी पत्र उपशमनविधिका करने है—

यनताणुक्करी-वाध, मान मय्या पार एवम मय्यकयजनि मय्यमिरयाण मय्य

१ इत्येव च अर्थः ॥ २७ ॥

द्विदि सख्य-काल-मतेरे सखेज-सहस्याणि अणुभाग-मटयाणि पतेति । पत्तिममयम
सखेजगुणाए सेदीए पत्तेस-णिज्जर करेति । ज अप्पम-य-म्मे न पघटि तेमि पम्मा
मसखेज-गुणाए सेदीए अण्ण-यडीमु पज्झमाणियासु मरुमेदि । पुणो अप्प-म्मे
चोलेऊण अणियड्ढि गुणद्धाण पत्तिमिउणतोमुहुत्तमणेणेण पिण्णेणञ्चिय राग्ग म्माय
णव-णोरुसायाणमतर अंतोमुहुत्तेण करेदि । अरे इदे पद्म ममयात्ता उरि अंतोमुहुत्त
गत्तण असखेज गुणाए सेदीए णउमय पेदमुग्गामेति । उग्गामो गाम रि ? उदय
उदीरण-ओरुडुक्कण-परपयडिसरुम द्विदि-अणुभाग-मटयपतेदि रिगा म्मणमुग्गमा ।
तदो अंतोमुहुत्त गत्तण णउमयपेदमुग्गामिद्विदि-अणुभाग-मटयपतेदि रिगा म्मणमुग्गमा । तदो अंतोमुहुत्त

णोंको करता है । तथा एक एक स्थिति मण्डके कालमें सख्यात हज्जार अनुभाग मण्डकों का
करता है । और प्रतिसमय अमर्याद गुणित ध्रेणीरूपमे प्रदेशकी निर्जरा करता है । तथा पित
अप्रशस्त प्रवृत्तियोंका बाध नहीं होता है उनकी कर्मजर्माओंको उस समय रधनेवाला अन्य
प्रवृत्तियोंमें असख्यातगुणित ध्रेणीरूपसे सज्जन कर देता है । इसतरह अपूर्वकण गुणस्थानको
उत्तुघ्न करके भेद अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें प्रवेश करके, पर अन्तर्मुर्तन पूजा विधिमे
रहता है । तत्पश्चात् एक अन्तर्मुर्तन कालके द्वारा धारद कपाय और ना मोक्षपाय इनका
अन्तर (करण) करता है । (नीचेके ध ऊपरके नियकोंको छोड़कर बीचके किन्ने ही नियकोंके
द्रव्यको अन्य नियकोंके द्रव्यमें निक्षेपण करके बीचके नियकोंके अभाव करनेको अन्तरकरण
कहते हैं ।) अन्तरकरणविधिसे हो जाने पर प्रथम समयमे लेकर ऊपर अन्तर्मुर्तन जाकर
असख्यातगुणी ध्रेणीके द्वारा नपुमकपेदका उपशम करना है ।

श्री— उपशम किसे कहते हैं ?

समाधान— उदय, उदीरण, उत्कर्षण, अवर्षण, परप्रतिस्फरण, रि उति काण्व
घान और अनुभाग काण्डकघातके बिना ही कर्मोंके सत्ताम रहनेको उपशम कहते हैं ।
तदनन्तर एक अन्तर्मुर्तन जाकर नपुमकपेदकी उपशमविधिसे समान ही स्वादेदना

अ पृ १५४ दहनमोक्ष्य प्रवृत्तिमिधनुमगवदसनामपामन द्यायागममान जाव पगाव उपपमया
महिमवति । ल ख ख दी १०२

१ अत रिदा गुणमात्रा रि पयत्त तस्म करणमत्तरण । एव गवां व कियामा रि ॥ माग
मक्षिणार्ध रिदा अत्रामट्टपमाणा रिमग मण्णत्तमयाग्गमत्तरणमा । तय २ १ १

२ आमनि कमव खगने कालवगादन अनिरुपम । एव रिदा रिमव शम्भमि पट्टरा
एव । म रि २ १ कमवाजदुत्तरव पट्टिनामा २ पारवपट्टन । त रा २ १ अत्रअत्रवाम
श्रुतिपट्टम म । कवत्त पुमि वापत्तरव पारवपट्टन ॥ न भा वा २ १ २ उपपमया ताम व
एवनेम रिउति अनवर्द्धमि पय्यामि रि २ पयाग्गमा ह्मा ताम व पमा २ वा ह्म पतिमा रि ॥ ॥
मट्टिठवार्ध परिपिण्ड परिपिण्डानिहिनिरुपम पयार ह्मि १६५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
ममि । क म ३ २९७

गत्वा तेनेन सिद्धिणा छण्णोरुपाण पुरिमवेद चिगग भत रम्मेश मह जुगव
 तचो उवरि भमउण दो आरलियाओ गत्वा पुरिमवेद गरर-वधमुवमाम
 अतोमुहुत्तमुवर्णि गत्वा पडिसमयमसखत्ताण गुणवेदीण अवयकत्ताण-पवक
 मण्णिदे दोष्णि नि काय कोष मज्जण चिराण सतरम्मेश मह जुगरमुवमामे
 उवरि दो आरलियाओ समउणाओ गत्वा कोष सत्तलण गरर वधमुवमामे
 अतोमुहुत्त गत्वा तस्मि चर दुविह माणममरोज्जाण गुणमदीए माणमज्जण
 सत रम्मेश सत जुगर उवमामेदि । तदो समउण दो आरलियाओ गत्वा माण
 प्रमामेदि । तदो पडिसमयमसखत्ताण गुणाण मदीए उवमामेतो अतामुहुत्त गत्वा
 य माया सत्तलण चिराण सत रम्मेश सह जुगर उवमामेदि । तदो दा आरलि
 उणाओ गत्वा माया-सत्तलणमुवमामेदि । ततो समय पडि अमत्तज्जगुणाण
 समुवमामेतो अतोमुहुत्त गत्वा लाभ सत्तलण-चिराण सत रम्मेश सह पवक
 सराणावरण दुविह लोभ लोभ वेदगद्दाण विदिय नि भागे पुद्गमकिट्टीओ क

उपगम करता है । फिर एक अन्तर्मुहूर्त आकर उसा विधिसे पुनःपदने (एक समय कम
 आयलामात्र नवकसमयप्रवर्द्धको छोड़कर बाक्यसे संपूर्ण) प्रार्थना सत्तामें स्थित करने के सा
 छद तोकायायका उपगम करता है । इसके आगे एक समय कम हा आयली काल बिना क
 पुनःपदने नवक समयप्रवर्द्धका उपगम करता है । इसके पश्चात् प्रत्येक समयमें अमत्तज्जगुणा
 धेलाके द्वारा सत्तलणमुवमामेदि एक समय कम हो आयलामात्र नवक समयप्रवर्द्धको छोड़कर
 पदने सत्तामें स्थित करने के साथ अमत्तज्जगुणा और अमत्तज्जगुणा कीधेला एक अन्तर्मुहूर्तमें
 एकसाथ ही उपगम करता है । इसके पश्चात् एक समय कम हो आयलामात्र नवक समयप्रवर्द्धको
 नवक-समयप्रवर्द्धका उपगम करता है । नवकान् प्रतिमय अमत्तज्जगुणा धेलाके द्वारा
 सत्तलणमुवमामेदि एक समय कम हा आयलामात्र नवक समयप्रवर्द्धको छोड़कर प्रार्थना सत्तामें
 स्थित करने के साथ अमत्तज्जगुणा प्रार्थनामानका एक अन्तर्मुहूर्तमें उपगम करता है । इसके
 पश्चात् एक समयकम हा आयलामात्र नवक समयप्रवर्द्धको छोड़कर प्रार्थना सत्तामें
 करता है । तदनन्तर प्रतिमय अमत्तज्जगुणा गुणत धर्मावस्थामें उपगम करता हुआ माया
 सत्तलण नवक समयप्रवर्द्धका छदकर प्रार्थना सत्तामें स्थित करने के साथ अमत्तज्जगुणा
 प्रार्थना न मायाका अन्तर्मुहूर्त उपगम करता है । तपश्चात् एक समय कम हा आयलामात्र
 काय माया सत्तलण नवक समयप्रवर्द्धका उपगम करता है । तपश्चात् एक समय कम हा आयलामात्र
 सत्तलण न धेलाके साथ अमत्तज्जगुणा उपगम करता हुआ नवक समयप्रवर्द्धको छोड़कर प्रार्थना सत्तामें
 न मायाका अन्तर्मुहूर्त उपगम करता है । तपश्चात् एक समय कम हा आयलामात्र
 सत्तलण न धेलाके साथ अमत्तज्जगुणा उपगम करता हुआ नवक समयप्रवर्द्धको छोड़कर प्रार्थना सत्तामें
 न मायाका अन्तर्मुहूर्त उपगम करता है । तपश्चात् एक समय कम हा आयलामात्र

समय निर्दि रत्तस्मात् । समय नाम हि ? अदृष्ट स्मरण मूलत्तर-मेव

प्रगतिरूपसे समयण किया था उनका फिरसे अनन्तानुबन्धरूपसे समयण हो सकता है । इस प्रकार यद्यपि द्वितीयोपशम समयस्वरूपमें अनन्तानुबन्धकी सत्ता नहीं रहता है, फिर भी उसका पुन सद्भाव होना सम्भव है । अतः द्वितीयोपशम समयस्वरूपमें अनन्तानुबन्धकी विमयोक्तता न बह कर उपनाम 'अदृष्ट' प्रयोग किया हो ।

अथवा, द्वितीयोपशम समयस्वरूपकी उत्पत्ति कोई आशय तो अनन्तानुबन्धकी विमयोक्ततासे मानते हैं, और दूसरे आचार्य अनन्तानुबन्धके उपशमसे मानते हैं । इस प्रकार दा मत है । अनन्तानुबन्धके उपशमका उन प्रकारसे लक्षण बाधने समय सम्भव है कि धारणा करके यदि उन दोनों मतों पर रहा हो ।

उपशमन आर क्षण निर्दिष्टमें सर्वत्र एक समय वम दो आयत्तमात्र नयन समय प्रयत्नका उद्देश्य आया है । और यहाँ पर यह भी बतलाया है कि इनका प्राशन सत्तामें निश्चय कीजिए साथ उपशमन या क्षण न होकर अनन्तर उतने ही कालमें एक एक निश्चय समय उपनाम या क्षय होता है । इसका यह अन्तिमार्थ है कि जिन वमप्रवृत्तियोंका बाध, उद्भव और सतत-व्युत्पत्ति एकसाध होती है उनके बाध और उद्भव-व्युत्पत्ति के कालमें एक समय वम दा आयत्तमात्र नयन-समयप्रवृत्ति रह जाते हैं, जिनकी सतत-व्युत्पत्ति अनन्तर होती है । यह इस प्रकार है कि निश्चित (पुराणवेद आदि) प्रवृत्ति उपशमन या क्षण होनके दा आयत्त काल अवशिष्ट रह जाते पर द्विचरमायत्तके प्रथम समयमें बधे हुए द्रव्यका बाधायत्तका अन्तान्तर करके चरमायत्तके प्रथम समयसे लकर प्रत्येक समयमें एक एक फालिवा उपनाम या क्षय होता हुआ चरमायत्तक अन्त समयमें संपूर्णरानिसे उपनाम या क्षय होता है । तथा द्विचर मायत्तके द्वितीय समयमें जो द्रव्य बधता है उसका चरमायत्तके द्वितीय समयसे लकर अन्त समयतक उपनाम या क्षय होता हुआ अन्तिम फालिवा उद्वेक सबका उपनाम या क्षय होता है । इसीप्रकार द्विचरमायत्तक तृतीयानि समयमें बधे हुए द्रव्यका बाधायत्तका अन्तान्तर करके तृचरमायत्तके तृतीयानि समयसे लकर प्रत्येक फालिवा उपनाम या क्षय होता हुआ वमन दो फालिवा फालिवा द्रव्यका उद्वेक ही सबका उपनाम या क्षय होता है । तथा चरमायत्तके प्रथमादि समयमें बाध लय द्रव्यका उपनाम या क्षय होता होता है । बधता बधे हुए द्रव्यका तब आयत्त तब उपनाम नहीं होता ऐसा नियम है । इसप्रकार चरमायत्तका संपूर्ण लय जात । तृचरमायत्तका तब समयतक आयत्तमात्र लय उपनाम या क्षय होता होता है । इसका प्राशन सत्तामें निश्चय वमन उपनाम या क्षय ही जानक प्रमाण है । उपनाम या क्षय ही है ।

अथ उपनामोपशम का मत है

पर्व । अथ उपनाम उपशम

समाधान । जिनके म २३ न ११ उल्लेखित है २ न प्रवृत्ति १२ न ११ २

प्रवृत्ति १२ न ११ प्रवृत्ति १२ न ११ प्रवृत्ति १२ न ११ प्रवृत्ति १२ न ११

सात्त्विक-मानि-मभवादिभिरिति । तेन हि जीवाण्येव अत्र सुखादिसुखं पञ्चा मोक्षं
 कर्म-कर्मण्येव यतो समुत्पन्नमिति तेन पञ्चा मोक्षम-कर्म-कर्मणो हादि, 'कार्य
 कर्माणामर्थो यज्ज यमो' इति यायादा । तेन हि जीवाण्येव सुखं मोक्षम-कर्म-कर्मण्येव
 मर्त्यो मयु-रज्ज्वादि, पञ्चा अहं कर्माय कर्मण्येव मर्त्यो उपपज्जति इति षष्ठसु मोक्षम-कर्म-
 पञ्चा ज्ञानोद्भूते अदिकेने अहं कर्माय कर्मणि । तदेव यं श्रेष्ठं उपपन्नामिति
 भि के वि प्राप्तेया मानि, तत्र घटते । किं तत्र ? तत्र अग्नियद्विषो नाम ये
 के वि तत्र-मम वदमाना मे मये वि अदीन्यामाह वदमाणं शल्यं ममानं परिणामं
 त्मे चेत् मे ममानं पुनरेति निजता वि । अहं भिन्न-परिणामा पुनरिति तौ कर्मा
 त्मे त्रिभिर्भोगो, भिन्न परिणामनादो अनु-रक्षणो इव । यं च कर्म-कर्मण्येव

प्रश्नः—तत्र, जीवाणे माय, मयारकः सात्त्विक मयय इव इत्यत्र वाद विरुद्धः तद्वि
 मयः इति तत्र प्रश्नः इति जीवाण्येव अत्र कर्माय कर्मण्येव तत्र हा सात्त्विक मयय इव
 कर्म-कर्मण्येव यतो समुत्पन्नमिति तेन पञ्चा मोक्षम-कर्म-कर्मणो हादि, 'कार्य
 कर्माणामर्थो यज्ज यमो' इति यायादा । तेन हि जीवाण्येव सुखं मोक्षम-कर्म-कर्मण्येव
 मर्त्यो मयु-रज्ज्वादि, पञ्चा अहं कर्माय कर्मण्येव मर्त्यो उपपज्जति इति षष्ठसु मोक्षम-कर्म-
 पञ्चा ज्ञानोद्भूते अदिकेने अहं कर्माय कर्मणि । तदेव यं श्रेष्ठं उपपन्नामिति
 भि के वि प्राप्तेया मानि, तत्र घटते । किं तत्र ? तत्र अग्नियद्विषो नाम ये
 के वि तत्र-मम वदमाना मे मये वि अदीन्यामाह वदमाणं शल्यं ममानं परिणामं
 त्मे चेत् मे ममानं पुनरेति निजता वि । अहं भिन्न-परिणामा पुनरिति तौ कर्मा
 त्मे त्रिभिर्भोगो, भिन्न परिणामनादो अनु-रक्षणो इव । यं च कर्म-कर्मण्येव

प्रश्नः—तत्र, जीवाणे माय, मयारकः सात्त्विक मयय इव इत्यत्र वाद विरुद्धः तद्वि
 मयः इति तत्र प्रश्नः इति जीवाण्येव अत्र कर्माय कर्मण्येव तत्र हा सात्त्विक मयय इव
 कर्म-कर्मण्येव यतो समुत्पन्नमिति तेन पञ्चा मोक्षम-कर्म-कर्मणो हादि, 'कार्य
 कर्माणामर्थो यज्ज यमो' इति यायादा । तेन हि जीवाण्येव सुखं मोक्षम-कर्म-कर्मण्येव
 मर्त्यो मयु-रज्ज्वादि, पञ्चा अहं कर्माय कर्मण्येव मर्त्यो उपपज्जति इति षष्ठसु मोक्षम-कर्म-
 पञ्चा ज्ञानोद्भूते अदिकेने अहं कर्माय कर्मणि । तदेव यं श्रेष्ठं उपपन्नामिति
 भि के वि प्राप्तेया मानि, तत्र घटते । किं तत्र ? तत्र अग्नियद्विषो नाम ये
 के वि तत्र-मम वदमाना मे मये वि अदीन्यामाह वदमाणं शल्यं ममानं परिणामं
 त्मे चेत् मे ममानं पुनरेति निजता वि । अहं भिन्न-परिणामा पुनरिति तौ कर्मा
 त्मे त्रिभिर्भोगो, भिन्न परिणामनादो अनु-रक्षणो इव । यं च कर्म-कर्मण्येव

[२१]
 अमरेज्ज गुणमेदीयं एरण हेदु परिणाम उज्जिउणण्य पग्गिणामा द्विट्ठि अणुमाग
 एवडय पादस्स कारणभूता अत्थि, तन्नि निरुय सुत्तामासात्ता । ' रज्ज गाणनात्ता
 कारण गाणत्तमणुमाणिज्जदि ' इत्थि एत्थमपि ण पट्टं, एयात्ता मागगाणे बद्धं काट्ठि
 कसालोत्तमा । तथ वि हाट्टु णाम मोग्गरो अओ, ण तस्म मत्तणिमयत्त, तत्ता एय
 कायप्पत्तासि एवमात्तो इत्थि च ता कम्बहि एत्थ वि भवट्टु णाम द्विदिउवडयत्ता अणुभाग
 एवडयत्ता द्विदिउवडयत्ता गुणमत्तम गुणमत्ता द्विट्ठि अणुमागएव पग्गिणामाण गाणत्ता ता
 वि एव-समय एवडिय गाणा पीसाग मरिमा एव, अण्णहा अणियदि रेममणाणु
 वरत्तोदो । नह एव, ता मत्तेमिमणियदीणमय मयपस्सि उट्ठमाणाण द्विट्ठि अणुभाग
 पाणाण मरिमत्त एतास्सि सि च ण एव टोमा, इद्वत्तात्ता । एवम द्विट्ठि अणुभाग एवडयत्ता
 भूत परिणामाको छाहवत्त अ ए कोहत्ता परिणाम विमुत्तितात्तात्ता
 कारणभूत नदो ई, एयावि, एवम
 पाया अत्तात्ता

[illegible]

समाधान—यह कहना भी मरदा बनना है क्योंकि, एक मुद्रण अथवा प्रकाशन
 कायदा कायदा उपरान्त होता है।
 प्रश्न—यदि वह मुद्रण सब २५११ वटा भवन
 बन लकना है। यदि मुद्रण...

प्रश्न—यदि वह मुद्रा एक रुप है। क्या आप जानते हैं कि वह मुद्रा कहां से आई है ?
 जवाब—हां, यह मुद्रा भारत सरकार की है। यह मुद्रा भारत सरकार की है। यह मुद्रा भारत सरकार की है।

[illegible][illegible]

विज्जरा-सरमाग मरिसत्तण मिद्व । ममाग समय मरिय मन्नाणियद्वीण द्विदि जणुमाग
 पडण्णु मरिय गिरदत्तेसु धादिदासमेस द्विदि णुमागेसु सरिसत्तणेण चिट्ठमाणसु
 अप्पणो पमत्थापयत्तत्तण पयडीसु अ छद्माणेसु कथ पयडि निणामस्स विवज्जामो ?
 तस्मा ढोण्ड वयणाण मज्झ ममेव सुच होदि, जसो ' जिणा ण अण्णहा राहणो ' तदो
 तत्तयणाण रिप्पडिमेहो इदि च सत्तमेय, रिनु ण तत्तयणाणि म्याड आइल्लु
 आरिय ययणा, त्ते एयाण विरोहस्सत्थि सभयो इदि । आडरिय कट्ठियाण सत्तम्म-
 कमापवाट्टाण कथ सुचत्तगमिदि चे ण, तित्थपर इहिपत्थाण गणहरदेव कय गध-
 रयणाण राहणाण आडरिय पयपगण निरतरमागयाण जुग महाजग मुद्विसु ओहद्वीणु
 भायणाभारण पुणो ओहद्विय आगयाण पुणो मुद्वि-मुद्वीण राय म्हुण तित्थ वाच्छं
 भण्ण वज्ज भीरुहि गहिदत्तेहो आडरिणहि पोत्थण्णु चडागियाण असुचत्तण विरोहादा ।

मनस्ये भी समानता निद्व हो जाती ॥

श्री १—इत्तरद्व समान समयमें स्थित सपूर्ण अभिवृत्तिकरण गुणस्थानदालोंके
 स्थितिवत् और अनुभागमन्त्रोंके समानताका प्राप्त होने पर, घात करनेके पश्चात् दोष रहे हुए
 स्थिति भी अनुभागोंके समानरूपसे विद्यमान रहने पर और प्रवृत्तियोंके अपना अपना प्रशस्त
 और अप्रशस्तपक्षके छोड़ देने पर अर्थात् सभी बायोंके समानरूपसे रहने पर व्युत्पिष्ट
 होनेवाली प्रवृत्तियोंके विनाशमें विपर्यास कैसे हो सकता है ? अर्थात् किन्हीं जीवोंके पहले
 भग्न कयापके नष्ट हो जाने पर सोलह प्रवृत्तियोंका नाश होता है और किन्हीं जीवोंके पहले
 सोलह प्रवृत्तियोंके नष्ट हो जाने पर पश्चात् भाट कयापोंका नाश होता है, यह बात कैसे समझ
 हो सकती है ? इसलिये दोनों प्रकारके घटनोंमेंसे कोई एक घटन ही स्वरूप हो सकता है,
 क्योंकि जिन अन्वधापाक्षों नष्ट होते । नव उनके घटनोंमें विरोध नहीं होता आदिये ।

समाधान—यह कहना साथ है कि उनके घटनोंमें विरोध नहीं होता आदिये, परन्तु
 ये जिन द्रव्यके घटन न होकर उनके पश्चात् आचार्योंके घटन है, इसलिये उन घटनोंमें
 विरोध होता समझ है ।

श्री २—तो फिर आचार्योंके द्वारा कह गये सर्वप्रामाण्य और कयापप्रामाण्यको मूल
 पक्षा कम प्राप्त हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जिनका अर्थरूपसे तार्थक्येन प्रतीपादन किया है, भार
 गणधरैयन जिनका प्रत्य रचना का ऐसे बारद्व भग आचार्य परपराम निरन्तर चले आ रहे
 हैं । परन्तु काउके प्रमायसे उत्तरोत्तर गुडिंके क्षाण होने पर और उन भगोंको धारण करनेवाले
 योग्य पात्रके अभावमें ये उत्तरोत्तर क्षाण होने हुए आ रहे हैं । इसलिये जिन आचार्योंने भग
 धर्म बुद्धियाके पुरुषोंका अभाव देखा तो अत्यन्त पापभाट के आर जिनोंने मुख्यपराम
 अताप प्रदण किया था उन आचार्योंने नीधविच्छेदके प्रयत्ने उस समय अधिगण रहे हुए
 भग साथ धा अर्थको पोषियोंमें विविध किया, अतएव उनमें भग्नपत्ता नहीं आ सकता है ।

जदि एउ, तो एयाण पि उयणाण तउयउत्तादो मुत्तत्तण पाउटि ति चे भउउउ
मज्जे एवस्म मुत्तत्तण, ण दोण्ह पि पगेप्पम पिगेहादो । उम्मुत्त लिहता आडरिय
ऊथ वज्ज भीरुणो ? इदि चे ण एम दोमो, दोण्ह मज्जे एवस्मेउ मगहे त्रीममाणे उज्ज भीरु
णिउट्ठति ? दोण्ह पि सगह ऊरुताणमाडरियाण उज्ज भीरुताणिमामाणे । दोण्ह उयणा
मज्जे ऊ उयण मयमिदि चे मुट्ठेउली केउली वा जाणादि, ण जण्णो, तहा गिण्णया
भउादो । वड्डमाण ऊलाइरिण्हि उज्ज भीरुहि दोण्ह पि सगहो ऊय-पो, अण्णहा उज्ज
भीरुत्त-णिमामाणे ति ।

तदो अतोमुहुत्त गतूय चउमचलण णउणोउमायाणमतर उरेणि । सोउयाण
मतोमुहुत्त मेत्ति पढम द्विदि अणुउयाण समऊणाउलिय मेत्ति पढम-द्विदि उरेदि । त

शुका— यदि ऐसा है, तो इन दोनों ही वचनोंको द्वादशांगका अग्रपत्र होनेसे स्वरूप
प्राप्त हो जायगा ?

समाधान— दोनोंमसे किसी एक वचनको स्वरूपना भले ही प्राप्त होभो, किन्तु दोनोंके
स्वरूपना नहा प्राप्त हो सकता है, क्योंकि, उन दोनों वचनोंमें परस्पर विरोध पाया जाता है ।

शुका— उत्सूय लिखनेवाले आचार्य पापभीरु केसे माने जा सकते हैं ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, दोनों प्रकारके उचनानामसे किसी एक ही
वचनके समग्रह करने पर पापभीरुता निकल जाती है, अर्थात् उच्छन्नता आ जाती है । अतः
एक हीना प्रकारसे वचनका समग्रह करनेवाले आचार्योंके पापभीरुता नष्ट नहा होता है,
अर्थात् बनी रहती है ।

शुका— दोनों प्रकारके वचनोंमसे किस वचनको सत्य माना जाय ?

समाधान— इस बातको तो बेउली या श्रुतकेउली ही जान सकते हैं, हमरा कोई
नहीं जान सकता । अतः इससमय उसका निर्णय नहा हो सकता है, इसलिये पापभीरु धर्ममान
पालके आचार्योंको दोनोंका ही समग्रह करना चाहिये, अथवा पापभीरुताका निरास
हो जायगा ।

तत्पश्चात् आठ कथाय या सोलह प्रवृत्तियोंके नाश होनेपर एक अन्तर्मुक्ति जाकर
धार सञ्चलन और नी ना कथायाका अन्तरकरण करता है । अन्तरकरण करनेके पढ़ने बाद
सञ्चलन और ना ना-कथायसंयधी तीन वेदामें जिन दो प्रवृत्तियोंका उद्भूत रहना है उनकी
प्रथमस्थिति अन्तर्मुक्तिमात्र स्थापित करता है, और अनुद्भूतरूप ग्यारह प्रवृत्तियोंकी प्रथमस्थिति
एक समयकम आचर्यमात्र स्थापित करता है । तत्पश्चात् अन्तरकरण करके एक अन्तर्मुक्ति

१ म प्रता विता वि ' अ क प्रती वि-वि वि ' इति पाठ ।

२ मञ्जुश्रीय एव न तद उपाद न १५ । मयार्थ य वा । उपाद उपादना ता वि । २४ ११५

अतस्त्वनं फाउण पुणो भतामुहुत्ते गदे वपुमयवेदं खणेदि । तदो अतामुहुत्तं गत्तुणित्थि
वेदं खणेदि । तदो अतोमुहुत्तं गत्तुणं छण्णोरुमाणं पुरिमरदं रिगणं मतं रुम्मेणं मह
मवेत्तुं गमिमं-ममं जुगं खणेदि । तदा 'दो आरखियं मतं कालं गत्तुं पुरिमरे'
खणेदि । तदो अतोमुहुत्तमुपरि गत्तुं बोधं-मत्तलणं खणेदि । तदा अतोमुहुत्तमुपरि गत्तुं
माणं-मत्तलणं खणेदि । तदो अतोमुहुत्तं गत्तुं मायां मत्तलणं खणेदि । तदो अतोमुहुत्तं
गत्तुं सुद्धं मापराडयं गुणद्वयाणं पडिबज्जदि । सो वि सुद्धं मापराडओ अप्पणो चरिमं
ममं लाभं मत्तलणं खणेदि । तदो से काले गीणं कमाओ होदुणं अतोमुहुत्तं गमियं
अप्पणो अट्ठाणं दु चरिमं ममं गिरा पयलाओ दो वि अग्गेणं खणेदि । तदो से काले
पयणाणाररणीयं 'तदुद्धं पयणाणाररणीयं पयअतराडयमिदि' बोद्धं मपपडीओ अप्पणो चरिमं
ममं खणेदि । तदेषु माट्ठिं कम्मेसु खीणसु सत्तो गिगिणो होत्ति । सत्तो गिगिरेलीं ण
किंचि कम्मं खणेदि । तदो कमेणं गिरियं जोगं गिराहं फाउणं अने गिगिरेलीं
होत्ति । सा वि अप्पणो दु चरिमं-ममं अणुदयवेदणीयं-देवगणिं पयगरीं पयं
सरीरमपायं पयसरीं गवधणं छस्समठाणं तिणिअगोउगं-छस्समपडणं पचरणं-दागधं पयस-

ज्ञान पर तपुसकपेदका क्षय करता है । तदनन्तर एक भक्तमुहूर्त जाकर स्वापेदका क्षय करता
है । फिर एक भक्तमुहूर्त जाकर मयेद भागध द्विचरम समयमें पुरपेदके पुरातन सत्कारण
कर्मोंके साथ छद्म मो कथावक्ता एकसाथ क्षय करता है । तदनन्तर एक समय कर्म दो भाषलीं
मात्र कालके ध्येयता होने पर पुरपेदका क्षय करता है । तत्पश्चात् एक भक्तमुहूर्त ऊपर
जाकर बोध सज्जनका क्षय करता है । इसके पाछे एक भक्तमुहूर्त ऊपर जाकर मान-सज्ज
लका क्षय करता है । इसके पाछे एक भक्तमुहूर्त ऊपर जाकर माया-सज्जनका क्षय करता
है । पुन एक भक्तमुहूर्त ऊपर जाकर मूढमसापराय गुणस्थानको प्राप्त होता है । यद् मूढम
सापराय गुणस्थानयाग जीव भी अपने गुणस्थानके अन्तिम समयम लोभ-सज्जनका क्षय
करता है । तदनन्तर उसी कालमें हीनकथाय गुणस्थानको प्राप्त करके आर भक्तमुहूर्त बिताकर
अपने कालके द्विचरम समयमें निद्रा आर प्रत्यङ्ग इन दो प्रवृत्तियोंका एकसाथ क्षय करता है ।
इसके पाछे अपने कालके अन्तिम समयमें पाद भानावरण, चातुर्दन्तावरण आर पाद भक्तताय
इन साध प्रवृत्तियोंका क्षय करता है । इसतरह इन साध कर्म प्रवृत्तियोंके क्षय दो जाने पर
यद् जाय संयोगकेपलाजिन होता है । संयोगीजिन किसी भी कर्मका क्षय नहीं करते हैं ।
इसके पाछे विहार करके आर क्रमसे योगनियोध करके वे अयोगि केवर्त्त होते हैं । वे भी
अपने कालके द्विचरम समयम यद्नायकी दोनों प्रवृत्तियोंमें अनुदयरूप बाह्य एक दृग्गति
पाद शरीर पाद शरीरोंक मयात पाद गवधोंक बधन छद्म संस्थान तान आगोपाग छद्म

उत्तमामण्डि वारदा ते उत्तमामणा ।

गदि मग्गणाययव-देसमण्डि सुण मग्गणट्ट मुत्तमा—

देवा चटुसु द्वाणेषु अत्थि मिच्छाड्ढी सामणमम्माड्ढी सम्मा
मिच्छाड्ढी असजदसम्माड्ढि ति ॥ २८ ॥

इवाधुपुं स्थानेषु सन्ति । यानि जानीति चन्मियादणि मामाननमग्गण्डि
मग्गमियादणि अमयउमग्गण्डिद्वेति । प्रागुक्तार्थसामनेषां गुणस्थानानां निद
स्वप्नमुच्यते ।

उपशमक वदते है ।

रिपेपार्थ—चौदहवें गुणस्थानम अधिकत अधिक पचासी प्रहृतिपौंका सत्ता सत्ता
है । उनमेंसे बहकर प्रहृतिपौंका उपाय समयमें भीत उपायगत बारह तथा अनुपपत्तानुपूर्वी
इसप्रकार तेरह प्रहृतिपौंका भूत समयमें सब टाला है । यथाध्यासि सज्जकणव मग्गण्डि
आदि प्राणोंमें इसी एक सत्ता उपाय मित्रता है । बिनु उपाय अनुपपत्तानुपूर्वीका उपाय
समयमें भी सब बन्तव्या गया है, जिसका उपाय कथप्रहृति अर्द्ध प्राणोंमें भी मित्रता है ।
तथा उसकी मुद्रिका लिये इसप्रकार समर्थन भः किया गया है कि अनुपपत्तानु प्रहृतिपौंका
लिपुक्कसेवमणके द्वारा उपायगत बारह प्रहृतिपौंका ही उपाय समयमें भीत्रता है । उपाय
है । भूत मनुपपत्तानुपूर्वीका भी उपाय समयमें ही भूतवत्ता है । जाना है
पयोंकि, अनुपपत्तानुपूर्वीका उपाय कथम विमदवतिक्क गुणस्थानोंमें ही जाना है । उपाय
कही । इसप्रकार दूसरे आचार्यों के मतानुसार उपाय समयमें अनुपपत्तानुपूर्वीका उपाय
भीत भूत समयमें बारह प्रहृतिपौंका सब जाना है ।

अथ तानिप्राणानां अद्ययवदय इवतानि गुणस्थानाव अभ्यवका वरमद निध आनवा
वृत्त वदते है—

मिच्छादणि आगग्गण्डिअग्गण्डि सज्जमिच्छादणि भीत असज्जमग्गण्डि हव वण
गुणस्थानोंमें सब पाये जाते हैं ॥ २८ ॥

इय आग गुणस्थानां पाये जाते हैं ।

द्वितीया—य आग गुणस्थानां वीमल है ?

समाधान—मिच्छादणि आगग्गण्डिअग्गण्डि सज्जमिच्छादणि अ ॥ असज्जमग्गण्डि
इसप्रकार वीमल आग गुणस्थानां जाना है ।

इत गुणस्थानोंका वरमद पदने कह आग है । इस उपाय द्वा वर वरका वरमद वर
कही वदते हैं ।

गत्या अनया गत्या सह गुणद्वयं योमाप्तिं नाप्नोति, तत्र पुनरिति निष्पन्नमनघर-
मिति न, तस्य दृग्प्रसामपि स्पष्टीकरणार्थात् । 'प्रतिपाद्यस्य दृग्प्रसामादिव
निर्णयात्पान्न वक्तव्यमपि कश्च' इति न्यायात् । अथवा न त्रिधा सिद्ध्या-
र्मेतुप्यादिभिर्न्यायानिभि समान नियममुप्याति-यतिगिनमिध्या-सो-मात्रात् ।
नापि निर्णयार्थानामेव चतुर्गतेष्वप्यस्य दृग्प्रसामात् । न चाभावा मनुष्यस्या यतिगिन-
विश्वामुपलब्धातिनि पर्यायनरसनापृष्टमयत्नेन सति प्रसिद्धिमा । न सिद्ध्या-
पर्याया औपलब्ध्यातिना कोपात्सगिर तर्षा तस्यापृष्टमनुपलब्ध्या-
मुपपत्तेः । तत्रमन्मानपामभेत् । तथा च न गतिमत्र नापि गुणम इति दृश्यते
कान्तापृष्टमयत्नेन सतिप्रतिपक्षान्तिप्राप्य-
नाय राग यत्रस्यापरा । नाभि

इत्यनेन नदी । इत्यप्रकारे निरूपण करनेसे हा यह जाना जाता है कि इस गतिर्वा इम मानव
साथ गुणस्थानोंकी अवस्था समानता है, इसका इसके साथ नहीं । इति । विरम इत्यत्र कथन
करना निष्पन्न है ।

समाधान—नदी, कर्षोक्ति, अ-पुण्ड्रिके गिर्षोक्ति भा विषयका कर्षोक्ति हा
जाये, इत्यत्रे इम कथनका यहाँ पर निरूपण किया है, कर्षोक्ति गिरका विहाय
नदी निजय उपलब्ध कर देना ही चाहिए कथनोंका कर्ष है ऐसा स्पष्ट है ।

अथवा, निर्णयोंके सिद्ध्यापत्ति भाव मनुष्यादि मानव गतिमयर्षी और्षोक्ति सिद्ध्यापत्ति
मापोंक समान नहीं है, कर्षोक्ति, निर्णय और मनुष्यादि-का उद्भव सिद्ध्यापत्ति
भापोंका स्वयं व सहाय नहीं पाया जाता है । इत्यत्रे अब कि निर्णयोंके कर्ष
भेद है, तो तदाधिन मापोंमें भी भेद होता है मय ५ । यदि वही उप
निर्णयोंके परस्पर एकता अथाह भेद है, या भी करती नहीं बन सके
है, कर्षोक्ति, निर्णयोंके परस्पर भेद मानव का गतिमय अ-पुण्ड्रिक
प्रतिपक्ष आजायगा । परन्तु यहाँ गतिमयका अभाव माना नहीं जा सकता है कर्षोक्ति
अतिरिक्त निर्णयोंके उपरान्त होता है । इत्यप्रकार सिद्ध्यापत्तिमयका ।
करके कितने ही लोग विचारमग्न हैं । इत्यप्रकार सिद्ध्यापत्तिमयका
है, कर्षोक्ति, इत्यप्रकार तत्परा यत्नसे भिन्न उपलब्ध होती है । इत्यप्रकार
औपलब्धमय दृग्प्रसाम नहीं होता है । और यदि भिन्न मान ही जाये तो
पर्याय इम औपलब्ध है । इत्यप्रकार कथन भी नहीं बनता है । इत्यत्रे इम
पर्यायोंका अर्थ दृग्प्रसाम भेद है । इत्यप्रकार अब सिद्ध्यापत्तिमय
नदी होता है तो गतिमयका भेद भी भिन्न नहीं है । कथना है भव न
मिन्न होता है । इत्यप्रकार केवल दृग्प्रसाममयका ही सिद्ध्यापत्तिमय
विषयोंमें पदे हुए हैं । इति । इम होने कर्षोक्तिमय अ-पुण्ड्रिक
कथन १०८

इत्याना मनुष्याणा गुणद्वारण माह्वयामाह्वयप्रतिपादनाप्रमाह—
मणुस्मा मिसमा मिच्छाद्विषहृदि जाय मजदासजदा । ति ॥ ३१ ॥

जातिवतुषु गुणस्थानेषु य मनुष्यान्म मिच्छासन्निभधनुर्भागुर्गमिगतिर्वि
ममाना मयमामयमन न्यिग्मि ।
तेण पर मुद्धा मणुस्मा ॥ ३२ ॥

ग्रपगुणाना मनुष्यगतिच्यतिगित्तिगतिप्रयम्भराच्यगुणा मनुष्यध्वय सम्भरान्ति
उपरितनगुणमनुष्या न केचिन्ममाना इति यावत् । अनन्तरगत्या माह्वयमाह्वय
वा रिमिति नात्तमिति चन, जाभ्यामर प्रपणाभ्या मन्मथगामापि नन्तरमा
त्वत्तेरिति ।
इन्द्रियमार्गणाया गुणस्थाना वपणाप्रमृत्तप्रमाह—
इदियाणुवादेण अत्वि एहदिया वीहदिया तीहदिया चतुरिदिया

पचिदिया अणिदिया चेदि ॥ ३३ ॥
इत्या गया है ।

अथ मनुष्योक्त गुणस्थानात् द्वाग समानता आर समानताय प्रत्यक्षं च ॥ ३४ ॥
अथे भागेका नृप बहुते ह—
मिच्छाद्विषादि एव त्वत्त्वयतामेवमनवत् मनुष्य मिथ ॥ ३५ ॥

प्रथम गुणस्थानस एव त्वत्त्वयतामेवमनवत् मनुष्य मिथ ॥ ३६ ॥
गुणस्थानोक्त अथैता माल गतिहे जायत्वा साध समान ह आर त्वत्त्वयतामेवमनवत् मनुष्य मिथ ॥ ३७ ॥
अथैता निर्वैकात् साध समान ह ।
पावप गुणस्थानस आग मृत् (कचल) मनुष्य ॥ ३८ ॥

प्रारम्भ पाव मणवस्थानात् ॥ एव एव त्वत्त्वयतामेवमनवत् मनुष्य मिथ ॥ ३९ ॥
नयाम नदी पाव जात ह इत्यादि ॥ त्वत्त्वयतामेवमनवत् मनुष्य मिथ ॥ ४० ॥
एव त्वत्त्वयतामेवमनवत् मनुष्य मिथ ॥ ४१ ॥
न ह ॥ एव त्वत्त्वयतामेवमनवत् मनुष्य मिथ ॥ ४२ ॥

अथैता त्वत्त्वयतामेवमनवत् मनुष्य मिथ ॥ ४३ ॥
अथैता त्वत्त्वयतामेवमनवत् मनुष्य मिथ ॥ ४४ ॥
अथैता त्वत्त्वयतामेवमनवत् मनुष्य मिथ ॥ ४५ ॥

ममा शन— ॥
अथैता त्वत्त्वयतामेवमनवत् मनुष्य मिथ ॥ ४६ ॥
अथैता त्वत्त्वयतामेवमनवत् मनुष्य मिथ ॥ ४७ ॥
अथैता त्वत्त्वयतामेवमनवत् मनुष्य मिथ ॥ ४८ ॥
अथैता त्वत्त्वयतामेवमनवत् मनुष्य मिथ ॥ ४९ ॥
अथैता त्वत्त्वयतामेवमनवत् मनुष्य मिथ ॥ ५० ॥

[illegible]

ननु पुनश्चैव नानिन्द्रियाणां भयानकमो हि नाम व्यनक्तिप्रसङ्गः किं वा । य
 न्निन्द्रियाणि हि ? किं वा , न मया मयङ्गु मयसोर्गो वा
 । ननु चेत्तत्तदुक्तम् । न प्रतिनिधायमानमेव इति ।

[illegible][illegible]

4 4 100 1 8 7 0 4 10 8 8 10 1 1

18

t *a* *r* *r* *i*

f *m* *f* *c* *t*

411

1014

4 5

चेन्न तद्धमणविव्याया तममशयभासात् । अर्गणे ममशयभासे मणमाडास्त इति
 चेन्न आयुष भयस्य मणहेतुः । पुन य मयटन इति चेन्नानामेतेषमहतर्चप्रशान्ति
 पुन मयटनोपलम्भात्, द्वयोर्मन्या मघटने विगेषाभावात्, तमघटनेहेतुर्मोक्षस्य
 सार्येनित्यादवगर्तनित्यस्य मयशान्ति । इत्येन्द्रियप्रमितर्चप्रशान्ति न भवामिति
 सिद्धेयत इति चेन्न, तद्धमणमन्तर्गागुभमजोशाना भवद्रुम्यात्तिर्गानानुपपत्त इति ।
 तेनामप्रदेशेषु इन्द्रिय यपत्तेभाभ्यु य प्रतिनियतमव्यानो नमरुमायापातिताप्रशान्ति
 पुट्टन्प्रचय म राग निर्गति । मयगिरासाग अद्भुतस्यमग्येयभागप्रमिता नगुगिन्द्रियम
 वागनिर्गति । यरनात्तिरासाग अद्भुतस्यमग्येयभागप्रमिता श्रोत्रस्य राया निर्गति ।

ममशान्तिरूपको प्राप्त शरीरको भी जीवप्रदेशोंको समाम भ्रमण होना चाहिये ?

ममाशान्ति—वेसा नरादे कयोकि, जीवप्रदेशोंको भ्रमणमय अयमयाम शरीरको उत्तम
 ममशान्तिरूपको नरा मयना है ।

गृहा—भ्रमणको ममय शरीरको साथ जीवप्रदेशोंको समवायमयकथ नहीं मानने पर
 ममशान्तिरूपको जानना ?

ममाशान्ति—नरा कयोकि, आयु कर्मको जयको मरणको कारण माना है ।

गृहा—ना जीवप्रदेशोंको शरीरको साथ फिरने समवायमयकथ कैम बन जाता है ?

ममाशान्ति—इमम भा कोई कथा नरा है, कयोकि, ज्ञिदाने माना भयवाभोंको
 उत्तममय कथिना है, मम रायाक प्रदेशोंको शरीरको साथ फिरने समवायमयकथ उत्तम
 इमम कथ नरा ही नरा है । नरा को मने पदार्थोंको मयमय जानने कोई विगेष भी नहीं
 भवता है । भवता जीवप्रमाण भाग शरीर मयमयकथ नगुगय कमायकथ वागिनी विविधमय
 कथ मय इमम है । भवति विमय अनेक प्रकारको कथ भवमयम भाग है मने कथको मने
 कथ ही जानना है ।

गृहा—इमम इमम प्रमाण जीवप्रमाणोंको प्रमाण नहीं माना ममा कथा मने
 कथ नरे है ?

ममाशान्ति—नरा कयोकि याद इमम इमम प्रमाण जीवप्रमाणोंको भ्रमण नहीं माना
 इमम म भवति इमम मम प्रमाण कथन कथ ना । ना भ्रमण कथनी दूई पृथिवी भ विद्वान् कथ
 मम इममय है । इमम इमम प्रमाणोंको प्रमाण कथन मयमयकथ इमम प्रमाण भवमयकथ
 मम इमम मयमय कथ मम मम । इममय है इमम मयमयकथ प्रमाण इममयकथ मम मयमय
 इममय है इमम मयमय मयमय मयमय मयमय मयमय मयमय मयमय मयमय मयमय मयमय
 इममय है इमम मयमय मयमय मयमय मयमय मयमय मयमय मयमय मयमय मयमय मयमय
 इममय है इमम मयमय मयमय मयमय मयमय मयमय मयमय मयमय मयमय मयमय मयमय

अतिमुक्त रूपमम्यना अङ्गुलम्यामगयभागप्रमिता प्राणनिगति । अधचन्द्रासारा
 धुमप्रासाग वाङ्गुलम्य मगययभागप्रमिता गमननिगति । स्पर्शनन्त्रियनिगतिरनियत-
 मम्याना । सा जघन्यन अङ्गुलम्यामगययभागप्रमिता मृष्मर्गगुण उरपणमगयययनाङ्गुल
 प्रमिता महामत्स्यान्त्रिमनीरुप । मरुत साराश्वभुष प्रज्ञा, श्रात्रन्त्रियप्रज्ञाः
 मरयेयगुणा, प्राणन्त्रियप्रज्ञा निक्षपाधिरा निहायाममगययगुणा, स्पगन मगयय
 गुणा । उक्त च—

घनागुलके असह्यातयें भाग प्रमाण शोध शद्वियक बाह निवृत्ति होना ह । कदम्बके पूलके
 समान आकारवाला भोर घनागुलके असह्यातयें भाग प्रमाण प्राण शद्वियकी बाह निवृत्ति
 होती है । अर्ध-अर्ध अथवा गुरपाके समान आकारवाला भोर घनागुलके असह्यातयें भाग
 प्रमाण रसना शद्वियकी बाह निवृत्ति होता ह । स्पशन शद्वियकी बाह निवृत्ति अनियत
 आकारवाली होती है । यह जघन्य प्रमाणक अवे सा घनागुलके असह्यातयें भाग प्रमाण
 मृष्मनिगोदिया लम्पयर्पाक जीवके (तीन मोहिले उरग होनेके तुलाय समवयवर्ग) गारमें
 पाई जाती है, और उरग प्रमाणक अप सा सरयान घनागुल प्रमाण महामत्स्य आदि घन
 जीवोंके शरारमें पाई जाता है । उर शद्वियके अधगादनाक प्रदेग सब सम है । उनमें सरयान
 गुण शोध शद्वियके प्रदेग है । उनमें अधिक प्राण शद्वियके प्रज्ञा है । उनमें असह्यातगुणे
 निगता-शद्वियमें प्रदेग है । और उनमें सरयानगुणे स्पर्शन शद्वियमें प्रदेग है ।

विशेषार्थ— ऊपर शद्वियोंकी अगगादना बतला कर जो वस्तु आदि शद्वियोंके प्रदेगोंका
 प्रमाण बतलाया गया ह, यह शद्वियोंकी अगगादनाके तारतम्यक ह । बाधक जानना यादिय ।
 यान् बहुत शद्विय अपनी अगगादनामें जितने आकाश प्रदेगोंकी होना है, उनमें सरयान
 के आकाश प्रदेगोंको ध्यान पर ध्यायेदिय रहती ह । उसमें विशेष अधिक आकाशप्रदेगोंको
 शद्विय ध्यान करता ह । उसमें सरयानगण आकाशप्रदेगोंको ध्यान कर जितना शद्विय
 ता है और उसमें सरयानगुण आकाश प्रदेगोंको ध्यान कर स्थान है द्रव्य रहती ह ।
 हलार चायकाणक । अगुल मरुतगण इयाग गा शस हसा कान्तक । पुष्ट होता ह ।
 गादनाके समान है द्रवाकार आ मप्रदेगोंके । इनमें आ । यह वम लग है सजना ह ।
 शत्रुपातकम स्पर्शनरसतम लव ३ शत्रुपात हस मुखक शत्रुग करत हूण सनेता
 ममे स्थान है द्रव्य अदग । न नगल है ३३ बनेला ह । ११ व ११ है । द्रव्य ह । अब
 और शद्वियाकार ममप्रज्ञा के । शत्रुपात । वम आ प्रज्ञास घातन नहा होता ह
 एक जघन अगगादना ३ द्रव्य मर आ मप्रज्ञा नन नप्रमाण या अन नगुल ममप्रज्ञा
 सजना । सभय १ १ । पर बाहानगलक प्रज्ञाके । अगगादना वन व ३३ । वम गवा ह ।

जगन्नालिया ममूरी चददमुत्त-मुल्ल तु ला ।

इदिय-सठाणाइ परस पुण णेय-मठाण ॥ १३४ ॥

उपक्रियतेऽनेनेत्युपकरणम्, येन निर्वृत्तेरुपकारं क्रियते तदुपकरणम् । तद् द्वित्रिय
माद्याभ्यन्तर्भेदात् । तत्राभ्यन्तरं कृष्णशुद्धमण्डलम् । त्रयमभिप्रायभ्रमद्वयादि । अत्र गण्डि
येषु ज्ञेयम्^१ । लब्ध्युपयोगो भावेन्द्रियम्^२ । इन्द्रियनिर्वृत्तिरुत्तु अयोपशमविशेषो लब्धि^३ ।
यत्प्रधानादात्मा द्रव्येन्द्रियनिर्वृत्तिं प्रति व्याप्रियते स नानागणक्षयोपशमविशेषो
लब्धिगतिं विनायते । तदुक्तनिमित्तं प्रतीन्योन्यमान आत्मन परिणाम उपयाग
इत्यपदिश्यते । तन्नेतदुभय भावेन्द्रियम् । उपयोगस्य तत्फलत्वादिन्द्रिय-यपशमानुपपत्ति

श्रोत्र इन्द्रियका आकार यरसी मालीके समान है, अथु इन्द्रियका ममूरीके समान
रसना-इन्द्रियका भाषे चन्द्रमाके समान, घ्राण इन्द्रियका कदम्बके फूलके समान आकार है और
स्पर्शन इन्द्रिय अनेक आकारवाली है ॥ १३४ ॥

जिम्मे द्वारा उपकार किया जाता है, अर्थात् जो निर्वृत्तिका उपकार करता है उसे
उपकरण कहते हैं । यह बाह्य उपकरण और अभ्यन्तर उपकरणके भेदसे दो प्रकारका है । उनमें
कृष्ण और शुद्ध मण्डल नेत्र इन्द्रियका अभ्यन्तर उपकरण है, और दोनों पलकें तथा शैली
नेत्रगोम (बरोनी) आदि उसने बाह्य उपकरण हैं । शरीरप्रकार श्रोत्र इन्द्रियोंमें जाता जादिये ।

लब्धि और उपयोगको भावेन्द्रिय कहते हैं । इन्द्रियकी निर्वृत्तिका कारणभूत या
अयोपशम विशेष है उसे लब्धि कहते हैं । अर्थात् जिम्मे मणिधानने आत्मा द्रव्येन्द्रियकी
स्थानामें व्यापार करता है, वेम ज्ञानागण कर्मके शयोपशम विशेषको लब्धि कहते हैं । और
उस पूर्ण निमित्तक आगच्छनने उत्पन्न होनेवाले आत्माके परिणामको उपयोग कहते हैं ।

१ यस्मिन् ४० ध्वनि विनाशः सप्तगणितः । विनाशः सप्तगणितः सप्तगणितः ॥ १३०

२ यस्मिन् ४० ध्वनि विनाशः सप्तगणितः । विनाशः सप्तगणितः ॥ १३०

३ यस्मिन् ४० ध्वनि विनाशः सप्तगणितः । विनाशः सप्तगणितः ॥ १३०

४ यस्मिन् ४० ध्वनि विनाशः सप्तगणितः । विनाशः सप्तगणितः ॥ १३०

५ यस्मिन् ४० ध्वनि विनाशः सप्तगणितः । विनाशः सप्तगणितः ॥ १३०

६ यस्मिन् ४० ध्वनि विनाशः सप्तगणितः । विनाशः सप्तगणितः ॥ १३०

७ यस्मिन् ४० ध्वनि विनाशः सप्तगणितः । विनाशः सप्तगणितः ॥ १३०

८ यस्मिन् ४० ध्वनि विनाशः सप्तगणितः । विनाशः सप्तगणितः ॥ १३०

गिति चेन्न साधनधर्मस्य साधनमुक्ते । काय हि नात्र साधनमनुसृतमान इष्ट, यथा
यथासाध्यविवेकत विमानं यद्व इति । तथेन्द्रियनिर्गम उपपत्त्यापि इन्द्रियमित्यपत्तिरिति ।
इन्द्रियं तद्विन्द्रेण मृष्टमिति वा य इन्द्रियगन्तव्यं स ध्यायाम् प्राशान्यन विद्वन्
इति तथेन्द्रियव्यपत्त्या न्याय्य इति । नन इन्द्रियस्य अनुशास्त्रं इन्द्रियानुशास्त्रं नन
मन्ति तथेन्द्रिया । एवमित्यस्य यथा त एन्द्रिया । किं चन्द्रमित्यस्य ? स्पष्टम् ।
वीर्यान्तगायम्यानेन्द्रियाग्रणमयापामाज्ञापाज्ञानामलाभाग्रम्भास्पृशयननति स्पष्टान
कण्ठसारः । इन्द्रियस्य स्वातन्त्र्यविरोधाया कर्तव्यं च भवति । यथा पुत्रानन्दमुपनिषत्
मति स्पृशतीति स्पष्टम् । कौटिल्ये विषय ? स्पष्टः । साध्याः उच्यते यथा रात्रि
हस्तप्रकार लक्षि भूति उपयोग ये शान्ते भावेन्द्रिया इति ।

पुत्रा—उपयोग इन्द्रियोंका क्या है, क्योंकि उनका उपयोग साध्यास साध्या है
इसलिये उपयोगको इन्द्रिय मन्त्रा क्या उचित मन्त्रा ?

समाधान—मन्त्रा क्योंकि कारणमें रहनेवाला धर्मकी कारणमें अनुगुणित होती है ।
अर्थात् कार्य लेकमें कारणका अनुकरण करता हुआ क्या जाता है । जैसे घण्टा आवाज
परिणत हुए आनको घण्टा बजा जाता है, इसप्रकार इन्द्रियोंमें उपयोग हुए उपपत्त्याभी
इन्द्रिय मन्त्रा ही होते हैं ।

इन्द्र (आत्मा) के लिये इन्द्रिय कहते हैं । वा आ इन्द्र अर्थात् आत्मबल
रखा गई है उस इन्द्रिय कहते हैं । इसप्रकार जो इन्द्रिय पाएँगा अर्थ क्या जाता है वह
क्षयोपगममें प्रयोजनमें पाया जाता है इसलिये उपपत्त्यको ही उप मन्त्रा क्या
उचित है ।

उक्त प्रकारकी साध्योंकी अपर्याय आ अनुवाद अर्थात् आत्मबलकृत कथन विचार
जाता है उसे इन्द्रियानुवाद कहते हैं । उसकी अपर्याय वचनार्थ अर्थ है । जिसके लक्ष्य है
इन्द्रिय पारि जाती है उन्हें वचनार्थ आप कहते हैं ।

पुत्रा—यह वह इन्द्रिय वचनार्थ है ?

समाधान—यह वह है । यह स्पष्ट मन्त्रा का अर्थ है ।

वीर्यान्तगाय भाग स्पष्टानुवादार्थक वचनार्थ साध्याग्रमम सः साध्याग्रमम सः साध्याग्रमम
उक्तप्रकार भागवतमें जिसके द्वारा आत्मा वचनार्थक वचनार्थ है । मन्त्रा वह आत्म बल
प्रयोजन मन्त्रासाध्यास है उसे स्पष्टानुवाद कहते हैं । यह वचनार्थक वचनार्थ है ।
(परमेश्वर प्रयोजन) कहते हैं । यह साध्याग्रकी स्पष्टानुवाद वचनार्थक वचनार्थ है ।
है । जैसे वचनार्थ साध्यासक वचनार्थ आ वचनार्थ है उसे स्पष्टानुवाद कहते हैं ।

पुत्रा—वचनार्थ है । यह वचनार्थ है ।

न ग्रहणपापं न सूर्यस्य स्थित्यापाराधनं परिणीतं याचन्वास्तव्यम् । क त एवमिदं ?
 पृथिव्यज्जातयुनस्पतय । एतया स्थानमस्मरन्ति यममि न प्रपत्तानि कस्मिन्
 गम्यत इति चक्षु स्थानमिदं यन् एत इति प्रतिपादयामासम् । क त एवमिति
 चरन्त्यतः—

जादि एवमिदं भुजति सति एवम् ॥ १३५ ॥
 दुर्गाति य तस्मिन् यत् एवम् ॥ १३५ ॥

‘वनस्थयन्नामस्म’ इति न राधययाडा । अस्मात् अयमन्नामस्म
 धारः, कश्चित्पयः यथा यस्यान्ना यमनात् इति । कश्चित्पयः यथा उक्तं
 गत, उदकमपी गत इति । कश्चित्पयः यथा यस्यान्ना गत ममग, इत्यतः
 धरा—परमाणुम रदनेयाग यथा ता इति योडात्त कर्म भी एतत्त कर्म कर्म
 नदी है ?

ममाधान—नदी कयाचि ज्व परमाणु कथं कायक यत्त एवम् ॥ १३५ ॥
 धर्मोका इति योडात्त ग्रहण कर्मका पापना पाद आनी है ।
 ममाधान—य एवमिदं ज्ञाय कान कानम् है ?

ममाधान—पृथिव्या ज्ञाय अग्नि पापु आत्त यस्यान्ना य एवम् ॥ १३५ ॥
 गवा—इत पापोंक यत्त यस्यान्ना इति है इति है इति है इति है इति है
 हैत जाता ?
 ममाधान—नदी कयाचि पृथिव्या आत्त यस्यान्ना ज्ञाय यत्त यत्त यत्त यत्त
 है इत्यतः कथन कथनेयात्त आय-यवन् पापा जाता है ।

जवा—यत्त आय-यवन् यत्त पापा जाता है
 ममाधान—यत्त आय-यवन् यत्त यत्त जाता है
 कयाचि यथायत्त ज्ञाय यत्त यस्यान्ना इति—यत्त इति है इति है इति है इति है
 है इत्यतः कथन कथनेयात्त आय-यवन् पापा जाता है ।

आत्त यस्यान्ना ज्ञाय यत्त यस्यान्ना इति—यत्त इति है इति है इति है इति है
 है इत्यतः कथन कथनेयात्त आय-यवन् पापा जाता है ।
 है इत्यतः कथन कथनेयात्त आय-यवन् पापा जाता है ।
 है इत्यतः कथन कथनेयात्त आय-यवन् पापा जाता है ।
 है इत्यतः कथन कथनेयात्त आय-यवन् पापा जाता है ।

करके । इन्द्रियाणां स्वानन्त्यविस्थायां पूर्वोक्तहेतुमभिधाने सति स्मयतीति स्मय
कर्तृकरके भवति । कोऽस्य विषय ? स्म । कोऽस्यार्थ ? यदा वस्तु प्राधान्येन
विवक्षितं स्यात् तन्मन्त्रविरक्तिपर्यायामावादादस्यैव स्म । एतस्मां विस्थायां कर्ममात्रमत्र
स्मय, यथा स्मय इति स्म । यदा तु पर्याय प्राधान्येन विवक्षितमत्र भेदोपपन्नं
औदान्त्यादिभिर्मात्रकथनाद्भाष्यमाधनत्र स्मय, स्मय स्म इति । न धूमो वा
स्वप्नो वा इत्यादि । उक्तोत्तरम् । कुत एतयोक्तपरिचयिणी धर्मार्थोपपत्त्यत्र
स्मनेन्द्रियतत्त्वपरिचयमे सति योगेन्द्रियमार्थातिस्पर्धकोदये आहोपाह्वनामत्र भाष्यमे
इन्द्रियवर्जितमोदपरिचयवर्तितायां च मत्वा स्पर्शनरमनेन्द्रिये आदिर्भवेत् ।

चंते इन्द्रियाणि येषां मे गीन्द्रिया । के ते ? बुभुधुमङ्गनादयः । उक्तं च —

प्रश्न — एतानि इन्द्रियाणि किं सन्ति कथा इति ?

उत्तर — एतानि इन्द्रियाणि किं सन्ति एतन्मन्त्र इति ।

प्रश्न — एतानि इन्द्रियाणि कथा भवति इति ?

उत्तर — इति सत्यं प्रत्यक्षमप्यत्रोक्तं यदनु विवक्षितं होमी इति । उक्तं सत्यं यदनु
उक्तं यदनु सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति । एतन्मन्त्रे यदनु ही इति । इति विवक्षितं एतन्मन्त्रे कर्ममात्रमप्यत्र
इति । इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति । सत्यं इति सत्यं सत्यं सत्यं इति । सत्यं इति सत्यं सत्यं सत्यं इति ।
इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति । इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति । इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति ।
इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति । इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति । इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति ।
इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति । इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति । इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति ।

प्रश्न — एतानि इन्द्रियाणि कथा भवति इति ?

उत्तर — इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति । इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति । इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति ।
इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति । इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति । इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति ।
इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति । इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति । इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति ।

प्रश्न — इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति ?

उत्तर — इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति ?

उत्तर — इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति । इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति ।

अथ इन्द्रियाणि कथा भवति इति । इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति । इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति ।
इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति । इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति । इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति ।
इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति । इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति । इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति ।
इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति । इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति । इति सत्यं सत्यं सत्यं सत्यं इति ।

विषयभेदार्णः । अयं वर्णशब्दः कर्मसाधनः । यथा यदा द्रव्यं प्राधान्येन विवक्षितं तदेन्द्रियेण द्रव्यमेव सन्निकृष्यते, न ततो व्यतिरिक्ताः स्पर्शादयः सन्तीत्येतत्तां विवक्षायां कर्मसाधनत्वं स्पर्शादीनामवमीयते, वर्ण्यत इति वर्णः । यदा तु पर्वापर-प्राधान्येन विवक्षितस्तदा भेदोपपत्तेरौदासीन्यात्प्रत्यक्षमात्रकयनाद्व्याप्तसाधनत्वं स्पर्शादीनां युज्यते वर्णनं वर्णः । कुत एतेषामुत्पत्तिश्चेद्वीर्यान्तरायास्पर्शनरसनघ्राणचक्षुरावरणक्षयोपक्रमं सति श्रोत्रेन्द्रियसंस्पर्शातिस्पर्धकोदये चाङ्गोपाङ्गनामलामात्राण्यम्भे चतुरेन्द्रियनातिक्रमोदय यद्यवर्तिताया च मत्या चतुर्णामिन्द्रियाणामाविर्भावो भवेत् ।

पञ्च इन्द्रियाणि येषां ते पञ्चेन्द्रिया । के ते ? जरायुजाण्डादयः । उक्तं च—

सस्तेदिमं सम्मुञ्छिम-उन्मेदिम-ओउवादिषां च ।

रसं पोदड जरायुजं जेषां पञ्चेदिषां जीमं ॥ ११९ ॥

समाधान—वर्ण इत्येन्द्रियका विषय है । यह वर्ण शब्द कर्मसाधन है । जैसे, जिस समय प्रधानरूपमे द्रव्य विपक्षित होता है, उस समय इन्द्रियसे द्रव्य का ही ग्रहण होता है, क्योंकि, उससे भिन्न स्पर्शादिक पर्यायें नहीं पाई जाती हैं । इसलिये हम विषयसमं स्पर्शादिकके कर्मसाधन जाना जाता है । उस समय जो देखा जाय उसे वर्ण कहते हैं, वही निश्चिन्ता करना चाहिये । तथा जिस समय पर्याय प्रधानरूपसे विपक्षित होती है, उस समय द्रव्यमे पर्यायका भेद बन जाता है, इसलिये उदासीनरूपसे अवलम्बित जो भाव है, उसीका कथन किया जाता है । भगवत् स्पर्शादिकके भावसाधन भी बन जाता है । उस समय देखनेरूप धनको वर्ण कहते हैं वही निश्चिन्ता होती है ।

श्रीकृष्ण—इन चारों इन्द्रियोंकी उत्पत्ति किस कारणसे होती है ?

समाधान—वीर्यान्तराया और स्पर्शन, रसना, घ्राण तथा चक्षु इन्द्रियावरण कर्मके क्षयोपशम, दोष इन्द्रियावरण सर्ववर्णनी स्पर्शकोका उदय, भागेत्याय नामकमके उदयका भान रसना और चक्षुरिन्द्रिय जानि नामकमके उदयकी घटाधीनताक हान पर चार इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होता है ।

जिनके पास इन्द्रिया होती हैं उन्हे पञ्चेन्द्रिय ज्ञाय कहते हैं ।

शुक्रा—य पञ्चाद्रिय ज्ञाय कौन कौन है ?

समाधान—जरायुज और भण्डाज आदिक पञ्चेन्द्रिय ज्ञाय हैं । कहा भी है—

जरायुजं भण्डाजं उद्विग्नं, भीषणादिकं, रसजं, घ्राणं भण्डाजं और जरायुजं ये सप्त पञ्चेन्द्रिय ज्ञाय जानना चाहिये ॥ १२० ॥

१. जरायुजं भण्डाजं उद्विग्नं, भीषणादिकं, रसजं, घ्राणं भण्डाजं और जरायुजं ये सप्त पञ्चेन्द्रिय ज्ञाय जानना चाहिये ॥ १२० ॥

२. जरायुजं भण्डाजं उद्विग्नं, भीषणादिकं, रसजं, घ्राणं भण्डाजं और जरायुजं ये सप्त पञ्चेन्द्रिय ज्ञाय जानना चाहिये ॥ १२० ॥

अथ पञ्चेन्द्रिय ज्ञाय जानना चाहिये ॥ १२० ॥

रायस्पर्शनरमनघ्राणचक्षु श्रोत्रेन्द्रियाग्रणक्षयोपशमे मति अङ्गोपाङ्गनामलामाश्रम्य पञ्चेन्द्रियजातिरुमादयश्चरतिताया च सत्या पञ्चानामिन्द्रियाणामभिर्भाषो भवेति । नेद व्याख्यानमत्र प्रधानम्, 'एकद्वित्रिचतु पञ्चेन्द्रियजातिनामरुमादयात् एकद्वित्रिचतु पञ्चेन्द्रिया भवन्ति' इति भाष्यश्रेय सह विरोधात् । तत एकैन्द्रियजातिनामरुमादयात् एकैन्द्रिय, द्वीन्द्रियजातिनामरुमादयात् द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रियजातिनामरुमादयात् त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजातिनामरुमादयाच्चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रियजातिनामरुमादयात्पञ्चेन्द्रिय, एषोऽयं प्रधान निरवद्यत्वात् ।

न सन्तीन्द्रियाणि येषां तेऽनिन्द्रियाः । के ते ? अग्ररीरा* सिद्धा । उक्तं च—
ण वि इदिय करण-जुदा अग्रगहादीहि गाहया अत्ये ।

येन य इदिय सोक्त्वा अणिदियाणत-णाण सुहा ॥ १४० ॥

तेषु सिद्धेषु भावेन्द्रियस्योपयोगस्य सत्तास्तेन्द्रियास्त इति चेन्न, क्षयोपशमवनि

शका—इन पाँचों इन्द्रियाँकी उत्पत्ति कैसे होती है ?

समाधान—धीर्यान्तराय और स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु तथा श्रोत्रेन्द्रियाग्रण कर्मके क्षयोपशम होने पर, आगोपाग नामकर्मसे आलम्बन होने पर, तथा पञ्चेन्द्रियजाति नामकर्मके उदयकी घञ्जातिताके होने पर पाँचा इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है । फिर भी धीर्यान्तराय और स्पर्शन इन्द्रियाग्रण आदिके क्षयोपशमसे एकैन्द्रिय आदि जीव होते हैं यह व्याख्यान यहाँ पर प्रधान नहीं है, क्योंकि, 'एकैन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियजाति नामकर्मके उदयसे एकैन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीव होते हैं' भाषानुगमके इस कथनसे पुरातन कथनका विरोध आता है । इसलिये एकैन्द्रिय जाति नामकर्मके उदयसे एकैन्द्रिय, द्वीन्द्रियजाति नामकर्मके उदयसे द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रियजाति नामकर्मके उदयसे त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति नामकर्मके उदयसे चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जाति नामकर्मके उदयसे पञ्चेन्द्रिय जीव उत्पन्न होते हैं, यही अर्थ यहाँ पर प्रधान है, क्योंकि यह कथन निवार है ।

जिनके इन्द्रिया नहीं पाई जाती हैं उन्हें अनिन्द्रिय जीव कहते हैं ।

शरा—ये क्यों हैं ?

समाधान—शरीररहित मित्त अनिन्द्रिय है । कहा भी है—

ये मित्त जीव इन्द्रियोंके व्यापारसे मुक्त नहीं हैं और अवग्रहादिषु क्षयोपशमिन जाते द्वारा पदार्थोंको ग्रहण नहीं करते हैं । उनके इन्द्रिय सुप्त भी नहीं हैं, क्योंकि, उपाग भग्न भान और भग्न सुप्त अनिन्द्रिय हैं ॥ १४० ॥

शरा—उन मित्तोंमें भावेन्द्रियों का मन्त्रय उपयोग पाया जाता है, इसलिये वे इन्द्रियमयिन हैं ?

सूक्ष्मजीवितानां प्रीतिरस्यैव मूर्तद्वयैरभिहन्यते ततो न तत्प्रतिधानं सूक्ष्मकर्मणा विपरीतं
 दिति चेन्न, अन्तरप्रतिहन्यमानत्वेन प्रातिलब्धमश्वव्यपदेशमानं सूक्ष्मजीवादात्मन्येयं
 गुणहीनस्य चात्स्मदात्मनः प्राप्त्यादत्तव्यपदेशमस्य सूक्ष्मस्य प्रयतिपतोऽप्रतिधानतापन्नः ।
 अस्तु चक्षुः, सूक्ष्मजीवादात्मन्येयं गुणहीनस्य चात्स्मदात्मनः प्राप्त्यादत्तव्यपदेशमस्य सूक्ष्मस्य प्रयतिपतोऽप्रतिधानतापन्नः ।
 तस्मादप्यमर्त्येयगुणहीनस्य चात्स्मदात्मन्येयं गुणहीनस्य जीवितस्यापलम्भात् । तदुक्तोऽयमपीयत
 इति चिद्वदनाधेनोऽप्रतिधानम्भात् । तद्यथा —

‘सत्त्वयोरस्य सुदृग्मणिगोदन्वीर्यपञ्चवयस्म नहणिया ओमाहणा । सुदृग्मराउ
 सुदृग्मनेउ-सुदृग्मआउ सुदृग्मपुदवि अपञ्चवयस्म नहणिया आगाहणा अमराउगुणा ।

उत्पन्न करता है । और सूक्ष्म नामकर्मका उद्भव सूक्ष्मे मूर्त पदार्थोंके द्वारा भाषात नष्ट करने
 योग्य क्षाररको उत्पन्न करता है । यहा उन दोनोंमें भेद है ।

शरीर—सूक्ष्म जीवोंका क्षारर सूक्ष्म होनेसे ही मध्य मूर्त पदार्थोंके द्वारा भाषातको
 प्राप्त नहीं होता है, इसलिये मूर्त पदार्थोंके साथ प्रतिघातका नहीं होता । सूक्ष्म नामकर्मके उद्भवेसे
 नहीं मानना चाहिये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यन्मा मानने पर सूक्ष्मे मूर्त पदार्थोंके द्वारा भाषातको नहीं
 प्राप्त होनेसे सूक्ष्म सत्त्वको प्राप्त होनेवाले सूक्ष्म क्षाररसे भवव्याप्तगुणा होने भवगाहनायाले,
 और बादर नामकर्मके उद्भवसे बादर सत्त्वको प्राप्त होनेवाले बादर क्षाररके सूक्ष्मताके
 प्रति बादर विनाशका नहीं रह जाती है, अतएव उसका भा मूर्त पदार्थोंमें प्रतिघात नहीं होगा
 ऐसा भाषात आजायगी ।

शरीर—आजाने दो ?

समाधान—नहीं, क्योंकि यन्मा मानने पर सूक्ष्म और बादर नामकर्मके उद्भवमें
 फिर कोई विनाशका नष्ट रह जायगा ।

शरीर—सूक्ष्म नामकर्मका उद्भव सूक्ष्म जीवितका उद्भव करनेवाला है इसलिये उन
 दोनोंके उद्भवमें भेद है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सूक्ष्म जीवितका भा मध्यमगुणा होने भवगाहनायाले
 और बादर नामकर्मके उद्भवसे बादर सत्त्वको प्राप्त होनेवाले बादर क्षाररके सूक्ष्मताके
 प्रति बादर विनाशका नहीं रह जाती है, अतएव उसका भा मूर्त पदार्थोंमें प्रतिघात नहीं होगा
 ऐसा भाषात आजायगी ।

शरीर—यह कैसे जाना

समाधान—यन्मा नामकर्मका उद्भव सूक्ष्म जीवितका उद्भव करनेवाला है इसलिये उन
 दोनोंके उद्भवमें भेद है ?

सूक्ष्म निगमादया न यद्यथा न च जायते अथ न भवति न च भवति न च भवति (१८)
 ॥ सूक्ष्म निगमादया न यद्यथा न च जायते अथ न भवति न च भवति न च भवति (१८)
 यद्यथा न च जायते अथ न भवति न च भवति न च भवति (१८)

वाटरवाउ-वाटरतेउ वाटरआउ वाटरपुढनि-वाटरणिगोदनी-वाटरउणफन्निआइयपत्त
 सरीर अपज्जत्तयस्म जहणिया ओगाहणा अमरोज्जगुणा । वेत्तिय तेत्तिय चउत्तिरि
 पंचिदिय-अपज्जत्तयस्म जहणिया ओगाहणा अमरोज्जगुणा । सुहुमणिगा
 पज्जत्तयस्म जहणिया ओगाहणा अमरोज्जगुणा । तस्मेअ अपज्जत्तयस्म उक्खिमिया
 ओगाहणा निमेमाहिया । तस्मेअ पज्जत्तयस्म उक्खिमिया ओगाहणा निमेमाहिया ।
 सुहुमवाउकाइय-सुहुमतेउकाइय सुहुमआउकाइय सुहुमपुढनिआइय पत्तत्तयस्म जहणिया
 ओगाहणा अमरोज्जगुणा । तस्मेअ अपज्जत्तयस्म उक्खिमिया ओगाहणा निमेमाहिया । तस्मेअ
 पज्जत्तयस्म उक्खिमिया ओगाहणा निमेमाहिया । वाटरवाउकाइय-वाटरतेउकाइय-वाटर
 आउकाइय-वाटरपुढनिआइय-वाटरणिगोदनी-पज्जत्तयस्म जहणिया ओगाहणा
 अमरोज्जगुणा । तस्मेअ अपज्जत्तयस्म उक्खिमिया ओगाहणा निमेमाहिया । तस्मेअ
 पज्जत्तयस्म उक्खिमिया ओगाहणा निमेमाहिया । 'वाटरउणफन्निआइयपत्तय

उत्तरोत्तर अमर्यातगुणी है । सूक्ष्म पृथिवीकायिक लक्ष्यपर्यान्तक जीवकी जघन्य
 अमगाहनासे वाटर वायुकायिक, वाटर अग्निकायिक, वाटर जलकायिक, वाटर पृथिवीकायिक,
 वाटरनिगोद नीर समतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक लक्ष्यपर्यान्तक जीवोंकी जघन्य अमगाहना
 उत्तरोत्तर अमर्यातगुणी है । समतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक लक्ष्यपर्यान्तक जादवी जघन्य
 अमगाहनासे समतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक, दीप्तिद्रव्य, भीतिद्रव्य, चतुरिन्द्रिय और पञ्चिन्द्रिय
 लक्ष्यपर्यान्तक जीवोंकी जघन्य अमगाहना उत्तरोत्तर अमर्यातगुणी है । लक्ष्यपर्यान्तक
 पञ्चिन्द्रिय जीवकी जघन्य अमगाहनासे सूक्ष्म निगोदिया पर्यान्तककी जघन्य अमगाहना
 अमर्यातगुणी है । इससे सूक्ष्म निगोदिया लक्ष्यपर्यान्तककी उत्तम अमगाहना कुछ अधिक है ।
 इससे सूक्ष्म निगोदिया पर्यान्तककी उत्तम अमगाहना कुछ अधिक है । इससे सूक्ष्म वायुकायिक
 पर्यान्तककी जघन्य अमगाहना अमर्यातगुणी है । इससे सूक्ष्म वायुकायिक पर्यान्तककी उत्तम
 अमगाहना विशेष अधिक है । इससे सूक्ष्म वायुकायिक पर्यान्तककी उत्तम अमगाहना
 विशेष अधिक है । इसीतरह सूक्ष्म वायुकायिकसे सूक्ष्म अग्निकायिक, उससे सूक्ष्म जलकायिक,
 उससे सूक्ष्म पृथिवीकायिकमवधी प्रत्येककी क्रमसे पर्यान्त, अपर्यान्त और पर्यान्तमवधी
 जघन्य, उत्तम और उत्तम अमगाहना उत्तरोत्तर अमर्यातगुणी, विशेषाधिक और विशेषाधिक
 समस्त लेना चाहिये । इसीतरह सूक्ष्मपृथिवीकायिक पर्यान्तकी उत्तम अमगाहनासे वाटर वायु
 कायिक, उससे वाटर अग्निकायिक, उससे वाटर जलकायिक, उससे वाटर पृथिवीकायिक
 उससे वाटर निगोद नीर और उससे निगोदसमतिष्ठित वनस्पतिकायिकमवधी प्रत्येककी
 क्रमसे पर्यान्त अपर्यान्त और पर्यान्तमवधी जघन्य, उत्तम और उत्तम अमगाहना उत्तरोत्तर
 अमर्यातगुणी, विशेषाधिक और विशेषाधिक समस्त लेना चाहिये । समतिष्ठित प्रत्येककी उत्तम

नाहारपयाग्निनिष्पद्यते इति यावत् । तत्फलभावात् तिलप्रलापमग्न्यादिभिराश्रयैस्तिल-
तैश्चयमानं रसभावं रसमधिगम्यानुवादिद्रव्याश्रयैर्गन्धारिणाग्निरीश्वरपरिणामशब्द-
सुपताना-
स्यन्धानामपि गन्धिगर्वाणि । माहात्म्यानि पञ्चादन्तर्मुह्यतन निष्पद्यते । याग्य-
टाभित्तमप्याग्निगिण्यधेग्रहणार्थं युपचर्तनमित्तपुद्गलप्रत्ययाश्रितिगिन्द्रियपर्याप्तिः । सापि
तत् पञ्चात्तन्मुह्यतादुपचायते । न चन्द्रियनिष्पत्त्या मत्यामपि तस्मिन् धनं वाद्यार्थ-
विपयानामनुपद्यते तत् तदुपकरणभावात् । उच्छ्रामनिष्मग्णशक्तेः निष्पत्तिनिमित्त-
पुद्गलप्रत्ययाश्रितिगतापानपर्याप्तिः । एषापि तस्मान्तर्मुह्यतराल समतले भवेत् । भाषा-
वर्णायां स्यन्धास्तुविधभाषाश्रयणं परिणमनशक्तनिमित्तनारम्यपुद्गलप्रत्ययाश्रितिभाषा-
पर्याप्तिः । एषापि पञ्चात्तन्मुह्यतादुपचायते । मनारमणास्यन्धनिष्पत्तपुद्गलप्रत्यय-
अनु-
भूतार्थस्मरणशक्तिनिमित्तं मनः पर्याप्तिः द्रव्यमनोऽप्यर्थभेदानुभूतार्थस्मरणशक्तेः पत्ति-
मनः पर्याप्तिरा । एतासां प्रारम्भाऽग्रमणं चन्मममयात्प्रभयं तामा मयाभ्युपगमात् ।

समान उक्तं लक्षणागते ह्युक्तं आदि शक्तिः अथयव्यपने और तिलके तैलके समान रसभागकी
रस, धिपर, यमा धीर्य आदि द्वय अथयव्यपने परिणमन करनेवाले आहारिक आदि तान
गरीरोंकी शक्तिसे पुन पुद्गलस्वधौकी शक्तिकी शरीर पर्याप्ति कहते हैं । यह शरीर पर्याप्ति
आहार पर्याप्तिके पदवात् एक अन्तर्मुह्यतमे पूर्ण होता है । योग्य देशमें स्थित
रूपादिसे पुन पदार्थोंके ग्रहण करनेरूप शक्तिकी उत्पत्तिके निमित्तभूत
पुद्गलप्रचयकी शक्तिकी शक्तिपर्याप्ति कहते हैं । यह शक्ति पर्याप्ति भी गार पर्याप्ति
पदवात् एक अन्तर्मुह्यतमे पूरा होगी है । परन्तु शक्ति पर्याप्तिके पूरा हो जाने पर भी उसी
समय बाह्य पदार्थसे भी ध्यान उत्पन्न नहीं होता है क्योंकि, उस समय उसके उपकरणरूप
द्रव्यशक्ति नहीं पाई जाती है । उच्छ्राम और निद्रास्वरूप शक्तिकी पूर्णताके निमित्तभूत
पुद्गलप्रचयकी शक्तिकी आनापान पर्याप्ति कहते हैं । यह पर्याप्ति भी शक्ति पर्याप्तिके अन-
न्तर एक अन्तर्मुह्यत बाह्य स्थान होने पर पूरा होगी । भाषाश्रयणके स्वधौके निमित्तसे
चार प्रकारकी भाषारूपसे परिणमन करानेकी शक्तिके निमित्तभूत नोकम पुद्गलप्रचयकी
शक्तिकी भाषा पर्याप्ति कहते हैं । यह पर्याप्ति भी आनापान पर्याप्तिके पदवात् एक अन्तर्मुह्य-
तमे पूर्ण होती है । अनुभूत अथके स्मरणरूप शक्तिके निमित्तभूत मनोवर्णनाके स्वधौसे
निष्पन्न पुद्गलप्रचयकी मन पर्याप्ति कहते हैं । अथवा, द्रव्यमनके आत्ममनसे अनुभूत अथके
स्मरणरूप शक्तिकी उत्पत्तिके मन पर्याप्ति कहते हैं । इन छहों पर्याप्तिधौका प्रारम्भ युगपत्

१ आहारपर्याप्तिश्च प्रथममग्नयः ७७ निष्पत्तिः २००४ आहारपर्याप्तिश्च अथवाही निमित्तभाषापर्याप्तिः
नोपपादति प्रमाणा वि-
न १५ १७ १८

२ श्री श्री श्री ११ न १७ ७ अनवर्णना विज्ञानव्यवस्था १७ वा ।

한글서체

한글서체

한글서체

한글서체

한글서체

한글서체

한글서체

한글서체

한글서체

한글서체

한글서체

한글서체

한글서체

한글서체

한글서체

한글서체

한글서체

한글서체

한글서체

한글서체

한글서체

한글서체

한글서체

한글서체

한글서체

한글서체

한글서체

पर्याप्तिप्राणानां नास्मि श्रिपतिपत्तिने वस्तुनि इति तच्च, कार्यस्मरणयोर्भेदात्, पर्याप्तिप्राणयोऽसत्त्वान्मनारागद्वेषमप्राणानामपर्याप्तिरालम्ब्य तयोर्भेदात् । तत्पर्याप्तिप्राणपर्याप्तकाले न सन्तीति तत्र तदवश्यमिति चक्ष, अपर्याप्तिरूपेण तत्र तासां मन्त्रात् । श्रिमपर्याप्तिरूपमिति चेन्न, पर्याप्तिनामधनेष्वधारभा अपर्याप्ति, तत्रास्मि तेषां भेद इति । अधश्च जीवनहेतुत्वं तत्स्थमनपर्य गतिनिष्पत्तिमात्र पर्याप्तिरुच्यते, जीवनहेतुत्वं पुन प्राणा इति तयोर्भेदः ।

एकेन्द्रियाणां भेदमभिधाय साम्प्रत द्वीन्द्रियादीनां भेदमभिधातुकाम उक्तं गृहमाह—

६, उत्तीव्रकार जित अभ्यन्तर इन्द्रियापरण कर्मके क्षयोपशमादिके द्वारा जीवम जायितपनेका व्यपहार द्वे उत्तरे प्राण बहने ६ ॥ २४ ॥

शङ्का—पर्याप्ति और प्राणके नाममें भयात् बहनेमात्रमें विचार है, वस्तुमें कोई विचार नहीं है, इसलिये क्षमोंका तात्पर्य एक ही मानना चाहिये ?

समाधान—न हा क्योंकि, कार्य और कारणके भेद उन क्षमोंमें भेद पाया जाता है तथा पर्याप्तियोंमें भायुका सद्भाव नहीं होनेसे और मनोबल, वीर्यबल, तथा उष्णता इन प्राणोंके अपर्याप्त अवस्थामें नहीं पाये जानते पर्याप्ति और प्राणमें भेद समझना चाहिये ।

शङ्का—ये पर्याप्तियां भा अपर्याप्त कालमें नहीं पाई जाती हैं, इसलिये अपर्याप्त कालमें उनका सद्भाव नहीं रहेगा ?

समाधान—नहा, क्योंकि अपर्याप्त कालमें अपर्याप्तिरूपमें उनका सद्भाव पाया जाता है ।

शङ्का—अपर्याप्तिरूप इसका क्या तात्पर्य है ?

समाधान—पर्याप्तियोंका भूतलताका अपर्याप्त कहना है । इसलिये पर्याप्ति अपर्याप्त और प्राण इनमें भेद प्रतीत होता है । अथवा हा द्रव्यादिमें विद्यमान जातिनके कारणपनेका अपेक्षा न करके हा द्रव्यादिरूप प्राणका भूतलतामात्रका पर्याप्त कहना है और जो जातिनके कारण है उद्वेग प्राण कहना है । इसप्रकार इन दोनोंमें भेद समझना चाहिये ।

इसप्रकार पञ्चन्द्रियाके भेद प्रत्यक्षोंका कथन करके अब द्वेन्द्रियादिके तात्पर्य भेदाका

वीडदिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता । तीडदिया दुविहा,
पज्जत्ता अपज्जत्ता । चर्रदिया दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता । पवि
दिया दुविहा सण्णी अमण्णी । सण्णी दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता ।
अमणी दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता चेदि ॥ ३५ ॥

इन्द्रियान्य उक्ताया इति पुनरुक्तमप्युपनिषत् नेहार्थ उच्यते । अथ स्यादाभ
नान्येन्द्रियानि कथमनगम्यते इति चेन्न, आर्षात्तदागते । किं तदार्थमिति चेदुच्यते-

८ २. १५ पुनरुक्तं एव हि य हो, सेव विद्यते ।

होति यत्र इन्द्रियं हि भाषणमिति सोत्ता, ॥ १४२ ॥

यत्र सत्यनाम उच्यते । स्पर्शनमेवमेव तरेन्द्रियम् भाषी, स्वनामम् ।
इन्द्रियम् सत्यनामनामोद्विष्यामि वीड्विष्यामि, भाषी मयभूति शत्रुविष्यामि
चर्रद्विष्यामि सण्णद्विष्यामि पविद्विष्यामि । अथवा 'कमिषिषीडि

इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न

इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न
इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न
इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न

इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न
इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न

इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न

इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न

इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न

इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न
इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न

इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न
इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न
इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न इन्द्रियं कथं न इन्द्रियं भाषते भवति मय कथं न

अमरमनुष्यादीनामस्मृद्धानि ' इति अस्मात्तत्त्वार्थमत्राद्यामीयते । अस्यार्थ उच्यते । एकैकं वृद्धं येषां तानीमानि एकैकं वृद्धानि । 'वनस्पत्यन्तानामेकम्' इत्येवस्मात्प्राक्स्पर्शनमित्यनुवर्तते । तत्र एवमाभिमन्यध्वने, स्पर्शनं रमनवृद्धं कम्पातीनाम्, स्पर्शान्गमनं घ्राणवृद्धे पिपीलिकातीनाम्, स्पर्शनरसनघ्राणानि चभुर्बृद्धानि अमरातीनाम्, तानि भोत्रवृद्धानि मनुष्यादीनामिति ।

समनस्का मज्जिन इति । मनो द्विविधम्, द्रव्यमनो भावमन इति । तत्र पुद्गलविषयिकमोदयापेक्षं द्रव्यमनं । जीयान्तरायनोऽन्धियारणधपापमोपेक्षात्मनो विगुडिर्भावमन । तत्र भावेन्द्रियाणामिन्द्रियमनम् उत्पत्तिरान्न एव मध्यादपपापकालेऽपि भावमनम् सत्त्वमिन्द्रियाणामिन्द्रियमिति नोक्तमिति चक्ष, बाधेन्द्रियैरग्राप

अमरमनुष्यादीनामस्मृद्धानि' इति सूत्रसे यह जाना जाता है कि किस आशय के विषयः श्रद्धिया होती हैं । अब हम सूत्रका अर्थ कहने हैं—

एक एक श्रद्धियका वक्ता हुआ मनुज जिन श्रद्धियोंका पारा आवे ऐसा एक एक श्रद्धियके कहने हुए समरूप पाव श्रद्धिया होती हैं । 'वनस्पत्यन्तानामेकम्' इति सूत्रमें १ स्पर्शनं पक्षी अनुवृत्ति होता है, इसलिये वेला मन्त्र कर लेना बाधिये कि वस्त्र आदि इति इत्य जीवोंके स्पर्शनके साथ रसना श्रद्धिय और अधिक होती है । पिपीलिका आदि जगद्वय जीवोंके स्पर्शन और रसनाके साथ घ्राण श्रद्धिय और अधिक होती है । अमर आदि वस्तुश्रद्धिय जीवोंके स्पर्शन, रसना और घ्राणके साथ चक्षु श्रद्धिय और अधिक होता है । मनुष्य आदि पंचाक्षर जीवोंके स्पर्शन, रसना घ्राण और चक्षुके साथ श्रोत्र श्रद्धिय और अधिक होता है ।

मनमहित जीवोंको मनुज कहते हैं । मन दो प्रकारका है द्रव्यमन और भावमन । उनमें पुण्यविपाकी भागोपाय नामकमने उच्यते । अर्थात् रसनेपाना द्रव्यमन है । जीयान्तराय और मोक्षश्रद्धियापरण कमके लयोपानमरूप भावमने आ श्रद्धिय पदा होता है यह भावमन है ।

शुद्धी—जीवके लयान अथवा धारण करनेके समय ॥ अथोद्बोद्धं नष्ट

१० पु १ ११

१ पु १०० ॥ १ ११ ॥ १ ११ ॥ १ ११ ॥

१० नि १ ११ ॥ १ ११ ॥ १ ११ ॥ १ ११ ॥ १ ११ ॥ १ ११ ॥ १ ११ ॥ १ ११ ॥

१० नि १ ११ ॥ १ ११ ॥ १ ११ ॥ १ ११ ॥ १ ११ ॥ १ ११ ॥ १ ११ ॥ १ ११ ॥

१ ११ ॥ १ ११ ॥ १ ११ ॥ १ ११ ॥

१० नि १ ११ ॥ १ ११ ॥ १ ११ ॥ १ ११ ॥ १ ११ ॥ १ ११ ॥ १ ११ ॥ १ ११ ॥

१० नि १ ११ ॥ १ ११ ॥ १ ११ ॥ १ ११ ॥

चेन, शेषेन्द्रियाणामिव राधेन्द्रियग्राह्यत्वाभावात्तन्मप्यन्द्रमिह तानुपपन्न । अथ स्यादथा
 तोरमनस्सारचतुर्भ्यः सम्प्रवर्तमान रूपान गमनमपेक्ष्यतस्तस्य उपमयनक्या
 विभाव इति नैव दोषः, भिन्नभावेति चेत् ।

इन्द्रियेषु गुणस्थानानामप्युत्ताप्रतिपादनार्थमुक्तमयमाह—

एइदिया वीइदिया तीइदिया चउरिंदिया अमणिपचिंदिया
 एषामि चैव मिच्छाद्विट्टि ट्ठाने ॥ ३६ ॥

एइमिमेवेति विवेचनं द्रव्यादिमयानिराकरणात् । अथ गुणस्थाननिरूपणं
 मिथ्यादृष्टुपात्तम् । गदित्तसु मामगुणद्वयाणि पि सुणिउत्ति न एव पट्ठे ? न,
 एतन्नि सुवे तस्स णिभिद्वयादा । मिच्छायाग एव एतद् वि गुणव्यापिति प,

समाधान—नदीं वशीकि, तिमयरा एव इन्द्रियोका चार इन्द्रियोऽयं प्रत्यक्ष एव
 हे उममकार मनका नदीं होला हे इत्यत्रिये उमे इन्द्रिया त्वि नदीं वद मय न हे ।

गुरा—पदार्थं यस्या, मन भवत्येव इत्यत्र उच्यते दानवत्वात् कथं ज्ञानं यमनस
 आपोमे पाया जाता हे, यद् गोरा हे । परन्तु यमनस आपोमे उच्यते कथं ज्ञानं । उच्यते कथं
 गो मयना हे ?

समाधान—यद् वेरि होय नदी हे वशीकि, यमनस आपोमे कथं ज्ञानं यमनस
 जीयोका कथं ज्ञानं भित्त जाता हे ।

अथ इन्द्रियोमे गुणस्थानोका निमित्तं मयथावे प्रतिपादनं करनं । १ । भागवतं मय
 वाने हे—

एवेन्द्रिय द्वान्द्रिय, त्रिन्द्रिय चतुर्विन्द्रिय भवति अमेव । एवेन्द्रिय अत्र मिथ्यापि
 मानकं प्रथमं गुणस्थानमेव हे हेति ॥ ३६ ॥

२ । तत्र भावि मयथावे निराकरणं करने हे त्रिये मयमे एव एवमा एव ॥ ३७ ॥
 हे । तथा अत्र गुणस्थानोके निराकरणं करने हे त्रिये मिथ्यादृष्टि पदार्थ एव विना हे ।

गुरा—एवेन्द्रिय आपोमे सामान्यं गुणस्थानं अ गुणमे आता हे इत्यत्र एव
 कथं एव मिथ्यादृष्टि गुणस्थाने कथं करनमे यद् हे मय मयना ?

समाधान—नदी कथोकि इत्यत्र मयमे मयमे एवेन्द्रियावोक्तं सामान्यं गुणस्थानं
 निवेष्ट विना हे ।

गुरा—अथ वि दानो एवम एवम एव विदानी ॥ न इहे मयम हे एवम ।

१ । त्रि १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

२ । त्रि १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

३ । त्रि १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

४ । त्रि १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

दोण्ड एवमस्म सुतचादो । दोण्ड मज्जे इद मुत्तामि च ण मग्गीणि सप णत्ती ।
उरुदेममतरेण तदगमाभाया दोण्ड पि मगहो णायो । दोण्ड मगह रग्गो मम
मिच्छाड्ढी होति चि तण्ण, सुचुत्तिट्ठमेव अत्थि चि मग्गतम्म मग्गामागो । उत च—
सुत्ताये त सम्म दरिस्सिज्ज न जइ ग मग्गदि ।

सो चेय हइदि मिग्गाग्गी दृ तदो पट्टडि जीओ ॥ १४३ ॥ इति ।

पञ्चेन्द्रियप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह —

पचिदिया असण्णिपचिदियप्पहुडि जाय अजोगिकेवल
ति ॥ ३७ ॥

पञ्चेन्द्रियेषु गुणस्थानमग्यामप्रतिपाद्य इमिति अमनिप्रभृतय पञ्चेन्द्रियाणि

मकता हे ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, दोनों ध्वन सूत्र नहीं हो सकने हैं, किन्तु उन दोनों ध्वनोंमेंसे किसी एक ध्वनको ही सूत्ररूप माना हो सकता है ।

शुद्धा— दोनों ध्वनोंमें यह ध्वन सूत्ररूप है और यह नहीं यह कैसे जाना जाय ?

समाधान— उपदेशके बिना दोनोंमेंसे कोन ध्वन सूत्ररूप है यह नहीं जाना जा सकता है, इसलिये दोनों ध्वनोंका समग्र करना चाहिये ।

शुद्धा— दोनों ध्वनोंका समग्र करनेवाला सशय मिथ्यावादि हो जायगा ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, समग्र करनेवालेके 'यह सूत्रकथित ही है' इमप्रकारका भ्रमज्ञान पाया जाता है, अतएव उसके सदेह नहीं हो सकता है । कदा भी है—

सूत्रसे आचार्यादिके द्वारा भलेप्रकार समग्रथि जाने पर भी यदि यह जाय तब तब अर्थकी छोटकर समीचीन अर्थका भ्रमज्ञान नहीं करता है, तो उसी समयसे यह समग्रणी जीव मिथ्यावादि हो जाता है ॥ १४३ ॥

पचोद्वयोमें गुणस्थानोंकी सख्याके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहने हैं—

असक्खी पचोद्विय मिथ्यावादि गुणस्थानने लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानतक पचोद्विय जीव होते हैं ॥ ३७ ॥

शुद्धा— पचोद्विय जीवोंमें गुणस्थानोंकी सख्याका प्रतिपादन नहीं करके भ्रमज्ञान आदिक पचोद्विय होते हैं, ऐसा क्यों कहा ?

मण्डि वसिमद्विपाण बाह्वाहसमागा देवणा उवदधोगण इति, एव पि वसिमां संवदनवृत्तिरिति व
प्रत्यय । धवला अ पृ २९

१ गा जी २९

२ पचोद्विय पचुद्विपाणि वसि । अ नि २ ८

चेदुच्यते । एकेन्द्रियजातिनामरूपाद्यात्त्रैन्द्रिय , द्वैन्द्रियजातिनामरूपाद्यात् द्वैन्द्रिय
त्रीन्द्रियजातिनामरूपाद्यात्त्रैन्द्रिय , चतुरिन्द्रियजातिनामरूपाद्याच्चतुरिन्द्रिय , पञ्चन्द्रिय
जातिनामरूपाद्यात्पञ्चेन्द्रिय । ममस्मि च केन्द्रिनामपर्याप्तजीवानां च
पञ्चेन्द्रियजातिनामरूपाद्य । निरुपपत्त्यात्त्याग्यान्मिदं ममाश्रयणीयम् । पञ्चेन्द्रिय
जातिरिति किं ? यस्याः पारापतादयो जातिविशेषाः समानप्रत्ययग्रायाः सा पञ्चेन्द्रिय
जातिः । पञ्चेन्द्रियतयोपशमस्य सहकारित्वमादधाना ।

अतीन्द्रियजीवास्तित्त्वाप्रतिपादनार्थमुक्तम्ब्रूमाह—

तेषां परमाणुदिया इति ॥ ३८ ॥

तेनेति एवमचन जातिनिश्चयनम् । परमाणुमिन्द्रियाः तद्विन्द्रियाणि नास्त्यन्ता
मरुत्तमरुत्तलङ्घनीतन्वात् ।

नायमार्गणाप्रतिपादनार्थमुक्तम्ब्रूमाह—

कायाणुवादेण अतिथि पुढविकाइया आउकाइया तेउमाइया
वाउकाइया वणप्फडाइया तसकाइया अकाइया चेदि ॥ ३९ ॥

शुक्रा—तो फिर यह दूसरा कौनसा व्याख्यान है जिसे देख माना जाय ?

समाधान—एकेन्द्रिय जाति नामकर्मके उद्यमे एकेन्द्रिय, द्वैन्द्रिय आनि नामकर्मके
उद्यसे द्वैन्द्रिय, त्रीन्द्रियजाति नामकर्मके उद्यसे त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति नामकर्मके
उद्यसे चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियजाति नामकर्मके उद्यसे पञ्चेन्द्रिय जीव होते हैं । इस
व्याख्यानके अनुसार केवली आर अपर्याप्त जीवोंके भी पञ्चेन्द्रिय जाति नामकर्मका उद्य होता
है । अतः यह व्याख्यान निराप है । अतएव इसका आश्रय करना चाहिये ।

शुक्रा—पञ्चेन्द्रियजाति किसे कहते हैं ?

समाधान—जिसके कन्तूर आदि आनि विशेष 'ये पञ्चेन्द्रिय हैं' इसप्रकार समान
प्रत्ययसंग्रहण करने योग्य होते हैं । और जिसमें पञ्चेन्द्रियाङ्गण कर्मके शयोपशमके सहकार
पनेकी अपेक्षा रहती है उसे पञ्चेन्द्रिय जाति कहते हैं ।

अथ अतीन्द्रिय जीवोंके अस्मिन्त्यके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

उन एकेन्द्रियादि जीवोंमें परे अनिन्द्रिय जीव होत हैं ॥ ३८ ॥

सूत्रमें 'तेन' यह एक वचन जानिका सचक है । 'पर' शब्दका अर्थ ऊपर है ।
जिससे यह अर्थ हुआ कि एकेन्द्रियादि जानिभेदोंमें रहित अनिन्द्रिय जीव होते हैं, क्योंकि,
उनके संपूर्ण द्रव्यकर्म और भावकर्म नहीं पाये जाते हैं ।

अथ कार्यमार्गणाके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

कायानुवादका अपेक्षा प्रविशकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक,
यन्मृत्पिकायिक, धूमकायिक और वायरहित जीव होते हैं ॥ ३९ ॥

अनुवदनमनुवाद । कायानामनुवाद सायानुवाद तेन सायानुवादेन । प्रथि-येर
 राय पृथिरीराय म मयामस्तीति पृथिवीरायिका । न कर्मणःशरीरमाश्रितजीवाना
 पृथिरीरायत्तमाश्र भाविनि भूतस्तुपचारतस्तेषामपि तद्व्यपदेशोपपत्ते । अथवा
 पृथिरीरायिस्त्वनामरमादयपरीक्षता पृथिरीरायिका । एवमस्मादिनामीनामपि वाच्यम् ।
 पृथिव्यादीनि कर्माण्यमिदानीति चेन्न, पृथिरीकायिरात्मिार्यान्पथानुपपत्तितम्नदस्ति-
 त्वमिदं । एते पञ्चापि स्याररा स्याररनामरुमादयपत्तितवितरिगेपररात् । स्थानशीला
 स्याररा इति चेन्न, राधुतेनोऽम्भमा देशान्तरप्राप्तिद्वानादस्याररत्प्रमद्वात् । स्थानशीला
 स्याररा इति व्युत्पत्तिमात्रमेव, नार्थ प्राधान्येनाश्रीयते गौणत्वमेव । प्रथनामरुमादयापि

सूत्रके अनुवदन् कथन करनेको अनुवाद कहते हैं । कायके अनुवादको कायानुवाद
 कहते हैं, उसका अपेक्षा पृथिवीकायिक आदि जीव होने हैं । पृथिवीरूप शरीरको पृथिवी
 काय कहते हैं, यह जिनके पास जाता है उन जातोंको पृथिवीकायिक कहते हैं । पृथिवी
 कायिकका इसप्रकार लक्षण करने पर कामज काययोगमें स्थित जातोंके पृथिवीकायपत्ता नहीं
 हो सकता है, यह बात नहीं है, क्योंकि, जिसप्रकार जो कार्य अभी नहीं हुआ है उसमें यह
 हो चुका इसप्रकार उपचार किया जाता है, उसीप्रकार कर्मज काययोगमें स्थित पृथिवीकायिक
 जातोंके भी पृथिवीकायिक यह सत्ता बन जाती है । अथवा जो जीव पृथिवीकायिक नामकर्मके
 उदयके पत्तापत्ती हैं उन्हें पृथिवीकायिक कहते हैं । इसीप्रकार जलकायिक आदि शक्तोंकी भी
 निदान कर लेना चाहिये ।

शरीर—पृथिवी आदि कर्म मो भस्तिर न, अर्थात् उनका सद्भाव किसी प्रमाणसे
 सिद्ध नहीं होता है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि, पृथिवीकायिक आदि कायोंका होना अवधार बन नहीं
 सकता इसलिये पृथिवी आदि नामकर्मोंके भस्तिरकी निदि हो जाता है ।

स्थायर नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुए विशयताके कारण ये पातों का स्थायर
 कहलाते हैं ।

शरीर—स्थानशास्त्र अर्थात् स्वरना ही जिनका स्वरभाव हो उन्हें स्थायर कहते
 हैं, ऐसी व्याख्याके अनुसार स्थायरोंका स्वरूप क्यों नहीं बना ?

समाधान—नहीं क्योंकि यथा लक्षण माने पर, वायुकायिक अग्निकायिक
 और जलकायिक आतोंकी एक देशमें दूसरे देशमें गति देखी जानेसे उन्हें अस्थायरत्वका
 प्रसंग प्राप्त हो जायगा ।

स्थानशील स्थायर होते हैं, यह निदान व्युत्पत्तिमात्र ही है इसमें गो गच्छा

दितवृत्तयस्त्रमा । त्रमेन्द्रेजनक्रियस्य प्रस्यन्तीति त्रमा इति चेन्न, गर्भण्डनमूर्च्छित
मुपुत्तेषु तदभावादत्रस्यप्रमद्वात् । तदा न चलनाचलनापेक्ष त्रमस्यापरत्वं । आत्म
प्रवृत्त्युपचितपुद्गलविण्ड काय इत्यनेनेदं याग्यान विरुद्धवत् इति चेन्न, जीवविपाकि
प्रसप्रवित्रीकाधिकारिकमोदयसहकायात्तारिक्रयरीरोदयजनितशरीरगम्यापि उपचारतन्मद्
व्यपदेशार्हत्वाविरोधात् । त्रमस्यापरकायिकनामकर्मप्रवृत्तातीता अकायिका, सिद्धा ।
उक्तं च—

जह कचणमग्निं गय मुचद् विन्नेण^१ काटियाए य ।

तह काय-उर मुक्का अकाय्या ज्ञाण-नोएण^१ ॥ १४४ ॥

पुढनि काटियाणीण भेद पटुप्पायणट्टमुत्तर-मुत्त भण्ड—

व्युत्पत्तिकी तरह प्रधानतासे अर्थका ग्रहण नहीं है ।

प्रस नामकर्मके उद्भवे जिनहोने त्रमपर्यायको प्राप्त कर लिया है उ'ह त्रम कहते हैं ।

शुक्रा—‘त्रसी उद्वेगे’ इस धातुसे त्रस शब्दकी सिद्धि हुई है, जिसका यह अर्थ होता है कि जो उद्विग्न अर्थात् भयभीत होकर भागते हैं वे त्रस हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, गर्भमें स्थित, अण्डमें बन्द, मूर्च्छित और सोते हुए जीवोंमें उक्त लक्षण घटित नहीं होनेसे उन्हें अत्रमत्त्वका प्रसंग आजायगा । इसत्रिये चलने और ठहरनेकी अपेक्षा त्रस और स्थावरपना नहीं समझना चाहिये ।

शुक्रा—आत्म प्रवृत्ति अर्थात् योगसे सञ्चित हुए पुद्गलविण्डको काय कहते हैं, इस ध्यात्पानसे पूर्णतः ध्यात्पान विरोधको प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, जिसमें जीवविपाकी त्रस नामकर्म और पृथिवीकायिक आदि नामकर्मके उद्भवकी सहकारिता है वेमे औदारिक शरीर नामकर्मके उद्भवे उत्पन्न हुए शरीरको उपचारमे कायपना बन जाता है, इसमें कोई विरोध नहीं आता है ।

त्रस और स्थावर-कायिक नामकर्मके बन्धने अतीत भिक्षुको अकायिक कहते हैं । कहा भी है—

जिसप्रकार भगिकी प्राप्त हुआ सोना कीट और कालिमाकूप बाल और भयानक दोना प्रकारके मृगमे रहित हो जाता है, उसीप्रकार ध्यातके द्वारा यह जीव काय और त्रस रूप बन्धने मुक्त होकर कायरहित हो जाता है ॥ १४५ ॥

अथ पृथिवीकायिकादि जायका भक्षक प्रतिपादन करनेके लिये आलोका रूप कहते हैं—

१ उ हा वा २ १४ २ २ प्रतिप विज्ञान इति पाठ ।

३ गी मा २ ३ ॥ १६ न बाह्यजन का उद्भवा च वक्ष्यन्त्यान्तममन्त्र । जी व टी

अनस्पतिनाधिकभेदप्रतिपादनार्थमाह—

वणफुडकाइया दुविहा, पत्तेयसरीरा साधारणसरीरा । पत्तेय
सरीरा दुविहा, पञ्जत्ता अपञ्जत्ता । साधारणसरीरा दुविहा, वादरा
सुहुमा । वादरा दुविहा, पञ्जत्ता अपञ्जत्ता । सुहुमा दुविहा, पञ्जत्ता
अपञ्जत्ता चेदि ॥ ४१ ॥

प्रत्येक पृश्न शरीर येषा ते प्रत्येकशरीरा रादिरादयो अनस्पतय । पृश्नी
कायादिपञ्चानामपि प्रत्येकशरीरव्यपदेशम्भूता मति स्यादिति चेन्न, इदमाह । तर्हि
तेषामपि प्रत्येकशरीरविशेषण विज्ञातयमिति चेन्न, तत्र अनस्पतिपित्र व्यपच्छेदाभावात् ।
रादिरादयोभयविशेषणाभावात्तुभयन्वमनुभवस्य चाभावात्प्रत्येकशरीरानस्पतीनामभावात्

अत्र अनस्पतिनाधिकभेदप्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

अनस्पतिनाधिक जीव द्वौ प्रकारे द्वे, प्रत्येकशरीर आर साधारणशरीर । प्रत्येकशरीर
अनस्पतिनाधिक जीव द्वौ प्रकारे द्वे, पर्याप्त आर अपर्याप्त । साधारणशरीर अनस्पतिनाधिक
जीव द्वौ प्रकारे द्वे, वादर और सुहुम । वादर द्वौ प्रकारे द्वे, पर्याप्त और अपर्याप्त । सुहुम
प्रकारे द्वे, पर्याप्त और अपर्याप्त ॥ ४१ ॥

अतः प्रत्येक अर्थात् प्रश्न प्रश्न शरीर होता है उन्हें प्रत्येकशरीर जीव कहते हैं
जैसे, पितृ आदि अनस्पति ।

पृश्ना—प्रत्येकशरीरका इत्यप्रकार लक्षण करने पर पृश्निकाया गादि पाण्डे शरीरों
में प्रत्येकशरीर क्या मान ले जायगा ?

समाधान—यह शरीर कोई आपत्ति जनक नहीं है, क्योंकि, पृश्निकाया गादि
प्रत्येकशरीर मानना ॥ ४१ ॥

पृश्ना—ना किं पृश्निकाया गादिक सा १ भी प्रत्येकशरीर विशिष्टता क्या लेना पड़ती ?

समाधान—नहीं क्योंकि जिसप्रकार अनस्पतिधर्मोंमें प्रत्येक अनस्पतिव निराकार
हस्त पाण्डे साधारण अनस्पतिव पद जाना ॥ उभयप्रकार पृश्नी, आदिमें प्रत्येक शरीरम भिन्न
निराकार हस्त पाण्डे कोई भेद नहीं पाया जाता है इसलिये पृश्नी, आदिमें जाना निराकार
अनस्पति कोई आपत्तिजनक नहीं ॥

पृश्ना—अब अनस्पतिव शरीर आर इत्येव विचारण नहीं पाये जान है इत्येव
अनस्पतिव शरीर अनस्पतिव १ न ही जाना ॥ पञ्चवादा आर इत्येव इत्येव भेदोंका पृश्ना
अनस्पतिव शरीर जाना ॥ ४२ ॥ १ ॥ १ ॥ १ ॥ जाना ॥ अतः प्रत्येक अनस्पतिव शरीर
अनस्पतिव शरीर अनस्पतिव १ न ही जाना ॥ ४२ ॥

ममापतेदिति चक्ष, बादरत्वेन सनामभाषानुपपत्ते । अनुक्त रथमगम्यत इति चक्ष, सत्तान्यथानुपपत्तितत्त्वसिद्ध । सौक्ष्म्याविशिष्टस्यापि जीवसत्त्वस्यासम समस्तीति नैकान्तिको हेतुरिति चक्ष, बादरा इति लक्षणमुत्सर्गरूपत्वादक्षपणाव्यापि । तत् प्रत्येकशरीरवनस्पतयो बादरा एव न सूक्ष्मा साधारणगरीशेषि उत्सर्गविशिष्टायापि वादविधेरभावात् । तदुत्सर्गत्य रथमगम्यत इति चक्ष, प्रत्येकवनस्पतिप्रत्यक्षमपि विवेपणानुपादानान्न सूक्ष्मत्वमुत्सर्ग आर्पमन्तरेण प्रत्यक्षादिनानुगतेरप्रमिदस्य बादर त्वस्यात्सर्गत्यविशेषात् ।

साधारण सामान्य शरीर यथा ते साधारणगरीरा । प्रतिनिधयतीतिप्रतिरुद्धै

समाधान—येना नहा है, क्योंकि प्रत्येक वनस्पतिका बादररूपम भस्मित्य पाया जाता है, इसलिये उसका अभाव नहा हो सकता है ।

शरा—प्रत्येक वनस्पतिको बादर नहीं कहा गया है फिर कैसे जाना जाय कि प्रत्येक वनस्पति बादर ही होती है ?

समाधान—नहीं क्योंकि, प्रत्येक वनस्पतिका हमारे रूपसे भस्मित्य सिद्ध नहीं हो सकता है, इसलिये बादररूपसे उसके भस्मित्यकी निश्चि हो जाती है ।

शरा—प्रत्येक वनस्पतिमें यद्यपि सूक्ष्मता-विशिष्ट जीवका सत्ता असंभव है परन्तु सत्तान्यथानुपपत्ति रूपसे उसकी भी निश्चि हो सकती है, इसलिये यह सत्तान्यथानुपपत्तिरूप हेतु नैकान्तिक है ?

समाधान—नहीं क्योंकि, बादर यह लक्षण उत्सर्गरूप (व्यापक) होनेसे संपूर्ण प्राणियोंमें पाया जाता है । इसलिये प्रत्येक शरीर वनस्पति जाय बादर है । हाने है सत्ता नहीं क्योंकि जिनप्रकार साधारण गरीशमें उत्सर्गविधिका बाधक अणुविधि पाए जाती है अथवा साधारण गरीश में बादर भेद के भित्तिक सूक्ष्म भेद भी पाया जाता है उसप्रकार प्रत्येक वनस्पतिमें अणुविधि नहीं पाए जाता है अथवा उनमें सूक्ष्म भेदका संपाद अभाव है ।

शरा—प्रत्येक वनस्पतिमें बादर यह लक्षण उत्सर्गरूप है यह कैसे जाना जाय ?

समाधान—नहीं क्योंकि प्रत्येक वनस्पति और वनस्पतिमें बादर और सूक्ष्म य दोनों विभाग नहा पाय जाय है इसलिये सूक्ष्म उत्सर्गरूप नहा हो सकता है क्योंकि, भागमक विभाग बादरका तथा उत्सर्गरूप माननेमें विरोध जाता है ।

विशेष—बादर-य पाया गया है और वनस्पतिमें पाया जाता है परन्तु सूक्ष्म प्रत्यक्ष रूपसे और वनस्पतिमें नहीं पाया जाता है । इसलिये बादर उत्सर्ग-विधि है सूक्ष्म उत्सर्ग-विधि । जिन जायोंका साधारण अणु-विधि अथवा गरीश-विधि सत्ता रूपसे पाया जाता है उन्हे साधारणगरीश ही कहते हैं ।

अथ अग्न्या जीवा जीहि सा पञ्च सप्तान् परिणामा ।

अथ अग्न्यास्यस्य निगोद वास ज प्रवर्धते ॥ १४८ ॥

ते तारका सन्तीति कथमत्रमभ्यत इति चेत्, आगमस्यातर्कगोचरत्वात् । न हि प्रमाणप्रशिक्षितार्थावगति प्रमाणान्तरप्रशङ्गमपेक्षते स्वरूपविलोपप्रसङ्गात् । न चैतत्प्रामाण्यमपिद्वि मुनिधितामममवस्थाप्रमाणम्यामिद्विद्वत्प्रतिरोधान् । वादरनिगोद प्रतिष्ठिताभार्थान्तरेषु भ्रूयन्ते, क तेपामन्तर्भाज इन् प्रत्येकस्योत्तरवन्स्पतिप्रतिष्ठिति नृम । के ते ? सुगार्दकमूलसादय ।

प्रमत्तापाना भेदप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह—

नित्य निगोदमे वेत्ते अन्तर्मानन्त जीव दे जिह्वाने वस प्रत्येकी पर्याय अभीष्टक कभी नहीं पाई है, और जो माय अर्थात् निगोद पर्यायक योग्य कथायके उद्भवस उत्पन्न हुए दुल्दपाक्ष्य परिणामोत्ते अत्यन्त अभिभूत रहते हैं, इसलिये निगोद स्थानको कभी नहीं छाड़ते ॥ १४८ ॥

शङ्का—साधारण अथ उक्त स्पष्टजवाले होते हैं यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिये, क्योंकि, आगम तर्कका विषय नहीं है । एव प्रमाणसे प्रकाशित अर्थज्ञान दूसरे प्रमाणके प्रकाशकी अपेक्षा नहीं करता है, अन्यथा प्रमाणके स्वरूपका अभाव प्राप्त हो जायगा । तथा आगमकी प्रमाणता असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, जिसके बाधक प्रमाणोंकी अस्मायना अत्यन्ततरह निमित्त है उसको असिद्ध माननेमें विरोध आता है । अर्थात् बाधक प्रमाणोंके अभावमें आगमकी प्रमाणताका निश्चय होता ही है ।

शङ्का—बादर निगोदसे प्रतिष्ठित प्रत्येक घनस्पति दूसरे आगमोंमें सुनी जाती है, उसका अन्तर्भाव घनस्पतिके किस भेदमें होगा ?

समाधान—प्रत्येकशरीर घनस्पतिमें उसका अन्तर्भाव होगा, ऐसा हम कहते हैं ।

शङ्का—अ वादरनिगोदसे प्रतिष्ठित हैं वे कल हैं ?

समाधान—धूर, अमूर और मूली आदिक घनस्पति बादर निगोदसे प्रतिष्ठित हैं ।

अथ तत्त्ववायिवर्जिणोत्ते भेदोत्ते प्रतिपादन करनेके लिये अनेका सूत्र कहते हैं—

अथवायुविद्विर्भावात् समीचीनतायेव हानिद्वयार्थ कथं नर्ग्य विद्विम्बोऽप्यनुपपन्न एवमतीतिगोदवायवान् सचर्वायवान् तदुपवायमयमयुद्धस्य तदुपवायनन्तमात्र मये मये संवादिवायुविषयस्य विद्विम्बोऽप्यनुपपन्न एव तदुपवाय ? इति वचन, कथंज्ञानद्वयवा केवमिभि अज्ञानद्वयवा अनुपपन्नमिभि तदा दृश्य मयमयारी ज्ञानादयमयमयमिद्विम्बवायुविषयमात्रात् । प्रमाणमयवायिनस्य च तदुपवायमात्रात् । वा प्र दी

१ गा जी १९० निजनिगाद्वलनमनन हाउच । XXX ७७६७मायमिषिष्टकठधवायिना मयूर मयूर कदाविद्वममयविषयमात्रा यन्ते चतु प्रिजीवयतिना तमयंनु जलतरल तजवीशु मये मयु शायदा जोरा निजनिगाद्वार्थ यथा चतुर्दिमर्भ प्रातुवर्डीयवमर्भ प्रिषादिनो बोद्धव्य । जी प्र दी

तसमाङ्या दुविहा, पज्जता अपज्जता ॥ ४२ ॥

गतावेवात्राप्याह उच्यते । किं प्रमा मन्ना उन रादम इति ? रादम एव
मन्मा । कुत ? तस्माच्चविधायकत्वाभावात् । रादमविधायकत्वाभावे न रा
ममन इति चेन्न, उक्तमनमेव रा मन्मभिदे । ते ते ? पृथिवीरादम इति
चेदन्ते—

पुनः न सम्यक् यदुक्तं य उच्यते भिन्नदि ॥ ११॥ ।

पुनरपि न ज्ञातुं निमित्तं निमित्तं ॥ १४० ॥

पञ्चमः अध्यायः ॥ ५३ ॥

हमारे हानिने हम मृतका अभी मर्ग कहते हैं ।

प्रश्न—क्या मैं कभी लक्ष्मी होऊँ ? भगवान् बाबू !

मनःपान—जय जीव बापू जी होओ हैं, मृत्यु नहीं पाव ।

१६. — यह कैसा आना आया ?

गोमन्थन - कर्माणि चतुर्नि गन्धर्वान् दानं हि, इत्यन्तरात् च तत्र कथितानि गानानि
उत्तरात् कर्माणि चतुर्नि ।

प्रश्न - क्या मैं ही है बापूजी-नया प्रमाणित करने वाला अमेरिका प्रमाण ही है। प्रश्न
 क्या मैं बापूजी है ही है वह केवल जाना जाता है कि वह बापूजी ही है ही है ?

३५३६—**अथ** क. ॥ ३६, **आसी** आनया? **सुख** **वय** श्री ॥ ३६ **न** सुख
 ३५३७ **न** सुख **न** ।

ਸੁਣ — ਜੇ ਤੂੰ ਹੀ ਇਹ ਸਮਝਦੇ ਹੋ, ਤਾਂ ਕਿਸੇ ਦੀ ਭਲਾਈ ਲਈ ਕੀਤਾ ਕੀਤਾ ਕੀਤਾ ?

[illegible][illegible]

4. 5. 6. 7. 8. 9. 10. 11. 12. 13. 14. 15. 16. 17. 18. 19. 20. 21. 22. 23. 24. 25. 26. 27. 28. 29. 30. 31. 32. 33. 34. 35. 36. 37. 38. 39. 40. 41. 42. 43. 44. 45. 46. 47. 48. 49. 50. 51. 52. 53. 54. 55. 56. 57. 58. 59. 60. 61. 62. 63. 64. 65. 66. 67. 68. 69. 70. 71. 72. 73. 74. 75. 76. 77. 78. 79. 80. 81. 82. 83. 84. 85. 86. 87. 88. 89. 90. 91. 92. 93. 94. 95. 96. 97. 98. 99. 100. 101. 102. 103. 104. 105. 106. 107. 108. 109. 110. 111. 112. 113. 114. 115. 116. 117. 118. 119. 120. 121. 122. 123. 124. 125. 126. 127. 128. 129. 130. 131. 132. 133. 134. 135. 136. 137. 138. 139. 140. 141. 142. 143. 144. 145. 146. 147. 148. 149. 150. 151. 152. 153. 154. 155. 156. 157. 158. 159. 160. 161. 162. 163. 164. 165. 166. 167. 168. 169. 170. 171. 172. 173. 174. 175. 176. 177. 178. 179. 180. 181. 182. 183. 184. 185. 186. 187. 188. 189. 190. 191. 192. 193. 194. 195. 196. 197. 198. 199. 200. 201. 202. 203. 204. 205. 206. 207. 208. 209. 210. 211. 212. 213. 214. 215. 216. 217. 218. 219. 220. 221. 222. 223. 224. 225. 226. 227. 228. 229. 230. 231. 232. 233. 234. 235. 236. 237. 238. 239. 240. 241. 242. 243. 244. 245. 246. 247. 248. 249. 250. 251. 252. 253. 254. 255. 256. 257. 258. 259. 260. 261. 262. 263. 264. 265. 266. 267. 268. 269. 270. 271. 272. 273. 274. 275. 276. 277. 278. 279. 280. 281. 282. 283. 284. 285. 286. 287. 288. 289. 290. 291. 292. 293. 294. 295. 296. 297. 298. 299. 300. 301. 302. 303. 304. 305. 306. 307. 308. 309. 310. 311. 312. 313. 314. 315. 316. 317. 318. 319. 320. 321. 322. 323. 324. 325. 326. 327. 328. 329. 330. 331. 332. 333. 334. 335. 336. 337. 338. 339. 340. 341. 342. 343. 344. 345. 346. 347. 348. 349. 350. 351. 352. 353. 354. 355. 356. 357. 358. 359. 360. 361. 362. 363. 364. 365. 366. 367. 368. 369. 370. 371. 372. 373. 374. 375. 376. 377. 378. 379. 380. 381. 382. 383. 384. 385. 386. 387. 388. 389. 390. 391. 392. 393. 394. 395. 396. 397. 398. 399. 400. 401. 402. 403. 404. 405. 406. 407. 408. 409. 410. 411. 412. 413. 414. 415. 416. 417. 418. 419. 420. 421. 422. 423. 424. 425. 426. 427. 428. 429. 430. 431. 432. 433. 434. 435. 436. 437. 438. 439. 440. 441. 442. 443. 444. 445. 446. 447. 448. 449. 450. 451. 452. 453. 454. 455. 456. 457. 458. 459. 460. 461. 462. 463. 464. 465. 466. 467. 468. 469. 470. 471. 472. 473. 474. 475. 476. 477. 478. 479. 480. 481. 482. 483. 484. 485. 486. 487. 488. 489. 490. 491. 492. 493. 494. 495. 496. 497. 498. 499. 500. 501. 502. 503. 504. 505. 506. 507. 508. 509. 510. 511. 512. 513. 514. 515. 516. 517. 518. 519. 520. 521. 522. 523. 524. 525. 526. 527. 528. 529. 530. 531. 532. 533. 534. 535. 536. 537. 538. 539. 540. 541. 542. 543. 544. 545. 546. 547. 548. 549. 550. 551. 552. 553. 554. 555. 556. 557. 558. 559. 560. 561. 562. 563. 564. 565. 566. 567. 568. 569. 570. 571. 572. 573. 574. 575. 576. 577. 578. 579. 580. 581. 582. 583. 584. 585. 586. 587. 588. 589. 590. 591. 592. 593. 594. 595. 596. 597. 598. 599. 600. 601. 602. 603. 604. 605. 606. 607. 608. 609. 610. 611. 612. 613. 614. 615. 616. 617. 618. 619. 620. 621. 622. 623. 624. 625. 626. 627. 628. 629. 630. 631. 632. 633. 634. 635. 636. 637. 638. 639. 640. 641. 642. 643. 644. 645. 646. 647. 648. 649. 650. 651. 652. 653. 654. 655. 656. 657. 658. 659. 660. 661. 662. 663. 664. 665. 666. 667. 668. 669. 670. 671. 672. 673. 674. 675. 676. 677. 678. 679. 680. 681. 682. 683. 684. 685. 686. 687. 688. 689. 690. 691. 692. 693. 694. 695. 696. 697. 698. 699. 700. 701. 702. 703. 704. 705. 706. 707. 708. 709. 710. 711. 712. 713. 714. 715. 716. 717. 718. 719. 720. 721. 722. 723. 724. 725. 726. 727. 728. 729. 730. 731. 732. 733. 734. 735. 736. 737. 738. 739. 740. 741. 742. 743. 744. 745. 746. 747. 748. 749. 750. 751. 752. 753. 754. 755. 756. 757. 758. 759. 760. 761. 762. 763. 764. 765. 766. 767. 768. 769. 770. 771. 772. 773. 774. 775. 776. 777. 778. 779. 780. 781. 782. 783. 784. 785. 786. 787. 788. 789. 790. 791. 792. 793. 794. 795. 796. 797. 798. 799. 800. 801. 802. 803. 804. 805. 806. 807. 808. 809. 810. 811. 812. 813. 814. 815. 816. 817. 818. 819. 820. 821. 822. 823. 824. 825. 826. 827. 828. 829. 830. 831. 832. 833. 834. 835. 836. 837. 838. 839. 840. 841. 842

संन पश्यन्तां पुण्योदरे कायमग्नादस्त्रय

यसा य दिने धूमरि हरश्च सुदोदरा घनोदो य ।
 ९८ इ पाउकाया नीचा निग सासपुदिडा ॥ १५० ॥
 १५० जाल यथा मुम्पुर सुदामणी तहा अगणी ।
 १५१ रि एमार्फ तेउमाया समुदिडा ॥ १५१ ॥
 काउभासो उरुति मडलि-मुजा मडा वणा य तगा ।
 १५२ उ काउमाया जीरा निग इद गिरिडा ॥ १५२ ॥
 पूग-पोर-नीया कडा तद राध बीय-बीयकहा ।
 समुन्दिमा य मणिवा पसेयानराया य ॥ १५३ ॥

कवचनमणि, राजपतंकरूप मणि, पुलकचर्ममणि, स्फटिकमणि, पद्मरागमणि चन्द्रकांतमणि,
 चंद्रार्धमणि, जलकान्तमणि, सूर्यकान्तमणि मेरुपर्ण अधिरासमणि खन्दनगधमणि, अनेक
 प्रकारका मरकतमणि पुष्कराज, नीलमणि और विद्रुमवर्णवाली मणि ये सब पृथिव्यांके भेद
 हैं, इसलिये इनके भेदसे पृथिव्याकायिक जीव भी छत्तीस प्रकारके हो जाते हैं ॥ १४९ ॥
 भोज, वर्ण, बुद्धि, स्थूल विद्रुकरूप जल, सूक्ष्म विद्रुकरूप जल, चन्द्रकान्तमणिसे उत्पन्न
 हुआ गुल जल, सरता आदिसे उत्पन्न हुआ जल समुद्र, तालाब और घनवान आदिसे उत्पन्न
 हुआ घनोदक, अथवा हरदण्ड अर्थात् तालाब और समुद्र आदिसे उत्पन्न हुआ जल तथा
 घनोदक अर्थात् मेघ आदिसे उत्पन्न हुआ जल ये सब त्रिजिज्ञानमें जलकायिक जीव कहे
 गये हैं ॥ १५० ॥

अगार, ज्वाला अथि अथान् आग्निविरण मुम्पुर अर्थात् भूसा अथवा कण्डाकी आग्नि,
 गुलाबि अर्थात् चिजली और गूबकान्त आदिसे उत्पन्न हुए आग्नि और धूमादिसहित सामान्य
 आग्नि, ये सब अतिशायिक जीव कहे गये हैं ॥ १५१ ॥

सामान्य वायु उद्भवा अथान् धूमता हुआ ऊपर जानवाला वायु (बज्रवात), उत्कलि
 अथान् नाबेकी ओर बहनेवाला या जलका तरंगोंके साथ तरंगित होनेवाला वायु मण्डलि
 अथान् पृथिव्यात् स्था करव धूमता हुआ वायु गुजा अथान् गुजायमान वायु, महापात
 अथान् वृक्षादिकृष्ण भगस उत्पन्न होनेवाला वायु घनजात और तनुजात ये सब वायुकायिक
 जीव त्रिजिज्ञान भगवानन कहे हैं ॥ १५२ ॥

मूलबीज अथवाज पयवाज कन्दवाज स्फुटवाज वाजगद भार समल्लिप्ति ये सब

१ शय २ १६० ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

२४ ॥

विहि ताहि चउटि पचलि महिया जे इदिणह लोयमि ।

ते समसाया जीरा जेया गारोस्मेण ॥ १५४ ॥

प्रतिरीकायिस्तीना स्वरूपमभिधाय माम्प्रत तेषु गुणगाननिष्पणार्थमुक्त
मृममाह—

पुडनिकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणफइ
साइया एवमि चैय मिच्छाइट्टि-ट्टाणे ॥ ४३ ॥

आह, आप्तागमनिषयभदारहिता मिथ्यादृष्टयो भण्यन्ते। श्रद्धाभा ताभद्रपण
परिगानदूतक । तथा च पृथिवीकायादीनामाप्तागमनिषयपरिज्ञानोक्तिज्ञानां कथं मिथ्य

परिगानदूतक । तथा च पृथिवीकायादीनामाप्तागमनिषयपरिज्ञानोक्तिज्ञानां कथं मिथ्य

पुडनिकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणफइ
साइया एवमि चैय मिच्छाइट्टि-ट्टाणे ॥ ४३ ॥

पुडनिकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणफइ
साइया एवमि चैय मिच्छाइट्टि-ट्टाणे ॥ ४३ ॥

पुडनिकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणफइ
साइया एवमि चैय मिच्छाइट्टि-ट्टाणे ॥ ४३ ॥

पुडनिकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणफइ
साइया एवमि चैय मिच्छाइट्टि-ट्टाणे ॥ ४३ ॥

पुडनिकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणफइ
साइया एवमि चैय मिच्छाइट्टि-ट्टाणे ॥ ४३ ॥

पुडनिकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणफइ
साइया एवमि चैय मिच्छाइट्टि-ट्टाणे ॥ ४३ ॥

रात्रिमिति नैष दाप, पश्चिमाननिरपामृत्तमिषात्तमस्य तत्रारिषाधात् । अध्या
 त्वात्तत्रमात्रपिरमृत्तपुद्गलादितर्नायिवस्याभावित्रिषीतमिषात्तानां सप्तानामपि
 तत्र तन्मय ममिति । अत्रानतीराना गन्त्रिषधिमिषात्तत्र उद्गादितहृदयानामपिनष्ट
 मिषात्तत्रपर्यायण मा व्यासतन्मयगतानां तन्मस्यासिरोधात् । इन्द्रियानुसादेन
 त्रयोदश्या त्रिषाध मर मिषात्तस्य इत्यभाजि, ततस्तन्मय गतार्थत्वात्
 तन्मगीयमिदं ध्यमिति नैष दाप, पृथिवीसायादीनामियन्तीद्रियाणि भवन्ति न
 भवन्तीति अनयगतस्य तन्मृत्तस्य वा तन्मस्य प्रभवात्तस्य तन्मस्यावतारात् ।
 प्रवन्तीरप्रतिपात्तार्थमुक्तस्यमाह—

तमसादया बीडादिय-पुद्गुडि जाय अजोगिकेयलि ति ॥ ४४ ॥
 एत प्रमनामरमादयरागतन । ए पुन म्धाररा इति वदकन्द्रिया ।

गमाधान—यद बोध दाप नहो दे, क्योकि पृथियाकायिक भादि जीवोंमें परिज्ञानही
 भवताहै तब मूढ मिथ्यात्वका सदभाव मात्र होनेमें बाह विरोध नहीं आता है । अध्या
 त्वात्मिक सापेक्ष मूढ मृदुमादिन विनिविक स्वाभाविक भार विपरीत इन स्तानों
 प्रकारके मिथ्यात्वोंका भी उन पृथियाकायिक भादि जाणोंमें सदभाव समझ है, क्योकि,
 जिनका हृदय स्तान प्रकारके मिथ्यात्वकपी कान्हे अहित है ऐसे मनुष्यादि गतिमयधी
 जाय यद प्रदण व। हूर मिथ्यात्व पयायको न छोड़कर जब स्वायत्त पर्यायको प्राप्त हो
 जाते है तो उनके पानों का प्रकारका मिथ्यात्व पाया जाता है, इस कथन में कोई
 विरोध नही आता है ।

पृथा—इन्द्रियाणुपादय एक द्वय और विकलेन्द्रिय ये सब जीव मिथ्यावादि होने दे,
 एसा कह भाय है इत्यर्थ उमास यद ज्ञान हा जाता है कि पृथियाकायिक भादि जाय
 मिथ्यावादि होत है । अत इस सूत्रका प्रथम रूपसे वतानेका बाह भावश्यकता नही थी ?

गमाधान—यद बाह दाप नहो दे क्योकि पृथियाकाय भादि जीवोंके इतना इन्द्रिया
 पानों का अध्या इतनी हा द्रव्य नही होता है इसप्रकार जिन शिष्यका ज्ञान नहीं है अध्या
 जो भूय गया है उन शिष्यक प्रथम मनुष्याधस इस सूत्रका अन्तरा हुआ है ।
 अथ प्रम ज्ञायाक ज्ञानवादन करनेके लिये आगका सूत्र वक्त है—
 ॥ ४५ ॥ प्रथम मोक्ष लक्ष्य । आगकयत्नक प्रम ज्ञान हाते ॥ ४५ ॥
 इन सब जीवाय प्रम नामकमका उदय पाया जाता है इत्यर्थ है प्रमकायिक
 प्रम है ।

गमाधान—प्रम ज्ञान वक्त है
 गमाधान—प्रम ज्ञान प्रम ज्ञान वक्त है ।
 ॥ ४५ ॥

कथमनुक्तमगम्यते चेत्परिशेषात् । व्यासकर्मण किं कार्यमिति चेन्नस्यानात्म्या पकृत्यम् । तेनोपायस्कायाना चलनाममाना तथा मत्वम्यायग्नं म्यापति च प्र स्यात्तूना प्रयोगाश्चलन्तिउन्नपणानामिप्र गतिपर्यायवर्णिनममीगणा यतिगिनगोन्त स्तेषा गमनामिशेषात् ।

वादरजीवप्रतिपादनार्थमुत्तरमग्रमाह —

वादरकाहया वादरेडदिय-प्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ॥४५॥

वादर स्थूल सप्रतिपात साधो येषा ते व्याससाया । प्रथिमीकामिस्मिन् वनस्पतिपर्यन्तेषु पूर्वमेव वादगणा सूत्रमाणा च मन्त्रमुक्त ततोऽत्र व्यासरेडियप्रश्न मनर्थकमिति चेन्नानर्थक्यम्, प्रत्येकशरीरजननम्पुपात्तानार्थम् तदुपात्तानात्प्रत्यसर्गात्

शुक्रा—सूत्रमें एकेन्द्रिय जीवोंको व्यास नो कदा नहीं है, फिर कैसे जाना जाय कि एकेन्द्रिय जीवोंको व्यास कहते हैं ?

समाधान—सूत्रमें जब ह्रीन्द्रियादिक जीवोंको प्रमत्ताधिक कहा है, तो परिशय म्यापसे यह जाना जाता है कि एकेन्द्रिय जीव व्यास कहलाते हैं ।

शुक्रा—व्यासकर्मका क्या कार्य है ?

समाधान—यह स्थान पर अवस्थित रहना व्यासकर्मका कार्य है ।

शुक्रा—वेसा मानने पर, गमन स्थमात्राले अभिवायिक, वायुकायिक भाग इव कायिक जीवोंको अस्थावरपना प्राप्त हो जायगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, जिसप्रकार दृष्टमें लगे हुए पत्ते वायुसे हिला करते हैं और दूढ़ने पर इधर उधर उठ आते हैं, उसीप्रकार अभिवायिक और जलकायिक प्रयोगसे गमन माननेमें कोई विरोध नहीं आता है । तथा वायुके गतिपर्यायसे परिणत शरीरका छोड़कर कोई दूसरा शरीर नहीं पाया जाता है इसलिये उसके गमन करनेमें भी कोई विरोध नहीं आता है ।

अथ वादर जीवोंके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

वादर एकेन्द्रिय जीवोंसे लेकर अयोगिकेउलीपर्यन्त जीव वादरकायिक होते हैं ॥४६॥

जिन जीवोंका शरीर वादर स्थूल अर्थात् प्रतिपातसहित होता है उन्हें वादरकाय कहते हैं ।

शुक्रा—पृथिवीकायिकसे लेकर वनस्पति पर्यन्त जीवोंमें वादर और सूक्ष्म दोनों प्रकारके जीवोंका सम्भाव्य पहले ही कहा आये है, इसलिये इस सूत्रमें वादर एकेन्द्रिय पदका प्रदण करना निष्प्रय है ?

समाधान—अनर्थक नहीं है, क्योंकि, प्रत्येकशरीर वनस्पतिके प्रदण कराने निष्प्रय

एनस्पतिप्रभृतयो चादरा इति यावत् । न विधातव्यमेतेषां चान्तरत्वं प्रत्यक्षमिदृश्यादिति चेन्न, सांक्ष्म्याभासप्रतिपादनफलत्वात् ।

द्विविधकायातीतनीमास्तित्वप्रतिपादनार्थमुत्तरयवमाह —

तेण परमकाइया चेदि ॥ ४६ ॥

तेन द्विविधशयात्मकजीवराशे परादरग्रहणपरितनिवधनकर्मातीतत्वाऽवगीता मिद्धा अस्मादिना । जीवप्रदेशप्रत्यक्षमस्मादिना अपि मरणाया इति चक्षुः, तेषामनां धनधनरद्धजीवप्रदेशात्मकत्वात् । अनादिप्रत्यक्षमपि काय विध्य म्मादिनि चेन्न, मृतानां पुद्गलानां कर्मनोर्मपरीयपरिणतानां मादिसां तत्र तस्य सापत्ताभ्युपगमात् । 'इति'

साक्षात् एवेन्द्रिय पद सूत्रमें प्रहण किया गया है । हम पदके प्रहण करनेमें प्रत्यक्षगता एनस्पति भादि सभी जीव साक्षर ही होते हैं, यह बात स्पष्ट हो जाती है ।

पुनः—हम सूत्रमें हम जीवोंके साक्षरपनेका बयान नहीं करना चाहिये क्योंकि ये जीव साक्षर ही होते हैं यह बात प्राच्यमिद्ध है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि हम जीवोंके केवल साक्षरपने प्रतिपादन करनेके लिये यह सूत्र नहीं रखा गया है, किन्तु हम जीवोंके सूक्ष्मताके अभावका प्रतिपादन करना ही हम सूत्रके बनानेका फल है ।

अब हम और व्यापक हम दोनों बायोंमें साक्षर जीवोंके अस्मिन्पदके प्रतिपादन करनेके लिये प्रागेका सूत्र कहते हैं—

व्यापक और साक्षरकायमे परे कायरातिन अस्मादिन जाय हाते हैं ॥ ४७ ॥

जो उस कम और व्यापकरूप से प्रसारकी कायरातिने परे ॥ ये निरुद्ध जीव साक्षर और सूक्ष्म शरीरके कारणभूत कर्मसे रहित होनेके कारण अन्तरीर होते हैं अतएव अस्मादिन कहलाते हैं ।

शुद्धा—जीववेदोंके प्रत्ययरूप होनेके कारण निर जीव या साक्षर हैं निर उर अभाव क्यों कहा ?

समाधान—नहीं क्योंकि निर जीव अस्मादिनात्मक व्यापकादि बन्धनमे बन्ध जीव प्रदेशस्वरूप है इसलिये उसकी अवस्था यदा कल्पयना नहीं किया गया है ।

पुनः—अस्मादिनातीन आत्म प्रदेशोंके प्रत्ययरूप काय क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यदा पर कम और मौल्यमंडल पदात्मक एतत्त्व रूप पुद्गलोंके साक्षर और साक्षर प्रदेश प्रत्ययरूप ही कायरूपमे स्वीकार किया है ।

विचारार्थ—यद्यपि पांच अस्मिन्कायोंमें निरुद्ध आदीना ही प्रहण हो जाना है । निर ही यदा पर अस्मादिनातीन व्यापकादि बन्धनमे बन्ध जाय प्रदेशोंके प्रत्ययरूप कायकी

अत्र च त्रिभु सुवर्गमिमांशार्थत्वात्, न 'च' गण्यमान कलाभासादि पर
स्य कारणात् त्रिभुमिमांशप्रतिपादनफलत्वात् ।

गोपनीयं औपनिषत्प्रतिपादनाभिप्रेतम्—

जोगाणुच्चादेण अत्थि मणजोगी वणिजोगी रायसेणे
चैदि ॥ २३ ॥

[illegible]

॥ अथ भगवत्पुत्रोक्तं ॥ भगवन्मातुः शिरसाः पश्यन्निमित्तं भगवत्पुत्रोक्तं ॥ भगवन्मातुः शिरसाः पश्यन्निमित्तं भगवत्पुत्रोक्तं ॥ भगवन्मातुः शिरसाः पश्यन्निमित्तं भगवत्पुत्रोक्तं ॥

[illegible][illegible][illegible][illegible]

1. 1945년 8월 15일 일본 제국 패망 후
 2. 1948년 8월 15일 대한민국 정부 수립
 3. 1949년 10월 1일 중화인민공화국 수립
 4. 1950년 6월 25일 한국전쟁 발발
 5. 1953년 7월 27일 휴전협정 체결
 6. 1954년 12월 1일 대한민국-미국 자유무역협정 체결
 7. 1955년 12월 1일 대한민국-일본 자유무역협정 체결
 8. 1956년 10월 28일 소련-중국 국교 정상화
 9. 1957년 4월 8일 유럽 경제 공동체 설립
 10. 1958년 11월 1일 소련-미국 국교 정상화

[illegible]

1. 1950년대 초반에 시작된 미국의 원조는 주로 군사적 성격의 지원에 중점을 두었다. 이는 한국전쟁 이후의 냉전 체제 속에서 미국이 한국을 공산주의 확산으로부터 보호하기 위한 전략적 움직임이었다.

कारणयारेकाल समुत्पत्तिनिरोधात् । तदस्यास्त्यग्निमि-
शाम्योगी काययोगीति ।

योगातीतजीवप्रतिपादनार्थमुत्तरमत्रमाह—

अजोगी चेदि ॥ ४८ ॥

न योगी अयोगी । उक्त च—

जैसि ण सति जागा सुहासुहा पुण्ण-पाव म
ते होति अजोशनिणा अणोरमाणन नउ-कडि

मनोयोगस्य सामान्यत एरुनिधम्य भेदप्रतिपादनार्थमु

मणजोगो चउव्विहो, सच्चमणजोगो मोस

मणजोगो असच्चमोसमणजोगो चेदि ॥ ४९ ॥

सत्यमनितथममोषमित्यनर्थान्तरम् । सत्ये मन सत्यमन
याग । तद्विपरीतो मोपमनोयोग । तदुभययोगात्मत्यमोपमनोयो

यह मनोयोग जिसके या जिस जीवमें होता है उसे मनोयोग
मनोयोग शब्दसे 'इन्' प्रत्यय कर देने पर मनोयोगी शब्द बन जाता है ।
और काययोगी शब्द भी बन जाते हैं ।

अब योग रहित जीवोंके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका मन्त्र कह
अयोगी जीव होते हैं ॥ ४८ ॥

जिनके योग नहीं पाया जाता वे वे अयोगी हैं । कहा भी है—
जिन जीवोंके पुण्य और पापके उत्पादक शुभ और अनुभ याग

हैं वे अनुपम और अनन्त-बल सहित अयोगीजिन कहलाते हैं ॥ ४९ ॥
सामान्यकी अपेक्षा एक प्रकारके मनोयागके भेदोंके प्रतिपादन
भागका मन्त्र कहते हैं—

मनोयोग चार प्रकारका है सत्यमनोयाग, मृषामनायोग सत्यमृषाम
मसत्यमृषामनोयाग ॥ ५० ॥

मय, अविनय और अमोघ, ये एकार्थशार्वा शब्द हैं । मयक विषयमें हान
सत्यमन कहते हैं और उसका द्राग जो याग हाना है उसे सत्यमनायाग कहते
विपरीत यागका मृषामनायाग कहते हैं । जो योग सत्य और मृषा इन दोनोंके मया
होता है उसे सत्यमृषामनोयोग कहते हैं । कहा भी है—

१ गां जा २४६ ३४ यागामाव गत ३४६६६६ शान्तिं बनामाव नव नव प्रामना
शान्तिं नवदधना १ शान्तिं नवदधना १ शान्तिं नवदधना १ शान्तिं नवदधना १ शान्तिं नवदधना १

स माको सञ्चमनो जो गोप तेग सञ्चमनोमेग ।

गिरिरीशो मोमा जाणुभय सञ्चमोस ति ॥ १५४ ॥

ताभ्या मत्यमोषाभ्या व्यतिरिक्ताऽमत्यमोषमनोयोग । नर्दुभयमयोगनोऽस्तु ।
न, तस्य तृतीयभङ्गेऽन्तर्भावात् । कोऽपरगतुर्थो मनोयोग इति चेदुच्यते । समनस्केषु
न पूर्विका वचन प्रवृत्ति अन्यधानुपनम्भात् । तत्र मत्यञ्चननिर्वाधनमनसा योग
सत्यमनोयोग । तथा मोषञ्चननिर्वाधनमनसा योगो मोषमनोयोग । उभयात्मक
चननिर्वाधनमनसा योग मयमोषमनोयोग । त्रिनिर्वाधनव्यतिरिक्तामत्रणादि
चननिर्वाधनमनसा योगोऽमत्यमोषमनोयोग । नापमधो भुक्त्यः मन्त्रलमनमामव्यापक
त्वात् । ७ पुनर्निर्वाधोऽर्धरेषधारास्तु प्रवृत्त मनः सत्यमन । निपरीतममत्यमन ।

सङ्गाप अर्थात् सन्त्यार्थको विषय वदनेवात् मनको सत्यमन कहने है भार उससे जो
योग होता है उसे सत्यमनोयोग कहने है । इससे विपरीत योगको मृषामनोयोग कहने है ।
मय्यरूप योगको सत्यमृषामनोयोग जानो ॥ १५४ ॥

सत्यमनोयोग भार मृषामनोयोगसे व्यतिरिक्त योगको असत्यमृषामनोयोग
है ।

श्रुति—तो असत्यमृषामनोयोग (अनुभव) उभयसंयोगक रहा भाव ?

ममाधान—नहीं क्योंकि, उभयसंयोगकता तोसरे भेदमें अन्तर्भाव हो जाता है ।

श्रुति—तो फिर हमसे मिला चाथा अनुभव मनोयोग कौनसा है ?

ममाधान—समनस्व जीर्णमें यवनप्रवृत्ति अनपूर्वक इन्हीं जाती है, क्योंकि,
नमिन्न बिना उनमें यवनप्रवृत्ति महा पाव आता है । इसलिये उन चारोंमेंसे सत्ययवन
नेमिलक मतक निमित्तस्य होनवाला योगका ही प्रमत्तायोग कहने है । अमय यवन निमित्तस्य
रतस होनवाला योगका अमत्यमनोयोग कहने है । मय भार मृषा इन दोनोंरूप यवन
नेमिलक मतसे होनवाला योगका । उभय मनायोग कहने है । उन दोनों प्रकारके यवनोसे
मेष भाषात्रण भादि अनुभवरूप यवन निमित्तक मनस होनवाला योगका अनुभवप्रमत्तायोग
है । फिर भी उस प्रकारका कि उन मृकण्य नही ॥ क्योंकि इसका स्वरूप मतक
पाप व्याप्ति नही पाव जाता है । अतएव उन यवन उपवाहन है अतएव वचनका संपाद
जाते मतस मय भाइका उपवाहन किया गया है ।

श्रुति—तो फिर रहा वह अनुभव मय कौनसा लना चाहा

इत्यात्मरूपमयमन । सन्नयानध्ययसायज्ञाननिवन्धनममन्यमायमन इति । अतो
तद्वचनचननयोग्यतामपेक्ष्य चिरन्तनोऽप्यर्थ मभीचीन एव । उक्तं च —

ण य सच्च-मोस उचो जो न मणो सो असच्चमोममणो ।

जो जोगा तेण हरे अमच्चमोमो दु मणजोगो ॥ १५५ ॥

मनमो भेदमभिप्राय साम्प्रत गुणव्यानेषु तत्परूपनिरूपणार्थमुक्तमनुमाह—

मणजोगो सच्चमणजोगो असच्चमोसमणजोगो सणिमिच्छा
इट्टि-एहुडि जाव सजोगिकेवलि ति ॥ ५० ॥

मनोयोग इति पञ्चमो मनोयाग क ल-उत्थेर्ष टोष, चतुर्मा मनोव्यतीत
मामान्यस्य पञ्चमत्वोपपत्ते । किं त-सामान्यमिते चेन्मनस्य मादृश्यम् । मनस्य

समाधान—जहा त्रिसप्रकारकी वस्तु विद्यमान हो, वहा उमीदकारमे प्रभुति कर
पावे मनको सत्यमन कहते हैं । इसमे विपरीत मनको अमन्यमन कहते हैं । सत्य और
असत्य इन दोनोंरूप मनको उभयमन कहते हैं । तथा जो सदाय और अनप्ययमात्र
मानका कारण हैं उसे अनुगत्य मन कहते हैं । अथवा मनमें सत्य, अमत्य आदि यवनें
उपपन्न करनेरूप योग्यता है, उसकी अपेक्षामे सत्यअसत्तादिके निमित्तमे होनेके कारण त्रि
पहले उपचार कह भाये है यह कथन सुर्य भी है । कहा भी है—

जो मन सत्य और मृदासे युक्त नहीं होता है उसको अमन्यमृशामन कहते हैं
और उसमे जो योग अर्थात् प्रवृत्तिरहित होता है उसे अमन्यममनमाना
कहते हैं ॥ १ ॥

मनोयोगके भेदोंका कथन करके अब गुणव्यानोंमें उसके स्वरूपका निरूपण करने
वि भागेका मन्त्र कहते हैं—

सामान्यमे मनोयोग और विनेयरूपमे अमन्यमनोयोग तथा अमन्यममनमाना
मन्त्री मिथ्याजिमे केकर मयोगिकथनी पर्यन्त होते हैं ॥ २ ॥

श्रुति—आर मनोयागाक अनिश्चित मनोयोग इस नामका पावया मनमान्य
कहामे भाया ।

समाधान—यह कोई शय नहीं है, क्योंकि भूदृश्य आर प्रकारक मनमान्य
रहनेवाले सामान्य यागके पावया मन्त्रा बन जाती है ।

गुहा—यह सामान्य क्या है आ आर प्रकारक मनोयागाम पाया जाना है ।

समाधान—यहा पर सामान्यमे मनकी मन्त्रागताका प्रमाण करना थावि ।

प्रमादविगंभित्वादिति न, रजोजुषा विपर्ययानयमायानानकारणमनम सत्ता
विराधान् । न च तद्योगात्प्रमादिनस्ते प्रमादस्य मोहपर्यायत्वात् ।

वाग्मोगोभेदप्रतिपादनार्थमुच्यते—

वचिजोगो चतुर्विहो सच्चवचिजोगो मोसवचिजोगो सच्चमास
वचिजोगो असच्चमोसवचिजोगो चेदि ॥ ५२ ॥

चतुर्विधमनोभ्यः समुत्पन्नाचक्षानि चतुर्विधान्यपि तद्वत्पञ्च प्रतिलभन्त
तथा एकीकृते च । उक्तं च—

यत्ना भ्रमभिर्धाय गुणस्थानेषु तत्सत्प्रतिपादनामनुत्तरमाह—

वचिजोगो असत्त्वमोसवचिजोगो वीइदिय प्पहुडि जाव
सजोगिकेयलि ति ॥ ५३ ॥

अत्र यमापमनानि यत्नरत्नमयमोषरत्नमिति प्रायुक्तम्, तद् द्वीन्द्रियादीनां मनोहितानां यत्न भ्रमरिति नायमस्मान्ताडमि मस्तरत्नानि मनम एव समुपघत इति मनोहितरत्नानि यत्नाभासमचननात् । विस्मृतिद्रियाणां मनमा विना न ज्ञानममुत्पत्ति । ज्ञानन विना न यत्नप्रवृत्तिरिति चेन्न, मनम एव ज्ञानमुत्पद्यत इत्येतान्ताभावात् । भावे ना नापन्द्रियभ्यां ज्ञानममुत्पत्ति मनम समुपजन्नात् । नैतदपि दृष्टश्रुतानुभूतिप्रपञ्चस्य मानमप्रत्ययस्यान्यत्र वृत्तिरिरोधान् । न पुरुषार्थिना महार्यपि प्रयसान्मगहराग्भ्य इन्द्रियभ्यस्तदुपपत्त्युपलम्भान् । समनस्येषु ज्ञानस्य प्रादुर्भासो मनोयोगादेरिति चेन्न,

जीयोंकी भावा और सत्ती जायोंकी भावमयणी आदि भावाए इसके उदाहरण हैं ॥ १ ॥

इस प्रकार यत्नयोगवत् भेद बह्वचर अथ गुणस्थानोंमें उससे सत्त्वके प्रतिपादन करनेक
त्रिय भावेका सूत्र कहते हैं—

सामायसे यत्नयोग और त्रिनेत्ररूपसे अनुभययत्नयोग द्वीन्द्रिय जीवासे उत्पन्न
सयोगिवयल गुणस्थानक होता है ॥ ३ ॥

पूरा—अनुभयरूप मनके निमित्तस आ यत्न उत्पन्न होते हैं उह अनुभययत्न
बदल है, यह बात पहले कहा जा चुकी है । एसी हालतमें मनरहित द्वीन्द्रियादिक जायाव
अनुभययत्न कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—यह कोर एका त नदी ॥ कि सपूर्ण यत्न मनसे ही उत्पन्न होते हैं ।
यदि सपूर्ण घबर्नीका उत्पत्ति मनसे ही मान ली जाये तो मनरहित केवलियोंके घचनाका
अभाव प्राप्त हो जायगा ।

पूरा—विश्लेष्टिय जायाके मनक विना ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है और
ज्ञानके विना यत्नोंकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती है ?

समाधान—जैसा नदी है क्योंकि, मनसे ही ज्ञानकी उत्पत्ति होती है यह कोर
एकान्त नदी है । यदि मनसे ही ज्ञानकी उत्पत्ति होती है यह एकान्त मान लिया जाता
॥ तब सपूर्ण इन्द्रियोंसे ज्ञानकी उत्पत्ति नदी हो सकती क्योंकि सपूर्ण ज्ञानकी उत्पत्ति मनम
मानत हो । अथवा मनसे समुपपन्नरूप घम इन्द्रियोंमें रह भी तब नदी हो सकता है । क्योंकि,
दृष्ट श्रुत और अनुभूतकी विषय करनेवाले मानसज्ञानका दूसरी जगह सद्भाष माननेमें विरोध
आता है । यदि मनकी वस्तु आदि इन्द्रियोंका सहकारा कारण माना जाये तो भी नदी बनता
है क्योंकि, प्रयत्न और आत्मके सहकारका अपेक्षा करनेवाले इन्द्रियोंसे इन्द्रियज्ञानकी
उत्पत्ति पाए जाते हैं ।

पूरा—समनस्य जीवाम तो ज्ञानकी उत्पत्ति मनोयोगवत् ही होती है ?

प्रमादविगतिरिति न मन्त्रात् विप्रमत्तत्वात् । न च प्रमादप्रतिपत्तिरिति मन्त्रात् । न च प्रमादप्रतिपत्तिरिति मन्त्रात् ।

साध्यामन्त्रप्रतिपत्तिरिति मन्त्रात् ।

वचिजोगो चउत्तिष्ठो मन्त्रावचिजोगो मोमर्तिवोगो म नमो
वचिजोगो अमन्त्रमोमर्तिवोगो वेति ॥ ५२ ॥

उत्तिष्ठो मन्त्रावचिजोगो चउत्तिष्ठो मन्त्रावचिजोगो मोमर्तिवोगो म नमो
वचिजोगो अमन्त्रमोमर्तिवोगो वेति ॥ ५२ ॥

उत्तिष्ठो मन्त्रावचिजोगो चउत्तिष्ठो मन्त्रावचिजोगो मोमर्तिवोगो म नमो

वचिजोगो अमन्त्रमोमर्तिवोगो वेति ॥ ५२ ॥

उत्तिष्ठो मन्त्रावचिजोगो चउत्तिष्ठो मन्त्रावचिजोगो मोमर्तिवोगो म नमो

वचिजोगो अमन्त्रमोमर्तिवोगो वेति ॥ ५२ ॥

इति भाष्ये, परन्तु बाह्यार्थं वा अर्थान् अमन्त्रमन्त्रयोगे भाष्ये अमन्त्रमन्त्रयोगे मन्त्रावचिजोगो
मन्त्रावचिजोगो, कर्त्तव्यं, इति द्वाभ्याम् अर्थान् अमन्त्रमन्त्रयोगे भाष्ये अमन्त्रमन्त्रयोगे मन्त्रावचिजोगो
मन्त्रावचिजोगो, कर्त्तव्यं, इति द्वाभ्याम् अर्थान् अमन्त्रमन्त्रयोगे भाष्ये अमन्त्रमन्त्रयोगे मन्त्रावचिजोगो
मन्त्रावचिजोगो, कर्त्तव्यं, इति द्वाभ्याम् अर्थान् अमन्त्रमन्त्रयोगे भाष्ये अमन्त्रमन्त्रयोगे मन्त्रावचिजोगो

मन्त्रावचिजोगो — मन्त्रावचिजोगो, कर्त्तव्यं, इति द्वाभ्याम् अर्थान् अमन्त्रमन्त्रयोगे भाष्ये अमन्त्रमन्त्रयोगे मन्त्रावचिजोगो
मन्त्रावचिजोगो, कर्त्तव्यं, इति द्वाभ्याम् अर्थान् अमन्त्रमन्त्रयोगे भाष्ये अमन्त्रमन्त्रयोगे मन्त्रावचिजोगो
मन्त्रावचिजोगो, कर्त्तव्यं, इति द्वाभ्याम् अर्थान् अमन्त्रमन्त्रयोगे भाष्ये अमन्त्रमन्त्रयोगे मन्त्रावचिजोगो
मन्त्रावचिजोगो, कर्त्तव्यं, इति द्वाभ्याम् अर्थान् अमन्त्रमन्त्रयोगे भाष्ये अमन्त्रमन्त्रयोगे मन्त्रावचिजोगो

अथ यवनयोगे भेदोऽने प्रतिपादनं कर्त्तव्यं इति भाष्ये मन्त्रावचिजोगो
यवनयोगे चार प्रकाशकाः, मन्त्रावचिजोगो, अमन्त्रमन्त्रयोगे, अमन्त्रमन्त्रयोगे
अमन्त्रमन्त्रयोगे ॥ २ ॥

चार प्रकाशके मन्त्रमे उत्पन्नं रूपं चार प्रकाशके यवनं मी उद्दी मन्त्रावचिजोगो
इति मी वेत्ति प्रतीति मी होती है। कहा मी है—

इति प्रकाशके सत्ययवनमे यवनयोगे निमित्तम जा योग होना ॥ उस सत्ययवन
योग कहते हैं। उसमे विपरीत योगको मृगावचिजोगो कहते हैं। सत्ययवन
योगको उभययवनयोग कहते हैं ॥ २ ॥

जो न तो सत्य रूप है और न मृगारूप ही है वह अमन्त्रमृगावचिजोगो है। प्रसंग

१ भा जा २२०

२ भा वा २२१

प्राप्तो भेदमभिधाय गुणस्थानेषु तन्मत्प्रतिपादनाध्वनिरग्रमाह—

वचिजोगो असच्चमोमवचिजोगो वीहदिय णहुडि जाव
सजोगिकेरलि ति ॥ ५३ ॥

अगम्यमापमनानिरन्धनरानममत्यमोपरातमिति प्रागुक्तम्, तद् द्वीद्विपारिना
मनागतिना कथं भवति नायमशान्तामिति मन्त्ररानानि मनस एव यमुपयत इति
मनागतिरिति नायमशान्तामिति मन्त्ररानानि मनस एव यमुपयत इति
शानन रिना न वरनप्रवृत्तिरिति कथं, मनस एव शानमुत्पद्यत उपेयान्ताभावात् । भाव
वा नागपन्निद्रयस्या शानममुपयति मनस यमुपयतान् । नैतत्पि दृष्टानुभूतविषयस्य
मानमप्रत्यक्षमायत्र वृत्तिरिवाधात् । न चुरादीना मन्त्रायापि प्रयत्नात्माह्वानिभ्य
इन्द्रियभ्यस्तदुपपन्नमात् । ममनस्येषु शानस्य प्रादुभासो मनोयोगादेरेति चेन्न,

जीवोर्वा भावा भीर वमा जावोर्वा भावप्रणी भावे सापाप इत्ये उदाहरण द ॥ १ ७ ॥

इत्यप्रकार वचनयोगे मेव वदन् अथ गुणरथात्मै उतरे सत्यं प्रतिपादन वरनक
लिय भागवा सूत्र वदते है—

सामायेस वरनयोग भीर विनेयकस अनुप्रयवचनयोग द्वीद्विप जावोर्वा लवर
सथागिबयली गुणस्थानतव दाता है ॥ ३ ॥

प्रा—भुमयत्प मनके निमित्तस ओ वरन उत्पन्न होते ॥ उह भुमयवरन
कान है, यह वान पत्त वही जा चुकी है । एसी द्वात्ममें मनगदित द्वाद्रियादिव जायाव
भुमयवरन किने हो सकने है ?

समाधान—यह कह वहां न नहीं है कि सपूर्ण वचन मनस ही उत्पन्न होते है ।
यदि सपूर्ण वचनोका उपनि मनसे है मान ला जाये तो मनरहित केवलियों वरनाका
माय प्राप्त हो जायगा ।

प्रा—विकलाग्र्य जायाव मनक विना शानकी उपनि नहीं हो सकती है भीर
मानके विना वचनोका प्रवृत्ति नहीं हो सकता है ?

समाधान—एसा नहीं है क्योंकि मनस ही शानकी उत्पन्न होती है यह कोर
एकान्त नहीं है । यदि मनस ही शानकी उपनि होता है यह एकान्त मान लिया जाता
है तो सपूर्ण है प्रयाम शानका उत्पन्न नहीं हो सकती क्योंकि सपूर्ण शानकी उत्पन्न प्रत्य
मानक है । १२५, मनस का वचन उक्त धर्म द्वाद्रियाम वद दाता नहीं हो सकता ॥ क्योंकि
एक रत भाव अनुभूतका विषय रजनवात् मानसशानका दूसरा अंग सद्भाव माननम । प्राप
जाता है । यदि मनकी उह तात् द्वात्रयाका स्वरकार वरण माय जाय सौ भाव बनता
है क्योंकि प्रयत्न भाव आभास स्वरकारका अपेक्षा रमनरता द्वात्रयास्य द्वाद्रियशानका
उत्पन्न पाइ जाता है ।

प्रा—समनस्य जायाम वा शानकी उपनि मनायागम्य ही होता है

केवलज्ञानेन व्यभिचारात् । समनस्काना यत्क्षायोपशमिक ज्ञान तन्मनोयोगात्संयमित चेन्न, इष्टत्वात् । मनोयोगादचनमुत्पद्यत इति प्रागुक्त तत्कथं घटत इति चेन्न, उपचारेण तत्र मानस्य ज्ञानस्य मन इति सज्ञा विधायोक्तत्वात् । कथं विकलेन्द्रियवचसोऽभ्यस्य मोक्षप्राप्तिरिति चेदनध्ययसाधहेतुत्वात् । ध्यानविषयोऽध्ययमाय समुपलभ्यत इति चन, यत्तु भविष्यति पयाध्ययमायाभासस्य विवक्षितत्वात् ।

सत्यवचमो गुणनिरूपणार्थमुक्तमसूत्रमाह—

सच्चवचिजोगो सणिमिच्छाडट्टि प्पहुडि जाय सजोगि-
केवलि ति ॥ ५२ ॥

दृष्टविधानामपि मत्यानामतेषु गुणव्यानेषु मयस्य निरोधामिदं, तत्र भगिनि

समाधान— नहीं, क्योंकि, ऐसा मानने पर केवलज्ञानसे व्यभिचार आता है ।

शुक्रा—तो फिर ऐसा माना जाय कि समनस्क जीवोंके जो क्षायोपशमिक ज्ञान होता है वह मनोयोगसे होता है ?

समाधान— यह कोई शक नहीं, क्योंकि, यह तो स्पष्ट ही है ।

शुक्रा— मनोयोगसे ध्यान उत्पन्न होते हैं, यह जो पहले कहा जा चुका है वह कैसे गदित होगा ?

समाधान— यह शक कोई दोषजनक नहीं है, क्योंकि, 'मनोयोगसे ध्यान उत्पन्न होने' यह पर मानस ज्ञानकी 'मन' यह सज्ञा उपचारसे स्वरूप कथन किया है ।

शुक्रा— विकलेन्द्रियोंके ध्यानमें अभुमययना कैसे आ सकता है ?

समाधान— विकलेन्द्रियोंके ध्यान अनध्ययसाधरूप ज्ञानके कारण है, इसलिए उन्हें अभुमयरूप कहा है ।

शुक्रा— उनके ध्यानमें ध्यानविषयक अध्यवसाय अर्थात् निश्चय तो पाया जाता है फिर उन्में अनध्यवसायका कारण क्या कहा जाय ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, यहां पर अनध्यवसायसे ध्यानका अभिप्रायविषयक अध्यवसायका समाध विवक्षित है ।

अथ मन्यययनयोगका गुणस्थानात् निरूपण करनेके लिये भागेका सूत्र कहते हैं—

मन्यययनयोग मन्त्री मिथ्यागर्णमे ल्पकर मन्योगिनेयरी गुणस्थानतक होता है ॥ ११ ॥

इसी ही प्रकारके मन्यययनताक गुणोत्तर नेरह गुणस्थानोंमें पाये जानेमें कोई विचार

१ उपपन्नमन्त्रात् यथासाधं कथं वदाम् । मन्त्राय य माय उपपाय इति । तत्र ॥ मन्त्रे ११
यन्मन्त्र मा तद् य इति विवक्षितम् । अथा इत्यादि इत्येति कमे नि य तद् इति वदाम् ॥ ११ ॥ टी., १११, ११२

प्रापि मत्पानीति ।

गपयचमा गुणव्याननिष्पणाधमुत्तरमुद्रमाह—

मोसवचिजोगो सच्चमोसवचिजोगो सण्णिमिच्छाट्टिप्पहुडि
राय सीण कसायचीयराय उदुमत्था ति ॥ ५५ ॥

धीलरपायस्य उचन रथममत्यमिति श्वेत्, अमत्यनिबन्धनाज्ञानयत्नापेया नर
मन्त्रप्रतिपात्नात् । नन एव नाभयमयागाऽपि रिच्छ इति । रायमस्य धीलरपायस्य
य शायोगधश्च, तरान्तर्पस्य मन्त्रारिगधान ।

काययागमस्याप्रतिपात्नाधमुत्तरमुद्रमाह—

कायजोगो सत्ताविहो ओरालियकायजोगो ओरालियमिम्मकाय
जोगो वेउव्वियकायजोगो वेउव्वियमिस्सकायजोगो आहारकायजोगो
आहारमिस्सकायजोगो कम्मह्यकायजोगो चेदि ॥ ५६ ॥

आहारिरशरीरनिवृत्तीर्षाजीवप्रत्यापत्तिपन्निबन्धनप्रपन्नः आहारिराशयपाप ।

ती भाता है, इसलिये उनमें द्वा प्रहारक कायचक्रन होता है ।

द्वेय वयनयोर्गोहे गुणव्यानोम निरूपण करनेके लिये भगवत् गुरु कहते हैं—

मूयायत्रनयोग आर सयमूयायचनयाग मन्त्री मिष्ठादादिग एकर शीलकचपकपराय
स्य गुणव्याननक पाये जाते हैं ॥ ॥

श्रुति—जितकी कथायें शील ही यह हैं वन जीवक वचन अमत्य के ही श्रुति हैं ?

समाधान — वही गुरु कहते हैं क्योंकि अम वयचक्रन कारण अज्ञान कारणसे
नव्याननक पाया जाता है इस अवस्थामें यही वह अम वयचक्रन मन्त्रावली प्रयोगमें है
। और इसलिये उभयवर्षायाग का अन्तर्गम्यन आ कारणसे गुणव्याननक होता है इस
धर्म का विरोध नहीं आता है ।

गुरु—वयनयागका पूर्ण लक्ष्य पात्र वयचक्रन कथायगादन आहार वचनदाय
न लभय है ?

समाधान — नहीं । गुरु कहते हैं कि जीवम अत्र वय पात्र आनन्द का
नहीं होता आता है ।

अथ काययागः ॥ १ ॥ काययागः कर्तव्य इत्येव गुरु गुरु कहते हैं

काययाग का नाम प्रकाश है जो गुरुकाययाग जो गुरुकाययाग का नाम प्रकाश
काययाग कायचक्रमिष्ठादादि न ही काययाग आदि वयचक्र ५५५ अथ काययाग
का नाम है ।

आहारिक शीलकाय ॥ ५५५ अथ काययागः ॥ ५५५ अथ काययागः ॥ ५५५

ओमाहणा अमर-व्रगुणा चि ।' उन च—

पुनः सम्प्राप्तस्तु यदा न विदुः तर्हि न ।

शेराम्य नि बुध अंगि-राम्य ॥ १६० ॥

असद्विषयमुक्तं च निराकारं निमित्तं च अविज्ञानं वि ।

જો તમારું સરજોગી અગાઉ રહેતું હોય તો ૧૯૭૭

अणिमादित्रिंशत्या, तयागापुष्ट्या-त्रिंशत्यि भवन्ति । तत्र मर इति
 पञ्चिपरम् । तद्वद्वभत समुत्पन्नमिच्छादन याग त्रिंशद्विंशत्यागम् । वायु-
 पञ्चिपरम् । समुत्पन्नमिच्छादन याग त्रिंशद्विंशत्यागम् । इति ५-

विदिह पुन द्वि शुभ रम्य वदन्तव । कर्म ५ ।

निम्ने भ३ ष १२ १३ १४दा । ५ ॥ १६ ॥

द्रव्य-योगोपाधिः अपगादना इत्यनेन सम्प्रदायगतः ६ । वृत्ता आ ६—

पुनः, महान् उदार आर्त उद्योग यः दातुं प्रवृत्तः भवति । यः १२३ २१५६ ७८ ।

भा.शरिफ बटने द. भार उगरे निमिषमय दानदा/ दानदा भ. शरिफ बटने द. भार उगरे

भादारविचा अर्थ उपर कट भाप ह । दर्ता शासक जवनाक वृत्त मज्ज ह ता ह लवचक

मिथ बहलना है, भवि उताव हास हासना नम्रभासक। भावनाएँ दहवाएँ न हटन है ॥१॥

मल्लिका, मद्रिका भादि कश्चिदेषा विद्यमाना इति । इति च ३६ व मन्त्रस्य समाप्तः ।

श्री 'विबिद्या' इत्यस्य नाम वदत आमे । तस्मै अ। शाखा उपरान्त ॥ १५ ॥

बहुतेक । उमर शरीरक अवस्थासह समस्त रूप यो रोगग्रस्ताणां अ. विपक्षे दृश्यते ।

परियोजनाययोग बहने ६। कामले भाग ५ बहने समानाधिक नि ५००० १ १०००० १००००

अ. परिष्कारके निम्न प्रयत्न द्वारा द. उल्ल. ॥ ब. व. ॥ अ. व. ॥ अ. व. ॥ अ. व. ॥

ନାମା ସଂସାଧନ ସାଥୀ ଆମ କି ପ୍ରକାରର ଦୁଇ ଦିନୀୟତା ଓ ଗୋଟିଏ ଶ୍ରଦ୍ଧା ଓ ଶ୍ରଦ୍ଧା ଦାନ

वेउञ्जियमुत्तय विजाण मिस्म च अपरिपुण्ण नि ।

जो तेण सपन्नो गो वेउञ्जियमिस्सन्नो गो सो' ॥ १६३ ॥

आहरति आत्ममाकरोति सुन्मानर्थाननेनेति आहार । तेन आ
योगः आहारकाययोग । कथमादारिकस्फुक्कन्मम्भट्टाना जीवाययाना अन
हस्तमात्रेण शृङ्गधनलेन शुभमस्थानेन योग इति चेन्नप दोष, अनाग्निन्म
मूर्ताना जीवाययाना मूर्तण शरीरेण सम्मन्व्य प्रति विरोधमिद्रे । तत एव
सद्वटनमपि विरोधमास्कन्देत् । अथ स्याज्जीवस्य शरीरेण सम्मन्वधट्टायुस्यो
मरणम् । न च गलितायुपस्तस्मिन् शरीरे पुनरुपपत्तिर्विरोधात् । ततो न तस्यैव
शरीरेण पुनः सद्वटनमिति ।

अत्र प्रतिनिधीयते, न ताज्जीवशरीरयोर्वियोगो मरण तयो सयोगस्य
कहते हैं । और इसके द्वारा होनेवाले योगको वगुत्तिकाययोग कहते हैं ॥ १६३ ॥

वैगुत्तिका अर्थ पहले कह ही चुके हैं । उही शरीर जतन पूर्ण नहीं होता है
मिथ कहलाता है । और उसने द्वारा जो सयोग होता है उसे वैगुत्तिकामिथ
कहते हैं ॥ १६३ ॥

जिसके द्वारा आत्मा सूक्ष्म पदार्थोंसे ग्रहण करता है, अर्थात् आत्ममा क
उसे आहारकशरीर कहते हैं । और उस आहारकशरीरसे जो योग होता है उसे
काययोग कहते हैं ।

शृङ्गा—औदारिकस्फुक्कोसे सब्ध रखनेवाले जीवप्रदेशोंका हस्तप्रमाण, शस्त्र
धरल वर्णवाले, और शुभ अर्थात् समवतुल्य स्थानसे युक्त अथ शरीरके साथ बिम्ब
हो सकता है ।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, जीवने प्रवेश आवाशिकार्जन बा
बद्ध होनेके कारण मूर्त है, अतएव उनका मूर्त आहारकशरीरके साथ सब्ध होनेमें
विरोध नहीं आता है । और इसीलिये उनका फिरसे औदारिक शरीरके साथ सघटनका
भी विरोधको भान्न नहीं होता है ।

गुण—जीवका शरीरके साथ सब्ध करनेवाला आयुक्रम है, और जीव
शरीरका परस्परमें नियोग होना मरण है । इसलिये जिसकी आयु मर हो गई है वेव जी
वितसे उसी शरीरमें उत्पत्ति नहीं हो सकती है, क्योंकि, वेमा भाननेमें विरोध भान
अन जीवका औदारिक शरीरके साथ पुन सघटन नहीं बन सकता है । अर्थात् प
जावप्रदेशोंका आहारक शरीरके साथ सब्ध हो जानेके पश्चात् पुनः उन प्रदेशोंका
औदारिक शरीरके साथ सब्ध नहीं हो सकता है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि, आगमम जीव और शरीरक नियोगको मरण

आहारदि अणेण मुणा सुट्टमे अणे सयस्म सट्टे ।
 गत्ता केरुट्टि-पास तम्हा आहारको जोगो ॥ १६ ॥
 आहारयमुत्तय मियाण मिम्म च अपरिपुण्य ति ।
 जो तेग सययोगो आहारयमिस्मको जोगो ॥ १७ ॥

विशेषार्थ—मिथयोग तीन है, भौतिकमिथकाययोग, वैश्विकमिथकाययोग और
 आहारकमिथकाययोग । इनमेंसे भौतिकमिथ मनुष्य और निर्यन्त्रके जन्मके प्रथम मरणके
 लक्ष्य भन्तर्मुहूर्त कालतक और कर्मात् समुदायकी कपाटद्वयारूप अवस्थामें होता है । वैश्विक
 मिथ देव और नागकियोंके जन्मके प्रथम समवसे लेकर भन्तर्मुहूर्ततक होता है । आहारकमिथ
 छठे गुणस्थानकी जीवके आहारकसमुदाय निकलन समय अवधिमें अवस्थामें होता है । तब
 मौनों मिथयोगमें केवल विरागित शरीरमन्त्री वर्गनाओंके निमित्तमे आत्मप्रवेश गरिस्तान्त्रा
 होता है किन्तु कर्मणशरीरके स्वयमे युक्त होकर ही भौतिक आदि शरीरमन्त्री वर्गना
 और निमित्तमे योग होता है इसलिये इन्हें मिथयोग कहा है । परन्तु इतना विचारना
 है कि गाम्भ्यसार जीवकाण्डकी टीकामें आहारकसमुदायके पक्ष होनेवाले भौतिक
 शरीरकी वर्गनाओंके मिथयोगमें आहारककायमिथयोग कहा है और यदा पर काममन्त्रपक्ष
 मिथयोगमें आहारककायमिथयोग कहा है । इन दोनों कथनों पर विचार करनेमें ऐसा प्रतीत
 होता है कि गाम्भ्यसार जीवके अभिप्रायमें आहारकमिथकायमिथ और भौतिकशरीरमन्त्री
 वर्गनाओंके मिथयोगमें आहारककायमिथयोग कहा है ।

इससे गुणस्थानकी मुनि अपनका सर्वज्ञ होने पर भिन्न शरीरके द्वारा कर्मात् कथन
 द्वारा मरण पदायोंका आहारण करना है उस आहारक शरीर करने है इसलिये उक्त द्वय
 आहारकका भौतिक भाग है । यह आहारक शरीर जन्मक पूर्ण नहीं माना । तब
 तबसे आहारकमिथ करने । और उक्त द्वारा या मन्त्रयोग द्वारा । यह आहारकमिथ
 करने करने है ।

आहारकका भौतिक भाग है । यह आहारक शरीर जन्मक पूर्ण नहीं माना । तब
 तबसे आहारकमिथ करने । और उक्त द्वारा या मन्त्रयोग द्वारा । यह आहारकमिथ
 करने करने है ।

२९५ ॥ १ ॥ १६९ ॥ १७० ॥ १७१ ॥ १७२ ॥ १७३ ॥ १७४ ॥ १७५ ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ १७८ ॥ १७९ ॥ १८० ॥ १८१ ॥ १८२ ॥ १८३ ॥ १८४ ॥ १८५ ॥ १८६ ॥ १८७ ॥ १८८ ॥ १८९ ॥ १९० ॥ १९१ ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ १९४ ॥ १९५ ॥ १९६ ॥ १९७ ॥ १९८ ॥ १९९ ॥ २०० ॥

१, १, ५७]

सप्त पञ्चमगुणयोगद्वार जगन्मन्त्राय

कमल नाम्ना गरीरम्, अष्टकर्ममन्त्र इति यावत् । अथवा कर्मणि मन्त्र
शरीर नाममात्रपरस्य कर्मणो ग्रहणम् । तत्र याग कामनकाययाग । कर्मन्त्र
चतुर्विंशत्यस्य सह याग इति यावत् । उक्तं च—

कर्मोत्तरं च कर्मन्त्रं कर्मन्त्रं तत्र ज्ञातुं मन्त्रम् ।
कर्मन्त्राय यागनामा एव चित्तिं विष्णु मन्त्रम् ॥ १६६ ॥

वा मांदाकिरनाययागा भरनीत्यनप्रतिपादनाशुभमन्त्रमात्र—
ओरालियकायजोगो ओरालियमिस्मनायनागा निरिक्म्य मन्त्र

स्ताण ॥ ५७ ॥

दवनारनागा निमित्त्यादाग्विगरीगदया न भवत् न, इत्यादिभ्यः ददनाह

कर्म ही कामनगरीर ई अथान् आठ प्रकारक कर्मन्त्रम् । कामनगरीर कहन ह ।
अथवा कर्ममै जो शरीर उत्पन्न होना ह उन कामन शरीर कहन ह । कहा एव कर्मन्त्रम्
अथवा कर्ममै जो शरीर उत्पन्न होना ह उन कामन शरीर कहन ह । कहा एव कर्मन्त्रम्
उत्त कामनकाययाग कहन ह । इसका माध्यम यह ह कि अन्य औदात्तिकादि शरीर कामनकाय
विना कर्मन्त्र एक कर्मन्त्र उत्पन्न हुए यावत् निमित्तम् आत्मप्रदाय कर्मन्त्रम् उक्तं होना
है उत्त कामनकाययाग कहन ह । कहा भी है—

आत्मप्रदाय आठ प्रकारक कर्मन्त्रम् । ही कामनगरीर कहन ह । अथवा उक्त
कामनगरीर नामकम् उत्पन्न उत्पन्न होना ह उन कामनगरीर कहन ह । अथवा उक्त
निवाले यागका कामनकाययाग कहन ह । यह याग एक ह अथवा न न लक्षणम्
कामन ह ॥ १६६ ॥

आत्मप्रदाय याग कर्मन्त्र होना ह । इस याग में कर्मन्त्र उत्पन्न होना ह । अथवा उक्त
कामन कहन ह

निमित्तम् आठ प्रकारक न शरीरकाययाग आठ प्रकारक कर्मन्त्रम् । कहा एव कर्मन्त्रम्
कर्मन्त्रम् । अथवा उक्त कामनगरीर नामकम् उत्पन्न उत्पन्न होना ह । अथवा उक्त
निवाले यागका कामनकाययाग कहन ह । यह याग एक ह अथवा न न लक्षणम्

कामन कहन ह । अथवा उक्त कामनगरीर नामकम् उत्पन्न उत्पन्न होना ह । अथवा उक्त
निवाले यागका कामनकाययाग कहन ह । यह याग एक ह अथवा न न लक्षणम्

आहारं विभज्य भुज्या सुदुमे अ मयम् मयम् ।

गता येन विभज्य तस्मात् आहारो नागो ॥ १६४ ॥

आहारमनुवृत्तं विभज्य भिन्नं च अपि विभज्य ।

जो तेन मययोगो आहारमभिन्नं चो योगो ॥ १६५ ॥

विशेषार्थ—मिश्रयोग तीन है, आहारिकमिश्रकाययोग, वैश्विकमिश्रकाययोग और आहारिकमिश्रकाययोग । इनमेंसे आहारिकमिश्र मनुष्य और निर्धन के जन्म के प्रथम समय लेकर अन्तर्मुहूर्त काल तक और केन्द्रीय समुदायकी कपाटद्वारूप अवस्थामें होता है । वैश्विक मिश्र वैश्व और नागरिकों के जन्म के प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त तक होता है । आहारिकमिश्र छठे गुणस्थानवर्ती जीव के आहारकसमुदाय निकलने समय अवधि तक अवस्थामें होता है । इन तीनों मिश्रयोगोंमें केवल विभिन्न शरीरसम्बन्धी घर्षणाओं के निमित्तसे आमप्रदेश परिवर्तन होता है किन्तु कर्मणशरीर के सम्बन्धसे युक्त होकर ही आहारिक आदि शरीरसम्बन्धी घर्षणाओं के निमित्तसे योग होता है, इसलिये इन्हें मिश्रयोग कहा है । परन्तु इतना विज्ञान है कि गोममटसार जीवराष्ट्रकी टीकासे आहारकसमुदाय के पदों होनेवाले आहारिक शरीरकी घर्षणाओं के मिश्रणसे आहारककायमिश्रयोग कहा है और यहाँ पर कामनस्कंध के मिश्रणसे आहारककायमिश्रयोग कहा है । इन दोनों कथनों पर विचार करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि गोममटसारकी टीका के अभिप्रायसे आहारकमिश्रयोग तक आहारिकशरीरसम्बन्धी घर्षणाएँ आती रहती हैं और घटलके अभिप्रायसे आहारकमिश्रयोग के प्रारम्भ होने हैं । आहारिकशरीरसम्बन्धी घर्षणाओं का आना बन्द हो जाता है । कहा भी है—

छट्ठे गुणस्थानवर्ती मुनि अपनेको सदैव होने पर जिम् शरीर के द्वारा केवल के पान और सूक्ष्म पदार्थों का आहारण करता है उसे आहारक शरीर कहते हैं, इसलिये उसके द्वारा होनेवाले योगको आहारककाययोग कहते हैं ॥ १६४ ॥

आहारकका अर्थ कह आये है । यह आहारकशरीर जन्तव पूर्ण नहीं होता है तब तक उसको आहारकमिश्र कहते हैं । और उसके द्वारा जो सप्रयोग होता है उसे आहारकमिश्र काययोग कहते हैं ॥ १६५ ॥

प्रदक्षपरिस्पन्द स आहारकायमिश्रयोग । गो जी, जी प्र, टी २४०

॥ अदिप्रानस्थाप प्रप्रमयनस्य भुज्यामात्रनायात्प्राप्तयोगप्रमयि सति यदा धर्मप्राप्तमिगो भुज्यामिदेह स्यात्तदा तमद्विनिनामार्थं च आहारकशरीरमिति निर्णयः । गो जी, जी प्र टी २४१

२ गो जी २३९ नियते केन्द्रियविरति निरमणपुद्गलान् । परस्मै सति विप्रविशकाय ॥ उत्तमत्रेणम् इवे धातुविद्या सुदु चमद्वय । सुदुमटा धरु दृषपमाण पमद्वय ॥ गो जी २३९, २४०

२ गो जी २४

कमर वामेण गरीरम्, अष्टकर्मस्मन्ध इति यावत् । ज्वरा रमणि मर कामन
गरीर नामकर्मनययस्य कर्मणो ग्रहणम् । तेन याग वामेणराययाग । कर्मनेन कमणा
जनितरीयण सह याग इति यावत् । उक्तं च—

कर्मने च कर्म भव कर्मय तेन जो दु सक्तता ।

कर्मयरायजागो एग-विग निगेगु समगु ॥ १६६ ॥

का शौरिरिन्नाययोगो भवनीत्यतः प्रतिपादनाभ्युपगममाह—

ओरालियकायजोगो ओरालियमिम्मरायजोगो तिरिस्म मणु

स्नाण ॥ ५७ ॥

द्वन्द्वतराणां त्रिमित्यान्तरिगरीरायो न भवत् ? न, स्वाभावाद् द्वन्द्वतरा

कर्म ही वामेणगरीर है, अर्थात् आठ प्रकारके कर्मरच-धरो का वामेणगरीर कहते हैं ।
अथवा, कर्ममें जो गरीर उत्पन्न होता है उसे वामेण गरीर कहते हैं । यहाँ पर कामकर्मके
उत्पत्त्यरूप वामेणगरीरका ग्रहण करना चाहिये । उन गरीरके त्रिमितिलग आ याग होना है
उसे वामेणकाययोग कहते हैं । इसका तात्पर्य यह है कि अन्य आहारिचरिदि गरीर-वामेणभोंव
येना केवल एक कर्मसे उत्पन्न हुए यायेके त्रिमितिलग आत्मप्रदर्शपरिचयत्वरूप आ प्रवृत्त होना
उसे वामेणकाययोग कहते हैं । कहा भी है—

ज्ञानायरणादि आठ प्रकारके कर्मरच-धरो ही वामेणगरीर कहते हैं । अथवा आ
वामेणगरीर कामकर्मके उत्पत्त्यर उत्पन्न होता है उसे वामेणगरीर कहते हैं । और उसके द्वारा
प्रतिपाते योगको वामेणकाययोग कहते हैं । यह योग एक ही अथवा तीन शतककर्म
होता है ॥ १६६ ॥

आहारिचकाययोग किसके होता है इस बातके प्रतिपादन करनेके लिये आगेकर
कर कहते हैं—

तिर्यक् और मनुष्योके आहारिचकाययोग और आहारिचमिम्भकाययाग होता है ॥ ५८ ॥

शेषा — इस आठ आहारिचके आहारिचगरीर कामकर्मका उत्पन्न क्यों कहा जाता है ?

समाधान — जहाँ कर्मोंके कर्मभावमें ही उनका आहारिचगरीर कामकर्मका उत्पन्न होता

१. १. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.

॥ आहारिचकाययोग के उत्पत्त्यर उत्पन्न होता है उसे वामेणगरीर कहते हैं । और उसके द्वारा
प्रतिपाते योगको वामेणकाययोग कहते हैं । यह योग एक ही अथवा तीन शतककर्म
होता है ॥ १६६ ॥

गतिसमादयेन सह औदारिकरुमोदयस्य विरोधाद्वा । न च तिरथा मनुष्यानां औदारिकरूपयोग एवेति नियमोऽस्ति तत्र कार्मण्यकाययोगादीनामभावापत्तेः । किं तु औदारिकसाययोगान्तिर्यङ्मनुष्याणामेव ।

• केतु वैक्रियरूपाययोगो भवतीत्येतत्प्रतिपादनार्थमुत्तरमत्रमाह—

वेजवियकायजोगो वेजवियमिस्तकायजोगो देवणरइ
याण ॥ ५८ ॥

तिरथा मनुष्याणां च किमिति तदुदयो न भवेत् ? न, तिर्यस्मनुष्यगतिकर्मोदयेन सह वैक्रियरूपायस्य विरोधात्स्वमादाद्वा । न हि स्वमादा परपर्यनुयोगादीनां अनिप्रमत्तात् । तिर्यञ्चो मनुष्याश्च वैक्रियरूपाययोगात् श्रूयन्ते तत्कथं घटत इति मयि, औदारिकशरीरं द्विविधं विक्रियात्मकमपिक्रियात्मकमिति । तत्र यद्विक्रियात्मकं तत्

होता है। अथवा, देवगति और मरकगति नामकर्मके उदयके साथ औदारिकशरीर नामकर्मके उदयका विरोध है, इसलिये उनके औदारिकशरीरका उदय नहीं पाया जाता है। तिर्यकी निर्वैष और मनुष्योंके औदारिक और औदारिकमिश्रकाययोग ही होता है ऐसा नियम नहीं है क्योंकि, इस प्रकारके नियमके करने पर निर्वैष और मनुष्योंके कार्मण्यकाययोग भाविक भवती है भावति या ज्ञायती है। इसलिये औदारिक और औदारिकमिश्र निर्वैष और मनुष्योंके ही होता है ऐसा नियम जानना चाहिये ।

वैजवियकाययोग किन जीवाम होता है इस बातके प्रतिपादन करनेके लिए भावका गृह कहते हैं—

देव और मनुष्योंके वैजवियकाययोग और वैजवियमिश्रकाययोग होता है ॥ ५९ ॥

शङ्का—निर्वैष और मनुष्योंके इन दोनों जातोंका उदय क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि निर्वैषगति और मनुष्यगति केमादयक गति विक्रियक नामकर्मके उदयका विरोध होता है, अथवा, निर्वैष और मनुष्यगतिके औदारिक नामकर्मका उदय नहीं होता है, यह स्पष्टाव ही है। और स्पष्टाव दृष्टके जाण करी होने है अथवा, अनिप्रमत्त रूप या ज्ञायता । इसलिये निर्वैष और मनुष्योंके विक्रियक मिश्रकाययोग नहीं होता है, यह सिद्ध हो जाता है ।

गृह्य—निर्वैष और मनुष्य की वैजवियशरीरका गति जान है, इसका वह इस हीम कहते हैंगा ?

समाधान—नहीं क्योंकि औदारिकशरीर का प्रकारका है, विक्रियात्मक और विक्रियकायक । जैसे आ विक्रियात्मक विक्रिय शरीर है, वह मनुष्य और निर्वैष

प्रियवसिनि तत्रोक्तं न तदत्र परिगृह्यते विविधगुणैर्द्विभागात् । अत्र विविधगुणैर्द्विधा-
त्मकं परिगृह्यते, तत्रा देवनारकाणामेव ।

आहारशरीरस्यामिप्रतिपादनाभ्युत्तरग्रन्थमाह—

आहारकायजोगो आहारमिस्सकायजोगो सजदाणमिद्धि-
पत्ताण ॥ ५९ ॥

आहारद्विभागे स्मिन् सयता ऋद्धिप्राप्ता उत वैक्रियऋद्धिप्राप्तास्ते ऋद्धिप्राप्ता
इति । किं चात नाद्य पक्ष आश्रयणयोग्य इतरेतराभयदोषासजनात् । कथम् ?
यान्नाहारद्विरपद्यते न तत्रात्तेषामृद्धिप्राप्तत्तम्, यान्नाद्विप्राप्तत्वं न तत्रात्तेषामाहारद्वि-
रिति । न द्वितीयविस्फोषोऽपि ऋद्धेरुपर्यभागात् । भावे वा आहारशरीरयता मन-
पर्ययज्ञानमपि जायत विरोधाभावात् । न चैवमापण सह विरोधादिति नादिपक्षोक्तदोष

वैक्रियस्वरूपसे कहा गया है । उसका यहाँ पर ग्रहण नहीं किया है, क्योंकि, उसमें माना गुण
और ऋद्धिर्दोषा अभाव है । यहाँ पर माना गुण और ऋद्धियुक्त वैक्रियशरीरका ही ग्रहण
विषय है, और यद्द देय और नारकियोंके ही होता है ।

अब आहारकशरीरके स्थानोंके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

आहारककाययोग और आहारकमिधकाययोग ऋद्धिप्राप्त छट्ठे गुणस्थानवर्ती सयतोंके
ही होने हैं ॥ ५९ ॥

शुद्ध—यहाँ पर क्या आहारक ऋद्धिकी प्राप्तिसे सयतोंको ऋद्धिप्राप्त समझना
चाहिये, या उन्हीं पहले वैक्रियक ऋद्धिको प्राप्त कर लिया है, इसलिये उन्हें ऋद्धिप्राप्त
समझना चाहिये ? इन दोनों पक्षोंमेंसे प्रथम पक्ष तो ग्रहण करने योग्य नहीं है, क्योंकि,
प्रथम पक्षसे ग्रहण करने पर इतरेतराभय दोष आता है । यद्द कैसे आता है आगे इसीको
स्पष्ट करते हैं । जबतक आहारक ऋद्धि उत्पन्न नहीं होती ॥ तबतक उन्हें ऋद्धिप्राप्त
नहीं माना जा सकता, और जबतक वे ऋद्धिप्राप्त न हों तबतक उनके आहारक ऋद्धि
उत्पन्न नहीं हो सकता है । इसप्रकार दूसरा विचार भी नष्ट बनता है, क्योंकि, उनके
उस समय दूसरा ऋद्धिर्दोषा अभाव है । इतने पर भी यदि स्फुराय माना जाता है, तो
आहारक ऋद्धियालोंके मन पर्ययज्ञानकी उत्पत्ति भी माननी चाहिये क्योंकि दूसरा ऋद्धि
योंके समान इसके होनेमें कोई विरोधता नहीं है । परन्तु आहारक ऋद्धिप्राप्तेसे मन-पर्यय
ज्ञान माना नहीं जा सकता है क्योंकि ऐसा मानने पर आगमसे विरोध आता है ?

समाधान—प्रथम पक्षमें जा इतरेतराभय दोष दिया है यद्द तो आता नहीं है, क्योंकि,

१ मणप जगपरिहारो व नुक्तमव दाम्णि अरात् । २१५ ७४४४ वाचि वि अ न्प ज्ञाय ॥

समादौकते। यतो नाहारद्विरात्मानमपेक्ष्योत्पद्यते स्वात्मनि क्रियाविरोधात्। अतः उभयमातिगयापेक्षया तस्या ममुत्पत्तिरिति। अद्विग्राप्तमयतानामिति विशेषणमपि परतदनुत्पत्तापि अद्विहेतुमयम अद्विः कारणे कायापचारात्। ततश्चाद्विहेतुमयमशक्तयत्तय अद्विग्राप्तास्तेषामाहारद्विरिति भिद्वम्। समयविशेषननिताहारशरीरोत्पादशक्तिराहारद्विरिति न नेतेतराश्रयदोषः। न द्वितीयत्रिलोक्तदोषोऽप्यनभ्युपगमः। नैष नियमोऽप्यस्यैस्मिन्नक्रमेण नर्द्धयो भूयसो भवन्तीति। गणभृत्सु सज्जानाति अर्द्धानामक्रमेण सर्वोपलम्भान्। आहारद्वया मह मन पर्ययस्य विरोधो दृश्यत इति चेद्व्युत्तु नाम दृष्टत्वाद्। न चानेन विरोध इति सर्वाभिप्रोषो उक्तु पार्यतेऽप्यस्यापत्तेरिति।

कार्मणशरीरस्याभिप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह—

कम्मव्यक्रायजोगो विग्गहगइ-समाज्जणाण केवलीण वा

समुग्धाद-गदाण ॥ ६० ॥

आहारक अद्वि स्यत इति अपेक्षा करत उच्यते नर्णी होली है, क्योंकि, स्वयं से हा १ उत्पत्तिरूप क्रियाके होनेमें विरोध आता है। किन्तु समयमातिगयापेक्षया अपेक्षा आहारक का उत्पत्ति होली है, इसलिये 'अस्मिन्मात्रमयतानाम्' यत् विशेषण भी बन जाता है। यही वही दूसरी अद्वितीय उत्पत्ति नर्णी होने पर भी कारणमें कार्यक उत्पत्तिमें अद्वि कारणभूत समयका ही अस्मिन्मात्र मया है, इसलिये अद्वि के कारणरूप समयमें आता समयोंका अस्मिन्मात्र समय बन है, और उनके आधारक अद्वि होली है, यह बात भिन्न हो जाती है। मयत्त समयविशेषण उत्पत्ति हुई आधारकशरीरके उत्पत्तिरूप शक्तिके आधारक अद्वि करत है इसलिये भी इनरतगद्य दाय नर्णी आता है। इसीप्रकार दूसरे विवरणमें विद्या गया शीघ्र में नहीं आता है क्योंकि एक अद्वि मात्र दूसरी अद्वि नर्णी होली है यह हम मानते नहीं हैं। एक आधारमें सुगमन भवत अद्वि उत्पत्ति नर्णी होली है, यह चार नियम नहीं हैं क्योंकि अस्मिन्मात्र एकमात्र आता ही अद्वि का अस्मिन्मात्र आता है।

टीका—आहारक अद्वि स्यत मयत्त उत्पत्तिरूप नर्णी विरोध हुआ आता है।

समाज्जान—यदि आहारक अद्वि स्यत मयत्त उत्पत्तिरूप विरोध हुआ आता है

तो कहा जाय। किन्तु मयत्त एक मात्र विरोध है, इसलिये आहारक अद्वि का दूसरी मात्र अद्वि है अस्मिन्मात्र विरोध है मयत्त मयत्त करत या मयत्त है। न यथा न यद्यस्यापि मयत्त न

अथ अस्मिन्मात्र अस्मिन्मात्र अस्मिन्मात्र अस्मिन्मात्र अस्मिन्मात्र अस्मिन्मात्र अस्मिन्मात्र अस्मिन्मात्र

विरोधका अस्मिन्मात्र मयत्त अस्मिन्मात्र अस्मिन्मात्र अस्मिन्मात्र अस्मिन्मात्र अस्मिन्मात्र अस्मिन्मात्र

१ ६ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०

विग्रहा दहस्तदर्शा गति विग्रहगति । आंदारिकादिशरीरना
ममर्थान् विविधान् पुद्गलान् गृह्णाति विग्रहगति । ससारिणा इति वा विग्र
गति विग्रहगति । अथवा विरुद्धा ग्रहे विग्रह व्यापात पुद्गलादाना
विग्रहण पुद्गलादानानिराधन गति विग्रहगति । अथवा विग्रहो व्या
मित्यनर्थान्तरम् । विग्रहेण कौटिल्येन गति विग्रहगति । ता सम्यग
विग्रहगतिममापन्ना, तथा विग्रहगतिसमापन्नानाम् । सत्राणि शरीराणि
तत्तीव्रभूत कर्मणः शरीर कर्मणः साय इति भण्यते । पारमन सायवर्गणानि
प्रदेगपरिस्पन्दो यागा भवति । कर्मणः सायकृता योग कर्मणः सायपाग । स
वर्गगतो वर्तमानजीवाना भवति । एतदुक्तम्, गतेगत्यन्तर प्रचता प्राणिना च
भवन्ति इषुगति पाणिमुक्ता लाङ्गलिका गोमूत्रिका चेति । तत्राविग्रहा
शपा विग्रहवत्त्व । श्रुत्या गतिरिषुगतिरसममधिकी । यथा पाणिना तिर्य

प्रात केपली चित्ते कर्मणः साययोग होता ॥ ६० ॥

विग्रह दहको कन्ते ह । उसके लिये जो गति होता ह उसे विग्रहगति कह
यह आप ओशरिक आदि गारर नामकमके उदयसे अपने अपने शरीरकी रचना
समर्थ माना प्रकारके पुद्गलोंको प्रदण करता ह भवत्य समारा जीपके द्वारा
प्रदण किया जाता है । इसलिये दहको विग्रह कहते ह । ऐसे विग्रह मर्थात् गाररके लि
गति होती है उसे विग्रहगति कहते ह । अथवा यि गाररका भर्थ विग्रह भार
गाररका भर्थ घान होनस विग्रह गाररका भर्थ व्यापात भा होता ह । जिसका मर्थ पुद्ग
प्रदण करनेका निराध होता ह । इसलिये विग्रह अथवा पुद्गलोंके प्रदण करनेक मि
साथ जो गति होता ह उस विग्रहगति कहत ह । अथवा विग्रह व्यापात भार काजि
पथायपाचा नाम ह । इसलिये विग्रहस अथवा कुजिल्ला (माता) क साथ जो ग
होता ह उस विग्रहगति कहत ह । उसका भन्ना प्रकारस प्राण चाय विग्रहगतिममाप
होता ह । उनक अर्थात् विग्रहगति कहत ह । प्रसारस प्राण चाय विग्रहगतिममाप
प्राण गारर उदय होता ह उस वातजन क मणः शरीरका कामगार कहत ह । परत
का मनावगणा भार का गाररका निमनस का मणः शरीरका गारर कहत ह । परत
कहत ह कामगार उदय का गाररका निमनस का मणः शरीरका गारर कहत ह । परत
विग्रहगति अथवा उदयगतम विग्रहगति वात कहत ह । गाररम वसा कहा ह । विग्र
ह गति । मानका ममन करन गारर वात क गारर मानका ह ता गाररम वसा कहा ह । विग्र
हगति मानका ममन करन गारर वात क गारर मानका ह ता गाररम वसा कहा ह । विग्र

द्रव्यस्य गतिरेकविग्रहा गति तथा ममागिणामेकविग्रहा गति पाणिमुक्ता द्वैममयिहा ।
यथा लाङ्गल द्विग्रह तथा द्विविग्रहा गतिर्लाङ्गलिका त्रैममयित्री । यथा गोमूत्रिक
पट्टिका तथा त्रिविग्रहा गतिर्गोमूत्रिका चातु ममयित्री । तत्र कर्मणकाययोग सादिर्हि ।
स्वस्तिप्रदेशात्परम्योर्ध्वाग्निर्यगाकाशप्रदेशाना क्रममग्निविष्टाना पक्षि श्रेणित्युत्तरा ।
नयैव जीवाना गमन नोद्रेणिरूपेण । तन्मिविविग्रहा गतिर्न विरुद्धा जीवसेति ।

घातन घात मित्यनुभययोर्विनाश इति यावत् । कथमनुक्तमनधिकृत तावत्त
इति चेन्न, प्रकण्णयगात्तन्मते । उपरि घात उदात्त, समीचीन उदात्त मनुदा ।

कहते हैं । इस गतिमें एक समय लगना है । जैसे हाथमें निम्न के गये द्रव्यकी एक मोटो नी
गति होती है, उसीप्रकार समस्त जीवोंके एक मोटोपत्ती गतिको पाणिमुक्ता गति कहते हैं ।
यह गति दो समयवाली होती है । जैसे हममें दो मोटे होते हैं, उसीप्रकार दो मोटोपत्ती
गति को पाणिमुक्ता गति कहते हैं । यह गति तीन समयवाली होती है । जैसे गावका कान
गमन मूत्रक करना अनेक मोटोंवाला होता है, उसीप्रकार तीन मोटोपत्ती गतिको गोमूत्रिका
गति कहते हैं । यह गति चार समयवाली होती है । हनुगतिवा छेड़कर जोर लाने विना
गतिमें कर्मणकाययोग होता है ।

आ प्रश्न अहं भित्त है यद्वात् लेकर ऊपर, नीचे और निम्न क्रमसे विग्रम
आह—प्रश्नोंकी गतिको धेनी कहते हैं । इस धेनीके द्वारा ही जीवोंका गमन होता है
धेनीको उल्लेख करके नहीं होता है । इसलिये विग्रहगतिवाले जीवक तीन मोटोपत्ती का
विग्रहका प्रश्न नहीं पड़ता है । अर्थात् ऐसा कोई कथान ही नहीं है जहाँ पर पट्टिकादि वि
ग्रह का प्रश्न पड़े ।

कर्मणकाय धर्मका घात कर्मण है, विग्रहका प्रश्नका अर्थ कर्मोंकी भित्ति और म
प्रश्न विनाश होता है ।

टीका—कर्मोंकी भित्ति और अन्तर्गत घातका धर्मिक कथन नहीं किया है अर्थात्
इसका प्रश्नका प्रश्न नहीं है इसलिये यहाँ पर कर्मोंकी भित्ति और अन्तर्गत घात का प्रश्न
है वह कर्म का प्रश्न का प्रश्न ।

मन्त्रादन्—नवी कदाचि, प्रकण्णय गमन पर जाना जाना है कि कर्मणकाय का
कर्म का प्रश्न का प्रश्न अन्तर्गत घात विनाशित है ।

प्रश्न का प्रश्न का प्रश्न का प्रश्न का प्रश्न है, और समीचीन उदात्तका प्रश्न
कहते हैं ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

कथमस्य दण्डः समर्पितो गमिति चेन्न भूय कान्तिनाशमानघातम्भोर्ध्वमपरिक्रम्य
तमेवान्तरादिगोष्ठान् । समुद्रात् पृथग् समुद्रात्पृथग् । कथमेकस्मिन् गम्यगमक
मात्रभ्रमः दण्डादप्यपि कथन्ति भेदविवक्षा नदविगोष्ठान् । यथा समुद्रात्पृथग्पृथग्
हेतुविना कर्मकथयतां मयत् । वा दण्डः समुद्रपद्मविना दण्डः ।

अथ मन्त्राणि तमुवाच महेन्द्रो निहेन्द्रो वा ? न द्वितीयविकल्पः ,
महेन्द्रो तमुवाच तमस्तु मन्त्रप्रसङ्गः । अस्तु च, मन्त्राणां केवला विप्र-
मन्त्राणां चानन्तर्यामिणोऽपि । न प्रथममन्त्रोऽपि न द्वितीयमन्त्रः । न

प्रश्न - इस पक्ष में सन्तुष्टि किसे है यह क्या समय है ?

महाशान - नहीं क्योंकि बहुत कामों का प्रहारेणों से घना है एक समय में होने
 १७ इस घने महाशान में कोई प्रिय नहीं मना है।

समुदायों का जल ३.४० से समुदायगत उर्वर रहने है।

शुद्धा—एक है। एकात्म्ये गान्धर्वसमाज केमे बन सकता है अर्थात् जब पर्यायमे
प्राण शक्ति है, वह संपन्न समुदायके प्राण होने है इसप्रकार समुदाय और केरनामे सम्म
सम्यक्भाव कम बन सकता है।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि पर्याय और पर्यायाधी कथञ्चि भेद विरभा दोन पाएन । यदायमे वाक्य-वाक्यमात्र नन आना है इममें कोई विशेष नहीं भाला है ।

उन समुदायगत वैकल्पिकों का मूल्यव्यय होना है। यश मूल्यों का माया हुआ 'पा
गल समुदायगत व्यय' प्रतिपादक है।

प्रश्न—केवलियोंके समुदान महेनुक होना है या निहेनुक? निहेनुक होना है यह हमारा नियम तो बन नहीं सकता, क्योंकि, ऐसा मानने पर समा केवलियोंको समुदान करनेके अनन्तर है। मास प्रसन्नता प्रसन्न मान हो जायगा। यदि यह कहा जाये कि सभी करण समुदानपूर्वक ही मोक्षके जाने है ऐसा मान लिया जाये तबमें क्या हानि है? तो भी कहना ठीक नहीं है क्योंकि, ऐसा मानन पर लोकरूप समुदान करनेवाले केवलियोंकी सर्व-गुरुकृत्यक अनन्तर धर्म भ्रष्टा होना है यह नियम नहीं बन सकता है। केवलियोंके

[illegible]

॥ सर्वं भूम्भं सर्वं जगत्सर्वं तन्मत्तं कुरुते ॥

[illegible]

द्रव्यस्य गतिरेकमिग्रहा गति तथा सप्तारिणामेकमिग्रहा गति पाणिमुक्ता द्वैसमयिकी ।
यथा लाङ्गल द्विप्रक तथा द्विमिग्रहा गतिर्लाङ्गलिका त्रैसमयिकी । यथा गोमूत्रिका
बहुवक्रा तथा त्रिमिग्रहा गतिर्गोमूत्रिका चातु सप्तमयिकी । तत्र कर्मणकाययोग स्यादिति ।
स्वस्थितप्रदेशादारभ्योर्ध्वाधस्तिर्यगाकाशप्रदेशाना क्रममन्निमिष्ठाना पङ्क्ति श्रेणिरित्युच्यते ।
तपैव जीवाना गमन नोद्धेणिरूपेण । तवस्त्रिमिग्रहा गतिर्न निरुद्धा जीवसेति ।

घातन घात' स्थित्यनुभवयोर्विनाश इति यावत् । कथमनुक्तमनधिकृत चागम्यत
इति चेन्न, प्ररुणप्रशात्तदगते । उपरि घात. उद्धात', समीचीन उद्धात समुद्धान' ।

कहते हैं । इस गतिमें एक समय लगता है । जैसे हाथसे तिरछे फेंके गये द्रव्यकी एक मोट्टेवाली
गति होती है, उसीप्रकार सप्तारी जीवोंके एक मोट्टेवाली गतिको पाणिमुक्ता गति कहते हैं ।
यह गति दो समयवाली होती है । जैसे हलमें दो मोट्टे होते हैं, उसीप्रकार दो मोट्टेवाली
गति को लाङ्गलिका गति कहते हैं । यह गति तीन समयवाली होती है । जैसे गायका चलने
समय मूत्रका करना अनेक मोट्टोंवाला होता है, उसीप्रकार तीन मोट्टेवाली गतिको गोमूत्रिका
गति कहते हैं । यह गति चार समयवाली होती है । इयुगतिको छोड़कर शेष तीनों मिग्रह
गतियोंमें कर्मणकाययोग होता है ।

जो प्रदेश जहा स्थित है वहासे लेकर ऊपर, नीचे और निरुद्धे प्रमसे विद्यमान
आकाशप्रदेशोंकी पङ्क्तिको श्रेणी कहते हैं । इस श्रेणीके द्वारा ही जीवोंका गमन होता है,
श्रेणीको उलटपन करके नहीं होता है । इसलिये मिग्रहगतिवाले जीवके तीन मोट्टेवाली गति
विरोधको प्राप्त नहीं होती है । अर्थात् ऐसा कोई स्थान ही नहीं है जहा पर पहुँचनेके लिये
चार मोट्टे लग सकें ।

घातनेरूप धर्मको घात कहते हैं, जिसका प्रवृत्तमें अर्थ कर्मोंकी स्थिति और अनु
भागका विनाश होता है ।

प्रश्न—कर्मोंकी स्थिति और अनुभागके घातका अभीतक कथन नहीं किया है, भयथा,
उसका अधिकार भी नहीं है, इसलिये यहा पर कर्मोंकी स्थिति और अनुभागका घात विवक्षित
है, यह कैसे जाना जाय ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रकरणके यशमे यह जाना जाता है कि वेगान्निगुणानमें
कर्मोंकी स्थिति और अनुभागका घात विवक्षित है ।

उत्तरान्तर होनवाले घातको उदात कहते हैं, और समीचीन उदातको समुदात
कहते हैं ।

१ न रा वा २ २० वा ४

२ लाङ्गलिका त्रैसमयिकी ३ लाङ्गलिका त्रैसमयिकी ४ गोमूत्रिका चातु सप्तमयिकी ५ इयुगति
६ घातन घात' स्थित्यनुभवयोर्विनाश इति यावत् ७ कथमनुक्तमनधिकृत चागम्यत ८ इति चेन्न,
प्ररुणप्रशात्तदगते ९ उपरि घात. उद्धात', समीचीन उद्धात समुद्धान' १०

११ घातनेरूप धर्मको घात कहते हैं, जिसका प्रवृत्तमें अर्थ कर्मोंकी स्थिति और अनुभागका विनाश होता है १२

श्रेण्यगोहणदर्शनात् । न तत्र समारम्भमानसमन्वितय ममुद्धान्त रित्वा स्थितिराण्डरानि
अन्तमुद्धान्त निपतनस्वभावाणि पल्यापमस्यामन्वेयभावापनानि मन्वेयप्राप्तिरापनानि
च निपातयन्त आधु ममानि रमाणि दृशन्ति । अपर ममुद्धान्त ममानयन्ति । न चेप
ममारयात् रेशति प्राप् मम्भरति स्थितिराण्डघातयन्ममानपरिणामवान् । परिणामानि
श्रयाभावे पक्षदपि मा भुत्तद्वात् इति चत्र वीतिगमपरिणामेषु ममानेषु मन्वेयभ्याऽ
न्तमुद्धान्तपुण्येभ्य आमेन ममु पक्षेभ्यन्तद्वात्पक्ष । अर्थगतापराधायानमिमम
भजन्त, कथं न मृगप्रचर्चिता १ न, वपुश्चक शान्त्युत्तरावतिना तद्विगशान् ।

गममाउरमेमे उरग जाम करउ पा ।

स समुग ओ सि जइ समा भज्जा समुग ॥ १६७ ॥

द । अत एता पर समारम्भान्तिरे समान कमन्विते नदा पाद जाती द । इत्यत्रात्र भन्त
मुद्धान्तं नियमस्व तादाकोपात्त दोनेयात् पक्षोपमकं मन्वेयान्तये भागप्रमाण या ररयात् आधुग
प्रमाण स्थिति काण्डका विनादा करत दुर विनत ही ओप समुद्धान्त विना ही आधुग
समान गेय कमौको कर लेने है । तथा चितने द । आधु समुद्धान्त भाग गेय कमौको आधु
कमके समान करत है । परन्तु यह ससारका घात केयगम पक्ष समेय नहीं है क्योंकि, पक्ष
स्थितिकाण्डक घातके समान सभी जीवोंके समान परिणाम पाय जात है ।

द्वारा—अब कि परिणामोंमें कोई अनिश्चय नहीं पाया जाता है अतएव यात वयात्
योंके परिणाम समान होत है तो पाठ भी समारम्भ घात मन दाभी ।

समाधान—नदा क्योंकि घातरागकय परिणामोंके समान रहने पर मा भन्त
मुद्धान्तप्रमाण आधुगमक अवेशसे आमात्र उरग दुर भ व विनिष्ट पक्षमात्र समारम्भ
घात बन जाता है ।

गदा—अथ भावयोग द्वारा नदा रयागशान विद गद हस अधका इत्यत्रात्र
रयागशान करत दुर भाव मुक्तक पक्ष उर गदे द यथा वया न माना जाय

समाधान—नदा क्योंकि परपक्षकय भवगतका प्रत्यक्ष करत गद हस
पक्षधर्मी भावायाका ही पुषान कथनसे पक्षध भाता है

गदा—यह माँ प्रमाण आधुगमक गेय रहने पर । अत आधुका वपुश्चक न गद
दुभा ॥ यह समुद्धान्त करत द मुग हाता द गेय जाय समान करत ॥ द ॥ १६८ ॥
करत द ॥ ३ ॥

एदिम्मे गाहाण उरण्णो किण्ण गहिओ ? ण, भज्जत्ते ऋग्णाणुत्तलमादो ।

जेमि आउ समाइ णामा गोदाणि त्रेयणाय च ।

ते अकय समुग्गाया वचत्तियरे समुग्गाए ॥ १६८ ॥

णद भज्जत्ते कारण मच्च-जग्गिमु ममंहि अणियट्ठि परिणामेहि पत्त घागण
ट्ठिदीणमाउ-ममाणत्त विरोहादो, अघाड तियस्स रीण-कमाय-चरिम-ममण जहण्ण ट्ठि
मतस्स पि पलिदोमस्स अमस्सेज्जदिमाग पमाणत्तुत्तलमादो । नागमन्तरेगोरा इति
चेन्न, एतयोर्गीययोरामन्त्रेण निर्णयामासाद् । भागे वास्तु गाययोगेनेपादानम् ।

इदानीं काययोगस्याध्यानवापनार्थमुत्तमूत्रचतुष्टयमाह—

इस पूजात गाथाका उपदेश क्यों नहीं ग्रहण किया है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि, इसप्रकार विकल्पके माननेमें कोई कारण नहीं पाया जाता है, इसलिये पूजात गाथाका उपदेश नहीं ग्रहण किया है ।

जिन जीवोंके नाम, गोघ और वेदनीयकर्मकी स्थिति आयुर्कर्मके समान होनी है व
समुदात नहीं करके ही मुक्तिको प्राप्त होते हैं । दूसरे जीव समुदात करके ही मुक्त होते हैं ॥ १६८ ॥

इसप्रकार पूजात गाथामें कहे गये धर्मिणायको तो किन्हीं जीवोंके समुदातके दानमें
भार किन्हीं जीवोंके समुदातके नहीं होनेमें कारण कहा नहीं जा सकता है, क्योंकि, संपूर्ण
जीवोंमें समान धर्मिणायकपरिणामोंके द्वारा कर्मोत्थानियोंका गान पाया जाता है, अतः उनका
आयुर्कर्म समान होनेमें विरोध आता है । दूसरे, क्षीणकथाय गुणस्थानके अरुण समयमें तीन अथा
निया कर्मोंकी अथवा स्थिति पदोपमके अमरक्यानेमें भाग सभी जीवोंके पाई जाती है, इसलिये
भी पूजात अर्थ ठीक प्रतीत नहीं होता है ।

प्रश्न— आगम तो तर्कका विषय नहीं है, इसलिये इसप्रकार तर्क के बलसे पूजात
गाथाओंके धर्मिणायकका स्मरण करना उचित नहीं है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि, इन दोनों गाथाओंका आगमरूपमें निर्णय नहीं हुआ है ।
अथवा, यदि इन दोनों गाथाओंका आगमरूपमें निर्णय हो जाय तो इनका ही ग्रहण रहा जाय ।

अब काययोगका गुणस्थानोंमें ध्यान करानेके लिये आगम काय रूप कहते हैं—

२०५. काययोगस्य रूपं व्याख्यायते यथा कथं न । समुदातमेषां तन्मि वेदनीयता ॥ १७१ ॥ १७१ ॥ १७१ ॥

व्याख्या—इदानीं एतत्तु कथं व्याख्यायते । ॥ १७१ ॥ समुदातमेषां तन्मि वेदनीयता ॥ १७१ ॥ १७१ ॥ १७१ ॥

१ मुद्रा २०५. काय योग रूपं व्याख्यायते यथा कथं न । ॥ १७१ ॥ १७१ ॥ १७१ ॥

व्याख्या—इदानीं एतत्तु कथं व्याख्यायते । ॥ १७१ ॥ १७१ ॥ १७१ ॥ १७१ ॥

कायजोगो ओरालियकायजोगो ओरालियमिस्सकायजोगो
एइदिय-प्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति' ॥ ६१ ॥

काययोग ध्येत्यन्तराधाराभावाच्च बाह्यनन्तरभावात् । एव तेषामपि वाच्यमिति ।
एकन्द्रियप्रभृत्यामयोगसंश्लिप्त आहारिस्मिन्धरायसागिनः इति प्रतिपाद्यमान दम्भारितानि
क्षीणरूपायान्नामानामपि तदन्तर प्राप्नुयादिति चक्षुः, प्रभृतिगुण्दास्य ध्ययम्भायां
प्रसारे च वर्तते । अत्र प्रभृतिगुण्द प्रसारे परिगृह्यते, यथा भिन्नप्रभृतया मृगा इति ।
ततो न तेषां ग्रहणम् । व्यवस्थासाधिनोऽपि ग्रहणे न दोषः 'आरानिय-मिस्स-कायनागो
अपज्जन्ताण' इति बाधरूपप्रसम्भवात् ।

धैरियरूपाययोगाधिपतिप्रतिपादनार्थमुत्तरयुक्तमाह—

वेउत्तियकायजोगो वेउत्तियमिस्सकायजोगो सण्णामिस्सइट्टि-
प्पहुडि जाव असजदसम्माइट्टि त्ति' ॥ ६२ ॥

सामान्यमेव काययोग और धिदोषकी अपेक्षा आहारिक काययोग और आहारिकमिध
काययोग ध्येत्यन्तराधारे सयोगिकेवलि गुणस्थानतश्च दोष इति ॥ ६१ ॥

काययोग ही होता है, इसप्रकार सध्यात्मक नहीं होनेसे पूर्वाह्न गुणस्थानमें वक्ष्यमाण
और मनोयोगका अभाव नहीं समझना चाहिये । इसप्रकार ही पाण्डित्य की वक्ष्य करना चाहिये ।

द्वितीया—एवेत्तियसे लेकर सयोगिकेवलतश्च आहारिकमिधकाययोगी हान इति वक्ष्य
वक्ष्य करके पर धैर्यविरत आदि क्षीणकायवप न गुणस्थानमें ही आहारिकमिधकाययोग
संज्ञाए प्राप्त हो जायगा ।

समाधान—नहीं क्याकि यह प्रभृति गण्द व्यपारका भार प्रसररूप अवयवे
रहता है । उनमेंसे वहा पर प्रभृति गण्द प्रसररूप अवयवे ग्रहण विषय गया है । अन्य मिह
आदि मृगा । इसन्धिये आहारिकमिधकाययोगी हानावगत आदि क्षीणकायवप न गुणस्थानमें ही
नहीं होता है । अथवा ध्ययस्थायिका भा प्रभृति गण्द प्रत्यक्ष करने पर वह ही नहीं
आता है । अथवा आहारिकमिधकाययोगी अपज्जन्ताण अथवा आहारिकमिधकाययोगी
अपज्जन्ताणोंका होता है इस बाधक सूत्रके समर्थ होनेके कारण भा पूर्वाह्न ही नहीं आता है ।

अथ धैर्यविरतकाययोगी हानावगत आहारिकमिधकाययोगी हानावगत आदि क्षीणकायवप न
गुणस्थानमें ही आहारिकमिधकाययोगी हानावगत आदि क्षीणकायवप न गुणस्थानमें ही
आहारिकमिधकाययोगी हानावगत आदि क्षीणकायवप न गुणस्थानमें ही आहारिकमिधकाययोगी

अ। 'य' धातुः कर्मभाष्यभा मयुगपारगमानुपपत्तिरिति न, च-यन्त
 र्भावानि मयुगपार्भाष्यभा यथा श्रुतिस्मृत्यजायामित्यत्र । मयुग्मिभ्यादपि वैदिक
 मिभकाययोगो भाष्यपरिणि शेष, उक्तपरस्तात् । 'मम्मामिन्द्रादिति द्वौ तिनो
 यन्तयो', वैदिकिभिरित कायजोगो अपज्जजाण 'इत्याभ्यां सा मुद्राम्पान्त्वजे
 यथा च सम्यग्मिभ्यादपि निगमिभराययोगः सम्यगीति ।

आहारकाययोगस्तमिषनिषादतर्पणपर्ययमाह—

आहारकायजोगो आहारमिस्तकायजोगो एकमि चेन्न पत
 शैलत्वात् ॥ ६३ ॥

अथभारिवा संभारां किमित्याहारकाययोगो न भवेदिति चेन्न तत्तद्वत्
 निमित्ताभावात् । तदुत्पत्तेरिति निमित्तमिति चेद्वैदिकान्तरात्

शैली— ॥६३॥ अथ चेन्न पत शैलत्वात् अथ चेन्न पत शैलत्वात् अथ चेन्न पत शैलत्वात्

अथ चेन्न पत शैलत्वात् अथ चेन्न पत शैलत्वात् अथ चेन्न पत शैलत्वात्

अथ चेन्न पत शैलत्वात् अथ चेन्न पत शैलत्वात् अथ चेन्न पत शैलत्वात्

अथ चेन्न पत शैलत्वात् अथ चेन्न पत शैलत्वात् अथ चेन्न पत शैलत्वात्

अथ चेन्न पत शैलत्वात् अथ चेन्न पत शैलत्वात् अथ चेन्न पत शैलत्वात्

अथ चेन्न पत शैलत्वात् अथ चेन्न पत शैलत्वात् अथ चेन्न पत शैलत्वात्

अथ चेन्न पत शैलत्वात् अथ चेन्न पत शैलत्वात् अथ चेन्न पत शैलत्वात्

अथ चेन्न पत शैलत्वात् अथ चेन्न पत शैलत्वात् अथ चेन्न पत शैलत्वात्

अथ चेन्न पत शैलत्वात् अथ चेन्न पत शैलत्वात् अथ चेन्न पत शैलत्वात्

अथ चेन्न पत शैलत्वात् अथ चेन्न पत शैलत्वात् अथ चेन्न पत शैलत्वात्

अथ चेन्न पत शैलत्वात् अथ चेन्न पत शैलत्वात् अथ चेन्न पत शैलत्वात्

अथपमपदुत्तापमप्रमादश्च । न च प्रमादनिवर्धनाऽप्रमादिनि भवेत्तिप्रमादात् । अथरा
रभारोऽप्य यदाहारकाययोगः प्रमादिनामोपनायत, नाप्रमादिनामिति ।

कामणकाययोगाधारजाप्रतिपादनार्थमुत्तरयुगमाह—

कम्मद्वयकायजोगो एहदियप्पहुडि जाव मजोगिकेवालि

ति ॥ ६४ ॥

देवारित्तादिधीनरूपायान्नामानामपि कामणकाययोगस्त्वामित्यत्र प्रामोयस्मात्प्रमा
दिति चेत्, 'सज्जदागज्जद्वाणे नियमा पञ्चत्ता' इत्येतस्मात्प्रमात्तत्र तदभावात्
गते । न च यदुद्घातादेन पर्याप्तानां कामणकाययोगोऽस्ति । किमिति न तत्र नाम्नीति
षेडिग्रहणमेवभवात् । देवारिषाधगदीनां पर्याप्तानामपि वत्ता गतिरूपनभ्यते चेत्,
पूर्वस्त्रीर परिचर्यात्तरशरीरमादभु प्रज्जतो वत्तगतारिवाप्तिवात् ।

समाधान—भावाकानिष्ठा अर्थात् आप्तवचनमे सन्देहजनित निधिलतावे होनेसे
उत्पन्न हुआ प्रमाद् और असपमको बहुलतासे उत्पन्न प्रमाद् आधारकायकी उत्पत्तिका निमित्त-
कारण है । जो कार्य प्रमादके निमित्तमे उत्पन्न होता है, वह प्रमादरहित जायमे नहीं हो
सकता है । अथवा यह स्वभाव ही है कि आधारकाययोग प्रमत्त गुणस्थानपालोंके ही होता
है, प्रमादरहित जायोंके नहीं ।

अथ कामणकाययोगके आधारभूत जायोंके प्रतिपादनार्थ भागेका सूत्र कहते हैं—

कामणकाययोग कयेऽपि जायोंसे लेकर सर्वोपिजयली तक होता है ॥ ६४ ॥

शरीर—इस सूत्रके वचनसे देवारित्त गुणस्थानसे लेकर क्षीणकथाय गुणस्थानतक
भी कामणकाययोगका अस्तित्व प्राप्त होता है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'सज्जदागज्जद्वाणे नियमा पञ्चत्ता' अर्थात् सत्यता
सपत्त गुणस्थानमें जाय नियमसे पर्याप्त ही होते हैं, इस सूत्रके अनुसार यदा पर कामण
काययोगका अभाव प्राप्त हो जाता है । यदापर सत्यतासत्यत पद उपलक्षण होनेसे पात्रोंसे
ऊपर सभी पचास गुणस्थानोंका सूचक है । दूसरे समुदातको छोड़कर पर्याप्तक जायोंके
कामणकाययोग नहीं पाया जाता है ।

शरीर—पर्याप्तक जायोंमें कामणकाययोग क्यों नहीं होता ॥

समाधान—समुदातका अभाव होनेसे उनका कामणकाययोग नहीं होता है ।

शरीर—इस आर विद्याधर आदि पर्याप्तक जायों भी वज्रगति पर जाती है ।

समाधान—नहीं क्योंकि पृथ शरीरको छोड़कर भाग्य शरीरको प्रदण करने
लिय जान हुए जायों जो एक दो या तीन माइयान्ता गति होता है । यदा गति यदा पर वज्र
गतिरूपस विवर्धित है ।

योगत्रयस्य स्वामिप्रतिपादनाभिमुख्यमात्रम् —

मणजोगो वचिजोगो कयजोगो साण्णामिच्छाद्विग्रहो
जाव सजोगिक्खलि त्ति ॥ ६५ ॥

चतुर्णां मनसा मामान्य मन , तच्चनितरीर्यण परिस्पन्दलक्षण योगा मना
योग । चतुर्णां उचसा मामान्य उच , तच्चनितरीर्यणामप्रत्येपरिस्पन्दलक्षण
योगो वाग्योग । मप्पाना सायाना मामान्य साय , तेन जनिंतन रीर्यण जीमप्रत्य
परिस्पन्दलक्षणेन योग साययोग । एते त्रयांसि योगा अपोषणमापेक्षया चामर्कक
रूपमापन्ना मज्झिमिध्यादष्टेगरस्य ज्ञानयोगसंज्ञिन इति क्रमेण सूत्रमार्गस्य वा
स्वामित्वमुक्तम् । साययोग एवेन्द्रियेभ्यस्मीति चेत्, साधुमनोभ्यामाविनामाविन
काययोगस्य निमित्तत्वात् । तथा उचमोक्ष्यभिप्रातन्त्यम् ।

अब तीन योगोंके स्वामीके प्रतिपादन करनेके लिये अनेक मूल कथने हैं—

मनोयोग, वचनयोग और काययोग सभी सिध्दाष्टिमें लेकर सयोगिके गुरु कहते हैं ॥ ६५ ॥

साध्यादि चार प्रकारके मनमें जो अन्ययरूपमें रहता है उसे मामान्य मन कहते हैं । उस मनसे उत्पन्न हुए परिस्पन्दलक्षण धर्मोंके द्वारा जो योग होता है उसे मनोयोग कहते हैं । चार प्रकारके वचनोंमें जो अन्ययरूपमें रहता है उसे मामान्य वचन कहते हैं । उस वचनमें उत्पन्न हुए आत्मप्रदेश-परिस्पन्दलक्षण धर्मोंके द्वारा जो योग होता है उसे उचनयोग कहते हैं । सात प्रकारके कायोंमें जो अन्ययरूपमें रहता है उसे मामान्य काय कहते हैं । उस कायमें उत्पन्न हुए आत्मप्रदेश-परिस्पन्दलक्षण धर्मोंके द्वारा जो योग होता है उसे काययोग कहते हैं । ये योग तीन होते हुए भी शरीरपदार्थकी अपेक्षा ज्ञानक एककृपणाको प्राप्त होकर सभी मिध्यादृष्टिमें लेकर सयोगिके गुरु गुणस्थानक होते हैं । यहाँ पर इस समस्त मन्त्र होनेका अपेक्षा स्वामित्वका प्रतिपादन किया ।

शुद्धा—काययोग एकेन्द्रिय जीवोंके भा होता है, फिर यहाँ उसका सभी एवेन्द्रियमें कथन क्यों किया ?

समाधान—जहाँ, क्योंकि, यहाँ पर वचनयोग और मनोयोगमें अविनाशाय रहने वाले काययोगकी विवक्षा है । इसीप्रकार वचनयोगका भी कथन करना चाहिये । अर्थात् यहाँ वचनयोग द्वैन्द्रिय जीवोंमें होता है, फिर भी यहाँ पर मनोयोगका अविनाशाय वचनयोग विवक्षित है, इसलिये उसका भी सभी एवेन्द्रियमें कथन किया ।

॥ याज्ञिकेन विप्र याज्ञिकेन वच दत्त मन्त्रेणाने भवति । १५ । १३ । ८ यज्ञिकेन दत्त मन्त्रेण
पशुदि दत्त वच दत्ता वि । अथर्व वेद वि व अथर्ववेद मन्त्रेणाने भवति ॥ १५ । १०९

द्विसयोगप्रतिपादनार्थमुत्तरखण्डमाह —

वचिजोगो कायजोगो वीइदिय प्पहुडि जाय असण्णिपवि
त्ति ॥ ६६ ॥

अत्र सामान्यशाश्वतयोगोक्तिस्तत्रान् द्वीन्द्रियाभिर्भूतत्वमज्ञितं पर्ययमानम् ।
तु पुनरुत्पन्नमयमेतत्तुरीयस्य वचम सत्यमिति । तदायन्तव्यपहरा न
तु, उपनिष्ठादपि शाश्वतयोगौ विद्येते ततो नामज्ञितं पर्ययमानमिति चेन्न,
स्याणामपि सत्यम् । अस्तु चेन्न, निरुद्धद्विसयोगस्य विमर्शनेन मह भिरोपाय ।
एवमयोगप्रतिपादनार्थमुत्तरखण्डमाह —

कायजोगो एइदियाण ॥ ६७ ॥

एवेन्द्रियाणामेव काययोग एव, द्वीन्द्रियाणां नाममज्ञितव्यत्वात् शाश्वतयोगो
द्वेषास्त्रियोगा ।

अथ द्विसयोगी योगीकं प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

वचनयोग और काययोग द्वीन्द्रिय जीवोंके लेकर अमर्जित एवेन्द्रिय जीवोंका होने हैं ॥ ६६ ॥

यदा पर सामान्य वचन और काययोगकी विषयता होनेसे द्वीन्द्रियमे लेकर अमर्जित
तब सामान्यसे दोनों योग पाये जाते हैं । किन्तु विशेष अमर्जित करने पर तो
मे अमर्जित वचनयोगके लिये भेद (अनुभववचन) का ही साथ समझना चाहिये ।

शुद्धा— इन दोनों योगोंका द्वीन्द्रियमे भादि लेकर अमर्जितव्यत्वात् आ शब्दाय वचन
भादि और अन्तर्गत व्यवहार यदा पर घटित नहीं होता है, क्योंकि, इन जीवों
जीवोंके भा वचन और काययोग पाये जाते हैं । इसलिये अमर्जित के योग होने हैं
नहीं बनती ।

समाधान— नहीं, क्योंकि भागके जीवोंके लीनों योगोंका साथ पाया जाता है ।

शुद्धा— यदि उपर तब योगोंका साथ है तो यदा भावे फिर भी इन दो योगोंके
क्रममें क्या होने हैं ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, द्विसयोगी योगका त्रिसयोगी योगके साथ वचन करनेमें
आता है । इसलिये द्विसयोगी योगका अमर्जित ही वचन विषय है ।

अथ एव त्रियोगी योगके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

काययोग एवेन्द्रिय जीवोंके होता है ॥ ६७ ॥

एवेन्द्रिय जीवोंके एव काययोग ॥ होता है । द्वीन्द्रियमे लेकर अमर्जित वचन
और काय ये दो योग ही होने हैं । तथा दोष जीवोंके लीनों का साथ होने हैं ।

प्राग् सामान्येन योगस्य सत्त्वमभिधायेदानीं व्यवच्छेदेऽमुष्मिन् कालेऽस्य सत्त्वममुष्मिन् न सत्त्वमिति प्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह—

मणजोगो वचिजोगो पञ्जत्ताणं अत्थि, अपञ्जत्ताणं णत्थि ॥६८॥

अथोपशमापेक्षया अपर्याप्तकालेऽपि तयो सत्त्व न विरोधमाह रुन्देति चेन्न, वाद्मनोभ्यामनिष्पन्नस्य तद्योगानुपपत्तेः । पर्याप्तानामपि निरुद्धयोगमध्यामितान्माया नास्त्येवेति चेन्न, सम्भवापेक्षया तत्र तत्त्वप्रतिपादनात्, तच्छक्तिवत्त्वापेक्षया वा । सर्वत्र समुच्चयार्थान्यथोक्तं च शब्दाभावेऽपि समुच्चयार्थं पदैरेवात्रोक्त्यत इत्यत्रमेव ।

साययोगसामान्यस्य सत्त्वप्रदेशप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह—

कायजोगो पञ्जत्ताणं वि अत्थि, अपञ्जत्ताणं वि अत्थि ॥६९॥

एतत् सामान्यमे योगका सत्त्व कहकर, अथ जिस कालमें योगका सत्त्वान् नहीं पाया जाता है, ऐसा निराकरण करने योग्य कालके होने पर, इस कालमें इस योगका सत्त्व है, और इस कालमें इस योगका सत्त्व नहीं है, इस बातके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

मनोयोग और वचनयोग पर्याप्तकोंके ही होते हैं, अपर्याप्तकोंके नहीं होते ॥६८॥

पूरा—श्वोपशमकी अपेक्षा अपर्याप्त कालमें भी वचनयोग और मनोयोगका पाया जाना विरोधको प्रामाण्य नहीं होता है ।

समाधान—यहाँ, क्योंकि, जो श्वोपशम वचनयोग और मनोयोगरूपमें उत्पन्न नहीं हुआ है, उसे योग सत्त्व प्रामाण्य नहीं हो सकती है ।

पूरा—पर्याप्तक जीवोंके भी निरुद्ध योगको प्रामाण्य होनेका अवस्थाके होने पर विशिष्ट योग नहीं पाया जाता है ।

विशेषार्थ—शब्दाकारका यह अभिप्राय है कि निम्नप्रकार अवयवों अवस्थामें मना योग और वचनयोगका अभाव बनगया गया है, उन्मीप्रकार पर्याप्त अवस्थामें भी निम्न प्रकार पागटे रहने पर शेष है। योगोंका अभाव रहता है, इसलिये उन समय भी उन ही योगोंके अभावका कथन करना चाहिये ।

समाधान—नहीं क्योंकि, पर्याप्त अवस्थामें किसी एक पागटे रहने पर शेष योग समग्र है, इसलिये इस अवस्थामें शेष पर उनका अस्तित्वका कथन किया जाता है । अथवा उस समय व योग निर्लक्षण विद्यमान रहते हैं, इसलिये इस अवस्थामें उनका अस्तित्व कहा जाता है ।

इस मनी सूत्रमें समग्रकथन अर्थका प्रमाण करनेवाला वह शब्द नहीं होता पर वह सूत्रक सूत्र ही समग्रकथन अर्थ प्रमाण ही जाता है, तथा समग्र ऐसा चाहिये ।

अथ सामान्य काययोगकी समाप्त प्रतिपादन करने के लिये आगेका सूत्र कहते हैं—
काययोग पर्याप्तकोंके भी होता है और अपर्याप्तकोंके भी होता है ॥ ७० ॥

‘अपि’ शब्द समुच्चय दृष्टव्य । क समुच्चय ? एकस्य निष्प्रप्रणाद्विप्रसृत
पनिपात समुच्चय । द्विरस्मि गुच्छोपादानमनरमिति चक्ष, विमलस्मिन्नानुग्रहाय
मात् । सक्षेपरपर्यो नानुग्रहीतावेक्ष, विमलस्मिन्नानुग्रहस्य मनेपरस्मिन्नानुग्रहा
वेनाभासित्वान् ।

पर्याप्तस्य एव यागा भवन्ति, एते चोमयोगिनि यानमात्रस्य पर्याप्तिरित्यजान
क्षयस्य निष्पत्त्यस्य मन्त्रोपादानार्थमुत्तमग्राण्यभार्यान्—

छ पञ्चतीओ, छ अपञ्चतीओ ॥ ७० ॥

पर्याप्तिनि त्रैपलभणोपलभणाथ तत्रगत्यामर प्राणात् । आतात्ताताद्वयात्तुम
त्रैपलभणोपलभणाथ तत्रगत्यामर प्राणात् । आतात्ताताद्वयात्तुम
त्रैपलभणोपलभणाथ तत्रगत्यामर प्राणात् । आतात्ताताद्वयात्तुम

श्रुतमेवो अपि शब्द आया है यह समुच्चयार्थक जानना चाहिए ।

श्रुत—समुच्चय किसे कहते हैं ?

समाधान—किसी एक वस्तुचुं निश्चित स्थानमें ही भासि बार बार होना समुच्चय

है ।

श्रुत—श्रुतमें दो बार भस्मि शब्दका प्रहण करना निश्चय है ?

समाधान—नहीं क्योंकि, विस्मयने समझनेकी शक्ति कमजोर हो गयी है अतएव

ये श्रुतमें दो बार भस्मि शब्दका प्रहण किया ।

श्रुत—तो इस श्रुतमें संक्षेपसे समझनेकी शक्ति कमजोर हो गयी है अतएव

ये श्रुतमें दो बार भस्मि शब्दका प्रहण किया ।

समाधान—नहीं, क्योंकि संक्षेपसे समझनेकी शक्ति कमजोर हो गयी है अतएव

ये श्रुतमें दो बार भस्मि शब्दका प्रहण किया ।

श्रुत—तो इस श्रुतमें संक्षेपसे समझनेकी शक्ति कमजोर हो गयी है अतएव

ये श्रुतमें दो बार भस्मि शब्दका प्रहण किया ।

समाधान—नहीं, क्योंकि संक्षेपसे समझनेकी शक्ति कमजोर हो गयी है अतएव

ये श्रुतमें दो बार भस्मि शब्दका प्रहण किया ।

श्रुत—तो इस श्रुतमें संक्षेपसे समझनेकी शक्ति कमजोर हो गयी है अतएव

ये श्रुतमें दो बार भस्मि शब्दका प्रहण किया ।

समाधान—नहीं, क्योंकि संक्षेपसे समझनेकी शक्ति कमजोर हो गयी है अतएव

ये श्रुतमें दो बार भस्मि शब्दका प्रहण किया ।

श्रुत—तो इस श्रुतमें संक्षेपसे समझनेकी शक्ति कमजोर हो गयी है अतएव

ये श्रुतमें दो बार भस्मि शब्दका प्रहण किया ।

समाधान—नहीं, क्योंकि संक्षेपसे समझनेकी शक्ति कमजोर हो गयी है अतएव

ये श्रुतमें दो बार भस्मि शब्दका प्रहण किया ।

इन्द्रियपर्याप्ति जानापानपर्याप्ति भाषापर्याप्ति' मन पर्याप्तिरिति । एतामामेवानिषात्परि पर्याप्ति । ताश्च पद भवन्ति, जाहारापर्याप्ति शरीरापर्याप्ति इन्द्रियापर्याप्ति आनापाना पर्याप्ति भाषापर्याप्ति मनोऽप्यपर्याप्तिरिति । एतामा द्वादशानामपि पर्याप्तीना म्यम्प प्रागुक्तमिति पौनराक्तिमयादिह नोच्यते ।

इत्यानीं तामामाधारप्रतिपादनार्थमुत्तरममुत्रमोचत्—

सण्णिमिञ्छाद्विप्पहाडि जाव असंजदसम्माडिट्ठि ॥ ७१ ॥

मम्यमिञ्छादृष्टानामपि पद पर्याप्तयो भवन्तीति चेन्न, तत्र गुणेऽप्याप्तिसात् भासात् । देशविरताद्युपरितनगुणाना मिति पद पर्याप्तयो न मन्तीति चेन्न, पर्याप्ति नाम पण्णा पर्याप्तीना ममाप्ति, न मोपरितनगुणेऽस्मि अपर्याप्तिवगमारव्यापामरु ममयिकया उपरि मत्तरिरोधात्

पदपर्याप्तिश्रवणात् पडेव पर्याप्तय मन्तीति ममुत्पन्नप्रत्ययस्य निष्यसाव धारणा मरुप्रत्ययनिराकरणार्थमुत्तरममुत्रमोचत्—

पर्याप्ति, भाषापर्याप्ति और मन पर्याप्ति । इन छद् पर्याप्तियोंकी अपूर्णताको ही मपर्याप्ति कहते हैं । मपर्याप्तिया भी छद् ही होती हैं, आहार मपर्याप्ति, शरीर मपर्याप्ति, इन्द्रिय मपर्याप्ति, आनापान मपर्याप्ति, भाषा मपर्याप्ति और मन मपर्याप्ति । इन बार पर्याप्तियोंकी स्वरूप पदों कह भाये हैं, इसलिये पुनर्हति दृष्टिको मयम उनका स्वरूप निम्ने यही नहीं कहते हैं ।

अब उन पर्याप्तियोंका आधारको बतानेके लिये भागेका सूत्र कहते हैं—

उपर्युन ममी पर्याप्तिया मंत्री मिध्यागएमे लेकर असपन सव्यागदि गुणस्थानतक होती हैं ॥ ७२ ॥

गुरा— तो क्या मम्यमिध्यागदि गुणस्थानवागेंकी भी छद् पर्याप्तिया होती हैं ।

ममायान— नहीं, क्योंकि, उन गुणस्थानमें मपर्याप्ति का नहीं पाया जाता है ।

मुक्ता— द्वाविरतादिक उपर के गुणस्थानवागेंके छद् पर्याप्तिया क्यों नहीं होती हैं ।

ममायान— नहीं, क्योंकि छद् पर्याप्तियोंकी समाप्तिका नाम ही पर्याप्ति है भाव यह समाप्ति का गुणस्थान तक ही होनेवा पावये भादि ऊपरके गुणस्थानोंमें नहीं पायी जाती क्योंकि मपर्याप्तिका अन्तिम अवस्थावर्ती एक मयममें पूर्ण हो जानेवाली समाप्तिकी कारणसे गुणस्थानमें सत्त्व मात्रनेम विराध उल्लेख होता है ।

छद् पर्याप्तियोंके सत्त्वमय त्रिम त्रिप्य का यह निश्चय होमया कि पर्याप्तियां छद् ही होती हैं किन्तु यह नहीं सम त्रिप्यके सम धारणाके निश्चयसे दूर करनेके लिये मम्यम सूत्र कहा है—

पञ्च पञ्चतीओ पञ्च अपञ्चतीओ ॥ ७२ ॥

पर्याप्तीनामपर्याप्तीनां च लक्षणमभाषीति नदानीं भण्यते । पण्णां पर्याप्ती नाम्नः पञ्चापि मन्तीति वृथार्थं पर्याप्तिपञ्चकोपदेशोऽन्यथेक इति चञ्च, कचिज्जीवविशेष पदेय पर्याप्तयो भवन्ति, वयित्पञ्चैव भवन्तीति प्रतिपादनफलत्वात् । का पञ्च पर्याप्तय इति चेन्नोच्यते । शेषा पञ्च ।

ता शेषा भवन्तीति मनुष्यान्मस्य शिष्यसारेकानिराकरणार्थमुत्तराख्यं वक्ष्यति—

वीहृदिय प्पहुडि जाय असण्णिपचिदिया त्ति ॥ ७३ ॥

विकल्पेन्द्रियेभ्योऽग्निमन तत्कार्यस्य विज्ञानस्य तत्र सत्त्वान्मनुष्येष्वेवेति न प्रत्यभ्यास्यतु पुनः तत्रैतन्मस्य विज्ञानस्य सत्त्वार्थत्वाभिदे । मनुष्येषु विज्ञानस्य तत्कार्यत्वं दृश्यत

पाञ्च पर्याप्तिया और पाञ्च अपर्याप्तिया होता है ॥ ७२ ॥

पर्याप्तियोंका और अपर्याप्तियोंका सम्बन्ध पहले कह आये हैं, इसलिये अब फिरसे नहीं कहते हैं ।

शुद्धा—पाञ्च पर्याप्तिया छह पर्याप्तियोंके भीतर आ ही जाती हैं, इसलिये अलग रूपसे पाञ्च पर्याप्तियोंका बयान करना निम्बल है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि बिना जीव विदोषोंमें छहों पर्याप्तिया पाई जाती हैं, और बिना जीवोंमें पाञ्च ही पर्याप्तिया पाई जाती हैं । इस बातका प्रतिपादन करना इस मूत्रका फल है ।

शुद्धा—ये पाञ्च पर्याप्तिया कानसी हैं ?

समाधान—मन पर्याप्तिको छावकर नेत्र पात्र पर्याप्तिया यहा पर ली गई हैं ।

य पाञ्च पर्याप्तिया कितने होता है इसप्रकार सहायपत्र शिष्यकी शक्ता दूर करनेके लिये आताका मूत्र कहते हैं—

य पाञ्च पर्याप्तिया ह्रासिद्वय आवास लेकर अमन्त्री पचन्द्रियपथगत होती है ॥ ७३ ॥

गुरा—विकल्पेन्द्रिय जीवोंमें ना मन ॥ क्योंकि मनका काय जो विज्ञान मनुष्योंमें नहीं विकल्पेन्द्रिय जीवोंमें आ पाया जाता है ।

समाधान—यह बात निश्चय करने योग्य नहीं है क्योंकि विकल्पेन्द्रियोंमें रहनेवाला विज्ञान मनका काय ॥ यह बात प्रसिद्ध है ।

शुद्धा—मनुष्याम जा त्वन्मस्य ज्ञान दाता है यन् मनका काय है यह बात ना ब्रह्मा जाती है ।

समाधान—मनुष्याका विशेष विज्ञान यदि मनका काय ॥ तो रहा और क्योंकि

इति चेत्स्तु, क्वचिद् दृष्टत्वात् । मनस्यैव प्रतिपन्नविज्ञानेन सह तत्रतनविज्ञानस्य
ज्ञानस्य प्रत्यविशेषान्मनोनिस्सृज्यमानमनुमीयत इति चेन्न, भिन्ननातिस्थितविज्ञानस्य
महाविशेषानुपपत्तेः । न प्रत्यक्षेणाप्येष आगमो बाध्यते तत्र प्रत्यक्षस्य दृश्यभावात् ।
विश्वेन्द्रियेषु मनसोऽभावात् कुतोऽनुमीयत इति चेत्तर्पणात् । कथमर्पस्य प्रामाण्यमिति
चेन्मामान्या प्रत्यक्षस्येव ।

पुनरपि पर्याप्तिमग्न्यामत्त्वमेदप्रदर्शनार्थमुत्तरमुग्रमाह—

चत्तारि पञ्जत्तीओ चत्तारि अपञ्जत्तीओ ॥ ७४ ॥

मेतुनि प्राणिषु चतस्र एव पर्याप्तयोऽप्यर्पणयो या भवन्ति । कामान्नम इति
चेत्तदामर्गगन्धियानापानर्याप्तय इति । ओष सुगमम् ।

चतुर्गामिपि पर्याप्तीनामधिपनिनीयप्रतिपत्तनार्थमुत्तरमुग्रमाह—

एढदियाण ॥ ७५ ॥

यद् वदन्त्येवमन् मनुष्योमेवेता ज्ञाना हे ।

प्राज्ञा—मनुष्योमेव मनस्यैव कार्यरूपमेवेता ज्ञाना किमेव विज्ञानस्य साधनं विश्वेन्द्रियोमे
दामर्गस्य विज्ञानस्य ज्ञानमग्न्यामर्गस्य भवति चेद्विदितव्यता नदी हे, इत्यपि यद् मनुमान
दिया ज्ञाना हे किं विश्वेन्द्रियोमे विज्ञानस्य मनस्येव ज्ञाना हे ?

ममान्—नदी कर्षादि, भिन्न ज्ञानिमे इत्येव विज्ञानस्य साधनं भिन्न ज्ञानिमे इत्येव
विज्ञानस्य साधनता नदी मनस्यैव ज्ञाना हे । विश्वेन्द्रियोमे मनस्यैव ज्ञाना हे । यद् भागस्य प्रमाण
हे वदन्त्येवमन् हे वदन्ति, यद् यद् प्रमाणस्य प्रमाणं ही नदी होति हे ।

प्राज्ञा—विश्वेन्द्रियोमे मनस्यैव ज्ञाना हे यद् वदन्ति किमप्रमाणमेव ज्ञाना ज्ञाना हे ?

ममान्—मनस्यैव प्रमाणस्य ज्ञाना ज्ञाना किं विश्वेन्द्रियोमे मनस्यैव ज्ञाना हे ।

प्राज्ञा—मनस्यैव प्रमाण किमज्ञाना भाग ?

ममान्—यद् प्रमाणं ज्ञानागतं प्रमाणं च उनीयकारं भागं ही ज्ञानागतं
ज्ञाना हे ।

विश्वेन्द्रियोमे मनस्यैव ज्ञानागतं ज्ञानागतं यद् ज्ञानागतं ज्ञानागतं यद् ज्ञानागतं
ज्ञानागतं ज्ञानागतं यद् ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं

विश्वेन्द्रियोमे मनस्यैव ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं

प्राज्ञा—यद् ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं

ममान्—यद् ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं

यद् ज्ञानागतं ज्ञानागतं

यद् ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं
यद् ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं ज्ञानागतं

पर्याप्त्या निष्पन्नः पर्याप्त इति भण्यते । तत्रौदारिककाययोगो निष्पन्नशरीरावष्टम्भ चलेनोत्पन्नजीवप्रदेशपरिस्पन्देन योगः औदारिककाययोगः । अपर्याप्तान्म्यायामौदारिक मिश्रकाययोगः । कर्मणौदारिकस्क्रन्धनिगन्धनजीवप्रदेशपरिस्पन्देन योगः औदारिक मिश्रकाययोग इति यावत् । पर्याप्तान्म्याया कर्मणशरीरस्य मत्वात्तत्राप्युभय निगन्धनात्मप्रदेशपरिस्पन्द इति औदारिकमिश्रकाययोगः किमु न स्यादिति चेत्, तत्र तस्य सतोऽपि जीवप्रदेशपरिस्पन्दस्याहेतुत्वात् । न पारम्पर्यकृत तद्वेतुत्वं तस्यापचारि कत्वात् । न तदप्यनिवक्षितत्वात् । अथ स्यान्परिस्पन्दस्य बन्धहेतुत्वे मचरद्वन्ना मपि कर्मगन्ध, प्रसजतीति न, कर्मजनितस्य चैतन्यपरिस्पन्दस्यास्यहेतुत्वेन निवक्षित त्वात् । न चात्रपरिस्पन्द, कर्मजनितो येन तद्वेतुतामास्कन्देत् ।

वैक्रियककाययोगस्य सत्त्वोद्देशप्रतिपादनार्थमाह —

समाधान—सभी जीव शरीरपर्याप्तिके निष्पन्न होने पर पर्याप्तक कहे जाते हैं ।

उनमेंसे पहले औदारिककाययोगका लक्षण कहते हैं । पर्याप्तिको प्राप्त हुए शरीरके आलम्बनद्वारा उत्पन्न हुए जीवप्रदेश परिस्पन्दसे जो योग होता है उसे औदारिककाययोग कहते हैं । और औदारिकशरीरकी अपर्याप्त अवस्थामें औदारिकमिश्रकाययोग होता है । जिसका तात्पर्य इसप्रकार है कि कर्मण और औदारिकशरीरके स्क्न्धोंके निमित्तसे जीवके प्रदेशोंमें उत्पन्न हुए परिस्पन्दसे जो योग होता है उसे औदारिकमिश्रकाययोग कहते हैं ।

शुद्धा—पर्याप्त अवस्थामें कर्मणशरीरका सद्भावन होनेके कारण वहा पर भी कर्मण और औदारिकशरीरके स्क्न्धोंके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंमें परिस्पन्द होना है, इसलिये वहा पर भी औदारिकमिश्रकाययोग क्यों नहीं कहा जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पर्याप्त अवस्थामें यद्यपि कर्मणशरीर विद्यमान है फिर भी वहा जीव प्रदेशोंके परिस्पन्दका कारण नहीं है । यदि पर्याप्त अवस्थामें कर्मणशरीर परंपरासे जीवप्रदेशोंके परिस्पन्दका कारण कहा जाये, तो भी ठीक नहीं है, क्योंकि, कर्मण शरीरको परंपरासे निमित्त मानना उपचार है । यदि कहें कि उपचारका भी वहा पर प्रद्वन कर लिया जाये, तो भी ठीक नहीं है, क्योंकि, उपचारसे परंपराका निमित्तके प्रद्वन करनेकी वहा विषयता नहीं है ।

शुद्धा—परिस्पन्दका बन्धका कारण मानने पर सधार करने हुए मेघोंके भा कर्मबन्ध प्राप्त हो जायगा, क्योंकि, उनके भी परिस्पन्द पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, कर्मजनित चैतन्यपरिस्पन्द ही आधयका कारण है, वहा अर्थ वहा पर विषयित है । मेघोंका परिस्पन्द कर्मजनित तो है नहीं, जिससे यह कर्मबन्धके आधयका हेतु हो सके, अर्थात् नहीं हो सकता है ।

अब धैत्रियककाययोगके सद्भावनके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका रूप कहते हैं—

योगोऽपर्याप्तकस्येति न घटामटेति चेन्न, अनयगतप्रतिप्रापनात् । तत्रा, मानसं पर्याप्तक औदारिकशरीरगतपर्याप्तपक्षया, आहारशरीरगतपर्याप्तपक्षमात्रा येतया स्वपर्याप्तमोऽयम् । पर्याप्तापर्याप्तसंयोगेन स्यात्तमेव संभवा विरोधातिरिक्तं चेन्न, पर्याप्तापर्याप्तयोगशरीरमेवैकत्र न सम्भव इतीष्टान् । यत्र न पूराऽभ्युपगम इति विरोध इति चेन्न, भूतपूर्वगतन्यायापेक्षया विरोधामिद्रे । विनष्टादागिरागिमम्वन्य पर्याप्तपक्षपरिनिष्ठिताहारशरीरगतपर्याप्तपक्षपर्याप्तस्य यत्र मयम इति चेन्न, मयमस्या स्वनिरोधलक्षणस्य मन्दयोगेन सह विरोधामिद्रे । विरोधे वा न क्रान्तिनोऽपि समुद्रातगतस्य मयम तत्रापर्याप्तकयोगाग्निप्रत्ययिष्ठेयात् । 'सन्तानमन्त्रद्वारा

हे यह कथन नहीं बल सफ़्ता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ऐसा कहनेवाला आत्मके अभिप्रायको ही नहीं समझा है । आत्मका अभिप्राय तो इसप्रकार है कि आहारकशरीरको उपर्य करानेवाला साधु औदारिक शरीरगत छद् पर्याप्तियोंकी अपेक्षा पर्याप्तक मन्त्र ही रहा आये, किन्तु आहारकशरीरसबधी पर्याप्तिके पूर्ण होनेकी अपेक्षा यह अपर्याप्तक है ।

शुभा—पर्याप्त और अपर्याप्तपना एकसाथ एक जीरमें समझ नहीं है, क्योंकि, एक साथ एक जीरमें इन दोनोंके रहनेमें विरोध आता है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि, एकसाथ एक जीरमें पर्याप्त और अपर्याप्तसबधी योग समझ नहीं है, यह बात हमें स्पष्ट ही है ।

शुभा—तो फिर हमारा पूर्व कथन क्यों न मान लिया जाय, अन आपके कथनमें विरोध आता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, भूतपूर्व याचकी अपेक्षा विरोध नमिद है । अर्थात् औदारिक शरीरसबधी पर्याप्तपनेकी अपेक्षा आहारकमिश्र अन्तरागमें भी पर्याप्तपनेका व्यवहार किया जा सकता है ।

शुभा—जिसका औदारिक शरीरसबधी छद् पर्याप्तिया नष्ट हो चुकी है, और आहारक शरीरसबधी पर्याप्तिया मया तक पूर्ण नहीं हुई है ऐसे अपर्याप्तक साधुके सपम कैसे हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, जिसका लक्षण आश्रयका विरोध करता है ऐसे सपमका मन्त्रयोग (आहारकमिश्रयोग) के साथ होनेमें कोई विरोध नहीं आता है । यदि हम मन्त्र योगके साथ सपमके होनेमें विरोध आता ही है ऐसा माना जाये तो समुद्रातगत प्राण रूप केपराके भा सपम नहीं हो सकेगा, क्योंकि, वहा पर भी अपर्याप्तकसबधी योगका सङ्ग्राह पाया जाता है इसमें कोई विरोधना नहीं है ।

१, १, ७९.]

सन गच्छाणांयुगोदारे जागमगाणां पक्षे

नियमा पञ्जचा ' इत्यनेनापण सह कथं न विरोध स्यादिति चेन्न,
पक्षया प्रवृत्तध्वनस्याभिप्रायेणाहारशरीरानिष्पत्त्यस्यायामपि पक्षपर्याप्तिना
कर्मणकाययोग पर्याप्तेष्वपर्याप्तेषुमप्यत्र वा भवतीति नोक्तम्, तन्निश्चय
'कम्पस्यरायजोगो विग्गहगइ समानगाण केयलीण वा समुग्घाद गदाण
स्यप्रादपर्याप्तिपत्र कर्मणकाययोग इति निशीयत ।
पर्याप्तिपत्रपर्याप्तिषु च योगाना सत्तरमगत्तर चाभिधायेदानीं गति
म्यानाना सत्तरामस्वप्रतिपादनार्थमुत्तरयत्रमाह—

णेरइया मिच्छाइटि-असजदसम्माइटिट्टाणे सिया
सिया अपञ्जत्ता ॥ ७९ ॥

नारका इत्यनेन बहुवचनन स्यादित्यतस्य एकवचनस्य न सामाना

शरी—'सयतासयतसे लेवर सभा गुणस्थानोंमें जाय नियमसे पर्याप्त होने
रचनके साथ उपर्युक्त कथनका विरोध क्यों नहीं आजायगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे प्रवृत्त हुए इस
अभियासे आहारक शरीरकी अपर्याप्त अवस्थामें या औद्धारिक शरीरसेबन्धी छह पर्याप्त
दानोंमें कोई विरोध नहीं आता है ।

शरी—कामणकाययोग पर्याप्त होने पर होता है, या अपर्याप्त रहने पर होता
अथवा दोनों अवस्थामें होता है, यह कुछ भी नहीं कहा, इसलिये इसका निश्चय
किया जाय ?

समाधान—'विग्रहगतिको प्राप्त चारों गतिने जायेंगे और समुदागत केवलियों
कामणकाययोग होता है इस मूलक कथनानुसार अपर्याप्तकोंके ही कामणकाययोग होता
है इस कथनका निश्चय ही आता है ।

इसप्रकार पर्याप्त और अपर्याप्तशय यामोंके मत्स्य और असत्तयका कथन करके अब
गतिमत्तयकी पर्याप्त और अपर्याप्तियोंमें गुणस्थानोंके सत्त और असत्त प्रतिपादन
करनके लिय आगका मूल कहन है—

नारका जीय मिथ्याराय और असत्यसम्यग्दृष्टि गुणस्थानम पर्याप्तक होत है और
अपर्याप्तक भी होत है ॥ ८० ॥
शरी—मूलम आय हुए नारका इस बहुवचनके साथ म्यान् इस एक वचनका
समानाधिकरण नहीं बन स्वता है

मिति चेन्न, एकस्य नानात्मकस्य नानात्वानिरोधात् । विरुद्ध्या, कथमेकमधिगम्यमिति चेन्न, दृष्टत्वात् । न हि दृष्टेऽनुपपन्नता । नारका' मिथ्यादृष्टयोऽमयसम्यग्दृष्टयश्च पर्याप्ताश्चाप्याप्ताश्च भवन्ति । समुच्चयाप्रगतये चक्षुदोऽन उक्तयः न, सामर्थ्यं लभ्यत्वात् ।

तत्रतनशेषगुणद्वयप्रदेशप्रतिपादनार्थमाह—

सासणसम्माहट्टि-सम्मामिच्छादट्टि-ट्टाणे णियमा पज्जत्ता ॥८०॥

नारका' निष्पन्नपर्याप्तय मन्त ताभ्या गुणाभ्या परिणमन्ते नाप्याप्ता वस्थायाम् । किमिति तत्र तौ नोत्पद्येते इति चेत्तयोस्तयोत्पत्तिनिमित्तपरिणामाभ्याम् ।

समाधान—नहीं, क्योंकि, एक भी नानात्मक होता है, इसलिये एकको नानात्मक मान लेनेमें कोई विरोध नहीं जाता है ।

शका—विरुद्ध दो पदार्थोंका एकाधिकरण कैसे हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, विरुद्ध दो पदार्थोंका भी एकाधिकरण देखा जाता है । और देखे गये कार्यमें यह नहीं बन सकता यह कहा नहीं जा सकता है । अतः सिद्ध हुआ कि मिथ्यादृष्टि और असत्यतत्सम्यग्दृष्टि नारकी पर्याप्तक भी होते हैं और अपर्याप्तक भी होते हैं ।

शका—समुच्चयका ज्ञान करनेके लिये इस सूत्रमें व शब्दका कथन करना चाहिये ।

समाधान—नहीं, क्योंकि यह सामर्थ्यसे ही प्राप्त हो जाता है ।

अब नारकसंबन्धी शेष दो गुणस्थानोंके आधारके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

नारकी जीव सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें नियमसे पर्याप्तक होते हैं ॥ ८० ॥

जिनकी छद्म पर्याप्तिया पूर्ण हो गई हैं वेते नारकी हैं इन दो गुणस्थानोंक साथ परिणत होते हैं, अपर्याप्त अवस्थामें नहीं ।

शका—नारकियोंकी अपर्याप्त अवस्थामें ये दो गुणस्थान क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं ?

समाधान—क्योंकि, नारकियोंकी अपर्याप्त अवस्थामें इन दो गुणस्थानोंकी उत्पत्तिके निमित्तभूत परिणामोंका अभाव है, इसलिये उनकी अपर्याप्त अवस्थामें ये दो गुणस्थान नहीं होते हैं ।

१ स्वभाव भूतत्वं विद्वद्वादवचनमुच्यते । तथातमिदं पुन न स्पष्टवचनम् ॥ ग ४ १ २६

मोऽपि विमिति तपोन म्यादिति चेत्साभाज्यात् । नारदनामप्रिमम्बन्धाद्भस्मसाक्षात्-
मुपगताना पुनर्मस्मनि समुत्पद्यमानानामपयाज्याद्वाया गुणद्वयस्य सत्त्वाविरोधान्निपमेन
पर्याप्ता इति न पट्य इति चेन्न, तेषा मरणाभावात् । भावे वा न ते तत्रोत्पद्यन्ते,
' गिर्यारो षेरहया उवद्विदममाषा पो गिरयगदि जादि षो द्वर्गादि जादि, तिरिक्त्वा
गादि मणुयगदि च जादि ' इत्यनेनापे निषिद्धत्वात् । आयुषोऽस्ताने विषमाणानामेष
नियममेन्न, तेषामपमृत्योरनमत्तत्वात् । भस्मसाक्षात्मुपगतदेहाना तेषा कथं पुनर्मरणमिति
चेन्न, देहविकारस्यायुर्गोचर्यनिमित्तत्वात् । अथवा बालारस्थात प्रामर्शाननस्यापि
मरणप्रसङ्गात् ।

प्रश्न — इस प्रकारके परिणाम उन दो गुणस्थानोंमें क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान — क्योंकि ऐसा स्थान ही है ।

प्रश्न — आशिके सबधसे भस्माभावको प्राप्त हुए और फिर भा उसी भस्ममें होने
वाले नारकियोंके अपर्याप्त कालमें इन दो गुणस्थानोंके क्षेत्रमें कोई विरोध नहीं आता है,
अर्थात् धृति भेदत भादितेनयदुप गारके पथात् पुन उहाँ मययकोमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके
साक्षात् और मिथ गुणस्थान माननेमें कोई विरोध नहीं आता है, इसलिये इन गुणस्थानोंमें
नारकी नियमसे पर्याप्तक होने है, यह नियम नहीं बनता है ?

समाधान नहीं क्योंकि, अग्नि आदि निर्मितसे नारकियोंका मरण नहीं होता
है । यदि नारकियोंका मरण हो जाय तो पुन वे वहाँ पर उत्पन्न नहीं होते हैं, क्योंकि,
जिनकी आयु पूरा हो गई है ऐसे नारकी जाय नरकगतिसे निश्चलकर पुन नरकगतिसे
नहीं आते हैं इत्यतिशय कहा जाते हैं । किन्तु निर्वधगति और मनुष्यगतिसे आते हैं इस
भाष ध्वजक अनुसार नारकियोंका पुन नरकगतिमें उत्पन्न होना निषिद्ध है ।

प्रश्न — आयुक्त भस्ममें मरनेवाले नारकियोंके लिये ही यह सूचक नियम लागू
होना चाहिये

समाधान — नहीं क्योंकि नारक जायाक भस्म-पुत्रा सद्भावे नहीं पाया जाता है ।

अथान् नारकियाका आयुक्त भस्म ही मरण होता है शक्यमे नय ।

प्रश्न — यात्र जनका अपसत् नहीं होता है ना जनका गार भस्माभावको प्राप्त
हो गया है यस नारकियाका नमस्म कस बनता

समाधान — यह कह कर नहीं है क्योंकि इहका प्रसार आयुक्तके त्वनाका
नामसे नहीं है । न-यत्न न-न बाल नरक्याक पक्षान् ग-न नरक्याका प्राप्त कर गया
है यस जायके भी मरणका प्रत्यक्ष न-पाया ।

नारकाणामोद्यमभिधायान्श्रुतिपाठनार्थमाह—

एवं पढमाए पुढवीए णेरइया ॥ ८१ ॥

प्रथमाया पृथिव्या ये नारकास्तेषां नारकाणां सामान्योक्तरूपेण मरन्ति। कुता विशेषाभावात्। यदि सामान्यप्ररूपणया प्रथमपृथिवीगतनारका एव निरूपिता भवेयुस्तथा, विशेषनिरूपणतयैव तदनुगतेरिति ? न, द्रव्याधिक्यनपात् सत्त्वानुग्रहायै तत्प्रवृत्ते। विशेषप्ररूपणमन्तरेण न सामान्यप्ररूपणतोऽर्थानुगतिर्मरतीति तथा निरूपणमनर्थकमिति चेन्न, उद्धोना वैचिण्यात्। तथापिधुद्वयो नेदानीमुपलभ्यन्त इति चेन्न, अस्मापस्य त्रिकालगोचरानन्तप्राण्यपेक्षया प्रवृत्तत्वात्।

शेषपृथिवीनारकाणां प्रतिपादनार्थमाह—

इसप्रकार सामान्यरूपसे नारकियारा कथन करके अब विशेषरूपसे कथन करने के लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

इसीप्रकार प्रथम पृथिवीमें नारकी होते हैं ॥ ८१ ॥

प्रथम पृथिवीमें जो नारकी रहते हैं उनकी पर्याप्तिया और अपर्याप्तिया नरकगतिके सामान्य कथनके अनुसार होती हैं, क्योंकि, नरकगतिसबकी सामान्य कथनमें और प्रथम पृथिवीसबकी कथनमें कोई विशेषता नहीं है।

शुद्धा—यदि सामान्यप्ररूपणाके द्वारा प्रथम पृथिवीसबकी नारका ही निरूपित किये गये हैं, तो सामान्यप्ररूपणाके कथन करनेसे रहने दो, क्योंकि, विशेषप्ररूपणासे ही उसका ज्ञान हो जायगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, द्रव्याधिक नयकी अपेक्षा रहनेवाले जीवोंके अनुग्रहके लिये सामान्यप्ररूपणाकी प्रवृत्ति मानी गई है।

शुद्धा—विशेषप्ररूपणाके बिना केवल सामान्यप्ररूपणासे अर्थका ज्ञान नहीं हो सकता है, ऐसी हालतमें सामान्यप्ररूपणाका कथन करना निष्फल है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, भोगाभोंकी बुद्धि अनेक प्रकारकी होती है, इसलिये विशेष प्ररूपणाके कथनके समान सामान्यप्ररूपणाका कथन करना भी निष्फल नहीं है।

शुद्धा—जो सामान्यसे पदार्थको समझ लेते हैं वेमे बुद्धिमान् पुरुष इस कालमें तो नहीं पाये जाते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, भाग्य तो त्रिकालमें होनेवाले अनेक प्राणियोंकी अपेक्षा प्रवृत्त होता है।

शेष पृथिवियोंमें रहनेवाले नारकियोंके विशेष कथनके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

१ 'पराजयापराजय' इति वाच्यम् ।

विदियादि जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया मिच्छाडडि-ट्टाणे
सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥ ८२ ॥

अधस्तनीषु षट्सु पृथिवीषु मिथ्यादृष्टीनामुत्पत्ते सत्त्वात् । पृथिवीशब्द-
प्रत्येकमभिसम्बन्धीय । शुणममयन् ।

श्रेयगुणस्थानानां तत्र क सत्त्वं क च न भवदिति जानारेकस्य भव्यस्यारेका
निरसनार्थमाह—

सासणसम्माइडि-सम्माभिच्छाडडि-असजदसम्माइडि-ट्टाणे णि-
यमा पज्जत्ता ॥ ८३ ॥

भरतु नाम सम्यग्मिथ्यादृष्टानुपत्ति । सम्यग्मिथ्यात्वपरिणाममधिष्ठितस्य
मरणाभावात् । भरति च तस्य भरणं गुणान्तरमुपादाय । न च तत्र स गुणोऽस्तीति ।
निन्वेतस्य पुज्यते श्रेयगुणस्थानप्राणिनस्तत्र नात्पद्यन्त इति ? न तत्रानुसामान्यतस्तत्रोत्पद्यते

दूसरी पृथिव्यासे लक्षर सातवीं पृथिवी तक रहनेवाले नारकी मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें
पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी होने हैं ॥ ८२ ॥

प्रथम पृथिव्याको छोड़कर दोष छद्म पृथिवियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका ही उत्पत्ति पार्
जाती है, इसलिये वहां पर प्रथम गुणस्थानमें पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों अवस्थाएँ बतलाई
गई हैं । सूत्रमें आया हुआ पृथिवी शब्द श्लोक भरकके साथ जोड़ लेना चाहिये । दोष
व्याख्यान शुभम् है ।

उन पृथिवियोंका जिस अवस्थामें दोष गुणस्थानोंका सङ्गाथ है और जिस अवस्थामें
नहीं इसप्रकार जिसका गका उत्पन्न हुई ॥ उस गायत्री शकाह पूर करनेके लिये आगेका सूत्र
कहते हैं—

दूसरा पृथिव्यासे लक्षर सातवीं पृथिवी तक रहनेवाले नारकी सासाइनसम्यग्दृष्टि
सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असम्यक्सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें नियमसे पर्याप्तक होते हैं ॥ ८३ ॥

गका—सम्यग्मिथ्यादृष्टि शायका भरकर दोष छद्म पृथिवियोंमें आ उत्पत्ति नहीं होता है
पर्योकि सम्यग्मिथ्यादृष्टि शायका भरकर दोष छद्म पृथिवियोंमें आ उत्पत्ति नहीं होता है । परा उत्पत्ति
भरण भी होता है । तब । तब । दूसरे गुणस्थानका प्राप्त होकर है । होता है । परन्तु भरणकालमें
यह गुणस्थान नहीं होता यह सब ठीक है । तब दोष (दूसरे साथे) गुणस्थानपाल प्राप्ति
भरण वहां पर उत्पन्न नहीं होता यह कहना नहीं बतला है

समाधान—सासाइन गुणस्थानपाल ता तत्त्वम् उत्पन्न है । नदी होने है पर्योकि

तस्य नरकायुषो नन्धाभावात् । नापि उद्वनरकायुष्कं मामादन प्रतिपद्य नारकेषूपपत्ते
 तस्य तस्मिन् गुणे मरणाभावात् । नाप्यतमस्यग्दृष्टयोऽपि तत्रोत्पद्यन्ते तत्रोत्पत्तिनिमित्ता
 भावात् । न तान्तरकर्मस्फन्धनद्वुत्त तस्य तत्रोत्पत्ते कारण वृषितकर्मज्ञानामपि जीवानां
 तत्रोत्पत्तिदर्शनात् । नापि कर्मस्फन्धाणुत्त तत्रोत्पत्ते कारण गुणितकर्मज्ञानामपि
 तत्रोत्पत्तिदर्शनात् । नापि नरकगतिकर्मण मत्त तस्य तत्रोत्पत्ते कारण तन्मत्त प्रत्य
 विशेषतः सकलपञ्चेन्द्रियाणामपि नरकप्राप्तिप्रमद्वात् । नित्यनिगोदानामपि त्रिप्रमान
 त्रसकर्मणा त्रसेषूपत्तिप्रमद्वात् । नाशुभलेश्याना सत्त तत्रोत्पत्ते कारण मरणावस्थायाम
 सत्यतसम्यग्दृष्टे पदसु पृथिवीपूतपत्तिनिमित्ताशुभलेश्याभावात् । न नरकायुष मत्त तस्य
 तत्रोत्पत्ते कारण सम्यग्दर्शनामिना छिन्नपदपृथिव्यायुष्मत्तत्वात् । न च तच्छेदोऽभिद
 आर्पात्तसिद्धयुपलम्भात् । ततः स्थितमेतत् न सम्यग्दृष्टि पदसु पृथिवीपूतपद्यते इति ।

सासादन गुणस्थानवालेके नरकायुका वन ही नहीं होता है । जिसने पहले नरकायुका बंध
 कर लिया है ऐसे जीव भी सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर नारकियोंमें उत्पन्न नहीं होते
 हैं, क्योंकि, नरकायुका बंध करनेवाले जीवका सासादन गुणस्थानमें मरण ही नहीं
 होता है । असत्यतसम्यग्दृष्टि जीव भी द्वितीयादि पृथिवियोंमें उत्पन्न नहीं होते हैं, क्योंकि,
 सम्यग्दृष्टियोंके शेष छद्म पृथिवियोंमें उत्पन्न होनेके निमित्त नहीं पाये जाते हैं । यदि कर्म
 स्वर्णोंकी अधिवत्ता असत्यतसम्यग्दृष्टि जीवके शेष छद्म नरकोंमें उत्पत्तिका कारण कहा जाये,
 तो भी ठीक नहीं है, क्योंकि, जिन्होंने बहुतसे कर्मस्वर्णोंका क्षय कर दिया है ऐसे जायोंकी
 भी नरकमें उत्पत्ति देखी जाती है । कर्मस्वर्णोंकी अल्पता भी नरकमें उत्पत्तिका कारण नहीं
 है, क्योंकि, जिनके उत्तरोत्तर गुणित कर्मस्वर्ण पाये जाते हैं उनकी भी घटा पर उत्पत्ति
 देखी जाती है । नरकगतिका सत्त भी सम्यग्दृष्टिके नरकमें उत्पत्तिका कारण कहना ठीक नहीं
 है, क्योंकि, नरकगतिके सत्तके प्रति कोई विशेषता न होनेसे सभी पञ्चेन्द्रिय जीवोंको नरक
 गतिकी प्राप्तिका प्रमग आज्ञायगा । तथा नित्यनिगोदिया जायोंके भी त्रसकर्मको सत्ता
 पिप्रमान रहती है, इसलिये उनकी भी त्रसमें उत्पत्ति होने लगेगी । अगुम लेदवाके सत्तको
 नरकमें उत्पत्ति का कारण कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, मरणके समय भानेयनतम्यादृष्टि
 जीवके नीचेकी छद्म पृथिवियोंमें उत्पत्ति का कारणरूप अगुम लेदवाण नहीं पाई जाती है ।
 नरकायुका सत्त भी सम्यग्दृष्टिके नीचेकी छद्म पृथिवियोंमें उत्पत्ति का कारण नहीं है, क्योंकि
 सम्यग्दर्शनरूपी सत्तने नीचेकी छद्म पृथिवीसवर्धी आयु काट दी जाती है । नीचेका छद्म
 पृथिवीसवर्धी आयुका कर्मा भानेय मो नहीं है, क्योंकि, भानेयमे रमकी पुष्टि दर्शनी है ।
 इसलिये यह सिद्ध हुआ कि नीचेकी छद्म पृथिवियोंमें सम्यग्दृष्टी जीव उत्पन्न नहीं होता है ।

तियगता गुणस्थानानां सप्रसारप्रतिपादनार्थमाह —

तिरिग्मा मि० अइट्टि-सासणसम्माइट्टि असजदसम्माइट्टि-ट्टाणे
सिया पजत्ता सिया अपजत्ता ॥ ८४ ॥

भरतु नाम मि० पारोष्टिमागादनमस्यगृहीतां निर्यधु पर्याप्तापर्याप्तद्वयो मत्त
नयामप्रोपपरिगेधात् । सम्पगृह्यन्तु पुनरावपद्यन्ते तियगपर्याप्तपर्यायण सम्प
गृह्णन्ति रिगेधादिनि ? न रिरोध, अस्मार्पस्याप्रामाण्यप्रमद्वात् । धायिकमस्यगृहि,
भारितार्पणं धादिनमप्यप्रकृति यथ तिर्यधु दुःखभूयस्यपद्यते इति चेन्न, तिरिधा
नारवेस्या दुःखाधिक्याभावात् । नारवेस्यापि सम्पगृह्यतो नोत्पत्स्यन्त इति चेत्, तेषा
सप्रोत्पत्तिप्रतिपादकापेक्षत्वात् । विमिति ते सप्रोत्पद्यन्त इति चेत्, सम्पगृह्णना
पागानात् प्राद् मि० पागान्द्वयायां यदतिर्यद्वन्तरास्युत्तरान् । सम्पगृह्णनेन तत्

अत्र निर्दोषमिति गुणस्थानोक्तं सद्भावेन प्रतिपादन करने के लिये आतेका सूत्र
कहे है—

निर्यध मि० पारोष्टि, सागादनमस्यगृहि और अमेयनसम्पगृहि गुणस्थानमें पर्याप्त
भा होने है और अपर्याप्त भा होने है ॥ ८४ ॥

मि० पारोष्टि और सागादनमस्यगृहि जीर्णोक्ता निर्यधोसत्त्वभी पर्याप्त और अपर्याप्त
अवस्थामें भूत् ॥ स्वभा रही आये, क्योंकि, इन दो गुणस्थानोंकी निर्यधोसत्त्वभी पर्याप्त और
अपर्याप्त अवस्थामें उत्पत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं आता है । परंतु सम्पगृहि जाय तो
निर्यधोमें उत्पन्न नहीं होने है, क्योंकि, निर्दोशोकी अपर्याप्त पर्यायके साथ सम्पगृह्णनका
विरोध है ?

समाधान—विरोध नहीं है फिर भी यदि विरोध माना जाय तो उपरका सूत्र
अप्रमाण हो जायगा ।

पूरा—जिसने नीधककी सेवा की है भाग जिसने मोहनीयकी स्वात मरुतिषोका
क्षय कर दिया है वना धायिक सम्पगृह्ण जाय दुःखदूत निधयोमें केने उत्पन्न होता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि निधयोमें नारिक्योंकी अपेक्षा अधिक दुःख नहीं पाये
जाते हैं ।

पूरा—भा फिर नारिक्याम भा सम्पगृहि जाय उत्पन्न नहीं होने ?

समाधान—नहीं क्योंकि सम्पगृहिषाकी नारिक्याम उत्पत्तिका प्रतिपादन करने
वाला भाग प्रमाण पाया जाता है ।

पूरा—सम्पगृहि जीव नारिक्योंम क्या उत्पन्न होने है ?

समाधान—नहीं क्योंकि जिसने सम्पगृह्णनका प्रण करने के पक्ष में सिद्धांतों

किमेवे न छिये ? इति चेत् किमिति तद्य छिये ? यापि तु न तस्य निर्मलम् ।
नयि कृत ? ग्यामाव्यात् ।

नत्र मन्त्रमिभ्यादृष्टादिभ्यरूपानिरूपणार्थमाह—

मम्मामिच्छाद्वि-संजदासजद-दृष्टिणे णियमा पवत्ता ॥ ८५ ॥

मनुष्या विभ्याहृष्टव्यायां बद्धनिर्यगायुः पञ्चासम्यदर्शनं मरणं
 प्रत्यागताः क्षितिममरमनयमिषंभु किञ्चोपयन्ते ? इति चेत् हितादिप्रत्यागताः
 मुक्त्यन्तिरेकसंवेदु मन्त्रावपि । न, देवगतिः यतिविक्रमतिपयममद्रापुरोपनधिपान
 मन्त्रावपि । उक्तं च —

ਜਾਣੇ ਨਿਰੇਤ, ਅਤਿ ਬੇ ਨਿਰੋੜ ਸਾਧਨ ।

॥ १५९ ॥

अनाथ-उपनिषद् में सरकारी कामों के लिए है उनकी समझाने के लिए यह कि
अनाथ-उपनिषद् के अंगों में आती है।

॥ ३ ॥ — नमो भगवते वासुदेवाय ।

उपका- उपका एक कला नहीं होना है। अथवा हाता है, किन्तु उपका मनुष्य कला है।

ॐ ह्रीं नमो भगवते वासुदेवाय ॥

[illegible]

ଅବ ୧୦ ଏକ ଶେଷ ଯୋଗାଯୋଗ ଆଦି ଶୁଣାଯାଉନାହିଁ ତଦନୁସାରେ ନିବନ୍ଧନ କରାଯାଇଛି ।

১০০০ টি পত্র
 ১০০০ টি পত্র
 ১০০০ টি পত্র

[illegible][illegible]

কম্পিউটার প্রোগ্রামিং

न तिर्यक्षूपध्या अपि ध्यायिकसम्यग्दृष्टयोऽणुव्रतान्यादधते भागभूमातुत्पन्नाना
तदुपादानानुपपत्ते । ये निर्दनास्ते कथं तत्रोत्पद्यन्त इति चक्षुः, सम्यग्गीतस्य
तत्रोत्पत्तिकारणस्य सूत्रात् । न च पात्रदानेऽनुमोदिन सम्यग्दृष्टयो भवन्ति तत्र
तदनुपपत्ते ।

तिरश्चामोषमभिधायादेशस्वरूपानिरूपणार्थं वक्ष्यति—

एवं पचिदिय-तिरिक्त्वा पचिदिय तिरिक्त्वा-पञ्चत्ता ॥ ८६ ॥

एतेषामोषप्ररूपणमेव भवेद्विवक्षितं प्रति शिरोपाभासात् ।

सर्वविदविशिष्टतिरिक्तो शिरोपप्रतिपादनार्थमाह—

हे, परंतु हेचक्षुः के बन्धको छोड़कर दोर तान आयुक्मके बन्ध हाने पर यह जीव अणुव्रत भार
महामतको ग्रहण नहीं करता है ॥ १६९ ॥

तिर्यक्षोमें उत्पन्न हुए भी शायिक सम्यग्दृष्टि जीव अणुव्रतोंको नहीं ग्रहण करने है,
क्योंकि, शायिक सम्यग्दृष्टि जीव यदि तिर्यक्षोमें उत्पन्न होने है तो भोगभूमिमें है। उत्पन्न
होते हैं और भोगभूमिमें उत्पन्न हुए जीवोंके अणुव्रतोंका ग्रहण करना बन नहीं सकता है ।

शुद्धा— जिहोने हान नहीं दिया है वेने आव भोगभूमिमें कैसे उत्पन्न हुए रहने है ।

समाधान— नहीं, क्योंकि, भोगभूमिमें उत्पत्तिवा कारण सम्यग्दर्शन है और यह
जिनके पापा जाता है उनके यहां उत्पन्न होनेमें कोई विरोध नहीं आता है । तथा पात्रदानकी
अनुमोदनासे दक्षित जीव सम्यग्दृष्टि हो नहीं सकते हैं क्योंकि, उनमें पात्रदानकी अनुमोदनावा
अभाव नहीं बन सकता है ।

शिरोपार्थ— शायिक सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति अनुपपन्न पदार्थमें ही होती है । अतः जिस
अनुपपत्ते पहले तिर्यक्षोका बन्ध कर लिया है और अतस्त्वे उससे शायिक सम्यग्दर्शन
उत्पन्न हुआ है वेने जीवोंके भोगभूमिमें उत्पत्तिवा मुख्य कारण शायिक सम्यग्दर्शन ही
जानना चाहिये पात्रदान नहीं । फिर भी यह पात्रदानकी अनुमोदनासे दक्षित नहीं होता है ।

इसप्रकार तिर्यक्षोकी सामान्य प्ररूपणाका बचन करके अब उसका विशेष करके
निर्णय करनेके लिये आगेका वृत्त कहते हैं—

तिर्यक्षसङ्गधी सामान्यप्ररूपणाके समान पञ्चेन्द्रियनिर्बंध और पदानुपपत्ते-द्वय
तिर्यक्ष भी होते हैं ॥ ८७ ॥

पञ्चेन्द्रियतिर्यक्ष और पदाप्य-पञ्चेन्द्रिय-तिर्यक्षोंकी प्ररूपणा निर्बंधसङ्गधी सामान्य
प्ररूपणाके समान ही होती है क्योंकि, विषयित विषयके प्रति इन हाने व बचनमें व
विशेषता नहीं है ।

अब स्वीदेष्टुण तिर्यक्षोमें विशेषकर बचन करनेके लिये अवसर शुरू करने है—

पंचिदिय-तिरिस्स-जोणिणीसु मिच्छाहट्ठि-सासणसम्माहट्ठि-द्वणे
सिया पज्जत्तियाओ सिया अपज्जत्तियाओ ॥ ८७ ॥

मासादनो नारकेप्पिय तिर्यक्कपि नोत्पादीति चेन्न, द्वयो' माधर्म्याभावात्
दृष्टान्तानुपपत्तेः ।

तत्र शेषशुणाना स्वरूपमभिधातुमाह —

सम्मामिच्छाहट्ठि-असंजदसम्माहट्ठि संजदासंजद द्वाणे णियमा
पज्जत्तियाओ ॥ ८८ ॥

इत् । तत्रैतासामुत्पत्तेरभावात् । उदायुष्क क्षयिकमम्यगृहिर्नारकेषु नपुंसकस्य
इत्यत्र स्त्रीभेदे किञ्चोत्पद्यत इति चेन्न, तत्र तस्यैवस्य सत्त्वात् । यत्र कश्चन ममुत्पन्नमान

योनिमती-पवेन्द्रिय-तिर्यक् मिथ्याहट्ठि और सासादन गुणस्थानमें पर्याप्त भा होते
हैं और अपर्याप्त भी होते हैं ॥ ८७ ॥

श्रुति- सामाधान गुणस्थानवाला जीव मरकर जिसप्रकार नारकियोंमें उत्पन्न नहीं
होता है, उसीप्रकार तिर्यकोंमें भी उत्पन्न नहीं होना चाहिये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, नारकी और तिर्यकोंमें साधर्म्य नहीं पाया जाता है,
इसलिये नारकियोंका दृष्टान्त तिर्यकोंके लागू नहीं हो सकता है ।

योनिमती तिर्यग्नियोंमें शेष गुणस्थानोंके स्वरूपका कथन करनेके लिये भाग्य
शब्द कहते हैं—

योनिमती-तिर्यक् सम्यग्मस्थानणि, असंयतसम्यग्गृहि और सयनासंयत गुणस्थानमें
नियमसे पर्याप्त होते हैं ॥ ८८ ॥

श्रुति—येना क्यों होता है ?

समाधान—क्योंकि, उपर्युक्त गुणस्थानोंमें मरकर योनिमती-तिर्यक् उत्पन्न नहीं
होते हैं ।

श्रुति—जिसप्रकार ब्रह्मायुष्क क्षयिक सम्यग्गृहि जीव नारकमन्थी नपुंसकस्यमें
उत्पन्न होता है उसीप्रकार यहा पर स्त्रीभेदमें क्यों नहीं उत्पन्न होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मरकमें एक नपुंसकभेदका ही मन्त्राव है । जिस किमी
गतिमें उत्पन्न होनेवाला सम्यग्गृहि जीव उस गतिमन्थी किन्हीं धर्मादिमें ही उत्पन्न
होता है । यह धर्मिकाय यहा पर ग्रहण करना चाहिये । इसका यह नियम दूधा कि सम्यग्गृहि
आप मरकर योनिमती-तिर्यक्में नहीं उत्पन्न होता है ।

मन्मथगतिस्तत्र त्रिंशद्वेदादिषु मनुत्पद्यत इति श्रूयनाम् । नियमपर्याप्तिषु किञ्च निरूपित-
मिति नाशङ्कनीयम्, तत्र प्रतिपक्षाभावात् गतार्थवान् ।

मनुत्पद्यतप्रतिपादनार्थमाह —

मनुस्सा मिच्छादृष्टि-सासणसम्मादृष्टि-असजदसम्मादृष्टि-ट्टाणे
सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥ ८९ ॥

सुगममेतत् ।

तत्र शेषगुणव्याप्तमपराधप्रतिपादनार्थमाह —

सम्मामिच्छादृष्टि-सजदासजद-सजद-ट्टाणे नियमा पज्जत्ता
॥ ९० ॥

अतः सर्वपामेतेषां पर्याप्तत्वं नाशङ्करीत्युक्त्यापयतां प्रमत्तानामनिष्पन्नाहागवत्
पर्याप्तोत्थानां । न पर्याप्तमार्गदयापेभया पर्याप्तोपदेशं तदुदयमपराधिशेषतोऽप्यत्र

गुरु — तिर्यक् अपराधोऽपि गुणव्याप्तौ च निरूपणं कथं नहीं किया ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, अपराध तिर्यक्तोऽपि एक मिथ्यात्व गुणव्याप्तौ चोक्त
प्रतिपक्षरूप और कोई दूसरा गुणव्याप्त नहीं पाया जाता है, अतः यिना कथन कि है इसका
ज्ञान हो जाता है ।

विशेषार्थ — यहा अपराध तिर्यक्तोऽपि स्वयमपराध तिर्यक्तोऽपि ग्रहण करना चाहिये ।
और स्वयमपराधको एक मिथ्यात्व गुणव्याप्त ही होता है । अतः उनके विषयमें यहा पर
अधिक नहीं कहा गया है ।

अब मनुत्पद्यतके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं —

मनुष्य मिच्छादृष्टि-सासणसम्मादृष्टि-असजदसम्मादृष्टि-ट्टाणे नियमा पज्जत्ता
भी हात ॥ अतः अपराध भी होता है ॥ ८९ ॥

इस सूत्रका अर्थ सरल है ।

मनुष्योंमें शेष गुणव्याप्तोंके लक्षणरूप अवस्थाके प्रतिपादन करनेके लिये आगेका
सूत्र कहते हैं —

मनुष्य सम्मामिच्छादृष्टि-सजदासजद-सजद-ट्टाणे नियमा पज्जत्ता
जन्तु होता है ॥ ९० ॥

गुरु — सूत्रमें बताया गया इन सभी गुणव्याप्तियोंको बाद पद्यान्वयका प्राप्त होना
है तो इसी परन्तु जिनके आहारके गरीरकेभी छद्म पद्यान्वयका प्राप्त नहीं हुआ है ऐसे
आहारके गरीरको उन्मत्त करनेवाला प्रत्यक्ष गुणव्याप्तियोंके अभावके पद्यान्वयका नहीं बन
सकता है । यदि पद्यान्वय नामकमके उदयका अपेक्षा आहारके गरीरको उन्मत्त करनेका

सम्यग्दृष्टीनामपि अपर्याप्त-उत्थाभावापत्तेः । न च मयमोत्पत्त्यभ्यापेभ्या तत्प्रभ्याया प्रमत्तस्य पर्याप्तत्वं घटते अमयतमस्यग्दृष्टावपि तत्प्रमत्ताविति नैव तत्र, अत्रमिन्न द्रव्याधिक्यनयत्वात् । सोऽन्यत्र मिमिति नावलम्ब्यत इति चेन्न, तत्र निमित्ताभावात् । किमर्थमत्रावलम्ब्यत इति चेत्पर्याप्तिरस्य माम्यन्तर्जन तत्प्रमत्तनकारणम् । सन् साम्यमिति चेद् दुःसाभावेन । उपपातगर्भममूर्च्छनजरीगण्यात्प्रानानामिव आहाराग्री माददानानां न दृश्यमानाति पर्याप्तत्वं प्रमत्तस्योपचर्यत इति यावत् । पूर्वाम्यममनु निस्मरणमन्तरेण शरीरोपादानाद्वा नृमन्तरेण पूर्वशरीरपरित्यागाद्वा प्रमत्तमन्यभ्याया

प्रमत्तस्यतोंको पर्याप्तक कहा जाये, सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, पर्याप्तकमा उद्य प्रमत्तस्यतोंके समान असयत सम्यग्दृष्टियाके भी निरुत्पत्त्यर्थान् अउस्थामें पाया जाता है, इसलिये यहा पर भी अपर्याप्तपनेका अभाव मानना पड़ेगा । सयमकी उत्पत्तिरूप अउस्थायी अपेक्षा प्रमत्तस्यतके आहारककी अपर्याप्त अउस्थामें पर्याप्तपना बन जाता है यदि ऐसा कहा जाये, तो भी ठीक नहीं है, क्योंकि, इसप्रकार असयत सम्यग्दृष्टियोंके भी अपर्याप्त अउस्थामें [सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा] पर्याप्तपनेका प्रसंग आनायगा ?

समाधान—यह कोई दोष नहा है, क्योंकि, द्रव्याधिक्य नयके अवलम्बनकी अपेक्षा प्रमत्तस्यतोंको आहारक शरीरसब भी छह पर्याप्तियोंके पूर्ण नहीं होने पर भी पर्याप्त कहा है ।

शूला—उस द्रव्याधिक्य नयका दूसरी जगह [निग्रहगनिसवधी गुणस्थानोंमें] अवलम्बन क्यों नहीं लिया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहा पर द्रव्याधिक्य नयके अवलम्बनके निमित्त नहीं पाये जाते हैं ।

शूला—तो फिर यहा पर द्रव्याधिक्य नयका अवलम्बन किस लिये लिया जा रहा है ।

समाधान—आहारकमरधी अपर्याप्त अउस्थायी प्राप्त हुए प्रमत्तस्यतका पर्याप्तके साथ समानताया दिलाता ही यहा पर द्रव्याधिक्य नयके अवलम्बनका कारण है ।

शूला—इसकी दूसरे पर्याप्तकोंके साथ किम कारणसे समानता है ?

समाधान—दुःसाभावकी अपेक्षा इसकी दूसरे पर्याप्तकोंके साथ समानता है । जिस प्रकार उपपातजन्म, गर्भजन्म या समूर्च्छनजन्मसे उत्पन्न हुए शरीरोंको धारण करनेवालोंके दुःख होता है, उसप्रकार आहारशरीरको धारण करनेवालोंके दुःख नहा होता है, इसलिये उस अउस्थामें प्रमत्तस्यत पर्याप्त है इसप्रकारका उपपात किया जाता है । अथवा, पहल अभ्यास की हुई वस्तुके विसरणके बिना ही आहारक शरीरका ग्रहण होता है या दुःखक पिना ही पूर्व शरीर [आहारिक] का परित्याग होता है, अतएव प्रमत्तमयन अपर्याप्त

यतः ? अस्मादवर्णात् । अस्मादवर्णाद् द्रव्यगोत्रां निर्दिष्टि मिदमेदिति चेत्, सवा
मस्मादप्रत्यागपानगुणस्थितानां मयमानुषपक्षः । भारमयमस्मानां सवामसामप्यविरुद्ध
इति चन्, न तामां भावमयमोपनि भागापयमारिनाभाविस्वाद्युपादानान्यथानुपपत्तः ।
यथ पुनस्तां चतुर्दश गुणस्थानानीति चक्ष, भारगोत्रिनिष्ठमनुपपत्तौ तत्त्वगोत्रिरोधान् ।
भावपक्षे वादरक्षायामोपपत्तीति न तत्र चतुर्दशगुणस्थानानां सम्भव इति चक्ष, अत्र
यदस्य प्राधान्यामात्रम् । गतिस्तु प्रधाना न साराङ्गिनश्चति । चेदावेशेपणाया गतां न
तानि सम्भवन्तीति चक्ष, विनष्टेषु विशेषपक्षे उपपत्तये तद्व्यवदेष्टमादधानमनुपपत्तौ
तत्त्वगोत्रिरोधान् । मनुष्यापयामोपपत्तौ विप्रतिपत्तामारत गुणमत्ताश्च तत्र यत्कथ्यमस्ति ।

समाधान—इसी भागमें प्रमाणसे जाना जाता है ।

श्रुता—तो इसी भागमें द्रव्य निर्वोका मुक्ति जाना भी निश्च हो जायगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, धर्मसाहित होनेसे उनके स्वतन्त्रतया गुणस्थान होना
है, भगवत् उनके संयमकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है ।

श्रुता—धर्मसाहित होने हुए भी उन द्रव्य निर्वोके भावसंयमके होनेमें कोई विरोध
नहीं आता क्याहिये ?

समाधान—उनके भाव स्वयम् नहीं है, क्योंकि, अव्ययता, अर्थात् भाव स्वयमके
मानने पर, उनके भाव अव्ययता अविनाशायी धर्मादिकका प्रधान करना नहीं बन सकता है ।

श्रुता—तो फिर निर्वोके बीरुद गुणस्थान होते हैं यह कथन कैसे बन सकेगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, भावगोत्रमें, अर्थात् रक्षिण गुण मनुष्यगतिमें वाद
गुणस्थानोंके सङ्काश मान लेनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

श्रुता—वादरक्षाय गुणस्थानके ऊपर भाववेष्ट नहीं पाया जाता है, इसलिये
भाववेष्टमें बीरुद गुणस्थानोंका सङ्काश नहीं हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहाँ पर वेष्टी प्रधानता नहीं है, किन्तु गति प्रधान है ।
और यह पदले नष्ट नहीं होनी है ।

श्रुता—यद्यपि मनुष्यगतिमें बीरुद गुणस्थान स्वयम् है । फिर भी उसे वेष्ट विशेषणसे
गुण कर देने पर उसमें बीरुद गुणस्थान संभव नहीं हो सकते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, विशेषणके नष्ट हो जाने पर भी उपचारने उस विशेषण
गुण सङ्काशों कारण करनेवाली मनुष्यगतिमें बीरुद गुणस्थानोंका सङ्काश मान लेनेमें कोई
विरोध नहीं आता है ।

अपवर्णन मनुष्योंमें अपवर्णनिका कोई प्रतिपत्ति नहीं होनेसे और अपवर्णन मनुष्योंका
कथन सुगम होनेसे इस विषयमें कुछ अधिक कहने योग्य नहीं है । इसलिये इस सङ्काशमें
स्वतन्त्ररूपमें नहीं कहा गया है ।

देवमता निष्पणार्थमुत्तममृत्तमाह--

देवा मिच्छादद्वि-सासणसम्मादद्वि अमंजदसम्मादद्वि-द्विणे मिया
पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता ॥ १४ ॥

अथ म्याडिग्रहगतौ सर्मणगरीगगा न पर्याप्तिमन् पर्याप्तीना पञ्चा निपन्न
मारान् । न अपर्याप्तान्मे त्रारम्भात्प्रभृति आ उपरम्भात्त्रारान्म्यायामपर्याप्ति
व्यपदेशान् । न चानारम्भस्य म व्यपदेशे अतिप्रमद्धान् । तत्तन्वृत्तिमप्यत्रारान्
उक्तम्यामिति नैष दोष, तेषामपर्याप्तेष्वन्तर्माणान् । नतिप्रमद्भोऽपि सर्मणगरी
स्त्रितप्राणिनामिरापर्याप्तै मह मामर्थाभारोपणान्तरानुग्रहियोगित्यानु प्रथम
द्वित्रिममपर्यवनेन च तेषप्राणिना प्रयासनेरमारान् । ततोऽप्यनमागिणामरग्नादप्यन
नापरमिति स्थितम् ।

अथ देवगर्भमें निरूपण करनेके लिये आगेका मूल कहने '६—

देव मिथ्यादाष्टि मामादनमम्यगष्टि और अमयनमम्यगष्टि गुणम्यानमें पर्याप्त
होने द और अमयान मी होने द ॥ ३ ॥

[illegible][illegible]

उभयगुणोपलक्षितजीवाना तत्रोत्पत्तेरुभयत्रापि तदस्तित्वं मिदम् । अन्यत्सुगमम् ।
तत्रानुत्पद्यमानगुणस्थानप्रतिपादनार्थमाह—

सम्माभिच्छाद्वि-असंजदसम्माद्वि-द्विष्टाणे णियमा पज्जत्ता णियमा
पज्जत्तियाओ ॥ ९७ ॥

अतः सम्यग्मिध्याहृष्टेतत्रानुत्पत्तिस्तस्य तद्गुणेन मरणाभावान्, किंचेत्तत्र
घटते यदस्यतमस्यग्दष्टिर्भरणस्तत्र नोत्पद्यत इति न, जघन्येषु तस्योत्पत्तेरभावान् ।
नारकेषु तिर्यक्षु च कनिष्ठेषुत्पद्यमानास्तत्र तेभ्योऽधिकेषु किमिति नोत्पद्यन्त इति चेन्न,
मिध्यादृष्टीना प्राग्गद्वापुष्काणा पश्चादात्तस्यग्दर्शनाना नारकाद्युत्पत्तिप्रतिबन्धनं प्रति
सम्यग्दर्शनस्यासामर्थ्यात् । तद्वदेवेनपि किञ्च स्यादिति चेत्तत्त्वमिदत्वात् । तथा च

इत दोनो गुणस्थानोसे तुल जीवोको उपयुज देव और देवियोंमें भी उत्पत्ति होती है,
अतएव उन दोनों गुणस्थानोंमें भी पर्याप्त और अपर्याप्तरूपसे उनका अस्तित्व मिदम्
जाता है । शेष कथन सुगम है ।

उक्त देव और देवियोंकी अपर्याप्त अवस्थामें नहीं होनेवाले गुणस्थानोंके प्रतिपादन
करनेके लिये भागेका रूप कहते हैं—

सम्यग्मिध्याद्वि और असंयतसम्यग्दष्टि गुणस्थानमें पूर्वात्त देव नियमसे पर्याप्त होते
हैं और पूर्वात्त देविया नियमसे पर्याप्त होती हैं ॥ ९७ ॥

शुद्धा— सम्यग्मिध्याद्वि जीवकी उक्त देव और देवियोंमें उत्पत्ति मत होओ, यह
टीका है, क्योंकि, सम्यग्मिध्याद्वि गुणस्थानके साथ जीवका मरण ही नहीं होता है । परंतु यह
बात नहीं बनती है कि मरनेवाला असंयतसम्यग्दष्टि जीव उक्त देव और देवियोंमें उत्पन्न
नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्यग्दष्टिकी जघन्य देवोंमें उत्पत्ति नहीं होती है ।

शुद्धा—जघन्य अवस्थाकी प्राण नारकियोंमें और तिर्यक्षाम उत्पन्न होनेवाले
सम्यग्दष्टि जीव उनमें उत्पन्न अवस्थाकी प्राण अयनवासी देव और देवियोंमें तथा कल
कनिनी देवियोंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, जो आयुर्कर्मका बन्ध करत समय मिथ्यादृष्टि और
त्रिदोने तदन्तर सम्यग्दर्शनको ग्रहण किया है वेस जीवोंकी नरकादि गतिमें उत्पत्ति के लिये
नहीं सामर्थ्य सम्यग्दर्शनमें नहीं है ।

शुद्धा—सम्यग्दर्शि जीवोंकी त्रिमयकार नरकगति आदिमें उत्पत्ति होती है उसी
ग्रहण करनेमें क्यों नहीं होती है ?

समाधान—यह कहना टीका है, क्योंकि, यह बात झूठी है ।

अथ तत्र तदन्तर सम्यग्दर्शनको ग्रहण किया है वेस जीवोंकी नरकादि गतिमें उत्पत्ति के लिये
नहीं सामर्थ्य सम्यग्दर्शनमें नहीं है ।

भगवत्प्रोक्तमप्यस्यासु गुणत्रयास्ति । तस्य तपूत्पत्तिं प्रति निरोक्तमिदं । सनत्कुमारादुपरि न स्त्रियः । मम पुत्रन्ते सौमर्मादायि तदुत्पत्त्यप्रतिपादनात् । तत्र स्त्रीणामभावे कथं तेषां देवानामनुपशान्तनयन्तापानां सुप्रमितिं चेन्न, तत्स्त्रीणां सौमर्म कल्पोपपत्तेः । तर्हि तत्रापि स्त्रीणामन्वित्यमभिप्रातयमिति चेन्न, अन्यत्रोपन्नानामन्य लेख्यायुरलानां स्त्रीणां तत्र मन्त्रनिरोधान् । तत्र भगवत्प्रामिनां यन्त्रज्योतिष्का सौधमशानदेवान् मनुष्या इव कायप्रतीचाराः । प्रतीचारे मधुनमेव नमः, काये प्रतीचारे येषां ते कायप्रतीचाराः । सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः स्पर्शप्रतीचारा, तत्रतन्त्रेण देवाङ्गना स्पर्शनमात्रादेव परा प्रीतिमुपलभन्ते इति यावत् । तथा देव्योऽपि । यथा प्रह्वनस्रोत्तर लान्तनकापिष्टेषु देवा दिव्याङ्गनाभङ्गाराकारविलासचतुरमनोहृत्परूपालोक्तमात्रात्

शंका—साधर्म स्वर्गमे लेकर उपरिम प्रीत्येकके उपरिम भाग तक के देवोंकी पयाप्त भार अपर्याप्त इन दोनों अत्रस्थाओंमें प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ गुणस्त्राजका अस्तित्व पाया जाता है, यह कहना तो ठीक है, क्योंकि, उन तीन गुणस्त्राजोंकी उन देवोंमें उत्पत्ति के प्रति निरोध है । किन्तु सनत्कुमार स्वर्गसे लेकर ऊपर स्त्रिया उत्पन्न नहीं होती है, क्योंकि, साधर्म और पेशान स्वर्गमें देवागनाओंके उत्पन्न होनेका पितृप्रकार कथन किया गया है, उसप्रकार आगे स्वर्गमें उनकी उत्पत्तिका कथन नहीं किया गया है । इसलिये यहाँ स्त्रियोंके अभाव रहने पर, जिनका स्त्रीसम्बन्धी सत्ताप शान्त नहीं हुआ है वेसे देवोंके उनके बिना मुक्त कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सनत्कुमार आदि काय मन्त्रोंकी स्त्रियोंकी साधर्म और पेशान स्वर्गमें उत्पत्ति होती है ।

शंका—तो सनत्कुमार आदि कल्पोंमें भी स्त्रियाँ अस्तित्वका कथन करना चाहिये ।

समाधान—नहीं, क्योंकि, जो दूसरी उगह उत्पन्न हुई है, तथा जिनकी देवता, भाव और बल सनत्कुमारादि कल्पोंमें उत्पन्न हुए देवोंसे भिन्न प्रकारके हैं । ऐसी स्त्रियोंका सनत्कुमारादि कल्पोंमें उत्पत्तिकी अपेक्षा अस्तित्व माननेमें निरोध आता है ।

उन देवोंमें भगवत्प्रामा, व्यक्त और ज्योतिषी देव तथा साधर्म और पेशान कल्पशाली देव भगवत्प्रोक्त समान शरीरमें प्रतीति करने हैं । मधुनमेव नमःको प्रतीति करने हैं । जिनका कायमें प्रतीति होता है उद्धे कायस प्रतीति करनेवाले कहते हैं । सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पमें देव स्पर्शमें प्रतीति करने हैं । अर्थात् इन दोनों कल्पोंमें रहनेवाले देव देवागनाओंके स्पर्शमात्रमें ही अत्यन्त प्रीतिकी प्राप्ति होने हैं । इसप्रकार यहाँकी स्त्रिया भी देवोंके स्पर्शमात्रमें अत्यन्त प्रीति प्राप्ति होती है । क्योंकि प्रह्व प्रसोत्तर, लात्तर और कापिष्ट कल्पोंमें रहनेवाले देव अपनी देवागनाओंके शृङ्गार, शकार, निगम, यथायोग्य तथा मनोज्ञ ध्वज तथा रूपके अपरोक्ष

शादित्यशङ्करप्रमत्तगुणा याया कथाया गात्रमगानादेव कविशमिन । यथाकल्प कल्पमगानां अति मन्त्रा कथयन्ति । तत्र १ पर [अति रा का वार्तावय]

1, 1, 200]

सत पद्मराजापुयोगदारे योगमगणापद्मराजा

र सुगमवाप्नुवन्ति ततस्ते रूपप्रतीकारा । यत पुत्रमहापुत्रगतारमहम्भारपु द
शाङ्गनाना मधुरमद्गीतमृदुहसितललितरश्मितभूषणरवश्चणमात्रादेव परा प्रीतिमास्
न्ति ततस्ते गन्दप्रतीकारा । ज्ञानतप्राणतारणा युतरन्ध्रपु दया यत स्वाङ्गनामन
ल्यमात्रादेव पर सुगमवाप्नुवन्ति ततस्त मन प्रतीकारा । प्रतीकारा उदनाप्रतीकार
ताभावाच्चेष्टा देवा अप्रतीकारा अनवरतमुग्धा इति यावत् ।
मम्यग्निमध्याह्निरूपानिरूपणाथमाह —
संसाधि-

सम्भामिच्छाद्विद्वान्णियमापज्जत्ता ॥ १९ ॥

अणुदिस अणुचरः ।

अणुदिस अणुत्तर' विजय-वहजयत-जयतावरजितमन्त्रसिद्धि-
विमाणवासिय देवा असजदसग्माइष्टि-ट्राणे सिया पज्जत्ता मिया
अपजत्ता ॥ १०० ॥

[illegible][illegible][illegible]

...
 ...
 ...
 ...
 ...
 ...
 ...

१२३४५६७८९१०१११२१३१४१५१६१७१८१९२०
 २१२२२३२४२५२६२७२८२९३०३१३२३३३४३५३६३७३८३९४०
 ४१४२४३४४४५४६४७४८४९५०५१५२५३५४५५५६५७५८५९६०
 ६१६२६३६४६५६६६७६८६९७०७१७२७३७४७५७६७७७८७९८०
 ८१८२८३८४८५८६८७८८८९९०९१९२९३९४९५९६९७९८९९१००

1947-48

पञ्चानामेव नामान्यभ्यधादन्तरीपरार्थम् । तत शेषस्वर्गनामान्यपि उक्तव्यानि
तानि च यथामर वक्ष्याम । अथ योगनिरूपणाग्रमर अथ चतसृषु गतिषु पर्याप्ता
पर्याप्तफलविशिष्टासु मङ्गलगुणस्थानानामभिहितमस्तिन्यम् । शेषमार्गणामु चरमा
स्मिन्मिति नाभिधीयत इति चेत्, नोच्यते अनेनैव मतार्थत्वाद् गतिरनुष्टुप्पयतिगि
मार्गणामात्रान् ।

वेत्तिनिष्टगुणस्थाननिरूपणार्थमाह—

वेदाणुपादेण अतिथि इत्यिमेदा पुम्सिमेदा णवुंसयमेदा अग्रद
वेदा वेदि ॥ १०१ ॥

दोषगमान पर च स्तृणानि छात्यतीति स्त्री, स्त्री चार्मा वेदथ स्त्रीरे' । अत्रा
पुम्प स्तृणानि आराज्जतीति स्त्री पुम्पराज्ञेत्यर्थ । मिय विदतीति स्त्रीवेद । अथा

ये एव विमान स्वमे मन्त्रमे हे इम वागके प्रगट करकेके त्रिमे पावों ही विमानों
मम का गये हे इमन्त्रिमे दोष स्वगोंक नाम भी करने आदिये । परंतु उक्त एव
वाग्वार कहेंगे ।

इमप्रकार योगमार्गणक निरूपण करनेक अवसर पर हा वयोनि ही अर्गणों का
सुत्र पावों गतिवर्गमें गपुर्न गुणस्थानोंकी मला बनता ही यह ।

शंका—अथ मार्गणाग्रम यत् त्रिवय कथा नयी क्या जाना है ?

ममादात—नयी, कथोकि, इम कथनम शाय मार्गणाग्रम यत् त्रिवय अग्रम है
कने हे, पावों गतिवर्गका छात्रकर पाव करि मार्गणाग्र गहीं हे ।

अथ यद्वक्त्रेण गुणस्थान इ निरूपण करनेक त्रिमे आगका गुण कथन है—

वेदमार्गणक भनयादम त्रीयद् पुम्पयद्, नर्गययद् भीर भनयादम
अथ होते है ॥ १०२ ॥

आ नयेम स्वय जयनका और दूसरका आग्यादित करने है उक्त म। कथन है अंत
मार्गण आ वेद है मम म म कथन है । अथवा आ पुम्पयर्न आकाश करने है उक्त म
कथन है त्रिमश अर्थ कथनका का कथनयार्नी होता है । आ भनयका स्त्रीय भनय कथन
हे मम मम कथन है । अथवा मम कथनका यद् कथन है और त्रीयक मम म म

— २०० — १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

येन वेद, गियो च मीने । उक्त २—

१। ि सप्त त्रिंशेन यो ता पर हि त्रिंशेन ।

गणपती गणपति तदा सा त्रिंशति ॥ १७० ॥

पुरुगुणपु पुनोमेपु च तेन स्थापितानि पुन्य । सुपुप्तपुरुषपदनुगतगुणोऽप्राप्त
भोग्य यदुदयाजो भवति म पुन्य अद्भुताभिलाष इति यावत् । पुरगुण र्म गते
रगेतीति सा पुन्य । यद्य स्यभिलाष पुन्यगुण कर्म कुर्यात्ति चेत्, न साभूतगामभ्यानु-
विद्वज्जीरगहारित-सादुपचारेण जीरम्य स्वरुर्न-साभिधानात् । तस्य यद् पुन्य ।
उक्त २—

पुन्य गुण भोगे सा वरदि गणपति पुन्यगुण कर्म ।

पुन्य उत्तमा य चत्ता तदा सा त्रिंशति पुरिगो ॥ १७१ ॥

न गी न पुमान्पुन्यमुभयाभिलाष इति यावत् । उक्त २—

कान्ते दै । कदा भी द—

जो मिथ्यादर्शन अज्ञान आर असव्यम आदि दोषोंसे अपनेको भाषणादिन करता ह
भीर मयुट सभाषण, कान्य विशेष आदिके द्वारा जो त्वरे पुन्योंका भी अप्रम आदि दोषोंसे
भाषणादिन करता है, उसको भाषणादिनशास्त्र होनेके कारण स्त्री कहा है ॥ १७० ॥

जो उत्तम गुणोंमें आर उत्तम भोगोंमें लयन करता है उसे पुन्य कहते हैं । अथवा,
जिस कर्मके उदयसे जाय, सोने हुए पुन्यके समान, गुणोंसे अनुगत होत ह जीर भोगोंको
प्राप्त नही करता है उसे पुन्य कहते हैं । अर्थात् स्वास्वयं अभिलाषा जिसके पार जाता ह
उसे पुन्य कहते ह । अथवा, जो भेष्ट कर्म करता है वह पुन्य ह ।

शुद्धा—जिसके स्वास्वयं अभिलाषा पार जाता है वह उत्तम कर्म कमे कर
सकता है ।

समाधान— नही क्योंकि, उत्तम कर्मको करनेके लिये सामर्थ्यसे युक्त आरके स्वास्वयं
अभिलाषा पार जाता ह अतः वह उत्तम कर्मको करता ह यथा कथन उपशरसे किया है ।
कदा भी द—

जो उत्तम गुण आर उत्तम भोगोंमें स्वामाप्तिवा अनुभूत करता ॥ जो नेकमें उत्तम
गुणयुक्त कार्य करता ह आर जो उत्तम ह उस पुन्य कहा ह ॥ १७१ ॥

जो न स्त्री ह आर न पुन्य ह उसे नपुंसक कहते ह । अर्थात् जिसके स्वा भीर पुन्य
स्वास्वयं दोनों प्रकारकी अभिलाषा पार जाता ॥ उसे नपुंसक कहते हैं । कदा मा है—

१ या जो २०४ जयन "नाना" सा १४४ "नाना" १४४ ॥ १०१ ॥ जो १०१

२ या जो २०२ पुन्य सप्त त्रिंशति ॥ १०१ ॥ नाना १४४ ॥ १०१ ॥

पुन्य कर्म आभाषणादिन-सादुपचारेण जीरम्य स्वरुर्न-साभिधानात् । पुन्य कर्म १ । १०१ ॥

णेत्रित्या णेत्र पुम णत्तुसओ उभय लिंग-पदिरितो ।

वृद्धाग समानग त्रेयण गरुओ कट्टम चित्तो' ॥ १७२ ॥

अपगतास्त्रयोऽपि मेदसतापा येषां तेऽपगतमेदा । प्रश्रीणान्तर्दाहा इति यान्
मर्त्ये मन्तीत्यगिसम्बन्ध कर्तव्यः । उक्तं च —

कारिम तणिट्टिवागणि सरिम-परिणाम पेयशुम्भुक्का ।

अवगय-वेदा जीरा सग समयगत-नर-सोव्या' ॥ १७१ ॥

नेदयता जीयाना गुणस्थानादिषु सच्यप्रतिपादनार्थमृत्तरसूत्रमाह —

इत्थिवेदा पुरिसवेदा असण्णिमिच्छाइत्ति प्पहुडि जाव आण-
याट्ति ति ॥ १०२ ॥

उभयोऽपि द्वयोरक्रमेणैकस्मिन् प्राणिनि मत्तः प्राप्नोतीति चेन्न, निरुद्धयोरक्रमेण

जो न स्त्री है और न पुरुष है, किंतु स्त्री और पुरुषत्व-की दोनों प्रकारके लिंगोंसे रहित है, अर्थात् आग्निके समान तीव्र चेदनासे युक्त है और सर्वदा स्त्री और पुरुष शिष्यक मैनुनकी अभिलाषासे उत्पन्न हुई चेदनासे जिसका चित्त कल्पित है उसे नपुंसक कहते हैं ॥१७॥

जिनके तीनों प्रकारके घेदोंसे उत्पन्न होनेवाला सनाप (अन्नरग दाह) दूर हो गया है
ये घेदराहित जीन है।

सूत्रम नहे गये सभी पढ़ने साथ 'सति' पढ़ा सबध कर लेना चाहिये।
बड़ा भी है—

जो कारीग (कण्ठेकी) अग्नि, तृणाग्नि, और शृणुकाग्नि (अनेकी अग्नि) के समान परिणामोंमें उत्पन्न हुई वेदनासे रहित है और अपनी आत्मामें उत्पन्न हुए अनन्त और उत्तम सुखके मोला है उन्हें वेदरहित जीन कहते हैं ॥ १७३ ॥

अब घेड़ोंमें युग जीवोंके गुणस्थान आदिमें अस्तित्वके प्रतिपादन करनेके लिये मागश
 ग्य कहते हैं—

॥ १० ॥

परा— हमप्रकार तो दोना पेदोंका एकमात्र एक जीयमें मरिनाय प्राप्त हो जायगा।

* श्री वा ३७५ तथैव श्रीपुष्पाभिः प्ररूपयन्ति कामाक्ष्याम् । मातुर्गुणकरीति । आशीति ।
शिवस्य हस्तद्वयं । आशीति ।

[illegible]

कस्मिन् सत्त्वाविरोधान् । कथं पुनस्तयोन्मत्तं सत्त्वमिति चेद्विघ्ननीरुद्ध्याधानतया पर्यायैकद्रव्याधारतया च । तत्र न नपुमस्वेदस्थाभासः तत्र द्वारेण वेदो भवति इत्यनुधारणाभासान् । तत्त्वताज्ज्वल्यत इति चेत् 'तिरिक्त्वा त्रिवरा अमणिपंचिदिय प्पहुडि जाव सत्त्वामनदा त्ति । मणुस्मा त्रि वरा मिन्डाइडि प्पहुडि जाव अणियाडि त्रि' एतस्मात्तान् । सुगममन्यत् ।

नपुमस्वेदमध्यप्रतिपादनार्थमाह—

णवुसयवेदा एइदिय-प्पहुडि जाव अणियाडि त्ति ॥ १०३ ॥

एकन्द्रियाणां न द्रव्यवेद उपलभ्यते, तदनुपलब्धौ कथं तस्य तत्र सत्त्वमिति

समाधान— नहीं, क्योंकि विरुद्ध दो धर्मोंका एकसाथ एक जायम सद्भाव माननेमें विरोध आता है ।

शुद्धा— तो फिर नयें गुणस्थानतक इन दोनों वेदोंकी एकसाथ सत्ता कैसे बनेगी ?

समाधान भिन्न भिन्न जीवोंके आधारपनेकी अवस्था, अथवा, एकावस्थासे एक आवश्यक अथवा आधारपनेकी अपेक्षा नयें गुणस्थानतक इन दोनों वेदोंकी सत्ता बन जाती है । अर्थात् एक कालमें भा माना जायोंमें अनेक वेद पाये जा सकते हैं और एक जायोंमें भी पर्यायका अपेक्षा कालभेदसे अनेक वेद पाये जा सकते हैं ।

नयें गुणस्थानतक नपुमस्व पदका अभाव कहा है, क्योंकि नयें गुणस्थानतक दो ही पद होते हैं एते अपधारणका (सूत्रमें) अभाव है ।

शुद्धा— यह बात कैसे आती जाय कि नयें गुणस्थानतक तानों वेद होत हैं ?

समाधान— अस्वप्ना पञ्चन्द्रियसे लेकर संयत्तामयत गुणस्थानतक निर्व्यय तानों पदपाल होत हैं और मिथ्यादृष्टि गुणस्थानतक लङ्कार अनिवृत्तिकरण गुणस्थानतक मनुष्य तानों पदोंस गुण होत हैं इस आगम ध्वननसे यह बात जाना जाता है कि नयें गुणस्थानतक तानों वेद हैं । यह कथन सुगम है ।

अथ नपुमस्वपदक ॥ १३ प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहत है—

एकन्द्रियस लङ्कार अनिवृत्तिकरण गुणस्थानतक नपुमस्वपदजाल् वाच पाय जात है ॥ १०४ ॥

शुद्धा— एकान्द्वय जायाक द्रव्यवेद कहा पाया जाता है इत्यन्वय द्रव्यपदका उपलब्ध नहीं होत पर एकन्द्रिय आगम नपुमस्व पदका आसेनका कम बननाया

गुणगुणमधिष्ठिता मन्त्राणि प्राणिनोऽप्यमनवेदा । न द्रव्यवेदस्याभावास्तेन
विमताभवात् । अधिष्ठिताऽत्र मानवेदस्तत्तदभावादप्यमनवेदो नाप्येति ।

वेदादेऽप्रतिपादनार्थमाह—

णेरद्या चदुसु द्वाणेषु सुद्धा णुसयवेदा ॥ १०५ ॥

नारकेषु नेपरदाभावात् कथमवगीयत इति चेत् 'सुद्धा णुसयवेदा' इत्यर्थात् ।
नेपरदा तत्र विमिति न स्यातामिति चेत्, अनरतदु खेषु तत्सत्त्वमिरोधान् । स्त्रीपुरुष-
वेदादपि दुःखमेवेति ध्वन्य, इष्टस्यापाकमिसमानसन्तापायूनतया तार्णकारीपात्रिसमान-
पुरुषावेदयोः सुगन्धपरत्वात् ।

नियमार्ता वेदतिरूपणार्थमाह—

तिरिक्त्वा सुद्धा णुसयवेदा एहदिय-प्यहाडि जाव चरिंदिया
ति ॥ १०६ ॥

मयें गुणस्थानके मन्त्रे भागसे भागे दोन गुणस्थानको प्राप्त हुए जीव वेदरहित होते
हैं । परंतु भागेक गुणस्थानमें द्रव्यवेदका अभाव नहीं होता है, क्योंकि, केवल द्रव्यवेद
कोई विचार ही उत्पन्न नहीं होता है । यहाँ पर तो भाववेदका अधिकार है । इसलिये मन्त्र-
वेदक अभावमें ही उन जीवोंको वेदरहित जानना चाहिये, द्रव्यवेदके अभावसे नहीं ।

अब वेदका मार्गणाभ्यास प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

नारकी जीव पारों ही गुणस्थानमें गुद्ध (कथ) नपुंसकपेरी होते हैं ॥ १० ॥

श्रुति—नारकीजोंमें नपुंसकपेदको छोड़कर दूसरे वेदका अभाव है, पर कि

जाना जाता है ?

समाधान— नारकी पर नपुंसकपेरी होते हैं इस भावबलसे उक्त सूत्र

वि यहाँ भय ही वेद नहीं जान है ।

श्रुति—यहाँ पर जीव ही वेद कथा नहीं होते हैं ?

समाधान— इत्यादि नहीं जान है निरन्तर दुर्गा चारोंमें ही वेद के वेद के

माननेमें प्रसन्न माना है ।

श्रुति—आ भाग मन्त्रवेदस भा ता मन्त्र ही जाना है ?

समाधान— नही स्यात् नपुंसक वेद नयाका आदिसे समस्त मन्त्र वेद के

अतएव उक्तस हीन गुण मन्त्र वेदका आदिसे समान पुरुषवेद वेद के वेद के

अब नियमार्ताम वेदक निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

नियम वेदकी द्वय जायाम मन्त्र नपुंसक वेद के वेद के वेद के

अत्र शेषवेदाभावात् कुतोऽयमीयत इति चेत् 'सुद्धा ण्युमगवेदा' इत्यापात् ।
पिपीलिकानामण्डदर्शनान्न ते नपुमका इति चेत्, अण्डानां गम एवेत्यतिरिति नियमा
भावात् । विग्रहगती न वेदाभावात्तत्राप्यन्यक्तवेदस्य मत्त्वात् ।

शेषतिरश्चा कियन्तो वेदा इति शङ्कितमिष्यागङ्गानिगमरुणार्थमाह—

**तिरिक्षा तिवेदा असणिपंचिन्द्रिय णहुडि जाव संजदासजदा
ति ॥ १०७ ॥**

त्रयाणां वेदानां क्रमेण प्रवृत्तिर्नक्रमेण पर्यायत्वात् । रूपायनान्तर्मुहूर्तव्यापिना
वेदा आजन्मन आमरणात्तदुदयस्य मत्त्वात् । सुगममन्यत् ।

मनुष्यादेशप्रतिपादनार्थमाह—

मणुस्सा तिवेदा मिच्छाइट्टि-णहुडि जाव अणियट्टि ति ॥ १०८ ॥

शङ्का—चतुरिन्द्रियतक्के जीवोंम शेष दो घेदोंका अभाव ॥ यह कैसे जाना जाय ?
समाधान—'एकेन्द्रियमे चतुरिन्द्रियतक्' जीव शुद्ध नपुमकवेदी होते हैं' इस
आर्पयवनसे जाना जाता है कि इनमें शेष दो वेद नहीं होते हैं ।

शङ्का—चाट्टियोंके अण्डे देने जाने हैं, इसलिये वे नपुमकवेदी नहीं हो सकते हैं ।

समाधान—अण्डोंकी उत्पत्ति गर्भमें ही होती है, ऐसा कोई नियम नहीं है ।

विशेषार्थ—माता पिताके शुभ ओर शोणितसे गर्भधारणा होती है । इसप्रकार गर्भ
धारणा चाट्टियोंके नहीं पारि जाती है । अतः उनके अण्डे गर्भज नहीं समझना चाहिये ।

विग्रहगतिमें भी वेदका अभाव नहीं है, क्योंकि, वहाँ पर भी अ-पनवेद पाया जाता है ।

शेष तिर्यचोंके कितने वेद होते हैं, इसप्रकारकी आशङ्कामें युक्त शिष्योंकी शङ्काके
दूर करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

तिर्यच अममी पण्डित्तसे लेकर सयनाभयन गुणस्थानतक् तानों घेदोंमें युक्त
होते हैं ॥ १०७ ॥

तानों घेदोंकी प्रवृत्ति क्रमसे ही होती है सुगमन् नहीं, क्योंकि, वेद पर्याय है । जैसे,
विपश्चित् कषाय केयल अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त रहती है, वैसे सभी वेद केयल एक अतनुहृतपर्यन्त
ही नहीं रहते हैं, क्योंकि, अममे लेकर मरणतक् भी निम्नी एक वेदका उदय पाया जाता है ।
शेष कषय सुगम है ।

मनुष्यगतिमें विशेष प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

मनुष्य मिध्याण्णि गुणस्थानमे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानतक् ताना वेदशा
होते हैं ॥ १०८ ॥

मयनाना वध शिरोदसश्चमिति चम, अन्यत्करेत्सच्चापेक्षया तत्र तथोक्तम् ।
सुगममन्यन् ।

येदप्रपातीनानाप्रतिपादनार्थमाह —

तेण परमवगदवेदा चेदि ॥ १०९ ॥

सर्वत्र च शब्द 'समुच्चये दृष्टव्य' एते च पूर्वोक्ताश्च मन्तीति । इति शब्द, सर्वत्र
ममाणां परिगृहीतव्य । सुगममन्यन् ।

दवादेनप्रतिपादनार्थमाह —

देवा चदुमु दृणमु दुवेदा, इत्थिवेदा पुरिसवेदा ॥ ११० ॥

मान-इमारमात्न्द्रादुपरि पुन्यवेदा एव । यन्नमन्तरण तत्कथ लभ्यत इति चेत्
'तेण परमवगदवेदा चेदि' अतन च शब्दो यतोऽनुक्तममुष्यार्थश्च तस्मात्सान
त्वुमादीना पुन्यत्वमसीयत । निर्यत्मनुष्यलभ्यपर्याणा सम्पूर्णमपञ्चिन्निपाद्य
नपुमका एव । अमन्येयपर्यायुपनिषधो मनुष्यान् द्विवेदा एव, न नपुमकवेदा, इत्यादयोऽ

शब्दो—सयमोक्तं ताना येदोका सत्य वसे सयप इ ।

ममाधान—नहीं, क्योंकि, अथवा रूपमे येदोके भस्मिन्वकी अपेक्षा यहा पर तीनों
येदोकी सत्ता बड़ी । नेप कथन सुगम ६ ।

अथ तानो यदोमे गदत जायोंच प्रतिपादन करनेके लिये भागेका सूत्र कहते हैं—

मयये गुणस्थानक मयदे भागम भागक सधी गुणस्थानपाले जाय येदहित है ॥ १०९ ॥

यह अर्थ है कि 'यद्' मनुष्यपर्यन्त अथर्वे जानना चाहिये । अथवा यदहित और यदले
बड़े हुए येदयात्र जाय हात ॥ इन शब्द सब अर्थ समानिरूप अर्थमें प्रकृत करना
चाहिये । नेप कथन सुगम ६ ।

अथ द्यमानम ययय प्रातपात्रक करनक लय सूत्र कहते हैं —

यय सार गुणस्थानम मय भाग मय इमप्रकार है यदयाने हात ६ ॥ १०९ ॥

सानकमार भाग माह ६ व मय मय ऊपर सधा यय पुन्यवेदी की होत है ।

गता — ययय १२० ॥ १०९ ॥ सुगम प्रमाणक यह बात कम जाना जाय ।

ममाधान—तत् परमवगदवेदा चेदि इत्य सूत्रम यया दृष्टा य शब्द मनुज
अथवा समवायक लि ॥ १०९ ॥ इत्यात् ॥ इमम यह जाना जाना है कि सानकमार भाग माहम
मयमे लेक ऊपरक दय यय पुन्यवेदी की हात है ।

उत्तमप्रकार सत्यपयानक निर्यत्म मनुष्य तथा मनुजान पचादय जाय नपुमक
॥ हात ॥ असकथान ययका आयुपाले मनुष्य तत् निर्यत्म य हात गत । भाग पुन्य य दा

इति भवति तस्य गदष्टनोऽधप्रतिपत्तिप्रवणत्वात् । अर्थनयाधरणे शोध
म्यान्वन्दतोऽर्धस भेदाभावात् । कषायिचातुर्भिध्यात्स्वायस चातुर्भिध्यमगम
या । तथापदिष्टमवानुपदनमनुवाद कषायस अनुवाद स्वायानुवाद तेन स्वायस
प्रभिदस्यानुपदनमनुवात् । सिद्धातिद्वान्वा हि स्वायामार्गा इति न्यायादनुवादोऽन
नाभिगताधाधिगन्तृगभावाद् इति न प्रसङ्गरूपणापरूपयता तस्तीर्थद्विदादयोऽस्य व्य
तार एव न वर्तार इति स्थापनार्थत्वात् । क शोधस्वाय ? राय आमर्ष सर
को मानस्वाय ? राय विद्यानवानात्स्यादिमदन वान्पस्यानवनति । निवृत्तिर
मायस्वाय । गता काहा लोभ । उक्त च -

त्रिये जीवने ये अभिन्न दं । विर भा धम धमादेदमे उनम भेद वन जाना दं, भनपय मि
निदश करनेमें कोई आपत्ति नहीं आती द ।

अथवा, दादनयका आधय करने पर शोधकषाय इत्यादि प्रयोग वन जाने हैं, क्योंकि
दानन्दव दादागुमार अर्थज्ञान करनेमें समर्थ है । और अर्थनयका आधय करने पर 'शोध
कषाय' इत्यादि प्रयोग होने हैं क्योंकि इस नयकी दृष्टिमें दादने अधका कोई भेद नहीं है ।
अथवा, चार प्रकारके कषायवा 'जाय होते हैं । इससे कषाय भी चार प्रकारकी हैं ऐसा ज्ञान
हो जाता है । इसलिये श्रवणें शोधकषायी इत्यादि पदोंका प्रयोग किया है ।

जिसप्रकार उपदेश दिया है उसप्रकारके कथन करनेको अनुवाद कहते हैं । कषायके
अनुवादको कषायानुवाद कहते हैं । उससे अधान् कषायानुवादसे जीव पाव प्रकारके होते हैं ।
अथवा प्रसिद्ध अर्थका अनुवाद कथन करनेको अनुवाद कहते हैं ।

परी - 'कषामार्ग अधान् कथनपरस्वाय प्रसिद्ध आर अप्रसिद्ध इन दोनोंके आधयसे
प्रवृत्त होती है ' इस 'पापसे अनुसार यहा पर अनुवाद अधान् केवल प्रसिद्ध अर्थका अनुवृत्त
कथन करना निष्फल है इससे अनधिगत अर्थका ज्ञान नहीं होता है !

समाधान--नहीं क्योंकि यदि कथन प्रसादरूपसे श्रोतृश्रेय होनेके कारण तीर्थकर
भादि इसक केप 'यावधान करनेवाले दा द कता नहीं है इस बातका ज्ञान करानेके लिये
अनुवाद पदका कटना अनधिक नहीं है ।

परी - आधकषाय । वसे कहते हैं ?

समाधान--राय आमर्ष आर सरम्भ इन सबका आध वतन द ।

परी - मानकषाय । वसे कहते हैं ?

समाधान--रायस अश्व विद्या नय आर जीनि भादक प्रथम सम्यक् निवृत्तात्प्र
भावका मान वतन द ।

निवृत्त या उन्नाय । मायकषाय कहते हैं । गता या गताभावा लय वतन द
कता भी है -

लोभकसाई एडदिय प्पहुडि जाव मुहुम-सांपराड्य सुद्धि सज्ज
ति ॥ ११३ ॥

शेषरूपायोदयविनाशे लोभरूपायस्य विनाशानुपपत्ते लोभरूपायस्य सूक्ष्म
साम्परायोऽप्यधि ।

उरूपायोपलक्षितगुणप्रतिपादनार्थमाह—

अकसाई चटुसु टाणेसु अत्थि उवसतरुसाय-वीयराय-छुदु
मत्था सीणकसाय-वीयराय-छुदुमत्था सजोगिकेवली अजोगिकेवली
ति ॥ ११४ ॥

उपशान्तरूपायस्य कथमरूपायस्त्वमिति चेत्, कथं च न भवति? द्रव्यरूपायस्या
नन्तस्य सत्त्वात् । न, कपायोदयामारापेक्षया तस्यारूपायस्त्रोपपत्ते । सुगममयत् ।
कपायसादेश निमित्ति नोक्तमिति चेन्न, विशेषामारतोऽनेनैव गतार्थत्वात् ।

लोभकपायसे युक्त जीर एकेद्रियोंसे लेकर सूक्ष्मसांपरायपुद्धिमयत गुणस्थान
तक हाल है ॥ ११३ ॥

शेष कपायोंके उद्भवके नाश हो जाने पर उसीमय लोभकपायका विनाश बन
गदी सकता है, इसलिये लोभकपायकी अन्तिम मर्यादा सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान है ।

कपायरहित जीरामे उपलक्षित गुणस्थानोंके प्रतिपादन करनेके लिये मूल वदत है—

कपायरहित जीर उपशान्त कपाय वीतराग छत्रस्थ, क्षीणकपाय-यानराग-छत्रस्थ,
सयोगिकवली और अयोगिकेवली इन चार गुणस्थानोंमें होता है ॥ ११४ ॥

प्रश्न—उपशान्तकपाय गुणस्थानकी कपायरहित कैसे कहा ?

प्रतिशब्द—यह कपायरहित क्यों नहीं हो सकता है ?

प्रश्न—यहां भगवन् द्रव्यकपायका मट्ठाव होनेसे उसे कपायरहित नहीं कह
सकत है ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि, कपायके उद्भवके समाप्तकी अपेक्षा उसमें कपायोंग रणित
पना बन जाता है । तब कथन सुगम है ।

प्रश्न—कपायोंका विनाश (मार्गणाश्रमे) कथन क्यों नहीं किया ?

उत्तर—नहीं क्योंकि, कपायोंके सामान्य कथनमें उनका मार्गणाश्रमे कथा का
नमें कोई विचारना नही है, इसीसे उसका ज्ञान हो जाता है । इसलिये आदेश प्रकृता नहीं की ।

मिति । किं तर्हि ? कथं च भुक्तनिद्रिषाम्भामि मृत्तानुक्तान्प्रहाति तपारपि प्राप्य
कारित्वप्रमद्गादिते चेन्न, योग्यदेगारम्वितरत्र प्राप्तेरभिधानान् । तथा च स्वमन्त्र-
स्वर्णानां स्वग्राहिभिरिन्द्रियैः स्पष्टस्वयोग्येगारम्विति गृह्यम् च । स्पष्टस्य च भुक्तानि
मुत्तवया, न तत्परिच्छेदितानि च भुक्ता प्राप्यरागिभिरिति मृत्तानुक्तान्प्रहातिमिदं । किं च
तेनाभिहितेनानुक्तान्प्रहा, यथा श्रोत्रो गन्धग्रहणराग एव नृमोपलम्भ । निधमित्र
धर्ममिगिष्टरस्तुनो यस्त्वैरदेगस्य वा ग्रहणमुक्तान्प्रहा । मोऽपमित्यादि ध्रुवारप्रहा । न
मोऽपमित्याद्यध्रुवारप्रहा । एतमीहातीनामपि याज्यम् । मराण्येनानि मतिप्रानम् ।

शुद्धभूमिभ्योऽर्धान्नरागम धृतनानम् । तत्र प्रत्यङ्गिभ्योऽतिविषममद्गाद्य

गारा — ता पिर अत्रात्यकारणमने कया प्रवाज्जन है ? और यदि पूर्वा मरुत
भानि एतत्तय और भुक्तान्प्रहा अत्रात्य नदी बहने हो ना समु आर प्रमने अनिभूत अर
भुक्तके भयप्रहादि हैने हो स्वका । यदि समु और मरुत भी भुक्तान् अनि एत आर मरुत क
अरप्रहादि माने आयेंगे ना उ है भी प्रत्यङ्गारित्यका प्रगत आ जलपरा ।

समाधान — नदी, वयोकि, इन्द्रियोके प्रहण करन क थाय एगम एगमोका अरुति
निको ही प्राप्ति बहने है । यथा भयप्रहामें मरु, मरु आर एगमका उमका प्रहण करनकाही
इन्द्रियोके साथ अपने अपने योग्य एगमों भयविषय बहना स्पष्ट ही है । एगमका भी उमका प्रहण
करनका । इन्द्रियोके साथ अपने योग्य एगमों भयविषय बहना स्पष्ट है । उम प्रका प्रका
साथ अभिभूतकपने अपने एगमों भयविषय बहना स्पष्ट है । यथा प्रका प्रका
साथ कपका प्राप्यकारणना नदी बनना है । एगमकार अनि एत और अनन एगमो क अर
प्रहादिक निज हो जाले है ।

उपर बहे हुए कथनानुसार भुक्तान्प्रहा स्पष्ट है । और एतके मरुत क प्रहण करन क
साथ ही एतके मरुत भी उपलब्धि हो जाली है । निरिक्तम एगमो मूल बनका अरुका
वरुके एगदेगका प्रहण करनका उपायप्रहा है । यह स्पष्ट है । एगमो प्रका मरुत क प्रहण
धुपायप्रहा बहने है । यह स्पष्ट नदी है । एगमो प्रका मरुत क प्रहण करनका अरुका प्रहा
है । एगमो प्रका एगमो मरुत क प्रहण करनका अरुका प्रहा है । एगमो प्रका मरुत क प्रहण
करनका अरुका प्रहा है ।

एगम और भुक्तान्प्रहा निरिक्त एगम आ एगम एगमो मूल बनका अरुका
धुपायप्रहा बहने है । उम एगमो निरिक्तम उपाय एगमो मूल बनका अरुका प्रहा है ।

१. अग्नि मरुत । ११५ ।

१. अग्नि मरुत । ११५ । १. अग्नि मरुत । ११५ । १. अग्नि मरुत । ११५ । १. अग्नि मरुत । ११५ ।

१. अग्नि मरुत । ११५ । १. अग्नि मरुत । ११५ । १. अग्नि मरुत । ११५ । १. अग्नि मरुत । ११५ । १. अग्नि मरुत । ११५ ।

मिति । अङ्गभूत द्वाङ्गविधम् । अङ्गत्वात् चतुर्दशविधम् । प्रत्यक्ष त्रिविधम्, अवधिज्ञान
मन पर्ययज्ञान केवलज्ञानमिति । माभ्यान्मूर्तार्थपदार्थपिच्छेदमवधिज्ञानम् । साक्षान्मन
ममादाय मानमार्थानां मानात्करण मन पर्ययज्ञानम् । साक्षात्कालगोचराद्वेषणात्
परिच्छेदक केवलज्ञानम् । मिथ्यात्वममेतमिन्द्रियज्ञान मत्यज्ञानम् । तेनैव समेत
शाब्द ग्रन्थय श्रुताज्ञानम् । तत्तममेतमवधिज्ञान निभङ्गज्ञानम् । उक्त च—

विमन्तन कुड पत्त-व्यादिषु विभुसदेमन्करणेण ।

जा खडु पत्त मं मदि चण्णो ति त वेनि ॥ १७९ ॥

आमीयमासुरक्खा भारह रामायणादि-उत्तमा ।

सुत्ता अमाहणीया सुद अण्णो ति त वेनि ॥ १८० ॥

ज्ञान भगवात् । भगवन्तु धारह प्रकारका हैं और भगवात् चोदह प्रकारका है ।

प्रत्यक्षज्ञानके तीन भेद हैं, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान । संपूर्ण मृत
पदार्थोंको मात्सात् जाननेवाले साक्षात्को अवधिज्ञान कहते हैं । मनका माध्यय लेकर मनोगत
पदार्थोंके स्पर्शाकार करनेवाले ज्ञानको मन पर्ययज्ञान कहते हैं । त्रिकांशके विरहमूल समस्त
पदार्थोंको मात्सात् जाननेवाले ज्ञानको केवलज्ञान कहते हैं ।

इन्द्रियोंके उत्पन्न होनेवाले मिथ्यात्वममेत ज्ञानको मत्यज्ञान कहते हैं । शास्त्रों
निमित्तमे जो एक पदार्थमे दूसरे पदार्थका मिथ्यात्वममेत ज्ञान होता है उसे धुताज्ञान
कहते हैं । मिथ्यात्वमममेत अवधिज्ञानको विभगज्ञान कहते हैं । कहा भी है—

दूसरेके उपदेश बिना जिन, यत्न, कृत्, पत्त तथा च-उ आदिके विरहमें जो धुति
प्रभूत होती है उसको मत्यज्ञान कहते हैं ॥ १७९ ॥

चरणात्त, दिमाणात्त, भारह और रामायण आदिके सुत्ता और अण्ण कहनेके
अयोग्य उपदेशोंको धुताज्ञान कहते हैं ॥ १८० ॥

१. ज्ञान ३० नान पदार्थ २० व आदिमात्त । ३. पत्ता ४. तत्त ५. पत्ता ६. पत्ता ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०.

२. ३. ४. ५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०.

३. ४. ५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०.

४. ५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०.

५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०.

६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०.

७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०.

८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०.

९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०.

१०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०.

११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०.

१२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०.

2, 2, 124]

सर्वप्रथम अहमदाबाद, गुजरात, भारत

1240

सिरीयम दिना न पुनमिच च कम् न च ।
सम्पत्ति पन्ना सदनम् न च ।

अभिप्राय मित्रमित्र-तमभिन्ने हिता-

अभिप्राय मित्रमित्र - दमनि वि मित्र - ॥ १/१

अथो अथो - उना त यी न म् ॥ १८ ॥

अथो अथान - उना त जी न म ।
आमिनिगादि उ उ विगादि

अभिनिगादि" पु र विगमि" न क " ॥ १० ॥
अरदीपति वि आदी स न ॥ ११ ॥
भर-गुण प्रसव वि

अर्थात् यि आर्था यमम् । यि न
मय-गुण यद्यपि विदित्य तथ

भगवन् तस्य विदितं तस्य विदितं तस्य विदितं ॥ १८८ ॥

सपत्नीक द्वारा आश्रमम शरीरपाममय आर मिश्रणात्तु वमरु वमरुत्तु (पुनः क
नका विमर्ष काल काट ॥ ११॥
मन और शक्तिपूर्वक गतापनाम उक्त न हय मिति
प्रेमिक काल काल ॥ १२॥

अधिकांश विभाग काल का ६ १/१ ॥

मन और शक्तियों का स्वाभाविक रूप में हुए अभिमान और निंद मन पराधर्मे का प्र
तिज्ञानसे जान हुए पराधर्मे अस्वाभाविक रूप में हुए पराधर्मे का प्र
तिज्ञानसे जान हुए पराधर्मे अस्वाभाविक रूप में हुए पराधर्मे का प्र

मनोविज्ञान के अन्तर्गत मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ है कि व्यक्ति अपने मन को स्वस्थ रखे। मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ है कि व्यक्ति अपने मन को स्वस्थ रखे। मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ है कि व्यक्ति अपने मन को स्वस्थ रखे।

मतिशामने जात वरुण

[illegible][illegible]

मूल्य है ॥ १७ ॥

मध्य एवम् काल आरम्भः। अथवा जिन कालः विषयः कर्म ह। इति अर्थः
न कालः। इत्यादि परमात्मनः इति। न्यायान्न कालः। इति अर्थः अथ
य इति जिनस्य इति अर्थः। इति अर्थः।

[illegible]

५४

47

चितियमर्चितिय वा अद चितियमणेय भेय च ।

मणपन्त्र नि उच्च ज चाणइ त गु णर ओण' ॥ १८१ ॥

सपुण्ण तु मममा केउउममउत्त-मन्त्र माउ रिद ।

ओगाओग विनिमिर केउउणाण मुणेय' ॥ १८६ ॥

इदानीं गतीन्द्रियसायगुणस्थानेषु मतिश्रुतज्ञानयोग्यज्ञानप्रतिपादनार्थमाह—

जिम्मा भूतकालमें चिन्तन किया है, अथवा जिम्मा भविष्यकालमें चिन्तन होगा, अथवा जो अर्धचिन्तित है इत्यादि अनेक भेदरूप दूसरेके मनमें चिन्त पदार्थको तो जानता है उसे मन पर्ययज्ञान कहते हैं । यह ज्ञान मनुष्यभेदमें ही होता है ॥ १८० ॥

जो जीवद्रव्यके शक्तिगत सर्व ज्ञानके अविभाग प्रतिपेक्षोंके अन्त हो जानेके कारण अपूर्ण है, ज्ञानावरण और धीर्यान्तरय कर्मके भयना नाश हो जानेके कारण जो अप्रतिहत शक्ति है इसलिये समग्र है जो इन्द्रिय और मनकी सहायतासे रहित होनेके कारण केवल है, जो प्रतिपक्षी चार घातिया कर्मोंके नाश हो जानेसे अनुसम रहित सपूर्ण पदार्थोंमें प्रवृत्ति करता है इसलिये असंपन्न है और जो लोक और अलोकमें अज्ञानरूपी अघकारसे रहित होकर प्रकाश मान हो रहा है उसे केवलज्ञान जानना चाहिये ॥ १८६ ॥

अथ गति, इन्द्रिय और कायमार्गणात्तर्गत गुणस्थानोंमें मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके विशेष कथन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

पयायवचन, यथा च सवगवचनपण, इयधीगउभूया'न्यवि'यो सववि । अयव'वधिमयादा, अव'वि मतिवद्ध ज्ञानमवधितानम् । त रा वा १ ९, वा ३ अयव'न्या'च स'न्याव, अय'अवा'वा वस्तु वस्तु धायत परिच्छिपटै'ननलकवि । अथवा अयधिमयादा रूपिचव उ'यु परिच्छ'कटवा मतिवि'वा तदुपलभित ज्ञानमप्यकवि । यद्वा अयधानम्-आमना'धना'वा'ज्ञान-यापातो'वार्थे । न सू प १५

१ गा की ४३८ परकीपमनोगतार्थो मन इदुप्यन ना'वयात्तरय पययथ परिगमन मन पयर । म मि १ ९ मन प्रताय प्रानमधाय वा ज्ञान मन पयय । त रा वा १ ९ वा ४ स मन पयरा ह्वा मनोमाया (मयत वा ') मनगता । परा' स्वमनो वापि तदा'म्भनमायकम् ॥ त भा वा १ ९ ७ परि सवने भाव'अवन'अव । ×× अवन'गमन केदनमिति पयाया परि अव पयव मनमि मनमा वा पयव मन पयव स'न मनोदम्पपरिच्छद इयथ । अथवा मन पयय इति वात्, तत्र पययव पयय मय'न्य प्रयय मनमि प्रवडा'वा पयया मन पयय सवउत्तरपरिच्छद इयथ । ×× अथवा मन पयायज्ञानमिति वात् तत्र मनोमि मनो'न्याय पर्येति सवा'मना परिच्छिनन्ति मन पयाय पयाया भेदा धया वाप्रवर'क'वाचनप्रकाश इयथ तद्गु'नार्थे ॥ सम्म'वि ज्ञान मन पयायज्ञानम् । न सू पृ ६६

२ गा आ ४६० 'वाव'न्यस्य कनि मनुमव'न'नाविभागप्रतिपेक्षानां व्यापिगत'नाम'ज्ञानम् । मा'न्याय की'वाल्ताय'नि'व'व'व'याद'न'वि'द्व'त'ज्ञानि'यु'न'वा' नि'न'वा'य' ममप्र । हा'य'म'हा'य'ने'व'न'वा'र'४३८ । पाउ'व'न'न'व' प्रमया' अयव'न' । की प्र टी

मदि-अण्णाणी सुद-अण्णाणी एहंदिय प्पहुडि जाव सासण
सम्माहट्ठि ति ॥ ११६ ॥

मिध्याष्टे द्वेऽयहाने भरता नाम तत्र मिथ्यात्वादयस्य सत्त्वान् । मिथ्या
त्वादयस्यासत्त्वान्न मामाप्न तयो सत्त्वमिति न, मिथ्यात्वं नाम विपरीतामिनिवेश
स च मिथ्यात्वात्पन्तानुबन्धनश्चापघन । मामाम्ने च मामादनस्यानन्तानुबन्धुदय
इति । कथमेकेन्द्रियाणां धृतत्वमिति चेत्तस्य च न भवति । भोगाभोगाद्यं प्रत्यावर्तनं
सदमावाप्तं गुणार्थारगम इति नैष दोषः, यतो नायमेवान्तामिति गुणार्थारगम एव
धृतमिति । अपि तु अक्षरमप्यादपि लिङ्गान्लिङ्गिज्ञानमपि धृतमिति । जमनमां तदपि
कथमिति चेन्न, मनाज्जनेण उन्स्पतिषु हिताहितप्रवृत्तिनिवृत्त्युपलम्भगोप्तेकान्तात् ।

एकेन्द्रियमेवेकं सामान्यमध्यममपि गुणस्थानमत्र सत्यत्वात् । अत्र धृतावादी जीव
होने है ॥ ११६ ॥

पूरा — मिथ्यादृष्टि आधारे भवे दी दोनों अज्ञान होये क्योंकि, वहाँ पर मिथ्यात्व
कर्मका उदय पाया जाता है । यानु सामान्यम मिथ्यात्वका उदय नहीं पाया जाता है इसलिये
यहाँ पर ये दोनों ज्ञान अज्ञानरूप नहीं होता काटिये ?

समाधान — नहीं क्योंकि, विपरीत अभिनिवेशका मिथ्यात्व कहन है । और वह
मिथ्यात्व और भक्तानुबन्धी इन दोनोंका मिश्रणमे उत्पन्न होता है । सामान्य गुणस्थान
धामके भक्तानुबन्धीका उदय तो पाया है । जाता है इसलिये वहाँ पर साक्षात् अज्ञान सत्त्व है ।

पूरा — एकेन्द्रियोंके अज्ञान, किम हा लक्षणा है ?

प्रतिपक्ष — कम नहीं हो लक्षणा है ?

पूरा — एकेन्द्रियोंके अज्ञान हा प्रत्यक्ष । नारायण नामके साक्ष्य ज्ञान वहाँ हा लक्षणा है
और साक्ष्य ज्ञान तथा सामान्य विषयभूत साक्ष्यका ही कर्म नहीं हा लक्षणा है । इस
लिये उक्त अज्ञान लक्षणा, हा । यह बात स्पष्ट हा जाता है ।

समाधान — यह बात स्पष्ट नहीं है क्योंकि यह बात प्रत्यक्ष नहीं है । यह साक्ष्य
साक्ष्यमे सामान्य प्रत्यक्ष ज्ञान हा । अज्ञान कहन है । यह गुणस्थानमे लक्षणा
ही साक्ष्यका ज्ञान होता है उक्त भी अज्ञान कहन है ।

पूरा — अज्ञानहा ज्ञान के लक्ष्य अज्ञान न भी कर्म लक्ष्य है ।

समाधान — नहीं क्योंकि अज्ञान लक्ष्य लक्ष्य लक्ष्यका अज्ञान हा । अज्ञान लक्ष्य
भाइलम । अज्ञान लक्ष्य जाता है लक्ष्य अज्ञानहा ज्ञान हा । अज्ञान लक्ष्य लक्ष्य लक्ष्य
काम हा भी भाता है ।

विभङ्गज्ञानान्नानप्रतिपादनार्थमाह —

विभगणाण सण्णि मिञ्जहट्ठीणं वा सासणसम्माड्ढी
वा ॥ ११७ ॥

विकलेन्द्रियाणां किमिति तत्र भवतीति चेन्न, तत्र तन्निम्नप्रत्यययोगमाभावात्
तोऽपि तत्र किमिति न भवतितीति चेन्न, तद्वेतुभयगुणानामभावात् ।

विभङ्गज्ञाने भयप्रत्यये मति पर्याप्तापर्याप्तताप्रत्ययोगेति तस्य मत्त व्याप्त्ये
शङ्कितशिष्याशङ्कापोहनार्थमाह —

पज्जत्ताणं अत्थि, अपज्जत्ताणं नत्थि ॥ ११८ ॥

अथ स्याद्यदि देवनारकाणां विभङ्गज्ञानं भयनिवन्धनं भवेदप्याप्तकालेऽपि त
भवितव्यं तद्वेतोर्भयस्य सत्तादिति न, 'सामान्यप्रोद्यनाश्च विनैपेप्पसतिष्ठन्ते' *

विभगज्ञानके विशेष प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

विभगज्ञान सभी मिथ्यादृष्टि जीवोंके तथा सासादनसम्पददृष्टि जीवोंके होता है ॥ ११७ ॥

शङ्का — विकलेन्द्रिय जीवोंके यह क्यों नही होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहाँ पर विभगज्ञानका कारणभूत क्षयोपशम नहीं पा
जाता है ।

शङ्का—यह क्षयोपशम भी विकलेन्द्रियोंमें क्यों समझ नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अजिज्ञानावरणका क्षयोपशम भयप्रत्यय और गुणप्रत्यय
होता है । परन्तु विकलेन्द्रियोंमें ये दोनों प्रकारके रागण नही पाये जाते हैं, इसलिये उनमें
विभगज्ञान समझ नहीं है ।

विभगज्ञानको भयप्रत्यय मान लेने पर पर्याप्त और अपर्याप्त इन दोनों अत्रस्थायी
उसका सद्भाव पाया जाना चाहिये इसप्रकार आशंकाको प्राप्त शिष्यके सदेहके दूर करनेके
लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

विभगज्ञान पर्याप्तकोंके ही होता है, अपर्याप्तकोंके नहीं होता है ॥ ११८ ॥

शङ्का—यदि देव और नारकियोंके विभगज्ञान भयप्रत्यय होता है तो अपर्याप्तकालमें
भी यह हो सकता है, क्योंकि, अपर्याप्तकालमें भी विभगज्ञानके कारणरूप भयकी सत्ता पा
जाती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि 'सामान्य विषयका बोध करानेवाले पाक्य विशेषोंमें रा

* ज्ञानावच्छेदकं भयज्ञानं भयज्ञानावच्छेदकं भयज्ञानं प्रपञ्चान् । सासादनसम्पदविभाति । उ वि १ ८

न्यायात् नापयाप्तिरिति देवनातक्य विभक्तित्वेन नपि तु पर्याप्तिरिति मिति ।
ततो नापयाप्यतात् तदस्मानि मिदम् ।

इतानि मध्यमिभ्यामप्यारण्येन प्रतिपादनाधमाह —

मम्मामिच्छाद्विद्वान्नेति वि णाणाणि अण्णाणेण
मिस्माणि । आभिनिबोधिण्याण मदि-अण्णाणेण मिस्सयं सुदणाण
सुद-अण्णाणेण मिस्सय ओहिणाण विभगणाणेण मिस्सय । तिणि
वि णाणाणि अण्णाणेण मिस्साणि वा इदि ॥ ११३ ॥

अग्रकथननिर्देशात् किमिति प्रियत इति चत् कथं न कियते, यतस्तीक्ष्ण-
ज्ञानानि ततो नैवतरुणं घटत इति न, अज्ञाननिराधनमिध्यातृशरीकरतयोऽज्ञानस्याप्येकवा-
विराधात् । यथाधधद्वानुविद्वानगमो ज्ञानम्, अयथार्थधद्वानुविद्वानगमोऽज्ञानम् । एव
य मति ज्ञानाज्ञानयोर्भिन्नयोराधिरूपयोर्न मिश्रणं घटत इति चैतत्त्वमेतदित्येवम् ।
किंच यत्र मध्यमिभ्यामप्यारण्येन मा ग्रही यत्र मध्यमिभ्यामप्यारण्येन नाम कर्म न तमिध्यातृ

कथनं है ' इह मया एकं अनुसारं अवधानं अवस्थासे युक्तं देव और नारक पर्याय विभगज्ञानका
कारण नहीं है । किन्तु यथाज्ञान अवस्थासे युक्त ही देव और नारक पर्याय विभगज्ञानका कारण
है, इसलिये अवधान का कार्य विभगज्ञान नहीं होता है यह बात सिद्ध हो जाती है ।

अब स्वयमिध्यातृविद्वान्नेति गुणस्थानमं ज्ञानके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सम्यग्मिध्यातृविद्वान्नेति गुणस्थानमं आदिने तानों है। ज्ञान अज्ञानसे मिश्रित होते है ।
आभिनिबोधिब्रह्म ज्ञान अज्ञानसे मिश्रित होता है । भूतज्ञान भूतज्ञानसे मिश्रित होता है । मयधि
ज्ञान विभगज्ञानसे मिश्रित होता है । अथवा तानों ही अज्ञान ज्ञानसे मिश्रित होते है ॥ ११३ ॥

पारा—पञ्चम अज्ञान पदका एकपक्षन निर्देश क्यों किया है ?

प्रतिपत्ति—एकपक्षन निर्देश क्यों नहीं करना चाहिये ?

पारा—क्योंकि अज्ञान तीन है, इसलिये उनका बहुवचनरूपसे प्रधान बन जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अज्ञानका कारण मिथ्यात्व एक होनेसे अज्ञानको भी एक
मान देनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

पारा—यथार्थ अज्ञानसे अनुविद्य अवगमको ज्ञान कथन है और अयथार्थ अज्ञानसे
अनुविद्य अवगमका अज्ञान कहते हैं । ऐसी दालतमें मिथि भिन्न जायेंगे आधारमे रहनेपादे
ज्ञान और अज्ञानका मिश्रण कहा बन सकता है ?

समाधान—यह कहना सत्य है, क्योंकि, इस यही सत्य है । किन्तु यहा सम्यग्मिध्या-
तृविद्वान्नेति गुणस्थानमं यह अर्थ ग्रहण नहीं करना चाहिये, क्योंकि, सम्यग्मिध्यातृत्व कम मिथ्यात्व

तस्मादनन्तगुणहीनप्रकेतस्य विपरीताभिनिवेशोत्पादमामर्शभावात् । नापि सम्यक्त्व
तस्मादनन्तगुणप्रकेतस्य यथार्थश्रद्धया साहचर्याविशेषान् । ततो नाप्यन्तरात् सम्य
गभिध्यात्वं जात्यन्तरीभूतपरिणामम्यात्पादम् । ततस्तदुक्त्यनन्तरपरिणामममेतयोरा न
ज्ञान यथार्थश्रद्धयाननुविद्धत्वात् । नाप्यज्ञानमयथार्थश्रद्धयाऽमङ्गलत्वात् । तन्मन्त्रज्ञान
सम्यगभिध्यात्परिणामरज्जायन्तरापन्नमित्येकमपि मिश्रमिष्टुयत । यथायथ प्रतिमा
सितार्थप्रत्ययानुविद्धावगमो ज्ञानम् । यथायथमप्रतिमामितार्थप्रत्ययानुविद्धावगमोऽज्ञानम् ।
जात्यन्तरीभूतप्रत्ययानुविद्धावगमो जायन्तर ज्ञानम्, तत्र मिश्रज्ञानमिति गद्वान्
विदो व्याचक्षते ।

साम्प्रत जानाना गुणस्थानाज्ञानप्रतिपादनार्थमाह —

आभिनिबोहियणाण सुदणाण ओहिणाणमसजदसम्मादि
प्पहुडि जाव खीणकसाय वीदराग-उदुमत्था त्ति ॥ १२० ॥

तो हो नहीं सकता, क्योंकि, उससे अनन्तगुणी हीन शक्ति-गले सम्यग्भिध्यात्वं विपरीता
भिनिवेशको उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य नहीं पाई जाती है । और न यह सम्यक्प्रवृत्तिरूप ही
है, क्योंकि, उससे अनन्तगुणी अधिक शक्ति-गले उमका (सम्यग्भिध्यात्का) यथार्थ श्रद्धाके
साथ साहचर्यसम्बन्धका निरोध है । इसलिये जात्यन्तर होनेसे सम्यग्भिध्यात् जात्यन्तररूप
परिणामोंका ही उत्पादक है । अतः उसके उद्भवे उत्पन्न हुए परिणामोंमें युक्त ज्ञान 'ज्ञान'
इस संज्ञाको तो प्राप्त हो नहीं सकता है, क्योंकि, उस ज्ञानमें यथार्थ श्रद्धाका अन्वय नहीं
पाया जाता है । और उसे अज्ञान भी नहीं कह सकते हैं, क्योंकि, यह जययार्थ श्रद्धाके साथ
सम्पर्क नहीं रखता है । इसलिये यह ज्ञान सम्यग्भिध्यात्परिणामकी तरह जात्यन्तररूप
अवस्थाको प्राप्त है । अतः एक होने हुए भी मिश्र कहा जाता है ।

यथावस्थित प्रतिभासित हुए पदार्थके निमित्तसे उत्पन्न हुए तत्सम्बन्धी बोधको ज्ञान
कहते हैं । न्यूनता आदि दोषोंसे युक्त यथावस्थित अप्रतिभासित हुए पदार्थके निमित्तसे
उत्पन्न हुए तत्सम्बन्धी बोधको अज्ञान कहते हैं । और जात्यन्तररूप कारणसे उत्पन्न हुए
तत्सम्बन्धी ज्ञानको जात्यन्तर ज्ञान कहते हैं । इसीका नाम मिश्रज्ञान ॥ ऐसा सिद्धांतकी
जाननेवाले विद्वान् पुरुष ध्यास्यान करते हैं ।

अब ज्ञानोंका गुणस्थानोंमें विशेष प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान ये तीनों असयनसम्यग्दर्शने लेकर
धीनकपाय धीतराग छद्मस्थ गुणस्थाननक होते हैं ॥ १२० ॥

१ आभिनिबोधिकश्रुतावधिज्ञानानु अनन्तसम्यग्दर्शनादनि क्षाणकपायान्त्वानि सन्ति । स नि १८

भवतु नाम देवनारकासयतमस्यगृष्टिष्वधिगानस्य मत्त तस्य तद्भवनिबन्धनत्वात् । देशविरताद्युपरितनानामपि भवतु तत्तत्तत्र तन्निमित्तगुणस्य तत्र मत्तान्, न तिर्यक्ष्मनुत्पासयतमस्यगृष्टिषु तस्य मत्त तन्निबन्धनभवगुणान तन्नामशान्ति चेन्न, अवधिज्ञाननिबन्धनस्यमत्तगुणस्य तत्र मत्तान् । मत्तमस्यगृष्टिषु तन्नुत्पत्त्यन्यधानुपपत्तेर्नारधिगान सम्यग्दर्शननिबन्धनमिति चेत्तस्मिन्मतेषु तदुत्पत्त्यन्यधानुपपत्तेरवधिज्ञान सयमहेतुमपि न भवतीति किञ्च भवतु । विगिष्ट मयमत्तद्वतुरिति न मत्तमयता नामवधिर्भवतीति चदत्रापि विगिष्टमस्यक्तर तद्वतुरिति न मत्तमत्तद्वतुरिति को विरोधः स्यात् ? औपगमिन्ध्यायिन्ध्यायोपशमिन्ध्याभेदभेदेषु त्रिष्वपि सम्यक्तरिगप्यवधिज्ञानात्पनेर्ष्यभिचारदर्शनात् तद्विज्ञपनिबन्धनमपीति चतुर्विधापि मामायेर अत्राप्यभापन

श्रीश्री—देव भार नारकात्मबन्धी भवयतमस्यगृष्टि जायंम अवधिज्ञानका सद्भाव भले ही रहा भावे, क्योंकि, उनके अवधिज्ञान भवनिमित्तक होता है । उन्निबन्धन इत्यादिनाम आदि ऊपरके गुणस्थानोंमें भी अवधिज्ञान रहा भावे क्योंकि, अवधिज्ञानकी उत्पत्ति कारण भूत गुणोंका यहा पर सद्भाव पाया जाता है । परन्तु अवयवमस्यगृष्टि तिर्यक्ष भार मनुष्योंमें उसका सद्भाव नहीं पाया जा सकता है, क्योंकि, अवधिज्ञानका उत्पत्ति के कारण भव भार गुण अवयवमस्यगृष्टि तिर्यक्ष भार मनुष्योंमें नहीं पाये जाते हैं ?

समाधान—हाँ क्योंकि, अवधिज्ञानकी उत्पत्ति के कारणरूप सत्यगृहणका अवयव मस्यगृष्टि तिर्यक्ष भार मनुष्योंमें सद्भाव पाया जाता है ।

श्रीश्री—यदि संपूर्ण सत्यगृष्टियोंमें अवधिज्ञानका अनुत्पत्ति अवयवका नहीं स्वयम्, है, इससे मालूम पड़ता है कि सत्यगृहण अवधिज्ञानकी उत्पत्ति का कारण नहीं है ?

समाधान—यदि ऐसा है तो संपूर्ण सत्यगृहणोंमें अवधिज्ञानकी अनुत्पत्ति अवयवका नहीं स्वयम् है, इसलिये स्वयम् भी अवधिज्ञानका कारण नहीं है, ऐसा क्यों मान लिया जाय ?

श्रीश्री—यदि सत्यगृहण अवधिज्ञानका उत्पत्ति का कारण है इसलिये स्वयम् स्वयंतोंके अवधिज्ञान नहीं होता है किन्तु कुछे ही होता है ?

समाधान—यदि ऐसा है तो यहाँ पर भी ऐसा ही मान लें कि अवयव सत्यगृष्टि तिर्यक्ष भार मनुष्योंमें भी यदि सत्यगृहण अवधिज्ञानकी उत्पत्ति का कारण है । इसलिये सभी सत्यगृष्टि तिर्यक्ष भार मनुष्योंमें अवधिज्ञान नहीं होता है किन्तु कुछे ही होता है, ऐसा मान लेनेमें क्या पिराध आता है ?

श्रीश्री—औपगमिक सायिक और सायोपगमिक इन नामों का प्रत्येकके विचार सत्यगृहणोंमें अवधिज्ञानका उत्पत्तिमें व्यवहार हुआ जाता है । इसलिये सत्यगृहणोंमें अवधिज्ञानका उत्पत्ति का कारण है यह नहीं कहा जा सकता है ?

समाधान—यदि ऐसा है तो स्वयम् भी सामायिक ऐश्वर्यरूपाना, परिहायिक

परिहार मूक्षमसाम्पराय यथाग्यात-भेदभिन्नं पञ्चभिरपि सयमै देप्रविरत्या च तस्य
व्यभिचारदर्शनान्नाप्रधिज्ञान मयमप्रिप्रेषनिन्धनमपीति ममानमेतन् । अस्यातलोक
मात्रमयमपरिणामेषु केचिद्विशिष्टा परिणामान्तद्वेतन इति नाप दोषश्चेत्तर्हि सम्पत्त्यन
परिणामेष्वप्यस्येत्यलोकपरिणामेषु केचिद्विशिष्टा सम्यक्त्वपरिणामा महकारिकाग्न
व्यपेक्षान्तद्वेतन इति स्थितम् ।

मन पर्ययज्ञानस्वामिप्रतिपादनार्थमाह —

मणपज्जवणाणी पमत्तसंजद-प्पहुडि जाव सीणकसाय-चीदराग
छदुमत्था ति ॥ १२१ ॥

पर्यायपर्यायिणोर्भेदपेक्षया मन पर्ययज्ञानसौत्र मन पर्ययज्ञानविषयदेव । दय
विरताद्यध्वन्तगुणभूमिस्थिताना किमिति मन पर्ययज्ञान न भवेदिति चेन्न, मयमा
मयमामयमत उत्पत्तिरिरोपान् । मयममात्रशरणे सर्वसयताना स्मि तद्व्यति

मूक्षमसांपराय भौर यथाग्यात इन पात्र प्रकाशके विशेष मयमोके साय भौर देशविराजिते साय
मी अयधिज्ञानकी उत्पत्तिश्च व्यभिचार देना जाता है, इसलिये अयधिज्ञानकी उत्पत्ति सयम
विशेषके निमित्तमे होनी है यह भी तो नहीं कह सकते हैं, क्योंकि, सम्यक्त्वा और सयम
इन दोनोंको अयधिज्ञानकी उत्पत्तिमें निमित्त मानने पर आक्षेप और परिहार समान है ।

पुनः—अयस्यान लोकप्रमाण सयमरूप परिणामोंमें कितने ही विशेष जातिक
परिणाम अयधिज्ञानकी उत्पत्तिके कारण होने हैं, इसलिये पूर्वोक्त दोष नहीं आता है ।

समाधान—यदि ऐसा है तो अयस्यान लोकप्रमाण सयमस्वीनरूप परिणामोंमें दूसरे
महकारी कारणोंकी अपेक्षामें युक्त होने हुए कितने ही विशेष जातिके सयमरूपपरिणाम
अयधिज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण हो जाते हैं यह बात निमित्त हो जाती है ।

अथ मन पर्ययज्ञानके व्यापक प्रतिपादन करनेके लिये अनेक सूत्र कहने हैं—

मन पर्ययज्ञानी औच प्रमत्तमयनम लेक्ख सीणकसाय चीनराग छद्वस्य गुणस्यानयव
होने है ॥ १२२ ॥

पर्याय और यथायामें अयकी अपेक्षामें मन पर्ययज्ञानकी ही मन पर्ययज्ञानीरूप
उल्लेख किया है ।

पुनः—यथाविधि आदि जीवके गुणस्यानवर्णों आयोके मनापर्ययज्ञान क्यों
नहीं होता है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि, मयमासयम और अयमयम साय मनापर्ययज्ञानकी
उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है ।

वदमीप्ययदि सयम एव नदुत्पत्ते कारणतामगमिष्यत् । अप्यन्यत्रपि तु तदुत्पत्तिं तद्वैकल्यात् मर्यादयानां नदुत्पद्यत । वक्ष्ये तदेतत् इति चादिप्रतिष्ठय-
प्रसालादय ।

कैवलजानाधिपतिगुणभूमिप्रतिपादनार्थमाह—

कैवल्यगणो तिसु द्वाणेषु मजोगिकैवल्यो अजोगिकैवल्यो सिद्धा
दि ॥ १२२ ॥

अथ स्थापनाह त्रैलोक्यमस्ति तत्र नास्तिन्द्रियावरणभूषापापमज्जनमनग
द्यात्, न, प्रमीणममलावरण मगदत्यर्हति ज्ञानावरणतपोपापमाशास्यपापं
नसोऽभ्यस्यात् । न बीषोन्निरायक्षपापापमज्जनमनगदशानि ब्रह्मण तमप्यथ प्रधाप

शुद्धा—यदि सयममात्र मन पर्यवज्ञानकः उत्पत्तिः कारण है ना सयमन सयमिषोक्त
न पर्यवज्ञान क्यों नहीं होता है ?

समाधान—यदि केवल सयम है मन पर्यवज्ञानकः उत्पत्तिः कारण होता है तब
होता । किन्तु अथ भा मन पर्यवज्ञानकः उत्पत्तिः कारण है इसीलिये तब कृत्य है नुभूत
रहनेसे समस्त स्वयंके मन पर्यवज्ञान उत्पत्ति नहीं होता है ।

शुद्धा—ये दूसरे बीषमे कारण हैं ?

समाधान—विशेष आत्मिके दृश्य क्षेत्र भाद बालादि अथ कारण हैं । जिनके बिना
भा स्वयमिषोक्त मन पर्यवज्ञान उत्पत्ति नहीं होता है ।

अथ केवलज्ञानके स्वयमके गुणवर्धान कालान्तरे लिये शब्द कहत है—

केवलज्ञानी जीव स्वयमिषोक्तः अपाणिहवर्त्तते अथ तस्य इति भाद तस्यैव
न है ॥ १२३ ॥

पञ्चा भादहन परमेश्वर केवलज्ञान नहीं है केवलक यह वह नहीं पापवचन
मह शेषापापमन उत्पत्ति हय मनका सञ्ज्ञाव पाणि आता है

समाधान—नहीं क्योंकि ज्ञानक सगुण भाववर्त्तकम ज्ञानक ज्ञान ही तब ही तब
है तब परमेश्वर ज्ञानावरणकमका शेषापापम नहीं पाप आता है इसीलिये अद्वैत
परम मन भी उत्पत्ति नहीं पाप आता है परमेश्वर ही तब सयम कमक अद्वैत
पत्ति हय ज्ञानक अपाणिह अ यह पर मनका सञ्ज्ञाव मह वह है सयम है वह है
नक बीषोन्निराय कमका तब पाप आता है तब ज्ञानक केवलज्ञान कमक अद्वैत
पत्ति हय ज्ञानक सञ्ज्ञाव मानमम शेषाव आता है

रीर्यान्तरायस्य रीर्यान्तरायजनितशक्त्यन्तित्वापेक्षान् । अथ पुन मयाग
इति चेन्न, प्रथमचतुर्थभापोत्पत्तिनिमित्तात्मप्रदेशपरिस्पन्दस्य मन्त्रापेक्षया तस्य
मयोगत्यापेक्षात् । तत्र मनोऽभावे तत्कार्यस्य उच्यतेऽपि न सत्त्वमिति चेन्न, तस्य
ज्ञानकार्यत्वात् । अक्रमवानात्कथं क्रमयता उच्यतेऽपि न सत्त्वमिति चेन्न, घटनिपयान्न
नानममनेतदुम्भकाराद्वदस्य क्रमेणोत्पत्त्युपलम्भात् । मनोयोगाभावे मन्त्रेण सह विरोध
स्यादिति चेन्न, मनःकार्यप्रथमचतुर्थमचमो सत्त्वापेक्षयोपचारेण तत्त्वोपदेशात् ।
जीवप्रदेशपरिस्पन्दहेतुनोक्तमनोजनितशक्त्यन्तित्वापेक्षया न तत्त्वान्न विरोध' ।

मयममार्गणाप्रतिपादनार्थमाह —

सजमाणुवादेण अत्यि सजदा सामाहय-छेदोवद्वान्ण सुद्धि
सजदा परिहार सुद्धि-सजदा सुहुम सांपराहय-सुद्धि संजदा जहाकत्वाद
विहार सुद्धि संजदा संजदासजदा असंजदा चेदि ॥ १२३ ॥

शरा—किं अरिहन् परमेष्ठिंको मयोगी केसे माना जाय ?

ममाधान—नहीं, क्योंकि, प्रथम (सत्य) और चतुर्थ (अनुभव) भाषाकी उत्पत्तिके
निमित्तभूत आत्मप्रदेशोंका परिस्पन्द यहा पर पाया जाता है, इसलिये इन मयोभावे अरिहन्
परमेष्ठिंको मयोगी होनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

शरा—अरिहन् परमेष्ठिंमें मनका अभाव होने पर मनके कार्यरूप घटनका सद्भाव
भी नहीं पाया जा सकता है ?

ममाधान—नहीं, क्योंकि घटन ज्ञानके कार्य है, मनके नहीं ।

शरा—अप्रम ज्ञानमें प्रमिक घटनोंकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है ?

ममाधान—नहीं, क्योंकि, घटविषयक अप्रम ज्ञानमें युक्त कुम्भकारद्वारा प्रम
घटकी उत्पत्ति देखी जाती है । इसलिये अप्रमयनी ज्ञानमें प्रमिक घटनोंकी उत्पत्ति ज्ञान
रूपमें कोई विरोध नहीं आता है ।

शरा—मयोगिकेवर्गके मनोयोगका अभाव मानने पर ' सत्त्वमज्जागो अगद्यमान
मज्जागो मल्लिमिच्छाद्विगदुचि जाय मज्जागिकेवर्ग नि ' इस श्रुतिमें मन्त्रके साथ विरोध
भी जायगा ?

ममाधान—नहीं, क्योंकि, मनक कार्यरूप प्रथम और चतुर्थ भाषाके सद्भावकी अपेक्षा
उपचारात् मनक सद्भाव मान लेनेमें कोई विरोध नहीं आता है । अथवा, जीवप्रदेशोंक पर
स्पन्दक कारणरूप मनोवर्णनात्मक जाग्रतमें जगत्तुल्य शक्ति प्रमित्यकी अपेक्षा मयोभा
वर्गमें मनका सद्भाव पाया जाता है ऐसा मान लेनेमें भी कोई विरोध नहीं आता है ।

अथ मयममार्गणात् प्रतिपादन करनेके लिये श्रुत कहने है—

मयममार्गणात् अनुवादेने सामाविकर्तृविरूपेण, छेदावस्थापनाशक्तिविरूपेण वाह्या

अगुणम वेतो जीवो उरसामगो व खवथा य ।
 सो सुहृम-मंगलओ नहस्य देण्यओ नि नि' ॥ १०० ॥
 उरमने एोगे वा असुह वम्महि मोडणं यहि ।
 रुमथो व विणा य नहस्यारो मारो मो न ॥ १०१ ॥
 पय ति चउ नहदि यगु गुण सिक्का वण्हि सजुत्ता ।
 पुचति देम-रिया सम्पाड्डी नारिय वम्म' ॥ १०२ ॥
 मण वव सामा य पासह सविच राभते य ।
 म्मारम परिमाह अणुमण-उरिह देस रि' ॥ १०३ ॥
 जाया भाइस भेया इदिय निमया तहहसि स तु ।
 न तमु जव विरदा अमज्जा ने मुण्ये वा ॥ १०४ ॥

बादे उपसमधेनीका आरोहण करनेवाला हो मधया क्षपकधेनीका आरोहण करने वाला हो, परन्तु जो जीव स्वक स्तोमका अनुभव करता है उसे सहस्रसायस गुणि संपन्न कहने है । यह स्वयं यथावधान मधममे कुछ कम समयको धारण करनेवाला होता है ॥ १०० ॥

अगुम मोहनीय कर्मके उपजात मधया क्षय हो जाने परग्यारहवें, बारहवें गुणस्थान यर्वां रुमस्थ और लेह्यव्यं मोहवें गुणस्थानयर्वां जिन यथावधान गुणि संपन्न होते हैं ॥ १०१ ॥

जो पात्र अणुमन, तीन गुणमत्त और चार शिक्षामत्तोंसे सयुक्त होने हुए मन्थ्याल गुणि वसनिर्गता करते हैं वेसे मग्गहदि जीव देवविरत्त कहे जाते हैं ॥ १०२ ॥

दशनिव प्रतिक सामाविकी, प्रोवभोषजामी, सविसविरत्त, रविभुनविरत्त, ममवारी, भारमविरत्त परिमहविरत्त, अनुमनिविरत्त और उदिणविरत्त ये देवविरत्तके ग्यारह भेद हैं ॥ १०३ ॥

आयसमान चौदह प्रकारके होते हैं अर इदिय तथा मनके विषय अहर्मास प्रकारके होते हैं । जो जीव इनसे विरत्त मर्त्त हैं उह मन्थन जानना चाहिये ॥ १०४ ॥

पञ्च विपय ममागो ॥ ३ ॥ परिसिद्धा उम्मागे अणपरिणामाणि उम्मागा । कण्डिओ ११ उम्मासे तेण अणाय उ माग ॥ ३९६ ॥ गगह उहि मावेदि भवे १ । य मक्खे त । तया य अ य मक्खार पड्डनि अणुपि मारया ॥ ३९८ ॥ गगह उह मावेदि जि वग य मक्खे त । बह्व कण्डिओ प अ परिसा उमावि ॥ ३९९ ॥ अणुवह्मि मावेदि वग रणि ममावता । मग्गवणा म उ माया उ अणुवा ॥ ४ ॥ ३ ६ उ (मभि रा वा परिसाविहसि)

१ गा जी ४०४

२ गा जी ४०५

३ गा जी ४०६

४ गायक पूर्वमर्त्त ३४ गायकन जयता ।

५ गा जी ४०८

मयताना गुणस्थानाना मयानिरूपणार्थमाह—

सजदा पमत्तसंजद प्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ॥१२४॥

अथ स्याद् बुद्धिपूर्विका सावधिरिति मयम, अन्यथा काष्ठादिष्वपि मयम प्रसङ्गात् । न च केवलीषु तथाभूता निश्चितिर्गतिरिति तन्मयत्वं मयमो दुर्घट इति नो दोषः, अघातिचतुष्टयमिनापेक्षया समथ प्रत्यमय्यातमुग्रेणि कर्मनिर्गमेनया न सकन पापक्रियानिरोधलक्षणपारिणामिकगुणानिमित्तापेक्षया न, तत्र मयमोपचारात् । अथवा प्रवृत्त्यभावापेक्षया मुख्यमयमोऽस्ति । न काष्ठेन व्यभिचारस्तत्र प्रवृत्त्यभावात् तस्तनिश्चयनुपपत्तेः । गुणममन्यत् ।

द्रव्यपर्यायाधिकनयद्वयनिर्गमनमयमगुणप्रतिपादनार्थमाह—

सामाह्य ँछेदोवट्टावण-सुद्धि-संजदा पमत्तसंजद-प्पहुडि जाव अणियाट्टि ति ॥ १२५ ॥

अथ सयतामं गुणस्थानांकी मय्यावे निष्पण करनेके लिये सूत्र कहत है—

मयम जीव प्रमत्तमयमने केव अजोगिकेवली गुणस्थाननक होने है ॥ १२४ ॥

श्रुति— बुद्धिपूर्वक सावधयोगके त्यागको मयम कहना तो ठीक है । यदि ऐसा माना जाय तो काष्ठ भादिमें भी मयमका प्रसंग भाजायगा । किन्तु केवलमें बुद्धिपूर्वक सावध योगकी निवृत्ति तो पार्श्व नहीं जाती है इसलिये उनमें मयमका होना दुर्घट ही है ।

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, चार अघातिवा कर्मोंक विनाश करनेकी अथवा और समथ समयम अभवस्थानगुणी श्रेणीरूपसे कर्मनिर्गम करनेकी अथवा संपूर्ण पापक्रियाके निरोधव्यय रूप पारिणामिक गुण प्रगट हो जाता है, इसलिये हम सोचते हैं यहाँ मयमका उपपन्न किया जाता है । भन यहाँ पर मयमका होना दुर्घट नहीं है । अथवा प्रवृत्तिके अभावाकी अथवा यहाँ पर मुख्य मयम है । इसप्रकार जिनके हमें प्रवृत्त्यभावासे मुख्य मयम की निश्चि करने पर काष्ठमे व्यभिचार दोष भी नहीं भाता है, क्योंकि काष्ठमें प्रवृत्ति नहीं पाई जाती है, तब उसकी निवृत्ति भी नहीं बन सकता है । शाय कथन मुगम है ।

अथ द्रव्याधिक और पयायाधिक इन दोनो अर्थोंक निमित्तमे माने गये मयमक गुणस्थान प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहने है ।

सामाधिक और छेदोवट्टावणारूप अर्थका प्रमत्त मयम जीव प्रमत्तमयमने केव अजोगिकेवली गुणस्थाननक होत है ॥ १२५ ॥

१. मयमने मयम प्रमत्त मयम जीव प्रमत्त मयमने केव अजोगिकेवली गुणस्थाननक होत है ॥ १२४ ॥

२. मयमने मयम प्रमत्त मयमने केव अजोगिकेवली गुणस्थाननक होत है ॥ १२५ ॥

गुणमत्तादय न किञ्चिद्वक्तव्यमस्ति ।

द्वितीयमयमस्याध्वाननिरूपणार्थमाह—

परिहार-सुद्धि-सज्जदा दोषु दृष्टाण्यसु पमत्तसज्जददृष्टाणे अप्यमत्त
सज्जद-दृष्टाणे ॥ १२६ ॥

उपरिष्टादित्येत्ययं सयमो न भवेदिति चेन्न, ध्यानामृतमागमरान्तनिमग्नत्वेना
वारयमानासुपमद्वतगमनागमनास्त्रियव्यापाराणां परिहारास्तुपपत्तेः । प्रवृत्तं परिहरति
नाप्रवृत्तस्ततो नोपरिष्टात्तसयमोऽस्ति । परिहारगुद्धिमपत्तं त्रिम्बक्यम उत पचयम
इति ? किंवातो यद्येकयमं सामायिकञ्चतर्भवति । अथ यदि पचयमं छेदोपस्थापनेऽ
न्तर्भवति ? न च सयममादधानस्य पुरुषस्य त्रयपयोपाधिकाम्या व्यवतिरिक्तस्यास्ति
गम्भिरस्ततो न परिहारमयमोऽस्तीति न, परिहारद्वयतिष्ठपोत्वस्यपेक्षया ताभ्यामस्य
कथञ्चिद्वेदान् । तदुपापरित्यागमेव परिहारद्विपयायेण परिणतत्वान्न ताभ्यामन्योऽयं

इस सूत्रका अर्थ सुगम होनस्य यहा कुछ विशेष कहने योग्य नहीं है ।

अब दूसरे सयमक गुणस्थानोंके निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

परिहार-गुद्धि सयत प्रमत्त और अभ्यस्त इन दो गुणस्थानोंमें होने है ॥ १२६ ॥

शंका—ऊपरके भाठयें आदि गुणस्थानोंमें यह सयम क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जिनकी आत्माय ध्यानरूपी भक्तिके सागरमें निमग्न है,
ओ घबल-यम (मान) का पालन करत है और जिन्होंने जानेकर सपूर्ण शरीरसम्बन्धी
व्यापार सङ्कुचित कर लिया है वेने जीवोंक गुमानुभ विचारोंका परिहार बन ही नहीं सकता
है । क्योंकि, गमनागमन आदि विचारोंमें प्रवृत्ति करनेवाला ही परिहार कर सकता है,
प्रवृत्ति नहीं करनेवाला नहीं । इसलिये ऊपरके भाठयें आदि ध्यान अवस्थाको प्राप्त गुणस्थानोंमें
परिहार-गुद्धि सयम नहीं बन सकता है ।

शंका—परिहार-गुद्धि-सयम क्या एक यमरूप है या पांच यमरूप ? इनमेंसे यदि
एक यमरूप है तो उसका सामायिकमें अन्तर्भाव होना चाहिये और यदि पांच यमरूप हैं
तो छेदोपस्थापनामें अन्तर्भाव हो जाना चाहिये । संयमकी धारण करकेवाले पुरुषक द्रव्याधिष्ठ
और पर्यायाधिष्ठ नपकी अवस्था इन दोनों सयमोंमें भिन्न मौसरे संयमकी स्थापना तो है नहीं
इसलिये परिहार-गुद्धि सयम महा बन सकता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि परिहार क्रूररूप अनिगम्य । उत्पत्तिकी अपस्त सामायिक
आर छेदोपस्थापनासे परिहार-गुद्धि सयमका कथेविन् भेद है ।

शंका—सामायिक आर छेदोपस्थापनारूप अवस्थाका याग न करत हुए ही परिहार
क्रूररूप पर्यायसे यह जीव परिणत होता है इसलिये सामायिक आर छेदोपस्थापनासे भिन्न

मयम इति चेन्न, प्राग्विद्यमानपरिहारवृत्त्यपेक्षया ताम्यामन्य भेदात् । ततः स्थितम् ताभ्यामन्य परिहारमयम इति । परिहारद्वेरुपरिष्ठादपि सत्त्वात्ताम्यास्तु सत्त्वमिति चेन्न, तत्कार्यस्य परिहरणलभ्यणस्यामयतस्तत् तदभावात् ।

तृतीयमयमस्याध्यानप्रतिपादनार्थमाह—

सुहुम-सांपराइय सुद्धि-सजदा एक्कम्मि चैव सुहुम-सांपराइय
सुद्धि-संजद-ट्ठाणे ॥ १२७ ॥

सूक्ष्मसाम्पराय किमु एकरूपम उत पञ्चयम इति ? किं चातो यदेकरूपम पञ्चयमाय मुक्तिरूपमभ्येष्टारोहण वा सूक्ष्मसाम्परायगुणप्राप्तिमन्तरेण तदुभयमाभावात् । अथ पञ्चयम एकयमाना प्रोक्तदोषा ममादाकृते । अधोमययम. एकरूपमपञ्चयमभेदेन सूक्ष्मसाम्परा

यह सयम नहीं हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पहले अविद्यमान परतु पाछेने उत्पन्न हुई परिहार श्रद्धिकी अपेक्षा उन दोनों सयमोंसे इसका भेद है, अतः यह बात निश्चित हो जाती है कि सामायिक और छेदोपस्थापनासे परिहार शुद्धि-सयम भिन्न ही है ।

शुद्धा—परिहार श्रद्धिकी आगेके आठवें आदि गुणस्थानोंमें भी सत्ता पाई जाती है, अतएव वहा पर इस सयमका सङ्गात्र मान लेना चाहिये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यद्यपि आठवें आदि गुणस्थानोंमें परिहार श्रद्धि पाई जाता है परतु वहा पर परिहार करनेरूप उक्तका कार्य नहीं पाया जाता है, इसलिये आठवें आदि गुणस्थानोंमें परिहार शुद्धि सयमका अभाव कहा गया है ।

अब तीसरे सयमके गुणस्थानका निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

सूक्ष्मसाम्पराय शुद्धि सयत जीय एक्कम्मि सूक्ष्मसाम्पराय शुद्धि-सयत गुणस्थानम् ही
होते है ॥ १२७ ॥

शुद्धा—सूक्ष्मसाम्परायसयम क्या एक यमरूप है अथवा पात्र यमरूप ? इसमेंसे यदि एक यमरूप है तो पञ्चयमरूप छेदोपस्थापनासंयममे मुक्ति अथवा उपशमप्रेणाका आरोहण नहीं बन सकता है, क्योंकि, सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानकी प्राप्तिके बिना मुक्तिकी प्राप्ति और उपशमप्रेणाका आरोहण नहीं बन सकता । यदि सूक्ष्मसाम्पराय पात्र यमरूप है तो एक यमरूप सामायिक सयमको धारण करनेवाला जीवोंके पूर्णता शानों शेष प्राप्त होने है ? यदि छेदोपस्थापनाकी उभय यमरूप मानन है तो एक यम और पञ्चयमके भेदमें सूक्ष्मसाम्परायके दो भेद हो जाने हैं ?

सुगमत्वेनात्र वक्तव्यमस्ति ।

देशविशेषगुणस्थानप्रतिपादनाप्रमाणम् —

संजदासंजदा एकस्मिन्नेव संजदामंजद-शृणु ॥१२९॥

सुगममेतत् ।

अमयतगुणस्य गुणस्थानप्रमाणनिरूपणाप्रमाणम् —

असंजदा एडंदिय प्यहुडि जाव अमंजदमम्माडिट्टि ति ॥१३०॥

मिथ्यादृष्टयोऽपि रेचितमयता दृश्यन्त इति चेन्न, सम्यक्त्वमन्तरेण समयानुरूपत्वे । सिद्धान्ता क मयमो भवतीति चेन्नैकोऽपि । उवा तुदिपूर्वकनिवृत्तेरभावात् समयतान्तर एव न समयतामयता नाप्यमयता प्रगष्टादेषां सक्रियत्वात् ।

मयमद्वारेण जीवपदार्थमभिप्राय साम्प्रत दर्शनमुत्तरेण जीवमत्तानिरूपणाप्रमाणम् —

दंसणाणुवादेण अत्थि चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओधिदमणी केवलदसणी चेदि ॥ १३१ ॥

इत सूत्रका अर्थ सुगम होनेसे यहां विशेष कुछ कहने योग्य नहीं है ।

अब देशविरत गुणस्थानके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहने है—

सयतासयत जीव एक समयतामयन गुणस्थानमें ही होने है ॥ १२९ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

अब अमयतगुणके गुणस्थानोंके प्रमाणके निरूपण करनेके लिये सूत्र कहने है—

अमयन जीव एकैन्द्रियसे लेकर असयतसम्यग्गुण गुणस्थानतक होते हैं ॥ १३० ॥

श्रुति— किन्तु ही मिथ्यादृष्टि जीव सयत देखे जाते हैं ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, सम्यग्दर्शनके बिना समयमकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है ।

श्रुति— सिद्ध जीवोंके कानमा समय होता है ?

समाधान— एक भी समय नहीं होता है । उनके बुद्धिपूर्वक निवृत्तिका अभाव होनेसे जिसलिये वे समय नहीं हैं, इसलिये समयतामयन नहीं है और अमयन भी नहीं है, क्योंकि, उनके संपूर्ण पापरूप त्रियाए नष्ट हो चुकी हैं ।

मयममार्गाके द्वारा जीव-पदार्थका कथन करने अब दर्शनमार्गाके द्वारा अव्यक्त अस्तित्वके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहने है—

दर्शनमार्गाके अनुवादसंक्षुद्धान, अक्षुद्धान, अव्यभिर्धान और वेदव्यभिर्धान धारण करनेवाले जीव होने हैं ॥ १३१ ॥

१ सुगमत्वेनात्र वक्तव्यमस्ति । अर्थ = ८

२ अमयन जीव एकैन्द्रियसे लेकर । अर्थ = ८

३ अक्षुद्धान, अक्षुद्धान, अव्यभिर्धान और वेदव्यभिर्धान धारण करनेवाले जीव होने हैं । अर्थ = ८

ग्रहणमग्रह । न स दर्शन सामान्यग्रहणस्य दर्शनेन व्यपन्नेति । तत्र न च बुद्धिर्नमिति ।

अत्र प्रतिपिपीयते, नैते दोषा न्यूनमादांश्च तस्यान्तर्गताविषयान् । अन्तरद्वायोंऽपि सामान्यविशेषात्मक इति । तद्विषयविषयसामान्ययोग्ययोग्यस्य क्रमा प्रवृत्त्यनुपपत्तेरग्रमण तत्रोपयोगस्य प्रवृत्तिर्गतीर्नया । न च न मोक्षन्यन्तापयोगाति दर्शन तस्य सामान्यविषयविषयत्वाति च न सामान्यविशेषात्मकस्यामन सामान्य शब्दवाच्यत्वेनोपादानात् । तस्य च सामान्यतेति च दुन्यते । चतुर्गुणित्वयोग्यता हि नाम रूप एव नियमितस्ततो रूपविशिष्टस्यैवग्रन्थोपलम्भान् । तत्रापि रूपसामान्य एव नियमितस्ततो नीलादिरेकैरूपैर्नर विशिष्टग्रन्थनुपलम्भान् । तन्मात्रगुणित्व क्षयोपशमो रूपविशिष्टार्थं प्रति समान आत्मयतिगुणित्वयोग्यताभावादापि तद्विद्वारेण समानः, तस्य मात्र सामान्य तद्दर्शनस्य विषय इति स्थितम् ।

अथ स्याच्चक्षुषा यत्प्रकाशने तर्जनम् । न चात्मा चक्षुषा प्रकाशते तथानुपल

—
 बाह्य पदार्थके ग्रहणको अग्रह मानना चाहिये। परन्तु उह अग्रह दर्शनस्य नो हो नहीं सकता है, क्योंकि, जो सामान्यको ग्रहण करता है उसे दर्शन कहा है। अतः चक्षुदर्शन नहीं बनता है।

समाधान—ऊपर दिये गये थे सब दोष दर्शनको नहीं प्राप्त होना है, क्योंकि, यह अन्तरगत पदार्थको विषय करता है। और अन्तरगत पदार्थ भी सामान्य विशेषात्मक होता है। इसलिये विधिसामान्य और प्रतिषेधसामान्यमें उपयोगकी क्रमसे प्रवृत्ति नहीं बनती है, अतः उत्तम उपयोगकी अक्रमसे प्रवृत्ति स्वीकार करना चाहिये। अर्थात् दोनोंका युगपत् ही ग्रहण होता है।

शुद्धा—इस कथनको मान लेने पर भी वह अन्तरगत उपयोग दर्शन नहीं हो सकता है, क्योंकि, उस अन्तरगत उपयोगको सामान्यविशेषात्मक पदार्थ विषय मान लिया है।

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहापर सामान्यविशेषात्मक आत्माका सामान्य शब्दके वाच्यरूपसे ग्रहण किया है।

शुद्धा—उसको सामान्यपना कैसे है ?

समाधान—चक्षु इन्द्रियावरणका क्षयोपशम रूपमें ही नियमित है। इसलिये इनमें रूपविशिष्ट ही पदार्थका ग्रहण पाया जाता है। यहापर भी चक्षुदर्शनमें रूपसामान्य ही नियमित है इसलिये उससे नीलादिकमें किसी एक रूपके द्वारा ही विशिष्ट धस्तुकी उपलब्धि नहीं होती है। अतः चक्षु इन्द्रियावरणका क्षयोपशम रूपविशिष्ट अर्थके प्रति समान है। और आत्माको श्रोत्रकर क्षयोपशम पाया नहीं आता है इसलिये आत्मा भी क्षयोपशमकी अपेक्षा समान है। और उस समानके माध्यम सामान्य रहते हैं। वह दर्शनका विषय है।

शुद्धा—चक्षु इन्द्रियसे जो प्रकाशित होता है उसे दर्शन कहते हैं। परन्तु आत्मा तो चक्षु इन्द्रियसे प्रकाशित होता नहीं, क्योंकि, चक्षु इन्द्रियसे आत्माकी उपलब्धि होता ही नहीं देखी जाती है। चक्षु इन्द्रियसे रूपसामान्य और रूपविशेषसे शुद्ध पदार्थ प्रकाशित

व्यपदेशान्न दर्शनस्य चातुरिध्यनियमः । यान्तन्त्रचतुरिन्द्रियध्वयोपशमननितानस्य
त्रिपथभायमापन्ना, पदार्थास्तान्त एवात्मस्थध्वयोपशमान्तचन्नामानस्तद्वारेणात्मापि तास
नेन तच्छक्तिरचित्तात्मपरिच्छित्तिर्जनम् । न चैतत्काल्पनिक परमार्थत एव परापदेश
मन्तरेण शक्त्या सहात्मन उपलम्भात् । न दर्शनानामक्रमेण प्रवृत्तिर्नानामन्त्रमेणा
त्पत्त्यभावात्तदभावात् । एव शेषदर्शनानामपि उक्तं यम् । ततो न दर्शनानामस्य
मिति उक्तं च —

चक्षुण ज पयामदि दिस्सदि तच्चसु दमण णेति ।

सेसिंदिय-व्यासो णाद-ओ सो अचसु ति ॥ १९५ ॥

परमणु आदियाइ अतिम ध्वय ति मुक्ति-द-गाइ ।

त औत्रि-दमण पुण ज पम्मइ ताइ प चक्ष' ॥ १९६ ॥

बहुविह बहूपयारा उ-चोरा परिमिपट्टि खेतहि ।

छोगालेण अतिमिरा ओ के-उ-दमण-नोरो' ॥ १९७ ॥

स्वरूपसंवेदन हे उसको उसी नामका दर्शन कहा जाता है । इसलिये दर्शनके चार प्रकारके
हानिका कोई नियम नहीं है । चक्षु इन्द्रियावरण कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुए ज्ञानके त्रिपथ
भायको प्राप्त जितने पदार्थ हैं उतने ही आत्मामें स्थित क्षयोपशम उन उन सत्ताओंको प्राप्त
होते हैं । अगर उनके निमित्तसे आत्मा भी उनसे ही प्रसरका हो जाता है । अतः इस
प्रकारकी शक्तियामे युक्त आत्माके संवेदन करनेको दर्शन करते हैं । यह सब कथन काल्पनिक
भी नहीं है, क्योंकि, परोपदेशके बिना अनेक शक्तियासे युक्त आत्माकी परमार्थसे उपलब्धि
होती है । सभी दर्शनोंकी अप्रमत्तसे प्रवृत्ति होती है सो ज्ञान भी नहीं है, क्योंकि, ज्ञानोंका
एकसाथ उत्पत्ति नहीं होती है, अतः संपूर्ण दर्शनोंकी भी एकसाथ उत्पत्ति नहीं होता है ।
इसीप्रकार शेष दर्शनोंका भी कथन करना चाहिये । इसलिये दर्शनोंमें एकता अर्थात् अभेद
निश्च नहीं हो सकता है । कहा भी है—

ओ चक्षु इन्द्रियके द्वारा प्रकाशित होता है अथवा विचार देता है उसे बहुदर्शन
कहते हैं । तथा दोष इन्द्रिय और मनसे जो प्रतिभास होता है उसे अद्य-बुद्धीन कहते हैं ॥ १९८ ॥
परमाणुसे आदि लेकर अन्तिम स्वध्वन्यत मूर्ते पदार्थोंको जो प्रत्यक्ष देखना है उस
अधिदर्शन कहते हैं ॥ १९९ ॥

अपने अपने अनेक प्रकारके भेदामे युक्त बहुत प्रकारके प्रकाश हम परिमित क्षेत्रमें ॥
पाये जाते हैं । परन्तु जो केषा दर्शनरूपी प्रकाश है वह शोक और मलोकको भी निमित्त
रहित कर देता है ॥ २०० ॥

१९ जी ४८८

१९१ जी ४८९

१९२ जी ४८९

१, १, १३३]

सप्तमस्कन्धाध्यायान्तरे दशमस्कन्धाध्यायान्तरे
निष्पत्तिः ९

1303

चतुर्दशनाम्नानामपि पादार्थमाह—
चक्षुरादयः

चक्रदत्त दसणी चजरिदिय प्पुहुडि जान सीण कसाय-वीपराय-
छदुमत्था ति ॥ १३२ ॥

सुगममस्तु ।

अचक्र-दशमः—

अचक्रसु-दसणी एइदिय-प्पहुडि जाय स्त्रीण-रमाय-वीयराय-
छदुमत्या ति ॥ १३३ ॥
छान्तस्मरणमच उर्द्वर्गति

दृष्टान्तस्मरणमप्युर्द्वर्गनिमित्ति कतिदारवत् तत्र यत्र तत्र दृष्टिषु यत्र
 भावताऽन्युर्द्वर्गनिमित्त्याभावात्प्रजननात् । दृष्टप्रत्यक्ष उपपन्नमस्य इति चम, उपपन्नमस्य
 निषेधमृत्युर्द्वर्गनिमित्त्यद्वितीयमाणे मनसा निरिषयतापत् । तत्र स्वस्वगतत्वेन दर्शने
 मित्यद्वितीयनिषेधम् । ज्ञानमत्र द्विस्वभाव विभक्त्यादि चम, स्वस्वमाद्विभक्त्युपपत्तिरद्वैत

अथ च उद्देश्यसंबन्धी गुणस्थानोंक मानपादन करनेक नियम बरन ह—
 समुद्धान उपयोगपाल जाय समुगिन्द्रिय सबर शालकपाय छल्लय बानगय गुण
 यान तब होने ह ॥ १३-॥
 इसका अर्थ सरल ह ।
 अथ अचमुद्धानके स्थान—

इसका अर्थ सरल है।

अब अखभुक्तानके क्यामा बतानाके निध सूत्र बहान है—
अबभुक्तान उपयोगयान् जाय एवगिनियस एवगिनियस
न लक्ष होने है ॥१३३॥

[illegible]

ममाधान नदी कपास उपलब्ध पदार्थों। प्रत्येक वस्त्रों।
 कर लपट मतका विषय वा लपटका। आपल आजात।
 ममाधान नदी कपास उपलब्ध पदार्थों। प्रत्येक वस्त्रों।

१. प्रस्तावना : इस प्रस्तावना में हमने बताया कि हमारे देश में शिक्षा का स्तर बहुत ही निम्न है। हमें इसे सुधारा देने की आवश्यकता है।
 २. लक्ष्य : हमारे लक्ष्य यह है कि हमारे देश में शिक्षा का स्तर उच्च हो सके।
 ३. कार्यक्रम : हमें शिक्षा को सुधारा देने के लिए निम्नलिखित कार्य करना चाहिए :
 ४. निष्कर्ष : हमें शिक्षा को सुधारा देने की आवश्यकता है।
 ५. समाधान : हमें शिक्षा को सुधारा देने के लिए निम्नलिखित समाधान ढूँढना चाहिए :
 ६. समाप्ति : हमें शिक्षा को सुधारा देने की आवश्यकता है।

ज्ञानम्, स्वताऽभिन्नस्तुपरिच्छदकं दर्शनम्, नतो नानयोरन्यमिति । तान्नानयोः क्रमेण प्रवृत्तिः, किञ्च स्यादिति चेत् किमिति न भवति ? भवत्येव त्रीणां गणे द्वयानुक्रमेण प्रवृत्तुपलम्भात् । भवतु उन्नत्यापन्यायामप्यक्रमेण क्षीणां गणे इव तया प्रवृत्तिरिति चेत्, आपरणानिस्त्वाक्रमयोरन्यमवृत्तिरित्येतात् । अन्त्यमवृत्त्यो न स्यादित्यप्यामोषलभ्यत्व इति चेत्, बहिरङ्गोपयोगानुपपन्नान्तर्गोपयोगानुपपलम्भात् । श्रुतदर्शनं किमिति नोच्यत इति चेत्, तस्य भविष्यत्कर्म्य दर्शनपूर्वकप्रविशेतात् । यदि बहिरङ्गार्थमात्राय विषय दर्शनमभविष्यत्तदा श्रुतज्ञानदर्शनमपि ममभविष्यत् ।

अयिदर्शनप्रदेशप्रतिपादनार्थमाह—

आधि-दसणी असंजदसम्माडडि प्पहुडि जाव सीण-कमाय वीयराय छदुमत्त्या त्ति ॥ १३४ ॥

शुक्रा— ज्ञान और दर्शनकी युगपत् प्रवृत्ति क्यों नहीं होती ?

समाधान— कैसे नहीं होती, होती ही है, क्योंकि, चित्तके आपरण कर्म नष्ट हो गये हैं ऐसे तेरहवें आदि गुणस्थानजर्ती जीवोंमें ज्ञान और दर्शन इन दोनोंकी युगपत् प्रवृत्ति पाई जाती है ।

शुक्रा— आपरणकर्मसे रहित जीवोंमें जिसप्रकार ज्ञान और दर्शनकी युगपत् प्रवृत्ति पाई जाती है, उसीप्रकार छन्नस्थ अवस्थामें भी उन दोनोंकी एक साथ प्रवृत्ति होओ ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, आपरणकर्मके उद्भवसे जिनकी युगपत् प्रवृत्ति करनेका शक्ति रूक गई है ऐसे छन्नस्थ जीवोंके ज्ञान और दर्शनमें युगपत् प्रवृत्ति ज्ञानमें निरोध आता है ।

शुक्रा— अपने आपके सचेदनसे रहित आत्माकी तो कभी भी उपलब्धि नहीं होती है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, बहिरंग पदार्थोंकी उपयोगरूप अवस्थामें अन्तरंग पदार्थका उपयोग नही पाया जाता है ।

शुक्रा— श्रुत दर्शन क्यों नहीं कहा ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, मतिज्ञानपूर्वक होनेवाले श्रुतज्ञानको दर्शनपूर्वक माननेमें विरोध आता है । दूसरे यदि बहिरंग पदार्थोंका सामान्यरूपमें विषय करनेवाला दर्शन होता तो श्रुतज्ञानसमर्था दर्शनभी होता । परन्तु ऐसा नहीं है, इसलिये श्रुतज्ञानके पहले दर्शन नहीं होता है ।

अथ अविज्ञानसमर्था गुणस्थानोंके प्रतिपादन करनेकेलिये मूल कहते हैं—

अविज्ञानस्थानं जीव असत्यं सम्यग्दर्शने लेखरं क्षीणकषायधीनरागद्वेषस्थ गुण

१ अविज्ञानं अत्यन्तमन्युश्चाद्यादि क्षीणकषायतात्पर्यम् । न नि १ ८

सुगममेतत् । निभज्जदर्शनं मिमिति पृथग् गोपादिष्टमिति चेन्न, तस्यापिदर्शनेऽ
न्वर्भावात् । मनः पर्ययदर्शनं तदिह वक्तव्यमिति च न, मतिपूर्वकं राक्षस्य दर्शनाभावात् ।

केवलदर्शनस्यापिप्रतिपादनाद्यमाह—

केवलदमणी तिसु दृष्टेस्तु सजोगिकेवली अजोगिकेवली
सिद्धा चेदि ॥ १३५ ॥

अनन्तत्रिकालगोत्रसायुध प्रवृत्त केवलान (अनात्मिन्नस्मृतिरिच्छेदक च
दर्शनमिति) कथमनयो समानतति चेतस्यथा । नानप्रमाणमामा हानं च त्रिकाल-
गोचरानन्तद्रूपपयोपपरिमाणं तथा नानदर्शनया समानरमिति । अज्ञोऽप्यपरायै
ज्ञानादर्शनमधिकमिति चेन्न, इष्टत्वात् । कथं पुनन्तेन तस्य समानतरम् ? न, अपराया
स्मरयोस्तद्विरोधात् । उक्तं च—

स्थानं तत्र दोते है ॥१३६॥

इति सूत्रका अर्थ सुगम है ।

श्रुति— विभज्जदर्शनका पृथक् रूपमे उपदेष्टा क्यों नहीं किया?

समाधान— नहीं, क्योंकि, उसका अर्थविज्ञानमें अनन्तत्व हो जाता है ।

श्रुति— तो मन पर्ययदर्शनको भिन्न रूपमे कहना चाहिये ?

समाधान— नहीं क्योंकि मन पर्ययज्ञान मानिक, न पृथक् होता है, इसलिये अनन्तत्व
दर्शन नहीं होता है ।

अथ केवलदर्शनके क्यामात्रे प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहत है—

केवलदर्शनके धारक आत्मा सर्वोभिवदता अदागिवदता आत्मा सिद्ध इति तत्र
स्थानोंमें दाने है ॥१३६॥

श्रुति— त्रिकालगोचर अनन्त काल पदार्थोंमें प्रवृत्ति करनेवाले ज्ञान है और वहवच
मात्रमें प्रवृत्ति करनेवाला ज्ञान है इसलिये इन दोनोंमें समानता बन्नी हो सकती है ?

समाधान— आत्मा ज्ञानप्रमाण है और वह न त्रिकालगोचर विषयमान दूसरोंके अन्तर्गत
पदार्थोंको जाननेवाला होनेसे तत्परिमाण है इसलिये ज्ञान और ज्ञानमें समानता है ।

श्रुति— अतः कहनेवाली क्यामात्र पदार्थोंके अपरता ज्ञानमें ज्ञान अन्तर्गत है ?

समाधान— नहीं क्योंकि यह बात ही है ।

श्रुति— फिर ज्ञानके साथ दर्शनका समानता बन्नी हो सकती है ?

समाधान— समानता नहीं हो सकती यह बात नहीं है । क्योंकि, एक दूसरोंके अन्तर्गत
करनेवाले उन दोनोंमें समानता मान लेंगे वही विरोध नहीं होता है । कहा है—

व्यापकमात्रायां यां विधातो नायां विधातो योगरूपाय मार्गयोगेय तस्या अन्तर्भावान् ।
न तृतीयविषयसमस्यायि तथाविधवान् । न प्रथमद्वितीयविकल्पोक्तदायात्तन्मुपगमात् ।
न तृतीयविषयसमस्यायि द्वयोरेकस्मिन् तर्भाग्रिरोधात् । १ द्वित्वमपि कर्मलक्ष्यकार्य
वर्तुत्वं न ब्रह्मपक्षयोयोगरूपाय यात्तदायात्तन्मुपगमात् । नैकत्वात्तयोन्तर्भागेति द्वयात्म
वैषम्यं जात्यन्तरमापन्नम् यत्तन्तन्महत्त्वममान्तरयोर्विरोधात् । योगरूपाय कार्य
द्वयविरहितत्वेन यारापानुपलम्भाच्च ताभ्यां पृथग्लेश्यासीति चेत् न, योगरूपायाम्भ्यां
प्रत्यनेकत्वात्तदायात्तदायादिधामार्थमन्निधानेनापन्तलेदयाभावाभ्यां समारम्भद्विकार्यस्य

जाना है ' हम व्यवस्था स्थापना हो जाना है ।

प्रश्न—लेखा योगको कहते हैं, अथवा, व्यापको कहते हैं, या योग और व्याप
दोनोंको कहते हैं ? इनमें भेद भादिके दो विकल्प अर्थात् योग या व्यापक लेखा तो मान नहीं
सकते क्योंकि, ऐसा माननेपर योगमागणा और व्यापमागणमें ही उसका अन्तर्भाव हो
जायगा । तामरा विकल्प भी नहीं मान सकते हैं, क्योंकि, तामरा विकल्प भी भादिके दो
विकल्पोंके समान है । अर्थात् तामरे विकल्पके माननेपर भी लेखाका उक्त दोनों मार्गणाओंमें
अथवा बिना एक मार्गणमें अन्तर्भाव हो जाना है । इसलिये लेखाकी स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध
नहीं होनी है ।

समाधान—प्राकारने जो उपर तान विकल्प उगये हैं उनमेंसे पहला और दूसरे
विकल्पमें द्विधे तथे होय तो प्राप्त हो नहीं होता है, क्योंकि, लेखाको केवल योग और केवल
व्यापक माना है । नहीं है । उक्तप्रकार तामरे विकल्पमें दिया गया दोष भी प्राप्त नहीं होता
है, क्योंकि, योग और व्याप इन दोनोंका बिना एकमें अन्तर्भाव माननेमें विरोध आता है ।
यदि कहा जाय कि 'द्वयोरेक' रूप मान लिया जाय जिसमें उक्त योग और व्याप इन
दोनों मार्गणाओंमें अन्तर्भाव हो जायगा, तो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, कर्मलेखक एक
व्यक्ति कहनेवाले होनेकी अनेक एकवचनेकी प्राप्ति हुए योग और व्यापको लेखा माना है ।
यदि कहा जाय कि एकताको प्राप्त हुए योग और व्यापक लेखा होनेसे उन दोनोंमें
लेखाका अन्तर्भाव हो जायगा, तो भी कहना ठीक नहीं है क्योंकि दो धर्मोंके संयोगसे
उत्पन्न हुए द्वयात्मक अथवा बिना एक तामरी अवस्थाको प्राप्त हुए किसी एक पक्षका केवल
एक ही पक्ष एकवचन अथवा समानता मान लेनेमें विरोध आता है ।

प्रश्न—योग और व्यापके कार्यमें भिन्न लेखाका कार्य नहीं पाया जाना है, इसलिये
उन दोनोंमें भिन्न लेखा नहीं माना जा सकता है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि विपरीतताको प्राप्त हुए मिथ्यात्व अथवा भिन्न भादिके
अल्पमन्तरक आचार्यादि कहा पक्षोंके सफलसे लक्ष्याभावको प्राप्त हुए योग और व्यापोंसे,
केवल योग और केवल व्यापक कार्यमें भिन्न संसारकी वृद्धिके व्यापक उपलब्धि होने

तेण परमलेस्सिया' ॥ १४० ॥

कथम् ? वन्यहेतुयोगरूपायामात्रात् । सुगममन्यत् ।

लेख्यामुत्तेन जीवपत्तार्थमभिधाय मव्याभव्यद्वारेण जीवामित्यप्रतिपादनार्थमाह-

भविष्याणुवादेण अत्थि भवसिद्धिया अभवमिद्धिया ॥ १४१ ॥

मया भविष्यन्तीति सिद्धियया ते मव्यमिद्धयः । तथा च मव्यमन्ततिष्ठेद्
स्यादिति चेन्न, तेषामान त्यात् । न हि सान्तस्यानत्य विरोधात् । सव्ययस्य निरापस्य
राशे रथमानन्त्यमिति चेन्न, अन्यथैवस्थाप्यानन्त्यप्रसङ्गः । मव्ययस्यानन्त्यस्य न
क्षयोऽस्तीत्येकान्तोऽस्ति स्वमन्थेयामन्थेयभागव्ययस्य राशेरनन्तस्यापेक्षया तद्विषया
दिमन्थेयराभिव्ययतो न न्ययोऽपीत्यभ्युपगमात् । अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनकालस्यानन्त्यमपि

तेरद्वयं गुणस्थानके आगे समी जीव लेख्यारहित है ॥ १४० ॥

शुद्धा—यह कैसे ?

समाधान—क्योंकि, यथापर पक्षके कारणभूत योग और कथायका अभाव है । शेष
कथन सुगम है ।

लेख्यामार्गणाके द्वारा जीवपदार्थका कथन करके भव भविष्य मार्गणाके द्वारा जीवोंके
मनित्यके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं ।

मव्यमार्गणाके अनुवादमे भवमिद्ध और अभवमिद्ध जीव होते हैं ॥ १४१ ॥

औ आगे सिद्धिको प्राप्त होने उन्ने भवमिद्ध जीव कहते हैं ।

पूरा—इसप्रकार मे भव्यजीवकी मननिका उत्पन्न हो आयगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, भव्यजीव अनन्त होता है । हा, जो राशि साम्य होती है
उसमें अनन्तपना नहीं बन सकता है, क्योंकि, राशिके अनन्त माननेमें विरोध आता है ।

पूरा—त्रिम राशिका निरन्तर व्यव लाद द, परन्तु उसमें भव नहीं होती है ता
उसके अनन्तपना कैसे बन सकता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि, यदि मध्यय और निराय राशिको भा अनन्त न माना
जाय मे पक्षको भा अनन्तके माननका प्रसंग आ जायगा । व्यव होने हुए भी अनन्तका भव
नहीं होता है यह कथान नियम है इसलिये त्रिमके अनन्तपन और अनन्तपानके प्रसंग
व्यव हो रहा है वेही राशिका, अनन्तकी अवस्था उत्पत्ती नू नीम भादि अनन्तपन राशिके व्यव
हानमे भा भव नहीं होता है, वसा स्वीकार किया है ।

शुद्धा—अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनकाल अनन्त होन हुए भी उत्पत्ती व्यव हुआ जाता है,

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

च योग्या सप्तऽपि नियमेन निःफलका भवन्ति सुवर्णपाषाणेन व्यभिचारान् । उक्त च—
 प्य णिगोऽ मसि नीरा ऽव णमागदो दिग ।

मिडेहि अणन गुणा सत्वेण वितीः कलेण ॥ २१० ॥

तडिपरीता, अभन्या । उक्त च—

मयिया मिद्रा जेमि नीराण त मयनि भय मिद्रा ।

तत्रिरीदामन्ना ममाराः । ण मेऽननि ॥ २११ ॥

भव्यगुणस्थानप्रतिपादनार्थमाह—

भवसिद्धिया एडदिय-प्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ॥ १४२ ॥

सुगममेतन् ।

अभव्याना गुणस्थाननिरूपणायाह —

अभवमिद्धिया एडदियप्पहुडि जाव साणि मिच्छाडि
 ति ॥ १४३ ॥

येना कोरि नियम नहीं है क्याकि, मयथा वम्मा मान लेने पर स्वर्णपाषाणमे व्यभिचार हो
 जायगा । कहा भी है—

द्वयप्रमाणकी अपेक्षा सिद्धगणिते और मयूल अर्थात् कालमे भवन्तगुणें जीव एवं
 तिगोद्वारिगमें देने मये है ॥ २१० ॥

मयौने विपरीत अर्थात् मुक्तिगमनकी योग्यता न स्मरणपार अमय्य जीव होते है ।
 कहा भी है—

डिग नीयौका भवन्तयगुण्यरूप सिद्धि होनेवाली है । अथवा जो उसकी प्राप्ति
 योग्य हो उन्हे मय्यमिद्र कहते है । और इनमे विपरीत अमय्य होते है । जो ममारमे निवृत्त
 कर कभी भी मुक्तिको प्राप्त नहीं होत है ॥ २११ ॥

अथ भव्यजीयोंके गुणस्थानोंका प्रतिपादन करनेके लिये मय्य कहते है—

मय्यमिद्र जीव एकद्वियम एव अयोगिकेयगी गुणस्थाननक होने है ॥ १४२ ॥

इस मय्यका अर्थ समझ है—

अथ भव्यजीयोंके गुणस्थानोंका निरूपण करनेके लिये मय्य कहते है—

अमय्यमिद्र जाव एकद्वियम एव मय्य सिद्धावधि गुणस्थाननक होत है ॥ १४३ ॥

१ ३

१ ३ ० । मय्यमिद्र । अथ सिद्ध १४ वर ११ मय्यमिद्र १४ वर ११ ।

१ ३ १४ वर ११ व १४ वर ११ । १ ३ ६

१ ३ १४ वर ११ व १४ वर ११ । १ ३ ६

एतन्पि सुगमम् ।

मम्मत्ताणुवादेण अत्थि सम्माइट्टी सव्यसम्माइट्टी
सम्माइट्टी उरसमसम्माइट्टी मामणसम्माइट्टी सम्माइट्टी
मिच्छाइट्टी चेत्ति ॥ १४४ ॥

आम्ररनाल्लम्भनिम्भानामाम्ररनयपदपरिभ्यात्ताता
पाप्य । सुगममयम् । उक्तं च—

१. उच्यते विज्ञातं च रणं विजयसदृशम् ।

२. एतत् अहमस्य व सद्दणं होइ सम्मतम् ॥ १४५ ॥

३. अग्रे दया नष्टं तत् सद्दणं सुगमम् इति ।

४. एतत् सम्मतं विज्ञातं वम्म कवण-इति ।

वपयति मि देउहि वि हदिय भय आण-इति ।

वह-इति । एतत् तत् अहमस्य कवण-इति ।

इति सूत्रम् । अर्थः भाः सुगमम् ।

अथ सव्यसम्मागणाके भुवाइने जायेंके अन्विष्टम् ।

एतद् कहेने—

सव्यसम्मागणाके भुवाइने सामागणाके अन्विष्टम् ।

आयिबसम्मागणाके, वेइबसम्मागणाके, उपागमसम्मागणाके, सव्यसम्मागणाके ।

अथ विदवाइने जिय होइने इति ॥ १४६ ॥

जिसप्रकार आम्रयनक मीनर इदनेजाने नेमिह इति ।

जानी हे उमाप्रकार मिधवा व भाइका सव्यसम्मागणाके ।

सुगमम् । कदा भा इति ।

जिसप्रकार आम्रयनक उपागम उद द्रव्य इति ।

अथवा अधिगमस्य अन्विष्टं कवणस्य सव्यसम्मागणाके ।

इति सामागणाके वम्म सव्यसम्मागणाके ।

सव्यसम्मागणाके । अथ कवणस्य सव्यसम्मागणाके ।

अन्विष्टं कवणस्य सव्यसम्मागणाके ।

इति सामागणाके ।

अथवा अधिगमस्य

इति ।

— 10 —

— 8 — 7 1 4 4 1 1 1 2 1 1 1

[illegible]

י"ד י"ה י"ו י"ז י"ח י"ט

महर्षिगुरुदेव भक्त्या पश्यन् आत्मिकपदं तदा तत्र मुक्तिरित्युच्यते -

सम्प्राप्तिः स्वयम्प्राप्तिः अयम्प्राप्तिः प्रकृतिः ॥
अज्ञानिनेति ॥ १४५ ॥

किं न गन्तव्यमगमनमिति चेत्प्राज्ञः सत्यं तत्र न साक्षात्
रामानन्दम् । भाषिकृपायोगमित्तितामित्तु परस्परं निश्चय इति साध्यमिते प

आचार्योऽथ वा श्रीमान् भगवन् निर्देष्टव्यमाह दूतः तत्रागतं ब्रूयादिति किं ब्रूयात्
 लोकस्य हि बहु भागिज्जागत्युज्ज्वलं यमस्य नमो देवे देवे नमो ॥ १॥

होना है उसका बहुत सम्बन्धन करने के लिये कि शिष्ट न समझें।

इति श्रीमद्भगवद्गीतायां अष्टमोऽध्यायः समाप्तः ॥

अब सामान्य मनुष्यदर्शन और आधिकमनुष्यदर्शन गुणधर्मानों के निरूपण करने लिये शुरू करते हैं—

सामान्यतः गण्यते, किं च विचार्यते। अथवा सावित्रगण्यते, किं च अमरगण्यते।
नहि गुणस्थानेन स्वेन भोज्येति च। गुणस्थानेन च दानं दत्तं ॥ १० ॥

शुभा—सम्यक्त्वमे रहनेपाग व मासय क्या वस्तु दे ।

समाधान—नीचों की मध्यधूसरीमें आ साधारण धर्म द्व प सामान्य गाने वर
पर विद्यमान है।

ग्रन्था—शापिक, शायोपशमिक भाद अपशमिक लक्ष्यग्रन्थानां क परम्परा मिश्र मिश्र

[illegible]

२ गा जी ₹५०

■ सम्पत्कृतानुवादनं क्षाप्तिसम्पत्कृतं अस्यतस्तस्यगृहवादानं अवागकृतस्यतानि सन्ति । स १९ १८

नय यथायथद्वान प्रति साध्यावच्छिन्नात् । भयधयोपशमापन्नमितिष्ठाना यथार्थ
भदानानां कथं समाप्नोति चरुतु विपणानां मया न विगेष्यस्य यथार्थभदानस्य ।
गुणममप्यत् ।

यद्वत्सम्यग्गुणगुणमप्याप्रतिपादनाधमाह—

येदगममादृष्टी असजदसम्मादृष्टि-प्पहुडि जाव अप्पपत्त
मज्झदा ति ॥ १४६ ॥

उपरिक्तगुणेषु विमिति यद्वत्सम्यक्त्वं नामीति चय, अमादृष्टमलभ्यद्वानेन
मह क्षपकापणमभेद्ययादपानुपपन्न । यद्वत्सम्यक्त्वादप्यधिकमप्यक्त्वंस्य कथं
साधियत्यति यम, दर्शनमादोदयननिर्वाधिन्यादेस्तथासत्तत्त्वाधिक्योपलम्भात् ।

होने पर सत्ताणा कथा चरुतु दा स्वकथा हे ?

समाधान—नहीं क्योंकि उन तानें सम्यग्दर्शनमें यथार्थ भदानके प्रति समानता
पाए जाना है ।

गुरा—अब, क्षपकापणम आर उदयम विरोधने हुए यथार्थ भदानोंमें समानता
किस हो स्वकथा है ?

समाधान—विरोधनोंमें भेद भले है । रहा आवे परतु हमने यथाप भद्वारूप
विगेष्यमें भेद नहीं पड़ता है ।

होय गुरुका अथ गुरुम है ।

अब यद्वत्सम्यग्गुणके गुणस्थानोंकी स्वकथाके प्रतिपादन करनेके लिये गुरु
बदल है—

यद्वत्सम्यग्दृष्टि जाव भमगनसम्यग्दृष्टिमे लेक्क भममसमपन गुणस्थानतव
दाग है ॥ १४६ ॥

गुरा—उत्पन्न आदये आदि गुणस्थानोंमें यद्वत्सम्यग्दर्शन क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं होगा, क्योंकि, आगाध आदि मलमहित भदानके साथ क्षप
आर उदयम भणिका स्वकथा नहीं बनता है ।

गुरा—यद्वत्सम्यग्गुणम अप्यधिक सम्यग्गुणकी अधिकता अर्थात् विरोधता
किस समय है ?

समाधान—नहीं क्योंकि, शून्यमोहनायके उदयसे उत्पन्न हुए निधिलता आदि
भौतिकाधिक सम्यग्गुणमें नही पाए जाना है, इसलिये यद्वत्सम्यग्गुणम अप्यधिकसम्य
ग्गुणमें विनयता सिद्ध हो जाना है ।

दमगमोदृष्ट्याने नमः ज पयय ममम् ।

चउ मग्निमगाट त वेग्ग-मग्गमिग्ग मुग्ग ॥ २१७ ॥

मग्गमेग्गमग्ग उग्ग न पयय ममम् ।

उग्गमग्गमग्गमग्ग पयय मग्ग नोय-मग्ग ॥ २१६ ॥

सम्यग्दर्शनस्य सामान्यस्य ध्यायिस्सम्यग्दर्शनस्य च गुणनिष्पत्तिर्मा—

सम्माद्वि सडयमम्माद्वि असंजदमम्माद्वि-प्पहुडि जाव
अजोगिकेवलित्ति ॥ १४५ ॥

किं तत्सम्यक्स्वरूपतमामान्यमिति चेन्नैवपि सम्यग्दर्शनेषु य माशरणोद्भूत
त्सामान्यम् । ध्यायिस्समाधायिस्सम्यग्दर्शनेषु परस्परतो भिन्नेषु किं माश्रयमिति चेत्,

आकारोत्पत्तिं या ध्यायिस्स अर्थात् निन्दित पदार्थोक्ते देवनेमे उत्पन्न हुई ग्लानिमे, किं वदता तत्त
लोकसे मी यह ध्यायिक् सम्यग्दर्शन चल्लयमान नई होना हे ॥ २१३ ॥

सम्यक्त्वमोहनीय प्रकृतिके उद्यमे पण-उक्ता जो चल, मलिन आर अगादस्य भ्रान्त
होता हे उसको पेटक सम्यग्दर्शन कहने हे ऐसा हे शिष्य तू सम्य ॥ २१ ॥

दर्शनमोहनीयके उपशममे बीजवत्के मीचे वड जानेमे निर्मल जलके समान पदार्थ, जो
जो निर्मल भ्रान्त होता हे वह उपशमसम्यग्दर्शन हे ॥ २१६ ॥

अथ सामान्य सम्यग्दर्शन और ध्यायिक्सम्यग्दर्शनके गुणस्थानोंके निष्पत्ति करनेके
लिये सूत्र कहते हैं—

सामान्यसे सम्यग्दर्शित और विशेषकी अपेक्षा ध्यायिक्सम्यग्दर्शित और असंप्रतमस्य
गृहिण गुणस्थानमे लेकर अजोगिकेउली गुणस्थानतक होने हे ॥ २१ ॥

शुद्धा—सम्यक्त्वमे रहनेवाला यह सामान्य क्या वस्तु हे ?

समाधान—तीनों ही सम्यग्दर्शनोंमें जो साधारण धर्म हे वह सामान्य शब्दमे पदा
पर विवक्षित हे ।

शुद्धा—ध्यायिक्, ध्यायोपशमिक और भाषाशमिक सम्यग्दर्शनोंके परस्पर भिन्न भिन्न

१ गा जा ६४० नानामाशयिषवत्तु वल्लभाति वल्ल सत्तु । एवञ्चाडमग्गमु जल्लमग्गवत्तु ॥
स्वस्वस्वित्ति, र्थयार्दा दवा य मग्गस्वस्वित्ति । अवररायमिग्ग आग्ग्व नागाऽद्यादिमि वल्ल ॥ मग्गउधमग्ग
यकार सम्यक्त्वमग्ग । मग्गिन् मग्गमग्ग पुद्द स्वग्गिवाडवत्तु ॥ मग्गव एव मग्गिन् कयमग्गमग्ग वापत्तु ।
वृद्धयग्गिवात्तमग्गमग्ग करत्तु सिग्ग ॥ समग्गवत्तु न व सर्वेवाग्गमग्ग । दवाग्ग मग्गुवत्तु दवाग्ग
सुग्गमग्ग ॥ गा जा २५ जा २ टी उद्दवत्तु

२ गा जा ६५०

३ सम्यक्वाश्रयान ध्यायिक्सम्यक्त्व असंप्रतसम्यग्दर्शनादान अवगच्छवत्तुति वत्ति । व १४ १८

कथमस्य वेदकमस्यगदर्शनत्रयपदेश इति चेदुच्यते । दर्शनमाहोदयको वेदक, तस्य मस्यगदर्शन वेदकमस्यगदर्शनम् । कथं दर्शनमोहोदयता सम्पगदर्शनस्य सम्भव इति चेन्न, दर्शनमोहनीयस्य देशघातिन उदये मत्यपि जीरम्वभापश्रद्धानर्त्यकेशे मय निरोधात् । देशघातिनो दर्शनमोहनीयस्य कथं मस्यगदर्शनत्रयपदेश इति चेन्न, मस्य गदर्शनसाहचर्यात्तस्य तद्व्यपदेशानिरोधात् ।

आपशमिकमस्यगदर्शनगुणस्थानप्रतिपादनार्थमाह —

उवसमसम्माड्ढी असजदसम्माइड्डिप्पहुडि जाउ उवसत
कसाय वीयराय छदुमत्था त्ति ॥ १४७ ॥

सुगममेतत् ।

सासणसम्माइड्ढी एकम्मि चय सासणसम्माइड्डि द्वाणे ॥ १४८ ॥

श्रुति — आपोपशमिक मस्यगदर्शनको वेदक मस्यगदर्शन यह सत्ता कैसे प्राप्त होती है ?

समाधान — दर्शनमोहनीय कर्मके उद्यक या वेदन करनेवाले जीवको वेदक कहते हैं । उसके जो मस्यगदर्शन होता है उसे वेदकमस्यगदर्शन कहते हैं ।

श्रुति — जिनके दर्शनमोहनीय कर्मका उद्य विद्यमान है उनके मस्यगदर्शन कैसे प्राप्त हो सकता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, दर्शनमोहनीयकी देशघातिन प्रकृतिके उद्य रहने पर भी आपके स्वभावरूप भ्रमणके एकदेश रहनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

श्रुति — दर्शनमोहनीयकी देशघातिन प्रकृतिके मस्यगदर्शन यह सत्ता कैसे की गई ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, मस्यगदर्शनके साथ सहज सम्बन्ध होनेके कारण उसका मस्यगदर्शन इस सत्ताके देनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

अथ आपशमिक मस्यगदर्शनके गुणस्थानोंके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं —

उपगममस्यगदर्शि जीव भविष्यमस्यगदर्शि गुणस्थानेमे ऐक्य उपशाग्न कपाय
हीनगग छदस्य गुणस्थानक होने हैं ॥ १४९ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

अथ साम्प्रदायिकस्य कथं आदि मत्तर्था गुणस्थानोंके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं —

साम्प्रदायिकस्य कथं आदि मत्तर्था गुणस्थानमे ही होने हैं ॥ १५० ॥

सम्मामिच्छाद्वी एकस्मि चेय सम्मामिच्छाद्विद्विष्टाणे ॥१४९॥

मिच्छाद्वी एउदिय प्पहुडि जाव सण्णि मिच्छाद्वि ति ॥१५०॥

सुगमत्वाधिप्यतेषु सुश्रूषु न उत्तव्यमस्ति ।

सम्यग्दर्शनादेशप्रतिपादनार्थमाह—

णेरइया अत्थि मिच्छाद्वी सासण सम्माद्वी सम्मामिच्छा
द्वी असजदमम्माद्वि ति ॥ १५१ ॥

अथ व्यावृत्तिनिरूपणायामस्या गर्ता इयन्ति गुणस्थानानि सन्ति, इयन्ति न
मन्तीति निरूपितत्वात् यत्तद्व्यभिदं सुश्रूषु, सम्यक्दर्शनमिच्छायां गुणस्थाननिरूपणात्
सामानाधिकरान्ति न, निरूपितत्वात्तार्थस्य प्रतिपाद्यस्य तस्य सम्याय नष्टं नष्टं गर्ता
सम्यग्दर्शनमदमप्रतिपादनप्रवणं वात् । सुगममन्यत्र ।

एव जाव सत्तसु पुढवीसु ॥ १५२ ॥

सम्यग्मिच्छाद्वि जाव एव सम्यग्मिच्छाद्वि गुणस्थानम् ही दानं हे ॥ १५१ ॥

मिच्छाद्वि जीव यथेन्द्रियमे लभत तद्दी मिच्छाद्विगतं दोनं हे ॥ १५२ ॥

इमं नीत्तौ सुश्रूषा अर्थं सुगमं हे अलपय इमं विषयं अधिपं कृतं ही नदी
चक्षुः हे ।

अथ सम्यग्दर्शनका सामानाधिकरान्ति निरूपणं करत इति सूत्रं चक्षुः हे—

नारदी जीव मिच्छाद्वि सात्त्विकसम्यग्दर्शि सम्यग्मिच्छाद्वि जीव अलपयतां चक्षुः
गुणस्थानयोर्ही दोनं हे ॥ १५३ ॥

शरीर— सामानाधिकरान्ति निरूपणं करत सम्यग् इमं सामाने इमं गुणस्थानं दानं हे
भीरु इत्येव नदी दानं हे इमं सामानाधिकरान्ति कर ही भाव हे इत्यन्ति इमं सूत्रं चक्षुः
बाह्य आधारयता नदी हे । अथवा सम्यग्दर्शनसामानाधिकरान्ति निरूपणं करत सम्यग् गुणस्थानयोर्ही
निरूपणका अथमं ही नदी हे इत्यन्ति ही सूत्रं चक्षुः आधारयता नदी हे ।

समाधानि—नदी चक्षुः आश्रय्य वृत्तान् अधकः भूतं गतं हे इत्येव नदी इमं
अधका पुनः स्मरणं करत इमं उक्तं सामानाधिकरान्ति सम्यग्दर्शनम् अथ हे इत्यन्ति चक्षुः
सम्यग् हे इत्यन्ति इमं सूत्रं आधारयता नदी हे । इत्येव चक्षुः सुगमं हे

अथ सामानाधिकरान्ति निरूपणं करत इति सूत्रं चक्षुः हे

इत्यादिवात् सामानाधिकरान्ति सम्यग्दर्शनं वात् गुणस्थानं दानं हे ।

रथमस्य वेदकमस्यग्दर्शनन्यपदेश इति चेदुच्यते । दर्शनमाहोदयको वेदक, तस्य
मस्यग्दर्शन वेदकमस्यग्दर्शनम् । रथ दर्शनमोहोदयना मस्यग्दर्शनस्य मम्मव इति
चेन, दर्शनमोहनीयस्य देशघातिन उदये मयपि जीवम्वभात्रश्रदान्मस्यग्दर्शने म
विरोधान् । देशघातिनो दर्शनमोहनीयस्य रथ मस्यग्दर्शनन्यपदेश इति चेन, मस्य
ग्दर्शनमाहचर्यात्तस्य तद्वत्पदेशातिगोचरात् ।

आपगमिसमस्यग्दर्शनगुणस्यानप्रतिपादनार्थमाह —

उवसमसम्माहट्टी असजदसम्माइट्टिणहुडि जाय उवसत
कसाय वीयराय छट्टुमत्था त्ति ॥ १४७ ॥

सुगममेतत् ।

सासणसम्माइट्टी एक्खमि चेय सामणसम्माइट्टिण्ण ॥ १४८ ॥

श्रुता — आयोपशमिक मस्यग्दर्शनको वेदक मस्यग्दर्शन यह मन्त्रा केमे प्राप्त होनी है ।

मुमाधान — दर्शनमोहनीय कर्मके उदयका वेदन करनेवाले जीवके वेदक कहने है ।
उमके जो मस्यग्दर्शन होना है उसे वेदकमस्यग्दर्शन कहने है ।

श्रुता — जिनके दर्शनमोहनीय कर्मका उदय विद्यमान है उनका मस्यग्दर्शन केमे प्राप्त
जा सकता है ।

मुमाधान — नही, क्योंकि, दर्शनमोहनीयकी देशघातिन प्रत्यक्ष उदय रहने पर भी
आपके व्यमायकय भक्षणक वक्तव्य रहनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

श्रुता — दर्शनमोहनीयका देशघातिन प्रत्यक्ष मस्यग्दर्शन यह मन्त्रा केमे ही प्राप्त ।

मुमाधान — नहीं, क्योंकि, मस्यग्दर्शनके प्राप्त महत्त्व मन्त्रा के होनेके कारण उसका
मस्यग्दर्शन इस मन्त्राके देनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

अथ आपगमिक मस्यग्दर्शनके गुणस्थानोंक प्रतिपादन करनेक निमित्त कहने है —

इदमस्यमस्यग्दर्शजि जीव मस्यग्दर्शनमस्यग्दर्शजि गुणस्थानमे ऐक्य उपसाग्न कण
ईनगण-उपसाग्न गुणस्थानमे होने है ॥ १४९ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

अथ आपगमिकमस्यग्दर्शन आदि मन्त्राकी गुणस्थानोंक प्रतिपादन करनेक निमित्त
कहने है —

मस्यग्दर्शनमस्यग्दर्शजि आदि एव आपगमिकमस्यग्दर्शजि गुणस्थानमे ही प्राप्त है ॥ १५० ॥

सम्पत्तिमिच्छाद्विष्टी एकस्मिन् चैव सम्पत्तिमिच्छाद्विष्टी ॥१४९॥

मिच्छाद्विष्टी एतदिय पण्डित जाव सणि मिच्छाद्विष्टी ति ॥१५०॥

सुगमत्वाभिप्रेत्येतेषु क्षेत्रेषु न रत्नव्ययमिति ।

सम्पत्तिदर्शनादेशप्रतिपादनार्थमाह—

णेरइया अत्थि मिच्छाद्विष्टी सासण सम्पादये सम्पत्तिमिच्छा

इदी असजदसम्पादिति ति ॥ १५१ ॥

अथ स्याद्विष्टितिरूपणायामस्या यत्ना इयन्ति गुणस्थानानि सन्ति, इयन्ति न मन्तीति निरूपितत्वात् वक्तव्यमिदं सूत्रम्, सम्पत्तिवन्निरूपणायां गुणस्थाननिरूपणाव सराभावाच्चेति न, त्रिसृष्टपूर्वाक्तार्थस्य प्रतिपादस्य समयं सम्पत्तिं तत्र तत्र गर्ता सम्पत्तिदर्शनमद्विष्टिपादनप्रवणत्वात् । गुणममन्यत् ।

एव जाव सत्तसु पुढवीसु ॥ १५२ ॥

सम्पत्तिमिच्छाद्विष्टी जाव यत् सम्पत्तिमिच्छाद्विष्टी गुणस्थानमेव । इति ॥ १५१ ॥

मिच्छाद्विष्टी जीव यत्तद्विषये लेखर यत्तदी मिच्छाद्विष्टिगर्त इति ॥ १५२ ॥

इति तीनों सूत्रोंका अर्थ समझाई, अतएव इसका विषयमें अधिक कुछ भी नहीं कहना है ।

अथ सम्पत्तिदर्शनका मागणाभेद निरूपण करनेका लिये सूत्र कहत है—

नारकी जीव मिच्छाद्विष्टी व्याख्यातसम्पत्तिद्विष्टी सम्पत्तिमिच्छाद्विष्टी अथ सम्पत्तिमिच्छाद्विष्टी गुणस्थानयत्नी इति ॥ १५३ ॥

शब्द— मागिमागणाका निरूपण करने समय इस नामिसे इसका गुणस्थानका रूप है भार इतने नहीं होते हैं । इस बातका निरूपण कर ही भाव है । इसलिये इस सूत्रका अर्थवर्तकी कोई व्याख्यायकता नहीं है । अथवा सम्पत्तिदर्शनमागणाका निरूपण करने समय गुणस्थानको निरूपणका अवसर ही नहीं है । इसलिये या सूत्रका अर्थवर्तकी आवश्यकता नहीं है ।

सम्पत्तिनिर्वाह—नहीं क्योंकि आश्रित्य पूर्वाक्त अथवा भूत गदा है । इसका निरूपण करनेका पुन सम्पत्ति करनेका उक्त उक्त नामयोंमें सम्पत्तिदर्शनका अर्थवर्तकी न्यायका करनेमें यह सूत्र समर्थ है । इसलिये इस सूत्रका अर्थवर्तकी हुआ है । इसका अर्थवर्तकी हुआ है ।

अथ नामों पूर्वाक्तियोंमें सम्पत्तिदर्शनका निरूपण करनेका लिये सूत्र कहत है—

इयत्तिवत्तार नामों पूर्वाक्तियोंमें सम्पत्तिदर्शनका अर्थवर्तकी हुआ है ॥ १५४ ॥

ऊरु सामान्यवद्विशेष म्यान्ति चेन्न, विशेषन्यतिग्नित्वा सामान्यस्यामत्तात् ।
 नाध्यतिग्नोऽपि द्वयोर्गमागमजननात् । नोभयपक्षोऽपि पक्षद्वयोक्त्येषामजननात् ।
 नानुभयपक्षोऽपि निम्नमात्रप्रमत्तात् । न च सामान्यविशेषयोगमात्र एव प्राप्त्यान्य-
 त्वेनोपलम्भात् । ततश्चक्रेतदिति स्थितम् ।

सम्पददर्शनविशेषप्रतिपादनार्थमाह—

णेरइया असंजदसम्माइट्टि-ट्टाणे आत्थि खइयमम्माइट्टी वेढा
 सम्माइट्टी उवसममम्माइट्टी चेदि ॥ १५३ ॥

सुगममेतत् ।

एवं पढमाए पुढवीए णेरइआ ॥ १५४ ॥

एतदपि सुगोच्यम् ।

प्रश्न—सामान्य कथनके समान ही विशेष कथन कथे हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, विशेषको छोड़कर सामान्य नहीं पाया जाता है, इसलिए सामान्य कथनसे विशेषका भी बोध हो जाता है । इससे सामान्य और विशेषमें सर्यथा भेद भी नहीं समझ लेना चाहिये, क्योंकि, दोनोंमें सर्यथा भेद मान लेने पर दोनोंका भग्न हो जायगा । इसीप्रकार इन दोनोंमें सर्यथा उभयपक्ष अर्थात् सर्यथा भेद और सर्यथा भेद भी नहीं माना जा सकता है, क्योंकि, ऐसा माननेपर दोनों पक्षमें द्विये गये शेष प्राप्त हो जायगे । सामान्य और विशेषको सर्यथा अनुभवरूप भी नहीं मान सकते हैं, क्योंकि, ऐसा मान लेनेपर वस्तुछे निर्व्यभायताका प्रसंग आ जायगा । परन्तु इसप्रकार सामान्य और विशेषका समान भी नहीं माना जा सकता है, क्योंकि ज्ञान्यन्तर अर्थका प्राप्त होने रूपसे उन दोनोंकी उपलब्धि होनी है । इसलिये ऊपर जो कथन किया है यह सर्यथा ठीक है, यह बात निश्चित हो जाती है ।

अब सम्पददर्शनका मार्गणाभेमें प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

नारकी जीव असयनसम्पत्ति गुणस्थानमें क्षाधिकमभयगते वेदकमभयगति
 धीर उदगमसम्पत्ति होने है ॥ १ ३ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

अब प्रथम पृथिवीमें सम्पददर्शन बनलानेके लिये सूत्र कहते हैं—

इसीप्रकार प्रथम पृथिवीमें नारकी जीव होने है ॥ १ ३ ॥

इस सूत्रका अर्थ भी सुगम है ।

अब शेष पृथिवीयोंमें सम्पददर्शन निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

१, १, १५७]

सन एम्बेगाणुयोगदर समस्तमम्मागादम्बेग

[१]

विदियादि जाव मत्तमाए पुढवीए णेरइया असजदमम्माइडि
ट्टाणे सहयसम्माइटी णत्थि, अवमेसा अत्थि ॥ १५५ ॥

सत्तप्रवृत्तए धाणासु मिमिनि तत्र नात्तयन्न इति चन्नामाच्यान । तत्रम्मा
मत मिमिति सत्तप्रवृत्तीर्न क्षपयन्तीति चन, तत्र चिनानामभासान ।
तिर्यगादेशप्रतिपादनायमाह—

तिरिक्खा अत्थि मिच्छाड्डी सासणमम्माइडो सम्मामिन्ना-
इटी असजदसम्माइटी सजदासजदा ति ॥ १५६ ॥

मन्यस्तगरीरत्ताप्यत्ताहाराणा निरथा मिमिनि मयमा न भवति न च
अन्तरङ्गाया मरुलनिवृत्तेरभासान । मिमिनि नदभारधत्तातिविशेषान ।
एव जाव सव्वदीव-ममुदेसु ॥ १५७ ॥

दूतरा पृथिवीमे लेखर म्मातर्धी पृथिवीमेव भारवा । जीव भवपनसमयवर्त्तु शुल्क नदमे
शाधिकमम्यगदए नदीं होत ॥ १ ॥ नयव द्वा मयवमम्यगदए शुल्क नदमे ॥
गुफा—मयववपव । प्रतिवधव म्मात म्मातियाव शय हो अनयव शाधिकमम्यगदए

जीव द्वितीयादि पृथिवीयोमे वयो उलयत नदीं होत ॥ १ ॥
समाधान—यमा वयभाव हो व वि शाधिकमम्यगदए जीव द्वितीयादि शुल्क नदमे
नदीं उलयत होत ॥ १ ॥

दूतरा—द्वितीयादि पृथिवीयोमे वदनया १ भारवा मयवमम्यगदए प्रतिवधव म्मात म्मातियाव
नियोका शय वयो नदीं वरत ॥ १ ॥

समाधान—नदीं वयोवि वदपव जिनइयवा भभाव ॥
भव नियव ममिमे विनाय प्रतिपादन वरनव नियव वदन ॥
नियव मिच्छाएट्टा सम्माइडमम्यगदए मयवमम्यगदए मयवमम्यगदए मयवमम्यगदए

मयवमम्यगदए होत ॥ १ ॥ १ ॥
गुफा गुफा मयवमम्यगदए वर नदमे वरत ॥ १ ॥ नदमे मयवमम्यगदए वर नदमे
द वरत मयवमम्यगदए वरत नदीं होत ॥ १ ॥

समाधान नदीं वयोवि उलयत मयवमम्यगदए मयवमम्यगदए मयवमम्यगदए
गुफा उलयत मयवमम्यगदए मयवमम्यगदए मयवमम्यगदए मयवमम्यगदए

समाधान जिन ज्ञातम व उलयत शुल्क ॥ उलयत मयवमम्यगदए मयवमम्यगदए
मयवमम्यगदए मयवमम्यगदए मयवमम्यगदए मयवमम्यगदए

भव नियवमम्यगदए मयवमम्यगदए मयवमम्यगदए मयवमम्यगदए
गरीमयवमम्यगदए मयवमम्यगदए मयवमम्यगदए मयवमम्यगदए

स्वप्नप्रमादारात्मानुपोचरात्परतो भोगभूमिसमानत्वात् तत्र देशप्रतिनि नन्ति
तत एतत्स्वप्न न घटत इति न, नैगमम्बन्धेन देवैर्दानैर्गोशिश्या विज्ञानां सर्वत्र
सत्त्वाविरोधात् ।

सम्यग्दर्शनविशेषप्रतिपादनार्थमाह—

तिरिक्त्वा असंजदसम्माहट्टि दृष्टाणे अत्थि खड्डयसम्माहट्टी वेदग-
सम्माहट्टी उवसमसम्माहट्टी ॥ १५८ ॥

तिरिक्त्वा संजदासजद-दृष्टाणे खड्डयसम्माहट्टी णत्थि अवसेसा
अत्थि ॥ १५९ ॥

तिर्यहु क्षायिकसम्यग्दृष्टय सयतामयता किमिति न सन्तीति चेन्न, क्षायिक-
सम्यग्दृष्टीना भोगभूमिन्तरेणोत्पत्तेरभावात् । न च भोगभूमावुत्पन्नानामशुभतोपादान-
सम्भवति तत्र तद्विरोधात् । सुगममन्यत् ।

शुका—स्वयभूरमण द्वीपवर्ती स्वयंप्रभ परंतके इस ओर और मानुषोत्तर परंतके
उस ओर असंख्यात द्वीपोंमें भोगभूमिके समान रचना होनेसे यद्वापर देशप्रती नहीं पाये जाते
हैं, इसलिये यह सूत्र घटित नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि घेरके सब-घसे देवों अथवा दानवोंके द्वारा कर्मभूमिसे
उठाकर ठाढे गये कर्मभूमिज तिर्यचोंका सब जगह सङ्गाय होनेमें कोई विरोध नहीं आता है,
इसलिये यद्वापर तिर्यचोंके पाचों गुणस्थान बन जाते हैं ।

अथ तिर्यचोंमें सम्यग्दर्शनके विशेष प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

तिर्यच असयतसम्यग्दष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दष्टि, वेदकसम्यग्दष्टि और उपशम
सम्यग्दष्टि होते हैं ॥ १५८ ॥

अथ तिर्यचोंके पाचवें गुणस्थानमें विशेष प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

तिर्यच सयतासयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दष्टि नहीं होते हैं । शेषके दो सम्य-
ग्दर्शनोंसे युक्त होते हैं ॥ १५९ ॥

शुका—तिर्यचोंमें क्षायिकसम्यग्दष्टि जीव सयतासयत क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, तिर्यचोंमें यदि क्षायिकसम्यग्दष्टि जीव उत्पन्न होते हैं तो
ये भोगभूमिमें ही उत्पन्न होते हैं, दूसरी जगह नहीं । परन्तु भोगभूमिमें उत्पन्न हुए जीवोंके
अणुमतकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है, क्योंकि, यद्वापर अणुमतके होनेमें आगमसे विरोध
आता है । शेष कथन सुगम है ।

अब तिर्यच पिशेषोंमें प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

एव पचिंदिय-तिरिक्खा पचिंदिय तिरिक्ख-यज्जत्ता ॥ १६० ॥

एतदपि सुचोध्यम् ।

पचिंदिय तिरिक्ख-जोणिणीसु असजदमम्माइट्टि-मजदामजद-
ट्टाणे खइयसम्माइट्टी णत्थि, अवमेसा अत्थि ॥ १६१ ॥

तत्र धार्मिकमध्यगृहीतानामुत्पत्तेरभावात्तत्र दर्शनमोहनीयस्य क्षपणामावाह ।

मनुष्यादनुप्रतिपादनार्थमाह—

मणुस्सा अत्थि मिच्छाइट्टी मासणमम्माइट्टी सम्मामिच्छाइट्टी
असंजदसम्माइट्टी सजदामजदा सजदा ति ॥ १६० ॥

सुगममतम् ।

एवमद्वाङ्मय दीव ममुद्देसु ॥ १६३ ॥

नैरसम्बन्धेन ज्ञितानां तपतानां मयतामयतानां च सर्वदाप्यमृतं मम भवति चेन्न, मानुषोत्तरात्परता देवस्य प्रयागतात्पि मनुष्याणां शमनादित्यतः ।

इत्याश्रयार पंचेन्द्रिय निर्दोषं भवति यत्तद्विदुष पचाज्ज-निर्दोषं भवति ॥ १६० ॥

इस श्रुतवा अर्थे भी श्रुतेऽपि है ।

अथ योनिमयी निर्दोषं, तं विनेव प्रानिपादुम कान्ते त्रिये श्रुत कटन है—

योनिमयी-पंचेन्द्रिय निर्दोषं, अनेपणमज्जट्टाए अरि अनेपणमज्जट्टाए अनेपणमज्जट्टाए

धार्मिकमध्यगृहीतानां भवति चेन्न, मानुषोत्तरात्परता देवस्य प्रयागतात्पि मनुष्याणां शमनादित्यतः ।

योनिमयी पंचेन्द्रिय निर्दोषं, अनेपणमज्जट्टाए अरि अनेपणमज्जट्टाए अनेपणमज्जट्टाए

भीर जो पहा उतपत्त होत है । उन्ने देवममाहनीयता श्रवण भवति ॥ १६१ ॥ अथ यदा धार्मिक

मध्यगृहीत भवति पाया जाता है ।

अथ मनुष्याने विनेव प्रानिपादुम कान्ते त्रिये श्रुत कटन है—

मनुष्य मिच्छाट्टाए मासणमज्जट्टाए अनेपणमज्जट्टाए अनेपणमज्जट्टाए अनेपणमज्जट्टाए

संयत भवति श्रवण होत है ॥ १६२ ॥

इस श्रुतवा अर्थे सुगम है ।

उन्नामे भवति विनेव कटनेक त्रिये श्रुत कटन है—

इतीमकार हार दीव भीर वा ममुद्देसि जायता कटिद ॥ १६३ ॥

प्रेषा—वर्तते संवत्सरं द्वाविंशत्ये संवत्सरे अथ संवत्सरे अथ संवत्सरे अथ संवत्सरे

दीव भीर ममुद्देसि मज्जाह वदा अने पत्ता माय कनेमे कदा होत है ।

ममाधान—भवति कथंवि, मायुषोत्तर पचाज्ज इत तत्र दृष्टं दृष्टं दृष्टं दृष्टं

मनुष्याणां शमन भवति हो शक्यता है । ऐसा व्याख्य है कि जं वचन अक्षरार्थे दृष्टं दृष्टं दृष्टं

न हि स्वतोऽममर्थोऽन्यत ममर्थो मन्त्यतिप्रसङ्गात् । अथ म्यादर्धतृतीयसन्ध्येन किं द्वीपो विनियत्ये उत समुद्र उत द्वापपीति ? नान्त्योपान्त्यविरुद्धौ मानुषोत्तरात्परतोऽपि मनुष्याणामस्तित्प्रसङ्गात् । अस्तु चेन्न, द्वीपत्रये मनुष्याणा सत्त्वप्रसङ्गात् । न तदपि मन्त्रप्रियोधान् । नादिविरुद्धोऽपि समुद्राणा सग्यानियमाभावात् सर्वसमुद्रेषु तत्त्वप्रसङ्गादिति ।

अत्र प्रतिनिधीयते । नान्त्योपान्त्यविरुद्धोक्तदोषा समाह्वयन्ते, तयोस्तन्मय पदमात् । न प्रथमविरुद्धोक्तदोषोऽपि द्वीपेऽर्धतृतीयसन्ध्येषु मनुष्याणामस्तित्प्रसङ्गमिति शेषद्वीपेषु मनुष्यामात्रमिद्विष्यन्मानुषोत्तरत्वं प्रत्यविशेषतः शेषममुद्रेषु तदभावात्तिष्ठे । नाप्येवमुद्राणा मानुषोत्तरत्वमसिद्धमाराचनद्वीपभागस्याप्यन्यथा मानुषोत्तरत्वानुपपत्तेः । तत्र सामर्थ्याद् द्वयोः समुद्रयोः सन्तीत्यनुक्तमप्यवगम्यते ।

मन्त्रोंके संबंधमें भी समर्थ नहीं हो सकता है । यदि ऐसा न माना जाये तो अतिप्रमाण हो आ जायगा । अतः मानुषोत्तरके उक्त और मनुष्य नहीं पाये जाते हैं ।

परा—अर्धतृतीय राज्य द्वीपका विशेषण है या समुद्रका अथवा दोनोंका ? इसमें भी भ्रम है । विचारना करायकर नहीं है, क्योंकि, ऐसा मान लेने पर मानुषोत्तर पर्यंतके उक्त राज्य भी मनुष्योंके अधिकारका प्रमाण आ जायगा । यदि यह कहा जाये कि अच्छी बात है मानुषोत्तरके पर भी मनुष्य पाये जायें तो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, इसप्रकार तो तब द्वीपोंमें मनुष्योंके सत्त्वप्रसङ्ग प्रमाण आता है । और ऐसा माना नहीं जा सकता, क्योंकि स्वयं विशेष आता है । इसीप्रकार एका विचार भी नहीं बन सकता है, क्योंकि इसप्रकार द्वीपोंका मन्त्राका नियम होने पर भी समुद्रकी मन्त्राका कोई नियम नहीं बनता है, इसविषय मन्त्रोंमें मनुष्योंके सत्त्वप्रसङ्ग प्रमाण प्राप्त होता है ।

समाधान—दूसरा और तीसरा विचारमें दिखे यह होय तो प्राप्त हो नहीं होना है, क्योंकि परमाण्वमें ऐसा माना ही नहीं गया है । इसीप्रकार प्रथम विचारमें दिखे गया था कि प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि कोई द्वीपमें मनुष्योंके अधिकारका नियम हो जानपर शेषमें द्वीपोंमें द्विप्रकार मन्त्रोंके अधिकारकी सिद्धि हो जाती है उक्तप्रकार शेष मन्त्रोंमें भी मनुष्योंका अधिकार सिद्ध हो जाता है क्योंकि कोई द्वीपोंका स्वयंस्वरूप शेष द्वीपोंकी तरह वा समुद्रोंका अतिरिक्त स्वयं समुद्र या मानुषोत्तरम पर है अतः शेष द्वीपोंकी तरह शेष मन्त्रोंका भी मानुषोत्तरम पर होनेमें कोई विचारना नहीं है । इसप्रकार शेष द्वीपोंके नियम तो नियम मात्र है वही मन्त्र मन्त्रोंके नियम भी हो जाता है । इसलिये शेष मन्त्रोंमें मनुष्योंका अधिकार है यह बात निश्चय हो जाती है । मन्त्र मन्त्रों मन्त्रोंका मानुषोत्तर पर्यंत उक्त प्रमाण होता सिद्ध भी नहीं है अतः मन्त्रोंका द्विप्रकार भी मानुषोत्तर पर्यंत उक्त प्रमाण होता सिद्ध नहीं होता । इसलिये मन्त्रोंका वा मन्त्रोंमें मन्त्र प्रमाण आता है यह बात निश्चय हो जाती है ।

सम्यग्दर्शनविशेषप्रतिपादनार्थमाह--

मणुसा असजदसम्माइट्टि-सजदासजद सजद-दाणे अत्थि
सम्माइट्टी वेदयसम्माइट्टी उवसमसम्माइट्टी ॥ १६४ ॥

सुगमत्त्रान्नात्र वक्तव्यमस्ति ।

एव मणुम पज्जत्त-मणुसिणीसु ॥ १६५ ॥

एतदपि सुगमम् ।

देवादेशप्रतिपादनाधमाह--

देवा अत्थि मिच्छाइट्टी सासणसम्माइट्टी सम्मामिन्हाइट्टी जम-
जदसम्माइट्टि ति ॥ १६६ ॥

एव जाव उवरिम-उवरिम-गेरेज्ज-विमाण-वासिय-देवा ति
॥ १६७ ॥

देवा असजदसम्माइट्टि दाणे अत्थि खइयसम्माइट्टी वेदय
सम्माइट्टी उवसमसम्माइट्टि ति ॥ १६८ ॥

अथ मनुष्योंमें सम्यग्दर्शनके विनोद प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं--

मनुष्य भस्मयत्तसम्यग्दाहि भयतासंयत और सयत्त गुणरथाभ्यो हान्विक्कसम्यग्दाहि
वेदकसम्यग्दाहि और उपपत्तसम्यग्दाहि होते हैं ॥ १६४ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम होनेसे यदा पर विनोद कहने योग्य नहीं है ।

अथ विनोद मनुष्योंमें विनोद प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं--

इसीप्रकार पयात्त मनुष्य और पर्याप्त मनुष्यविषयोंमें ओ जानना चाहिए ॥ १६५ ॥

इस सूत्रका अर्थ भी सुगम है ।

अथ देवोंमें विनोद प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं--

देव मिच्छादाहि सासाद्वत्तसम्यग्दाहि सम्मामिन्हादाहि और जमजदसम्यग्दाहि
होते हैं ॥ १६६ ॥

अथ उक्त अर्थके देवविषयोंमें प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं--

इसीप्रकार उपरिम भयेयक्के उपरिम पण्ड सक्के देव जानना चाहिए ॥ १६७ ॥

अथ देवोंमें सम्यग्दर्शनके प्रेक्षणोंके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं--

देव भस्मयत्तसम्यग्दाहि गुणरथाभ्यो हान्विक्कसम्यग्दाहि वेदकसम्यग्दाहि और उपपत्त

सुगमत्वात्सूत्रप्रितये न किञ्चिद्वक्तव्यमस्ति ।

भवणवासिय-वाणवैतर जोइसिय देवा देवीओ च सोधम्मीसाण
कप्पवासिय-देवीओ च असंजदसम्माइट्ठिङ्गणे राइयसम्माइट्ठी णत्थि
अवसेसा अत्थि अवसेसियाओ अत्थि ॥ १६९ ॥

किमिति धायिक्कमम्यग्दृष्टयस्तत्र न मन्तीति चेन्न, देवेषु दर्शनमोहभयपणामावा
स्थापितदर्शनमोहसर्मणामपि प्राणिना भयनवासाद्विषयमदेवेषु सर्वदेवीषु चोपसर
भावाच्च । शेषमम्यस्त्वद्वयस्य तत्र नय सम्मय इति चेन्न, तत्रोत्पन्नचीनाना पश्चात्तप
र्यायपणिने सत्त्वात् ।

सोधम्मीसाण प्पहुडि जाव उवरिम-उवरिम गेवज्ज विमाण
वासियदेवा असंजदसम्माइट्ठिङ्गणे अत्थि राइयसम्माइट्ठी वेदग
सम्माइट्ठी उपसमसम्माइट्ठी ॥ १७० ॥

सम्यग्दृष्टि दोने ६ ॥ १, ८ ॥

पूया- तीनों सूत्रोंका अर्थ सुगम होनेसे इनके विषयमें आधिक कुछ भी नहीं कहना है ।
अथ भयनवासी आदि देवोंमें विशेष प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं—

भयनवासी, घानग्यन्तर और ज्योतिषी देव तथा उनकी देविद्या और सौच्यमें नष्ट
ईमानवस्तुधामी दुरिया भयनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें धायिक्कमम्यग्दृष्टि नहीं होने ६ वा
नहीं होती है । दोनके दो सम्यग्दर्शनोंसे कुछ होने है या होनी है ॥ १७० ॥

पूया—धायिक्कमम्यग्दृष्टि जीय उर स्थानोंमें क्यों नहीं होने है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, एक तो यहापर दर्शनमोहनीयका क्षयण नहीं होता है ।
अथ जिन जायोन पूय पर्यायमें दर्शनमोहनीयका क्षय कर दिया है उनकी भयनवासी आदि
अप्यम देवोंमें और सभी देविषोंमें उत्पत्ति नहीं होती है ।

पूया--क्षयके दो सम्यग्दर्शनोंका उन स्थानोंमें मन्त्राय केने संभव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहापर उत्पन्न हुए जीवोंके भयनपर सम्यग्दर्शनका
उत्पाद हो जाता है, इसलिये उनके दो सम्यग्दर्शनोंका यहापर मन्त्राय पाया जाता है ।

अथ जीव देवोंमें सम्यग्दर्शनके भद भयनानके लिये सूत्र कहते हैं—

सम्यग् धार वण्णत्त कम्मम जेक्क उपत्तिम प्रययक्के उपत्तिम प्राणत्त इदमत्त
द्वय भयनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें धायिक्कमम्यग्दृष्टि वेदकमम्यग्दृष्टि और उत्पन्नमात्रावत्ति
होने है ॥ १, ३० ॥

त्रिभिधेन मध्यस्त्वन् सह तत्रोत्पत्तेर्द्वयान् । तत्रोत्पद्य द्विभिधमभ्युत्थानो-
पायानात्तत्र तेषा मध्य मध्यमिति ।

अपदेयाना सम्यग्दर्शनभेदप्रतिपादनार्थमाह—

अणुदिस-अणुत्तर-विजय वहजयत-जयतापराजिदमग्नमिदि-
विमाण-पासिय-देवा असजदसम्माइट्टि द्वाणे अत्थि गट्ठमम्माइट्ठी
वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी ॥ १७१ ॥

कथं तत्रापिगममयकस्य मयमिति चेत्तथ च तत्र तस्यापिगम 'नरापधस्य
सापिगमसापिगमिगमस्य' नित्यमनुपपत्त । नापि मिपादस्य उपाभापिगम
सम्यग्दर्शना सन्तस्तत्रा पधन्त तेषा तन मह मरणाभावात् । न, उपगमभावात्तनामा
मयमितिना च तत्रोपपितस्तत्र तत्त्वसागिगेभात् । उपगमस्येपास्य उपागम
सम्यग्दर्शना न प्रियन्त अपिगमिगमस्य मयमितिगमिगमसापिगमिगमस्य उपागम

उक्त वेद्योमें तानों का प्रकारसे व्यवस्थागत है तथा आयोर्वा इत्यादि दत्त ज्ञाना द
अप्रा पद्यापर उत्पन्न होतवे पदार्थ पदार्थ आदि आवर्तमय दत्त का व्यवस्थागत है
होना है, इसप्रति उक्त वेद्योमें तीन व्यवस्थागतोंका स्पष्ट बत जाना है ।

अथ शीघ्रं देवैर्देवैः तद्व्याख्यातं मेव व्याख्यातं ॥ १ ॥ अथ च ॥ ६ ॥

नय अनुविशोमि भा विजय यजय न जयम अयशजिन मथा ॥ १ ॥ नय ह म पाव
अनुतमि रदनेपाये हय अययतमपादधि गुणयथायम शशिवम ॥ २ ॥ ५०५॥ ॥ ॥
भा उपामसपादधि दोने ॥ ३ ॥ ॥

पञ्चा—यदापि उपर्युक्त सम्यग्दर्शनेन नष्टासि ५१ पाया आन, ६०

प्रतिपदा—यथापि उभया साक्षात् वल्लभौ। यथा आश्रयः ८१

गुण - यद्वापि आ उपस हानं दं कलसं शशाङ्कस्य आर्षं शशाङ्कस्य ॥ १ ॥

पाया जाता है इसीलिये उनसे इष्टतम मर्यादागतक उत्पत्ति में १ मिनट ६ से १५
 मिथ्यादाह आय इष्टतम मर्यादागतक उत्पत्ति में १ मिनट ६ से १५
 इष्टतममर्यादाह उत्पत्ति में १ मिनट ६ से १५

समाधान— सही किया कि उपरि धन पर कर लगाया जाय कि न कर लगाया जाय। यदि कर लगाया जाय तो इससे देश का भद्र होगा कि नहीं। यह बात ही है कि क्या कर लगाया जाय।

[illegible]

चेत्त पश्चात्तनमिष्यात्तमस्यस्त्राम्यामनुपगमिनोपगमित्तारिग्रमादाभ्यां च तदे
उपग्यात् ।

ममनस्कासनम्भेदेन जीवपदार्थमाभिधाय ममनस्कासनम्भेदेन जीवपदार्थमाभि-
धायमाह—

मणिष्याणुवादेण अत्थि मण्णी अमण्णी ॥ १७२ ॥

गुणममेतच्चम् ।

मणिना गुणस्यानापानप्रतिपादनार्थमाह—

मण्णी मिच्छादट्टिप्पहुडि जाय सीणस्माय पीयराय छुमुत्त्या-
नि ॥ १७३ ॥

ममनस्कासनमभिधेयानिोऽपि तानि इति चेन्न, तेषां क्षीणास्मानां मना-
स्कासनानां वाप्यप्राप्त्याभावात्तदुपग्यात् । तस्मिन् भवतु केचित्तोपगमिन इति चेन्न
तदुपग्यात्तदुपग्यात्तदुपग्यात्तदुपग्यात् । अपानितः केचित्तो मनास्कासनानां वाप्य-

ममनस्कासनमभिधेयानिोऽपि तानि इति चेन्न, तेषां क्षीणास्मानां मना-
स्कासनानां वाप्यप्राप्त्याभावात्तदुपग्यात् । तस्मिन् भवतु केचित्तोपगमिन इति चेन्न
तदुपग्यात्तदुपग्यात्तदुपग्यात्तदुपग्यात् । अपानितः केचित्तो मनास्कासनानां वाप्य-

ममनस्कासनमभिधेयानिोऽपि तानि इति चेन्न, तेषां क्षीणास्मानां मना-
स्कासनानां वाप्यप्राप्त्याभावात्तदुपग्यात् । तस्मिन् भवतु केचित्तोपगमिन इति चेन्न
तदुपग्यात्तदुपग्यात्तदुपग्यात्तदुपग्यात् । अपानितः केचित्तो मनास्कासनानां वाप्य-

ममनस्कासनमभिधेयानिोऽपि तानि इति चेन्न, तेषां क्षीणास्मानां मना-
स्कासनानां वाप्यप्राप्त्याभावात्तदुपग्यात् । तस्मिन् भवतु केचित्तोपगमिन इति चेन्न
तदुपग्यात्तदुपग्यात्तदुपग्यात्तदुपग्यात् । अपानितः केचित्तो मनास्कासनानां वाप्य-

ममनस्कासनमभिधेयानिोऽपि तानि इति चेन्न, तेषां क्षीणास्मानां मना-
स्कासनानां वाप्यप्राप्त्याभावात्तदुपग्यात् । तस्मिन् भवतु केचित्तोपगमिन इति चेन्न
तदुपग्यात्तदुपग्यात्तदुपग्यात्तदुपग्यात् । अपानितः केचित्तो मनास्कासनानां वाप्य-

ममनस्कासनमभिधेयानिोऽपि तानि इति चेन्न, तेषां क्षीणास्मानां मना-
स्कासनानां वाप्यप्राप्त्याभावात्तदुपग्यात् । तस्मिन् भवतु केचित्तोपगमिन इति चेन्न
तदुपग्यात्तदुपग्यात्तदुपग्यात्तदुपग्यात् । अपानितः केचित्तो मनास्कासनानां वाप्य-

ममनस्कासनमभिधेयानिोऽपि तानि इति चेन्न, तेषां क्षीणास्मानां मना-
स्कासनानां वाप्यप्राप्त्याभावात्तदुपग्यात् । तस्मिन् भवतु केचित्तोपगमिन इति चेन्न
तदुपग्यात्तदुपग्यात्तदुपग्यात्तदुपग्यात् । अपानितः केचित्तो मनास्कासनानां वाप्य-

ग्रहणादिकेन्द्रियमदिति चेद्वस्तुतः यद्वि मनाऽनपश्ये ज्ञानोपपत्तिमात्रमाधित्यास्रि वस्तु
निरन्धनमिति चन्मनमाऽभावाद्बुद्धयतिशयाभावात्, यत्ता नानन्तरात्तदेष इति सुगममेवम् ।

असृणी एहदिय प्पहुडि जाव असृणि पचिदिया ति ॥ १७४ ॥

एतदपि सुगमम् ।

आहारसृजेन जीवप्रतिपादनार्थमाह—

आहाराणुवादेण अत्थि आहारा अणाहारा ॥ १७५ ॥

एतदपि सुगमम् ।

आहारगुणप्रतिपादनार्थमाह—

आहारा एहदिय प्पहुडि जाव सजोगिनेरलि ति ॥ १७६ ॥

अत्र कललेषाम्ममन र्माहारान् परित्यज्य नान्माहाग प्राप्य, अन्धधाहारकान्
विरहाभ्या सह विरोधात् ।

जीर्णोष्णं तरुणं वाटा पशुधौका ग्रहणं करते है ।

समाधानं—यदि मनुष्यी अपेक्षा न करके ज्ञानकी उपलब्धिमात्रका आशय करके ज्ञाना-
रूपसे अस्वेच्छापानेकी कारण होली तो येना होला । परंतु यन्मा ता है नहीं, यथोक्त वर्णान् मनुष्य
अभाषसे विचलद्भिः जीर्णोष्णं तरुणं केवलिक पुष्टिके अतिरावका अभाष भी कहा जाय-
इसलिये केवलिके पूयात् शीघ्र ज्ञानु नहीं होला ह । शीघ्र यथय सुगम है ।

अथ अस्वेच्छा जीर्णोष्णं गुणस्थान बनलानक लिख गृह्य कहन है—

अन्तर्ही जाय एकेन्द्रियसे लेकर अन्तर्ही पंचन्द्रियपवनत हा । ॥ १७७ ॥

यह गृह्य सुगम है ।

अथ आहारमागणाके द्वारा जीर्णोष्णं प्रतिपादन करनक ॥ १७८ गृह्य कहन है—

आहारमागणाक अनुवासे आहारक भाव अनाहारक जीव हा । ॥ १७९ ॥

यह गृह्य भी सुगम है ।

अथ आहारमागणामे गुणस्थानोके प्रतिपादन करनक ॥ १८० गृह्य कहन है —

आहारक जाय एका द्वयस लेबर अवर्तगवचय गुणस्थानक हा । ॥ १८१ ॥

यहापर आहार गन्धस्व रसगन्धस्व स्पर्शाह्व कृप्याह्व इत्येवमहा ॥ १८२ गृह्य कहन है—

एतद्भवा भावमाहारका है । ग्रहण करनक आहारक अ एव, अहारक त जीव । एतद्भवा अर्थ
विरोध भावा है ।

अणाहारा चक्षुषु दृष्टेः विग्नहृद्द समावृण्णाणं केवलीण वा
समुग्धाद-गदाणं अजोगिकेवली सिद्धा चेदि ॥ १७७ ॥

एते शरीरप्रायोग्यपुद्गलोपादानरहितत्वादानाहारिण उच्यन्ते ।

इदि मन सुप्त निरण समत ।

अथ अनाहारकाके गुणस्थान बालानके लिये सूत्र कहते हैं—

विप्रदगनिकः प्राप्त जीवाके मिथ्यात्व, सासादन और अखिलमदःशेष तथा समुदा
तमय केयदिकेके सयोगिकेवली इन चार गुणस्थानाम रहनेवाले जीव भीत भयोगिकेवली
तथा मिद अनाहारक होने हैं ॥ १७७ ॥

ये ज्ञान शरीरके योग्य पुद्गलाका ग्रहण नहीं करते हैं, इसलिये अनाहारक होने हैं ।

इमग्रहात् मन्त्रप्रवृत्त्या सूत्र निरण समाप्त हुआ ।

१ अनाहारकाके गुणस्थान बालानके लिये सूत्र कहते हैं—
विप्रदगनिकः प्राप्त जीवाके मिथ्यात्व, सासादन और अखिलमदःशेष तथा समुदा
तमय केयदिकेके सयोगिकेवली इन चार गुणस्थानाम रहनेवाले जीव भीत भयोगिकेवली
तथा मिद अनाहारक होने हैं ॥ १७७ ॥



परिशिष्ट

२५ णगडया चउट्टाणेसु अथि मिच्छा-
इही मामणमम्माइही मम्मा
मिच्छाइही अमनदमम्माइहि
ति ।

२६ तिरिसया पचसु ट्टाणेसु अथि
मिच्छाइही मामणमम्माइही
मम्मामिच्छाइही अमनदमम्मा
इही मचदामचत्ता ति ।

२७ मणुम्मा चामसु गुणट्टाणसु
अथि मिच्छाइही, मामणमम्मा
इही, मम्मामिच्छाइही, अमनद
मम्माइही, मचत्तमचत्ता, पमत्त-
मचत्ता, अप्पमत्तमचत्ता, अप्पुच-
करणपरिहृमुद्धिमचत्तेसु अथि
उत्तममा मत्ता, अणियट्ठिवादन
मापगडयपरिहृमुद्धिमचत्तेसु अथि
उत्तममा मत्ता, सुद्धममापगडय
परिहृमुद्धिमचत्तेसु अथि उत्त
ममा मत्ता उत्तमत्तमपापराय
मयउद्धमत्ता मत्तामत्तापराय
मयउद्धमत्ता मत्तामत्तापराय
अत्तामत्तापराय ति ।

२८ चत्ता चत्तसु ट्टाणसु अथि मिच्छा,
इही मामणमम्माइही मम्मा,
मिच्छाइही, अमनदमम्माइहि
ति ।

२९ निगिक्कया मत्ता अणियट्ठिवादन
चत्ता अमत्तामत्तापराय ति ।

२०४ ३/ मणु
प्यट्ट

३२ नण

३३ इट्ठिया

रीट्ठिया

पचिन्ति

३४ अट्ठिया

रात्ताट्ठिया

सुद्धमाट्ठिया

३५ रीट्ठिया

जत्ता। तत्ता

अपज्जत्ता ।

पज्जत्ता अपज

दुग्गहा, मत्ता

द्विन्ति पज्जत्ता

अमत्ता दुग्गहा,

जत्ता तत्ति ।

३६ अत्ताया रत्ताया

रत्ताया अम

अत्ताया रत्ताया

३७ पचिन्ति

अमत्ताया

दुग्गहा रत्ताया

३८ नण परमाणाया इति

३९ रायाणुत्ताया अथि पृ

इया राउत्ताया नउ

पाउकाइया वणप्पइसाइया तग
काइया असाइया चदि ।

२६६

काइया एणम्मि चय मिच्छा
इच्छिटाणे ।

२७४

४० पुत्रिकाइया दुविहा, बादरा
मुहमा । बादरा दुविहा, पञ्चा
अपञ्चा । मुहमा दुविहा,
पञ्चा अपञ्चा । आउसाइया
दुविहा, बादरा मुहमा । बादरा
दुविहा पञ्चा अपञ्चा ।

४४ तमसाइया वाइदियप्पहुडि नार
अनागिरसलि ति ।

२७५

४५ बादराइया बादराइदियप्पहुडि
जार अनागिरसलि ति ।

२७६

४६ तण परमसाइया चदि ।

२७७

४७ जोगाणुगदण अत्थि मणजागी
वारिचोगी कायनागी चदि ।

२७८

४८ अनागी चदि ।

२८०

४९ मणजागा उउविहा, मद्यमण
जागा माममणजागा मद्यमाम
मणजागा अमद्यमाममणजागा
चदि ।

२८०

५० मणजागा मद्यमणजागा अमद्य
माममणजागा मण्णिमिच्छाइहि
प्पहुडि नार मनागिरसलि ति ।

२८२

५१ माममणजागा मद्यमाममणजागा
मण्णिमिच्छाइहिप्पहुडि नार
रीणरमायरीयगयल्लुमथा
लि ।

२८५

५२ वारिजागा चउव्विहा मरसि
जागा मामसिजागा मरमाम
सिजागा अमरमामसिजागा
ति ।

२८६

५३ सिजागा अमरमामसि
जागा सइयप्पहुडि नार
मजागिरसलि ति

२८७

५१ वणप्पइसाइया दुविहा, पञ्च
मरीता माधारणमरीता । पञ्च
सरीता दुविहा पञ्चा अपञ्चा ।
साधारणमरीता दुविहा वाग्ग
मुहमा । वाग्ग दुविहा पञ्चा
अपञ्चा । मुहमा दुविहा
पञ्चा अपञ्चा ति ।

६८

५२ वणप्पइसाइया दुविहा पञ्चा
अपञ्चा ।
५३ वणप्पइसाइया आउसाइया तउ
इया वाग्गइया वणप्पइ

| पृष्ठ मन्त्रा | मन्त्र | पृष्ठ मन्त्रा | मन्त्र |
|---|--------|---|--------|
| ५४ मन्त्रचिनागो सण्णिमिच्छाद्वि-
प्पहुडि जाय सजोगिरेलि ति । २८८ | | इद्विप्पहुडि जाय अमनदसम्मा
इद्वि ति । ३०१ | |
| ५५ मोमचिजागा सन्चमोमचि
जोगो सण्णिमिच्छाद्विप्पहुडि
जाय मीणस्मायमीयगयल्लदु
मत्था ति । २८९ | | ६३ आहारकायनोगो आहारमिम्म
कायनोगो म्महि चेय पमत्त
मनदद्वाणे । ३०२ | |
| ५६ कायजोगो सत्तमिहो, ओरालिय
कायजोगो ओरालियमिस्सकाय
जोगो वेउव्वियकायजोगो वेउ
व्वियमिस्सकायजोगो आहार
कायजोगो आहारमिस्सकायजोगो
कम्मइयकायजोगो चेदि । २८९ | | ६४ कम्मइयकायनोगो म्मइय
प्पहुडि जाय मनोगिरेलि ति । ३०३ | |
| ५७ ओरालियकायजोगो ओरालिय-
मिस्सकायजोगो तिरिक्खमणु
स्ताण । २९५ | | ६५ मणनोगो चचिजोगो कायनोगो
मण्णिमिच्छाद्विप्पहुडि जाय
सजोगिरेलि ति । ३०८ | |
| ५८ वेउव्वियकायजोगो वेउव्विय
मिस्सकायजोगो टेण्णेरइयाण । २९६ | | ६६ चचिजोगो कायनोगो मीइदिय
प्पहुडि जाय अमण्णिपचिदिया
ति । ३०९ | |
| ५९ आहारकायजोगो आहारमिस्स
कायजोगो सजदाणमिद्विपत्ताण । २९७ | | ६७ कायनोगो एइदियाण । ३०९ | |
| ६० कम्मइयकायजोगो निग्गहगड-
समान्णाण केउल्लिण वा समु
ग्धाण्णदाण । २९८ | | ६८ मणजोगो चचिजोगो पज्जचाण
अत्थि, अपज्जचाण णत्थि । ३१० | |
| ६१ कायजोगो ओरालियकायजोगो
ओरालियमिस्सकायनोगो एइ-
दियप्पहुडि जाय सनोगिरेलि
ति । ३०५ | | ६९ कायजोगो पज्जचाण नि अत्थि,
अपज्जचाण नि अत्थि । ३१० | |
| ६२ वेउव्वियकायजोगो वेउव्विय-
मिस्सकायनोगो सण्णिमिच्छा | | ७० छपज्जचीओ, ठ अपज्जचीओ । ३११ | |
| | | ७१ सण्णिमिच्छाद्विप्पहुडि जाय
अमनदसम्माइद्वि ति । ३१२ | |
| | | ७२ पच पज्जचीओ, पच अपज्ज
चीओ । ३१३ | |
| | | ७३ मीइदियप्पहुडि जाय अमण्णि
पचिदिया ति । ३१३ | |
| | | ७४ चत्तारि पज्जत्तीओ, चत्तारि
अपज्जत्तीओ । ३१४ | |

७५ लक्ष्मिदियाण ।

७६ आगान्धिकायजागा पञ्चत्ताण,
आगान्धिमिम्मरायजागा अप
ज्जत्ताण ।७७ वडत्तिपकायजागा पञ्चत्ताण,
वडत्तिपमिम्मरायजागा अप
ज्जत्ताण ।७८ आहारकायजागा पञ्चत्ताण,
आहारमिम्मरायजागा अपज्ज
त्ताण ।७९ णग्ग्या मिच्छाद्वि अमनद
मम्माद्विहाण मिया पञ्चत्ता
मिया अपज्जत्ता ।८० मामणमम्माद्वि-मम्मामिच्छा
द्विहाण गियमा पञ्चत्ता ।

८१ एव पत्ताण पुत्ताण णग्ग्या ।

८२ सिद्धिदिदि जात्र मत्तमाण पुढ
पीण णेरुया मिच्छाद्विहाण
मिया पञ्चत्ता, मिया अपज्जत्ता । ३२३८३ तामणमम्मान्नि पम्मामिच्छा
द्वि अमनदमम्माम्निहाण गि
यमा पञ्चत्ता ।८४ तिरिकारा मिच्छाद्वि मामण
मम्माद्वि-अमज्जमम्माम्नि-
द्विहाण मिया पञ्चत्ता मिया
अपज्जत्ता । ३२८५ मम्मामिच्छाद्वि-मज्जामन
द्विहाण गियमा पञ्चत्ता । ३२६३१४ ८६ एव पचिदियातिरिक्का पचि
दियतिरिक्कापञ्चत्ता । ३२७३१५ ८७ पचिदियतिरिक्काजाणिणीसु मि
च्छाद्वि तासणसम्माद्विहाणे
मिया पञ्चत्तियाआ, सिया
अपज्जत्तियाओ । ३२८३१७ ८८ सम्मामिच्छाद्वि असज्जदसम्मा-
द्वि-सज्जदामनद्विहाणे गियमा
पञ्चत्तियाओ । ३२८३१७ ८९ मणुस्ता मिच्छाद्वि-तासणस-
म्माद्वि-अमनदसम्माद्विहाणे
मिया पञ्चत्ता सिया अपज्जत्ता । ३२९३१९ ९० सम्मामिच्छाद्वि-सज्जदामनद-
मज्जद्विहाण गियमा पञ्चत्ता । ३२९

३२० ९१ एव मणुस्सपञ्चत्ता । ३३१

३२२ ९२ मणुमिणीसु मिच्छाद्वि-मामण
मम्माद्विहाण मिया पञ्चत्ति
याआ मिया अपज्जत्तियाआ । ३३२९३ मम्मामिच्छाद्वि-अमज्जदसम्मा
द्वि मज्जदामनद्विहाण गियमा
पञ्चत्तियाआ । ३३२२३ ९४ दया मिच्छाद्वि मामणमम्माद्वि
अमनमम्माम्निद्विहाण मिया
पञ्चत्ता मिया अपज्जत्ता । ३३४९५ मम्मामिच्छाद्विहाण गियमा
पञ्चत्ता । ३३५९६ भवणगामिय वाणरत्त नाश्मिय
दया दयाआ माधम्मामाण कप्प

नामिय देवीओ च मिच्छाडडि-
मामणमम्माडडिहाणे मिया
पज्जत्ता मिया अपज्जत्ता, मिया
पज्जत्तियाओ मिया अपज्जत्ति-
याओ ।

९७ मम्मामिच्छाडडि-अमनदम-
म्माडडिहाण नियमा पज्जत्ता
नियमा पज्जत्तियाओ ।

९८ मोघस्मीमाणप्पहुडि जार उ-
रिमउरिमिगेअज्ज ति विमाण
नामिय देवेमु मिच्छाडडि माम
णमम्माडडि अमनदमम्माडडि-
हाण मिया पज्जत्ता मिया
अपज्जत्ता ।

९९ मम्मामिच्छाडडिहाण नियमा
पज्जत्ता ।

१०० अणुदिम अणुचार निनय-वहन-
यत्त नयत्तारानित मन्तमि
दि विमाणनामिय-देवा अम-
जदसम्माडडिहाण मिया
पज्जत्ता, मिया अपज्जत्ता ।

१०१ वत्ताणुदाण अथि इथियत्ता
पुग्गिमवत्ता णुमयवत्ता अरगत
वेत्ता चेत्ति ।

१०२ इथियत्ता पुग्गिमवत्ता अमग्गि
मिच्छाडडिहाण चार
अग्गियत्ति नि ।

१०३ णुमयवत्ता ण्डियत्तहुडि
जार अग्गियत्ति नि ।

१०४ तेण परमगदयेत्ता चेदि ।
१०५ णेग्गया चदुमु द्वाणेषु सुद्धा
णुमययेत्ता ।

१०६ तिरिक्खा सुद्धा णुमययेत्ता
ण्डियत्तहुडि जार चउरि-
दिया ति ।

१०७ तिरिक्खा तिरेत्ता अनग्गि
पचिदियत्तहुडि जार सत्ता
मत्ता ति ।

१०८ मणुस्मा तिरेत्ता मिच्छाडडि
प्पहुडि जार अग्गियत्ति ति ।

१०९ तेण परमगदयेत्ता चेत्ति ।

११० दत्ता चदुमु द्वाणेषु दुवेत्ता,
इत्थियेत्ता पुग्गिमत्ता ।

१११ रत्तायाणुसाण अथि पाप
रत्ताई माणरत्ताई मायरत्ताई
लाभरत्ताई अरत्ताई चेत्ति ।

११२ राधरत्ताई माणरत्ताई माय
रत्ताई ण्डियत्तहुडि चार
अग्गियत्ति नि ।

११३ गमरत्ताई ण्डियत्तहुडि चार
मममापगाइयमुडिमत्ता नि ।

११४ अरत्ता चदुमु द्वाणेषु अथि
उत्तमत्तामायत्तापगाइयत्ता
माणरत्ताया रापगाइयत्ता था
मत्तामायत्ता अत्तामायत्ता
नि ।

| श्रुत सप्त्या | श्रुत | श्रुत सप्त्या | श्रुत | श्रुत |
|--|-------|---|-------|-------|
| ११५ पाणाणुराण्ये अतिथि मत्ति
अण्णाणी सुअण्णाणी विमग
णाणी आभिणिवाहिणणाणी
सुदणाणी ओहिणाणी मणपज्ज
वणाणी केरुत्तणाणी चेदि । ३५३ | | १२२ केरुत्तणाणी निमु द्वाणमु
सत्तोमकेरुत्ती अत्तोमकेरुत्ती
सिद्धा चेदि । ३६७ | | |
| ११६ मत्तिअण्णाणी सुअण्णाणी
एहत्तिपप्पहुटि जार मामण
सम्माइट्टि ति । ३६१ | | १२३ मत्तमाणुवाण्ये अतिथि मत्तदा
सामादयत्तेदोत्ताराणमुट्टि-
मत्तदा परिहारमुट्टिमत्तदा
सुत्तमापरादयमुट्टिमत्तदा न
हाक्कादपरिहारमुट्टिमत्तदा म
त्तदायत्तदा अमत्तदा चेदि । ३६८ | | |
| ११७ विमगणाण मण्णिमिच्छाईहण
वा मामणसम्माइहण । ३६७ | | १२४ मत्तदा पमत्तमज्जदप्पहुटि चार
अत्तोमकेरुत्ति नि । ३७२ | | |
| ११८ पज्जत्ताण अतिथि, अपज्ज
त्ताण अतिथि । ३६२ | | १२५ सामादयत्तदात्ताराणमुट्टि-
त्तदा पमत्तत्तदप्पहुटि जार
अणियट्टि वि । ३७४ | | |
| ११९ सम्मामिच्छाईट्टि द्वाण नि
गिग वि पागाणे अण्णाणेण
मिस्समाणि । आभिणिवाहिण
णाण मत्तिअण्णाणेण मिस्सिय,
सुदणाण सुदअण्णाणण मि
स्सिय, ओहिणाण विमगणा
णेण मिस्सिय, निण्णि वि
णाणाणि तण्णाणण मिस्सानि
वा । ३६३ | | १२६ परिहारमुट्टिमत्तदा दागु द्वाणमु
पमत्तत्तदद्वाण अपपमत्तत्तद
द्वाण । ३७५ | | |
| १२० आभिणिवाहिणणाण सुदणाण
आहिणाण अमत्तदमत्तमाइट्टि
पप्पहुटि चार म्मीणत्तमाय
पीदरागत्तदुत्तमा नि । ३६४ | | १२७ सुत्तमापरादयमुट्टिमत्तदा न
वट्टि चर मत्तमत्तपरादय
मुट्टिमत्तदात्तदा । ३७८ | | |
| १२१ मणपक्षवणाणी पमत्तमज्जद
प्पहुटि जार म्मीणत्तमायपीद
रागत्तदुत्तमा वि । ३६६ | | १२८ जहाक्कादपरिहारमुट्टिमत्तदा न
दुगु द्वाणमु उत्तमतत्तद
वायगवात्तदुत्तमा मत्तत्तदा
परीदरागत्तदुत्तमा मत्त
त्तदा अत्तमात्तदा नि । ३७७ | | |
| | | १२९ मत्तत्तमत्तदा उत्तमात्तदा
मत्तत्तमत्तदा द्वाण । ३७९ | | |

| सूत्र सख्या | सूत्र | पृष्ठ सूत्र सख्या | सूत्र | पृष्ठ |
|-------------|--|-------------------|---|-------|
| | वासिय देवीओ च मिच्छाडट्टि-
सामणमम्माडट्टिहाणे मिया
पज्जत्ता मिया अपज्जत्ता, मिया
पज्जत्तियाओ मिया अपज्जत्ति-
याओ । ३३५ | १०४ | तेण परममग्गेदा चेदि । ३४ | |
| | | १०५ | णेरइया चदुसु ट्टाणेसु सुद्धा
णनुमयेदा । ३४ | |
| ९७ | मम्मामिच्छाडट्टि-अमज्जदम-
म्मामिट्टिहाणे णियमा पज्जत्ता
णियमा पज्जत्तियाओ । ३३६ | १०६ | तिरिक्खा सुद्धा णनुमयेदा
ण्डदियप्पहुडि जाव चउरि
दिया ति । ३४५ | |
| ९८ | सोघम्मीमाणप्पहुडि जाव उर-
रिमउरग्गिमगेरुज्ज ति निमाण
रामिय देवेसु मिच्छाडट्टि माम
णमम्माडट्टि अमज्जदमम्माडट्टि-
हाणे मिया पज्जत्ता मिया
अपज्जत्ता । ३३७ | १०७ | तिरिक्खा तिरेदा अनणि-
पचिदियप्पहुडि जाव सनदा
सनदा ति । ३४६ | |
| ९९ | मम्मामिच्छाडट्टिहाणे णियमा
पज्जत्ता । ३३९ | १०८ | मणुस्मा तिरेदा मिच्छाडट्टि
प्पहुडि जाव अणियट्टि ति । ३४६ | |
| १०० | अणुदिस्स अणुचार निचय-चइच-
यत चपत्तासरानित मग्गट्टमि-
ट्टि निमाणरामिय-देवा अम-
ज्जदमम्माडट्टिहाणे मिया-
पज्जत्ता, मिया अपज्जत्ता । ३३९ | १०९ | तेण परममग्गेदा चेदि । ३४७ | |
| १०१ | वेत्ताणुवाणेण अथि इत्थियेत्ता
पुग्गिमेत्ता णनुमयेत्ता अमग्ग-
वेदा चेत्ति । ३४० | ११० | देवा चदुसु ट्टाणेसु दुत्ते,
इत्थियेदा पुग्गिमयेदा । ३४७ | |
| १०२ | इत्थियेत्ता पुग्गिमेत्ता अमग्गि
मि ट्टाण्टिप्पहुडि जाव
अणियट्टि ति । ३४० | १११ | कवायाणुवादेण अत्थि कोष
कमाई माणरमाई मापरमाई
लोमरमाई अरुमाई चेदि । ३४८ | |
| १०३ | णनुमपवत्ता ण्डदियप्पहुडि
जाव अणियट्टि ति । ३४३ | ११२ | रोधरमाई माणरमाई माप
रमाई ण्डदियप्पहुडि जाव
अणियट्टि ति । ३४९ | |
| | | ११३ | लोमरमाई ण्डदियप्पहुडि जाव
सुग्गममापगग्गमुद्धितनदा ति । ३५० | |
| | | ११४ | अरुमाई चदुसु ट्टाणेसु अथि
उत्तमत्तमापरमापगग्गमुद्धितनदा
मापगग्गमापरमापगग्गमुद्धितनदा
मत्तामिगेरुत्ता अत्तामिगेरुत्ता
ति । ३५२ | |

| सूत्र सख्या | सूत्र | पृष्ठ | सूत्र सख्या | सूत्र | पृष्ठ |
|-------------|--|-------|-------------|--|-------|
| १३० | असज्जता ण्डनियप्पट्टि जाय
अमज्जन्मम्माइण्ठि ति । | ३७८ | १३९ | सुइलेस्मिया मणिमिच्छा-
इट्ठिप्पट्टि जाय मनोगि
केवलि ति । | ३९१ |
| १३१ | दमणाणुरादेण अत्थि चक्खु-
दमणी अचक्खुदसणी जायि
दसणी केवलदमणी चेदि । | ३७८ | १४० | तेण परमलेस्मिया । | ३९२ |
| १३२ | चक्खुदमणी चउरिणियप्पट्टि
जाय सीणरमायरीपगयउदु
मत्था ति । | ३८३ | १४१ | मनियाणुरादेण अत्थि भय
मिद्विया अभयमिद्विया । | ३९२ |
| १३३ | अचक्खुदमणी ण्डनियप्पट्टि
जाय सीणरमायरीपगयउदु
मत्था ति । | ३८३ | १४२ | भयसिद्विया ण्डनियप्पट्टि
जाय अनोगिरेवलि ति । | ३९२ |
| १३४ | ओयिदमणी अमनदमम्मा
इदट्ठिप्पट्टि जाय, सीणरमा
यरीपगयउदुमत्था ति । | ३८४ | १४३ | अभयमिद्विया ण्डनियप्पट्टि
जाय मणि मिच्छाइण्ठि ति । | ३९४ |
| १३५ | केवलदमणी तिसु द्दण्णेसु
मनोगिरेवली अनोगिरेवली
सिद्धा चेदि । | ३८५ | १४४ | सम्मचाणुरादेण अत्थि सम्मा
इदटी राइयमम्माइण्ठी वेदग
सम्माइण्ठी उरमममम्माइण्ठी
मामणमम्माइण्ठी सम्मामि
च्छाइण्ठी मिच्छाइण्ठी चेदि । | ३९५ |
| १३६ | लेम्माणुरादेण अत्थि सिंहे
लेस्मिया नील्लेस्मिया काउ
लेस्मिया नेउलेस्मिया पम्म
लेस्मिया सुहलेस्मिया अले
स्मिया चेदि । | ३८६ | १४५ | मम्माइण्ठी राइयसम्माइण्ठी
अमनदमम्माइण्ठिप्पट्टि जा
य अनोगिरेवलि ति । | ३९६ |
| १३७ | सिंहलेस्मिया नील्लेस्मिया
राउल्लस्मिया ण्डनियप्पट्टि
जाय अमनदमम्माइण्ठि ति । | ३९० | १४६ | वेदगमम्माइण्ठी अमनदग
म्माइण्ठिप्पट्टि जाय अण्णम
त्तमत्ता ति । | ३९७ |
| १३८ | नेउल्लिउया पम्मलेस्मिया
मणिमिच्छाइण्ठिप्पट्टि जाय
अमनदमम्मा ति । | ३९१ | १४७ | उरमममम्माइण्ठी अमनदग
म्माइण्ठिप्पट्टि जाय उरगत
रमायरीपगयउदुमत्था ति । | ३९८ |
| | | | १४८ | मागणमम्माइण्ठी ण्डनियप्पट्टि
जाय मागणमम्माइण्ठी एगण । | ३९८ |
| | | | १४९ | मम्माविच्छाइण्ठी ण्डनियप्पट्टि
जाय मम्माविच्छाइण्ठी एगण । | ३९९ |

| मन गत | मन | पुन | अ यत्र यदा | अन सन्ता | गाना | पुन | अन्य यदा |
|------------------------|-----|---------------|-------------|----------|--------------------|-----|--------------|
| १४ अतश्च बहु जानिष्या | ३० | मनु द्वा १, ६ | भाषारा नि ४ | ११ | चतुर्भेसपमाभो | १७९ | मो जी ४६ |
| ७१ अर्धं यो अर्धं विदे | १० | मूलाया | १०१३ द्वा ४ | ६ | परिच ययेदि विहूण | ९१ | आ नि ६६१ |
| १४ अयनाश्रित्या मारुती | २३६ | मूलाया | १०११ | ४ | अययिनि जयो | ११ | |
| १४ अस्मि निर धर्मवदे | ४ | द्वा १ | १३ | २०४ | ज य पतिवर्ष परेसो | ३८९ | मो जी ५१३ |
| १४ अद् बच्चनमिगगय | ६६ | मो जी | २०३ | १ | ज य सद्यमोसजुतो | २८२ | मो जी २१९ |
| ८३ अद् भारयदो पुरितो | १३१ | मो जी | २०२ | १२ | ज रमति अदो निध | २०२ | मो जी १४७ |
| ११ आर्जरा मरणधया | १०१ | मो जी | १२ | ८० | ज यो य इकनयार्ण | ११२ | |
| ०६ आण्ड बज्रमज्ज | १८ | मो जी | १ | १४० | ज पि इयिक्करण | २५८ | मो जी १७४ |
| ११ आण्ड निबालमदिय | १४४ | मो जी | २०९ | १ | ज नामे ठयणा इयि | ११ | स त १, ६ |
| ११ आण्डि परमार्थ | ३१ | | | २३ | जिह्वमोहतरुणो | ४१ | |
| ६३ आयदिया यपणयदा | ८० | मो ब | ८४ | ०२ | जिह्वायचणबहुलो | ३८९ | मो जी ५११ |
| | | | | | जिह्वेसखणमोहो | १९० | मो जी ६२ |
| | | | | | जिह्वययिहदुक्कम्मा | ४८ | |
| | | | | | जोयिधी जेय पुम | ३४२ | मो जी २७५ |
| | | | | | जो इतिपुत्तु विरदो | १७३ | मो जी २९ |
| | | | | | | | |
| ८३ आदि य जानु य | १३० | मो जी | १४१ | ४० | तत्तो खेय मुदाई | ५९ | |
| ० जियमोहिधणज्जणो | ८० | | | | तदियो य निवर् | ११२ | |
| ८१ जीयो बत्ता य दत्ता | ११८ | मो जी जी, | प्र ११ ३३६ | ६० | तग्गा भदिगय सुतेण | ९१ | स त ३, ६४-६५ |
| १४ जीया च्चदमयेया | ३७३ | मो जी | ४७८ | ११ | तारिसपटिणामद्वि | १८३ | मो जी ५४ |
| १६ जीले भउममाई | ३०४ | मूलाया | १०६ | ४ | तिथयरगणहरत्ते | १८ | |
| १ जीले ण सति ओगा | १०० | मो जी | ४३ | ५ | तिथयरगणसगह | १२ | स त १, ३ |
| १०४ अदि पु लक्खिज्जते | १६१ | मो जी | ८ | २ | तिथयरगणतिल | ४१ | |
| ११ जो जय सद्यमोसो | २८६ | मो जी | २०१ | ११० | तिथियति पुडिल | २०२ | मो जी १४१ |
| ११२ जो तसबहाउयिरओ | १७३ | मो जी | ३१ | ६४ | तिथिदा य आणुपुष्पी | ७९ | |
| १३ ज सामण्य गहण | १४० | मो जी | ४८८ | १०७ | त मिच्छते जहमस | १६३ | |
| | | | | | | | |
| ११ ज्ञान प्रमाणमिरयाहु | १७ | लघीय | ६, ८ | | | | |
| | | | | | | | |
| ०१ ण उ वण्ण पक्क | ३९० | मो जी | ५१७ | | २३ इलियमयणप्पयाया | ४१ | |
| | | | | | इ इव्वद्वियणयपर्य | १२ | स त १, ४ |
| | | | | | इ इव्वद्वियणयपर्य | १८६ | मो जी २२० |

| क्रम संख्या | गाथा | पृष्ठ | अथवा कहां | क्रम संख्या | गाथा | पृष्ठ |
|-------------|--------------------|-------|------------|-------------|-----------------------|-------|
| १३७ | एयणिगोदसरिरे | २७० | गो जी १९६ | | ग | |
| | | | मूलाचा | | | |
| | | | १७०३ | | ८३ गहकम्मणित्रित्ता | १७० |
| २० | " | ३९४ | " | | ३८ गणरायमद्यतलर | ३ |
| १०० | एयद्वियम्मि जे | ३८८ | गो जी ८२ | | १८ गयमउल्लमजल्लनल | ७३ |
| | | | म त १, ३३ | | ११ गोत्तेण गोदमो | " |
| ६ | एम करेमि य पणम | ७३ | मूलाचा १० | | ब | |
| | | | (अर्थममता) | | | |
| | ओ | | | | १० वक्कण ज पयाम | ३८ |
| ११ | ओरालियमुत्तय | २०१ | गो जी २२१ | | १६९ वत्तारि नि छेत्ता | ३०६ |
| १० | ओमा य हिमो धूम | २०३ | मूलाचा २१० | | २०७ व्यागी मडो चोक्को | ३०० |
| | | | आ चा नि | | ७० धारणउसो तह पव | ११० |
| | | | १०८ | | ३० चोहसपुत्तमहोपदि | ० |
| | क | | | | २०० चडो न मुपदि येर | ३८८ |
| ७० | कध खरे कध चिटे | १०० | मूलाचा | | १८ चित्तिपमचित्तिप य | ३०० |
| | | | १०१० दर्श | | छ | |
| | | | ४, ७ | | ७३ छत्रायन्नमजुत्तो | १०० |
| १६८ | कमेय व कम्ममप | २० | गो जी २४१ | | ३ छदप्यणवपयये | ति |
| १३० | कारिमणित्ठियाग | ३४० | गो जी २४८ | | (| |
| १०० | कागे हिदि अयधण | | | | १६ छपंउणपयिहाण | १०० |
| २०० | किण्हादिउत्तमगहिदा | ३०० | गो जी | | २१३ " | १० |
| १३३ | किमिरायवक्कणयु | ३० | गो जी १८३ | | १८३ छम्मामाउयमेम | ३०३ |
| १८ | कि कम्म केज कय | ३६ | मूलाचा ७० | | | मे |
| १३६ | कुक्किल्लमिनिध | १३१ | | | | धा |
| १३३ | कुयुविर्णीत्तम | १४३ | | | १३३ छगु दट्टिमागु पु | १०० |
| १०४ | कुयुत्ताणादिवायर | १०१ | गो जी १३ | | १३० छदिदि मय दाम | १४१ |
| | | | | | १०० छलण व परिपाय | ३३० |
| | कु | | | | व | |
| १० | कुल्लि दमम्मोद | ६३ | उपध म | | | |
| २१० | " | १० | " | | १४६ कयवेकड मय | १३० |

| पुनः प्रकाश | पृष्ठ | अक्षर | वर्ण | मात्रा | पृष्ठ | अन्यत्र |
|-----------------------|-------|--------|------|--------|----------------|---------------------------------|
| १४ अथ वसु आनयता | १० | अनु | दा | १६ | ११ | लोडामोसपमाभो १७० गो जी ४६ |
| ७१ अर्धे अर्धे विष्टे | ०० | मूलाया | | | ६० | पतिव जयेदि विष्टुण ११ मा नि ६६१ |
| ११४ अथानाया मन्त्रो | ००६ | मूलाया | | | ४ | जयवित्ति जयो ११ |
| ०० अथमे निव धामयदे | ४ | द्वय | ० | १३ | ००४ | जय पतिव परसो ३८९ गो जी ५१३ |
| १४४ अथ वज्रमगिगव | ६६ | गो | जी | २०३ | १ | जय सधमोसपुतो २२ गो जी २१९ |
| ८३ अथ भापयो पुर्वो | १३० | गो | जी | ५०२ | १८० | जय रमति जयो निष्ट २०२ गो जी १४७ |
| १३ आनया मरणमया | ०३ | गो | जी | १२ | ८० | जयमो य वज्रमया ११२ |
| ०६ आनय वज्रमय | १० | गो | जी | ५० | १४० | जय वि हरिपकरण २४० गो जी १७४ |
| ०१ आनय निवामाद्विष्ट | १४४ | गो | जी | ५०० | ० | जयमो य जयिष्ट १६ स त १, ६ |
| १० आनयि वसुविष्ट | २०० | | | | २३ | जयमो य जयिष्ट ४१ |
| ६३ आनयि वसुविष्ट | ८० | गो | जी | ८४ | १०२ | जयमो य जयिष्ट ३८९ गो जी ५११ |
| १०१ | १६८ | | | | १८३ | जयमो य जयिष्ट १९० गो जी ६२ |
| ८३ आनयि वसुविष्ट | १३० | गो | जी | १४१ | २६ | जयमो य जयिष्ट ४८ |
| ५० अथमोर्ध्वपण्डितो | ५० | | | | १७८ | जयमो य जयिष्ट ३४२ गो जी २७१ |
| ८१ आनयि वसुविष्ट | १३८ | गो | जी | जी, | १११ | जयमो य जयिष्ट १७३ गो जी ५९ |
| १०४ आनयि वसुविष्ट | ३७३ | गो | जी | ४३० | त | |
| १६० अलि आनयमा | ३०३ | मूलाया | | | ४० | जयमो य जयिष्ट ५९ |
| १ | ५० | गो | जी | ४३ | तयिषो य जयिष्ट | ११२ |
| १०४ अलि वसुविष्ट | १६१ | गो | जी | ८ | ६० | जयमो य जयिष्ट ११२ |
| १० जो जय सधमोसो | २६ | गो | जी | २८१ | ११८ | जयमो य जयिष्ट १८३ गो जी ५४ |
| ११८ जो जय सधमोसो | १७ | गो | जी | ३१ | ४ | जयमो य जयिष्ट ५८ |
| १३ अथमोर्ध्वपण्डितो | १५० | गो | जी | ४८२ | ५ | जयमो य जयिष्ट १२ स त १, ३ |
| १३ अथमोर्ध्वपण्डितो | १५० | गो | जी | ४८२ | २ | जयमो य जयिष्ट ४१ |
| १३ अथमोर्ध्वपण्डितो | १५० | गो | जी | ४८२ | १८० | जयमो य जयिष्ट २०२ गो जी १४० |
| १३ अथमोर्ध्वपण्डितो | १५० | गो | जी | ४८२ | ६४ | जयमो य जयिष्ट ७२ |
| १३ अथमोर्ध्वपण्डितो | १५० | गो | जी | ४८२ | १०७ | जयमो य जयिष्ट १६३ |
| १३ अथमोर्ध्वपण्डितो | १५० | गो | जी | ४८२ | द | |
| १३ अथमोर्ध्वपण्डितो | १५० | गो | जी | ४८२ | ४३ | जयमो य जयिष्ट ५९ |
| १३ अथमोर्ध्वपण्डितो | १५० | गो | जी | ४८२ | ६ | जयमो य जयिष्ट १२ स त १, ४ |
| १३ अथमोर्ध्वपण्डितो | १५० | गो | जी | ४८२ | ११८ | जयमो य जयिष्ट २०२ गो जी १४० |

क्रम मन्त्रा गाना ११ अन्तर कर्मा क्रम मन्त्रा गाना ११ अन्तर कर्मा

१४७ गणनिगोदमरीरे २७० गो जी ११
मूलाभा
१००

२१० " ३०४ " ११
१०० गणद्वियमि जे ३८१ गो जी १०२
म त १, ३३

६० एस करेमि य वणम ७३ मूलाभा १००
(अर्थममता)

ओ

११ ओरालियमुस्तथ २०१ गो जी २३१
१ ओला य हिमो धूम २०३ मूलाभा २१०
आ चा नि १०८

क

७० कथ घरे कथ विहे १०० मूलाभा
१०१० दशपै
४, ७

१६६ कमेय च कम्मभय २०१ गो जी २३१
१७३ कारिसतणिद्विधाग ३४० गो जी २७
१०३ कालो द्विदि अघघरण
२०२ किण्हादिलेस्तरादिहा ३९० गो जी १०
१७७ किमिरायचक्रतणु ३० गो जी २८७
१८ किं कस्स केण कथ ३४ मूलाभा ७०
१३६ कुन्तिलकिमिस्तिपि २४१
१३७ कुथुपिपिलिकम २४३
१२३ केवलणाणदियायर १०१ गो जी ६३

ख

१९ खीजे दसनमोदे १३ जयध अ ८
२१३ " ३० "

ग

१३ गहकम्मविनिप्यला १३
३० गणमयमभयत्तरा ३ नि प १, ११
१० गणमयमभयत्तरा ३
११ गोसेण गोदमो

घ

१० घकगुण ज पयाम २०० गो जी ११
१२० घलानि वि छेत्ताई ३०० गो जी ३
गो क ११
१०३ चागी भदे ओक्खा ३०० गो जी
७० घारणयमो नह पय ११
३० घोइसपुयमहोयदि १०
२०० चटो न मुयदि घेर ३८८ गो जी १०२
१० चितियमचितिय य ३० गो जी १३८

छ

७३ छफनक्रमपुत्तो १०० पञ्चा ७८
३ छहद्वयनपयथे १ नि प १, ३३
(शयमेद)
१९ छपचणवयिहाण १० गो जी ११
२१२ " ३१० "
१६७ छम्मासाउत्तेले ३०३ मूलाभा
२१० (शय
मेद) वसु
आ ५३०

१३३ छमु हेद्विमासु पुद २०१
१७० छदेदि सय दोमे ३४१ गो जी १७१
१८८ छेत्तण य परिपाय ३७० गो जी ४३१

ज

१४६ जत्येकहु मरह २७० गो जी ११३

मन संख्या मापा वृत्त अन्यत्र यदा श्रव संख्या मापा वृत्त अन्यत्र यदा

१५ जलप धनु जाणिजा ३० मनु हा १, ६
भाचारा नि ४

७१ जई चरे जई रिडे ०९ मूलावा
१०१३ दशव
४, ८

१३४ जयणासिवा मसुरी २३६ मूलावा
१०९१

३२ जइसे तिय धम्मवह ५३ दशव ० १३

१०४ जइ कचममभितव २६६ गो जी २०३

८७ जइ भारपहो पुरिसो १३० गो जी २०२

१३२ जइजरा मरणभया २०० गो जी १ २

०६ जणइ कचमकज ३२२ गो जी ५१५

९१ जणइ तिकात्तसहिय १४४ गो जी २००

११ जणइ पस्सदि २३०

६७ जणइया धयणवहा ८० गो क ८०४
म त १, ४७

१० " १६२ "

८३ जणइ य जातु य १३२ गो जी १४१

५० जियमोहिधनमत्तगो ५९

८१ जीयो कचा य यत्ता ११० गो जी जी,
म दी ३३६

११४ जीया चोदममेया ३७३ गो जी ४७१

१६० जेसि भाउसमार ३०४ मूलावा
२७०६

११ जेसि न सति जोगा २०० गो जी २४०

१०४ जइ दु लक्किमज्जे १६१ गो जी ८

१० जे गोव सधमोसे २०१ गो जी २ १

११२ ओ तसबहाउयिरभो १७ गो जी १

९३ ओ सामण्य सहण १४० गो जी ४ २

११३ कान प्रमाणमियाडु १७ लघ्याव ६

११४ कान प्रमाणमियाडु १७ लघ्याव ६

११५ कान प्रमाणमियाडु १७ लघ्याव ६

११६ कान प्रमाणमियाडु १७ लघ्याव ६

११७ कान प्रमाणमियाडु १७ लघ्याव ६

११८ कान प्रमाणमियाडु १७ लघ्याव ६

११९ कान प्रमाणमियाडु १७ लघ्याव ६

१२० कान प्रमाणमियाडु १७ लघ्याव ६

१११ जट्टासेसपमाओ १७० गो जी ४६

६० जणइ जयेदि विहण ०१ मा नि ६६१

४ जयदिनि जयो ११

२०३ ज य पतिवह परेसो ३० गो जी ५१३

१७ ज य सधमोसनुसो २०० गो जी २१०

१२ ज रमनि जयो निघ २०० गो जी १४७

८० जयमो य इयमवार्ण ११

१४० ज यि इरियवरण २५० गो जी १७४

० जाम टयणा इयि १ स त ६, ६

३ जिइमोहनयणो ४

२०२ जिइयवणवहुत्तो ३८० गो जी १११

१२३ जिइसेसर्जणमाओ १०० गो जी ६२

२६ जिइयविविहइकम्म ४

१७२ जेविधी जेव पुमं ३४ गो जी २७

११३ जो इरियवु विरयो १७३ गो जी २०

म

४० तत्ता चय सुदार ५०

तदियो य निपर ११२

६० तट्टा भादिगव गुलेण ०१ म त ३

१४-१५

११८ तारितपणिमग्गिय १८३ गो जी ५६

४ तिथवरणलहरसे ५०

तिथवरणवणसंग १ म त ६, ३

२ निरवणतिगुत्त ४

१० तिथियान बुद्धि १० गो जी १६

६४ तिथिदा य भाण्डुपुत्थी ७

१०५ म मिटतले अरमम १८

॥

४ द्वाचमवणवणव ४

२ द्वाचमवणवणव २ म त १, ६

२ द्वाचमवणवणव २ म त १, ६

२ द्वाचमवणवणव २ म त १, ६

२ द्वाचमवणवणव २ म त १, ६

| क्रम संख्या | गाथा | पृष्ठ | अध्याय क्रम | क्रम संख्या | गाथा | पृष्ठ | अध्याय क्रम |
|-------------|---------------------|-------|-------------|-------------|--------------------|-------|-------------|
| १४७ | एयणिगोदमरीरे | २७० | गो जी १० | | ग | | |
| | | | मूलाग | १४ | गहम्मणिणिगणा | १३ | |
| | | | १०३ | ३१ | गणायममपान्या | ३ | ति प १, २ |
| २१० | " | ३०४ | " | २६ | गयगयम्मत्रत्र | ३ | |
| १०० | एयदियिमि जे | २८ | गो जी १ | २१ | गोसेण गोदमो | | |
| | | | स त १, ३३ | | ग | | |
| ६ | एम करेमि य एणम | ७३ | मूलाग १० | | | | |
| | | | (अधममना) | १० | गहम्मज्ज अ पयाम | २८० | गो जी ४४ |
| | ओ | | | ११ | गहम्मज्ज अ पयाम | ३८१ | गो जी ४४ |
| १६१ | ओराणियमुत्तरथ | २०१ | गो जी ४३ | | गो जी ४४ | | |
| ११० | ओसा य हिमो धूम | २०३ | मूलाग २१० | २०७ | गहम्मज्ज अ पयाम | २०० | गो जी ४४ |
| | | | आ चा नि | ७० | गहम्मज्ज अ पयाम | ११० | |
| | | | १०८ | ३० | गहम्मज्ज अ पयाम | ० | |
| | क | | | २०० | गहम्मज्ज अ पयाम | ३८८ | गो जी ०९ |
| ७० | कथ चरे कथ विहे | ९९ | मूलाग १०१० | १८ | गहम्मज्ज अ पयाम | ३८० | गो जी ४३८ |
| | | | दशरथ | | छ | | |
| | | | ४, ७ | ७३ | छद्मज्ज अ पयाम | १०० | पञ्चा ७८ |
| १६६ | कम्मज्ज अ कम्मभज | २९ | गो जी २४ | ३ | छद्मज्ज अ पयाम | | ति प १, ३१ |
| १७३ | कारिस्तणिट्टियाम | ३४२ | गो जी २७ | | (शब्दभेद) | | |
| १०३ | कालो ट्टिवि भजधरण | | | ९८ | छापवणमणिहाण | १० | गो जी ६१ |
| २०९ | किण्हाविलेस्सराहिदा | ३९० | गो जी १६ | २१२ | " | ३९ | " |
| १७७ | किमिरायचकतणु | ३० | गो जी २८७ | १६७ | छम्मासाउवसेसे | ३०३ | मूलाग |
| १८ | किं करुस केण करय | ३४ | मूलाग ७०१ | | | २१० | (शब्द |
| १३६ | कुन्निक्किमिसिप्पि | १४१ | | | | | भेद, यत्तु |
| १३७ | कुत्थुपिर्पिलिकम | १४३ | | | | | आ ५३० |
| १२४ | केयलणणद्विवायर | १९१ | गो जी ६३ | १३३ | छमु हेट्टिमासु पुद | १०९ | |
| | रु | | | १७० | छादेदि सय दोसे | ३४१ | गो जी २७१ |
| १९ | मीणे दमणमोहे | ६४ | जयध अ ८ | १८८ | छेत्तुण य परियाय | ३७२ | गो जी ४७१ |
| २१३ | " | ३९१ | " | | ज | | |
| | | | | १४६ | जत्थेत्तु मरह | २७० | गो जी १९३ |

क्रम माया गाथा १२ अक्षर वर्ण क्रम माया गाथा १२ अक्षर वर्ण

१३७ पयणिगोदमरीरे २७० गो जी ११०
मूलाचा १२०३
२१० " ३०४ " १
१०० एयद्वियमि जे ३८ गो जी १२
स त १, ३३
१ एम करेमि य पणम ७३ मूलाचा १०
(अर्धममता)

ओ

१६१ ओरात्यमुत्तरथ २०१ गो जी २३१
१ ० ओसा य हिमो धूम २०३ मूलाचा २१०
आ चा नि १०८

क

७० कध चरे कध चिटे ९९ मूलाचा १०१२ दशरै
४, ७

१६१ कस्मेय थ कम्मभय २९ गो जी २८१
१७३ कारिस्तणिट्टियाग ३४० गो जी २७
१०३ काले हिदि भयधरण
२०९ किण्हादिलेस्तराहिदा ३९० गो जी २
१७७ किमिरायचक्रतणु ३० गो जी २८७
१८ किं कस्स केण करध ३६८ मूलाचा ७०
१३६ कुन्निक्किमिस्तिपि २४१
१३७ कुपुपिर्पलिकम २४३
१४८ केवलणाणदिवायर १०१ गो जी ६३

ख

१० खीणे दसनमोहे ६४ अक्षर अ ८
२१३ " ३९ " "

ग

१३ गहकम्मणिग्गिण्या ११
३१ गणरायममहात्तर ३ नि प १, ११
६ गयमयत्तमत्तत्तत्त ७
११ गोत्तण गोदमा

घ

१९ गङ्गुण ज गयाम २८० गो जी ४१
१९९ गत्ताणि रि ठेत्ताई ३८१ गो जी १
गो क २१
२०३ गार्गा भट्टो बोक्को २०० गो जी
७० गारणरमो तह पर ११०
३० बोइसपुत्तमहोपदि ०
२०० चटो ॥ मुयदि येर ३८८ गो जी ९
१८० चिनियमचित्तिय य ३० गो जी १२८

छ

७३ छक्कानक्रमजुत्तो १०० पञ्चा ७८
३ छह्णरणपपरथे ति प १, ३४
(शब्दभेद)
९६ छापवणपरिहाण १० गो जी ६१
२१२ " ३९ " "
१६७ छम्मासाउयसेसे ३०३ मूलाचा २१० (शब्द
भेद) यत्त
आ ५३०

१३३ छसु हेट्टिमासु पुढ २०९
१७० छहेदि सय दोसे ३४१ गो जी २७३
१८८ छेत्तण य परियाय ३७२ गो जी ४३१

ज

१४६ जत्थेक्कु मरह २७० गो जी १९३

| क्रम संख्या | गाथा | पृष्ठ संख्या | क्रम संख्या | गाथा | पृष्ठ संख्या |
|-------------|--------------------|----------------|-------------|-------------------|--------------------|
| १०० | द्विगुणभिरयामिम्भ | ७० गा जी २० | १०१ | पञ्चाननपरिभा | ३ ति प १, १ |
| १०१ | दाणे लामे मेगे | ७० यमु था | | | (प्राक्तरूप) |
| १०२ | द्विगुणि जदे निम्भ | ७० गो जी १, १ | १०२ | प्रमत्तनपरिभा | १० ति प १, १ |
| १०३ | द्विगुणराजनाथो | ७० ति प १, १ | | | (प्राक्तरूप) |
| | | (प्राक्तरूप) | | | म न पु ११ |
| १०४ | देमकुलजाहमुरो | ७० यमु था ३, १ | | | य |
| | | (प्राक्तरूप) | | | |
| १०५ | देमणमोहुदयादो | ३० गो जी १, १ | १०६ | वदुगिरुपुपपाग | ३० गो जी १, १ |
| १०६ | देसणमोहुनममदो | " गो जी १, १ | १०७ | वदुगिरुपुपपाग | १० |
| १०७ | वसणयदुमामाहय | १०२ गो जी १, १ | १०८ | वदुगिरुपुपपाग | २१ गो जी १, १ |
| | | यमु था १ | | | म |
| | | या म ६० | | | |
| १०८ | " " | ३० " " | १०९ | मरिया मिदि जेमि | ३० गो जी १, १ |
| | | | | | ७० मरिया मिदि जेमि |
| | | | ११० | मिणममयद्विपदि | १० गो जी १, १ |
| | | | | | म |
| १११ | घदगारयपटिबडो | ६० | | | |
| ११२ | घणुवाकारदिछमो | ६० जयघ म १ | | | |
| | | | | | |
| | | | | | |
| ११३ | घदमो भरहनाण | १, २ | ११४ | मरणा परयेइ रणे | ३० गो जी १, १ |
| ११४ | परमाणु भादियाह | ३० गो जी १, १ | | | |
| ११५ | परयणजलदिजलो | ६० | | | |
| ११६ | पाप मलमिति मोक्ष | २० ति प १, १ | | | |
| | | (प्राक्तरूप) | | | |
| ११७ | पुदवी य सकरा | २० मूलभा २०० | ११८ | मिच्छा उत्त येयतो | १० गो जी १, १ |
| | | आचा नि ७३ | ११९ | मूलभापोरवीया | २० गो जी १, १ |
| ११८ | पुदुगुणमेगे सेदे | ३० गा जी २, १ | | | मूलाभा २१२ |
| ११९ | पुदुमहमुदाकराल | २० गो जी २, १ | १२० | मूलभापोरवीया | २० गो जी १, १ |
| १२० | पुदुवापुत्रपदय | १० | | | |
| १२१ | पुतनाहदणनायक | ७० | १२१ | मरणा परयेइ रणे | ३० गो जी १, १ |
| १२२ | पंचतिवउरिदेहि | ३० गो जी ३, १ | | | |
| १२३ | पंचसमिदो तिगुत्तो | ३० गो जी ३, १ | | | |
| १२४ | पञ्जसेलपुरे रम्मे | ६० जयघ म १ | | | |

क्रम संख्या गाथा पृष्ठ अन्यत्र क्या क्रम संख्या गाथा पृष्ठ अन्यत्र कहाँ

२०३ रुसदि लिङ्गदि अण्णे ३८९ गो जी ५१२

ल

९५ लिङ्गदि अण्णीकीर १५० गो जी ४८९

व

११३ यत्तायत्तयमाय १७८ गो जी ३३

२१४ ययणेदि वि देऊदि ३०५ गो जी ६४३

९२ ययसमिहससायाण १४९ गो जी ४२४

१५२ याउभाभो उक्कल १७३ मूगचा २१२

आजा नि

१६६ (अथ

समता)

५५ यामरस यममासे ६३ नि प १, ६९

(शङ्खभेद)

११४ यिकदा तहा वसाया १७८ गो जी ५४

९९ यिगहगहमायणा ११३ गो जी ६६९

२१ यिगा प्रणयति ४१ नि प १, ३०

(माहतरूप)

१८१ यियीयमोदिजाण ३० गो जी १०

१६२ यियिहगुणइज्जिपुस २९१ गो जी १३२

१७१ यिसत्तत्तहपज ३१ गो जी ३०३

१२ यिसयेयणरसकण २३ गो जी १३

१४ यिहनिदरउदि २७३ गो जी १९८

१६३ येउयियमुत्तारथ २९२ गो जी २३४

८९ येइसुदीरणाय १४१

१७५ येनुयमूलोरमय १० गो जी २८६

ग

२ गज्जापदमभिदि १० प्र शाबटा

भिदि हस

घ

४३ घट्ठपडमरत्तनार्थ ५८ नि प १४

(माहतरूप)

म

१२ सक्कयात्त हलं पा १० गो वा ६१

४४ सक्कल्लभुवर्नकनाथ १ नि प १, ४-

(माहतरूप)

१२ सत्ता अनू य माणी ११० गो जी, जी

प्र, जी १२५

१५६ सम्भायो सधमणो २१ गो जी २१०

१०८ सम्मत्तयणपणय १० गो जी ७०

११० सम्माहट्टा जाया १७३ गो जी १३

१३९ सस्सेदिमसमु १४६ माया न ४०

(गृहकरण)

३ सायणबहुलपण्विदे ६३ नि प १ ३०

१४ सादारणमादारी १३० गो जी १९३

९७ सिक्काविगियुव १२ गो जी १११

९१ सिद्धसायसर जोग्या १० गो जी १

१३ सिद्धययुण्यवृद्धो ३ पथा टी

१७३ सिद्धयुविभेद इली ३० गा आ १४

३३ सीहगरयगमिय १

१४३ सुत्ताशो त सम्य २६३ गा आ १०

९० सुद्धयुवण्युद्ध १४२ गो जी १०

१०१ सुद्धयुवा पा टी १४

६८ सुद्धयययययययय १० व व १३

आ नि ११०

(गृहकरण)

१३ सुद्धयययययययय १० व व १३

१२६ सुद्धयययययययय १० व व १३

३१ सुद्धयययययययय १० व व १३

(गृहकरण)

१८३ सुद्धयययययययय १३ व व १३

१८६ सुद्धयययययययय १० व व १३

ह

१३ सुद्धयययययययय १३ व व १३

(गृहकरण)

१० सुद्धयययययययय १० व व १३

३ ऐतिहासिक नाम सूची

| | प्रा | प्रा | प्रा |
|----------|------|----------------|------|
| अ | | | |
| कवि | १०८ | धरमेन(भट्टारक) | ११३ |
| कापेविदि | १०३ | धर्ममेर | ११३ |
| कानिकेय | १०३ | धुरमेन | ११ |
| किरिगिन | १०३ | धुरिनेण | ११ |
| कुमुमि | १०८ | | |
| काव | १०३ | | |
| कासि | १०३ | | |
| कंगाय | ११ | मशत्रुमार | ११ |
| कावि | १०३ | मरु | १०१ |
| | | मरिदमि | ११ |
| | | मरि | १०३ |
| | | मरिगार | ११ |
| | | मरगण | १० |
| इ | | | |
| इ | ११३ | मरग | १०८ |
| | | मरग | ११ |
| उ | | | |
| उ | ११३ | मरग | १०८ |
| | | मरग | ११ |
| क | | | |
| क | ११३ | मरग | १०८ |
| | | मरग | ११ |
| ख | | | |
| ख | ११३ | मरग | १०८ |
| | | मरग | ११ |
| ग | | | |
| ग | ११३ | मरग | १०८ |
| | | मरग | ११ |
| घ | | | |
| घ | ११३ | मरग | १०८ |
| | | मरग | ११ |
| च | | | |
| च | ११३ | मरग | १०८ |
| | | मरग | ११ |
| ज | | | |
| ज | ११३ | मरग | १०८ |
| | | मरग | ११ |
| झ | | | |
| झ | ११३ | मरग | १०८ |
| | | मरग | ११ |
| ट | | | |
| ट | ११३ | मरग | १०८ |
| | | मरग | ११ |
| ड | | | |
| ड | ११३ | मरग | १०८ |
| | | मरग | ११ |
| ण | | | |
| ण | ११३ | मरग | १०८ |
| | | मरग | ११ |
| त | | | |
| त | ११३ | मरग | १०८ |
| | | मरग | ११ |
| थ | | | |
| थ | ११३ | मरग | १०८ |
| | | मरग | ११ |
| द | | | |
| द | ११३ | मरग | १०८ |
| | | मरग | ११ |
| ध | | | |
| ध | ११३ | मरग | १०८ |
| | | मरग | ११ |
| न | | | |
| न | ११३ | मरग | १०८ |
| | | मरग | ११ |
| प | | | |
| प | ११३ | मरग | १०८ |
| | | मरग | ११ |

| | म | पृष्ठ | | पृष्ठ | |
|------------|---|-------|-----------|--------|-----------|
| | | | बालभ | ७८ | म |
| महिमा | | ७६ | निपुलगिरि | ६१, ६० | मौराष्ट्र |
| माशुर | | ७८ | वेण्यातट | ६७ | ह |
| व | | | वैभार | ६० | दिमगान |
| चनवास विषय | | ७१ | | | |

५ ग्रन्थ नामोल्लेख

| | क | तत्पार्थसूत्र | २३९, २० | स |
|----------------|----------|-----------------|---------|--------------------|
| कश्यप प्राश्नत | २१७, २२१ | | | |
| कालासूत्र | १४० | व | | सत्कर्मप्राश्नत २१ |
| त | | यर्गणासूत्र | २९० | म-मनिसूत्र |
| तत्पार्थमाप्य | १०३ | वेदान्तप्रविधान | २११ | |

६ वंश नामोल्लेख

| | इ | वारण | ११८ | र |
|---------|-----|----------|-----|------------|
| भट्टन् | ११० | | | राजपदा |
| हरयाष्ट | ११० | ज | | |
| व | | मिनवदा | ११२ | न |
| बादप | ११२ | न | | यादि |
| कुद | ११८ | नायवग | ११० | यागुदेव |
| व | | | | विद्याप |
| वदयलि | ११८ | प | | ह |
| | | प्रजाधमग | ११८ | हरि ११, ११ |

७ प्रतियोंके पाठ-भेद

- १ अ-अमरावतीकी प्रति, आ-आराको, क-कारनाको, स-सहारनपुरकी ।
- २ ,, चिहोमे तात्पर्य यहा उपरके शब्दोंसे नहीं, किन्तु उमी पत्तिके बाद आंके शब्दोंसे समझना चाहिये ।
- ३ इन प्रतियोंके पाठभेदोंकी दिक्षा बतलानेके लिये यहा केवल थोड़ेसे पाठभेद दिय जाते हैं । यथार्थत एमे पाठभेद हैं बहुत ही अधिक ।

| पृष्ठ | पंक्ति | अ | आ | क | स | सुनि |
|-------|--------|---|--------------------------------|----------|-----------------------|---------------|
| १ | १ | ॐ नमः सिद्धेभ्य
ॐ गणधरपरमे
द्विने नमः ।
ॐ ब्राह्मराक्षाय
नमः । निर्विघ्न
मस्तु | ,
अथ श्री धवल
प्रारम्भ । | " | ॐ नमः सि
द्धेभ्य । | |
| १ | २ | केवल | " | केवल | केवल | केवल |
| १ | २ | गमह | " | , | गमह | गमह |
| ६ | १ | -अगागिजा | अङ्गहिजा | , | " | अगागिजा |
| १ | " | -मल-मूल | मल गूढ | मल-मूल | -मल-मह | -मल-म |
| ७ | ६ | वक्त्राणिउ | " | | वक्त्राणिउ | वक्त्राणिउ |
| ८ | ५ | परुचये | " | | परुचये व | परुचये ? व |
| " | ६ | तात्पर्य व | , | , | तात्पर्य व | तात्पर्य व |
| | | शुचि | | | शुचि व | शुचि व |
| ९ | २ | सयलपुत्रवाप | | " | सयलपुत्रवाप | " |
| | | सपुत्राण | , | | व सपुत्राण | |
| १० | १ | -यापरमे | " | | , | -यापरमे |
| ११ | १ | -लिमोर्ण | -लिमाण | -लिमोर्ण | | -लिमोर्ण |
| १२ | २ | सदादीपा | सदादीपा | सदादीपा | | सदादीपा |
| | | साहुपसाहु | " | | " | साहुपसाहु |
| १५ | ७ | -सकलार्ण लामो | | " | " | -सकलार्ण लामो |
| १६ | ५ | विदतध्याय | " | " | " | विदत ध्याय |

| पृष्ठ | पंक्ति | अ | आ | क | स | मुद्रित |
|-------|--------|---|-------------------------------|---|--------------------|--|
| ९ | १ | यज्जत्य | " | " | " | यज्जत्य |
| ९ | १ | जीवो या जीवो जीवो वा जीवा
वा अजीवो वा वा अजीवो वा
जीवो च अजी अजीवो वा
वो च अजीवो च जीवो च अजी
अजीवा च जीवा वो च, अजीवो
च जीवा च अजी च जीवा च अ
वो च जीवा चेदि जीवा च जीवा
च अजीवो च
जीवा चेदि | " | " | " | जीवा वा, अजी
वा, अजीवो वा,
अजीवा वा, जीवो
य अजीवो य,
जीवा य अजीवो
य, जीवो य अजी
वा य, अजी य
अजीवा य |
| २० | ४ | सुमान | " | " | समान | समान |
| २१ | २ | तस्सत्य | " | " | तस्सद् | तस्मत्य |
| २९ | १ | अर्घाष्टारत्न्यादि | " | " | अर्घाष्टारत्न्यादि | " |
| ३० | ४ | जाणिज्जो | " | " | " | जाणिजा |
| ३१ | ७ | विपर्ययो | " | " | " | विपर्ययतो |
| ३२ | ३ | असो ध्यामोहेन | " | " | सोऽध्यामोहेन | " |
| ३४ | ३ | गच्छति कर्त्ता
सिद्धि | गच्छति कर्त्ता
कार्यसिद्धि | " | " | " |
| ३५ | ६ | सारस्व स्तम्भ | " | " | " | सारे स्तम्भ |
| ३९ | ५ | नमो जिगानाम् | " | " | नमो जिगानाम् | 'नमो जिगान' |
| ४० | ४ | कयकाउय | " | " | " | कयकाउय |
| ४१ | ६ | जो सुत्तस्सादीए
सुत्तकत्तारेण
कयदेवदानमो
कारो त णिबद्द
मगल । जो सुत्त
स्सादी सुत्तकत्ता
रेण णिबद्दो देव
दानमोकारो तम
णिबद्द मगल । | " | " | " | जो सुत्तस्सादीए
सुत्तकत्तारेण णि
बद्द-देवदान
मोकारो त णि
बद्दमगल । जो
सुत्तस्सादीए
सुत्तकत्तारेण
कय-देवदा
नमोकारो तमणि
बद्द मगल । |
| ४३ | ७ | विनष्टेरा | " | " | " | विनष्टेरी |
| ४६ | ३ | भूता दोषाम | " | " | " | भूतादोषाम् |

| पृष्ठ | पंक्ति | अ | आ | क | स | मुद्रित |
|-------|--------|-------------------|----------------|----------------|----------------|----------------|
| ४८ | १ | यज्जसित्थ | यज्जसित्थ | यज्जसित्थ | यज्जसित्थ | यज्जसित्थ |
| | | स्सग्गय | स्सग्गय | स्सग्गय | स्सग्गय | स्सग्गय |
| ४९ | ४ | सग्गभग्ग | भग्गय | भग्गय | भग्गय | भग्गय |
| ५० | ४ | कार्यत्वाद्देव | भग्गसंग | भग्गसंग | भग्गसंग | भग्गसंग |
| | | सत्स्येव | " | " | " | " |
| ५१ | ३ | रत्तैकदेशस्य | रत्तैकदेशस्य | रत्तैकदेशस्य | रत्तैकदेशस्य | रत्तैकदेशस्य |
| | | देशत्वा | देशत्वा | देशत्वा | देशत्वा | देशत्वा |
| ५२ | १ | संज्ञात | संज्ञात | संज्ञात | संज्ञात | संज्ञात |
| " | २ | गुणिभूताद्देवे | गुणिभूताद्देवे | गुणिभूताद्देवे | गुणिभूताद्देवे | गुणिभूताद्देवे |
| " | ३ | शब्दाधिक्य | " | " | " | " |
| " | ४ | स्थापनार्थ | स्थापनार्थ | स्थापनार्थ | स्थापनार्थ | स्थापनार्थ |
| ५३ | ६ | कम्मं मुप्पज्जस्य | कम्मं कुट | कम्मं कुट | कम्मं कुट | कम्मं कुट |
| | | कुट्तिदसुहं पि | कुट्तिदसुहं पि | कुट्तिदसुहं पि | कुट्तिदसुहं पि | कुट्तिदसुहं पि |
| | | वयणाशे । | वयणाशे | वयणाशे | वयणाशे | वयणाशे |
| ६० | ३ | दिट्ठोवा | " | " | दिट्ठो | " |
| ६१ | ४ | नरयार ण होंति | " | " | नरयार होंति | " |
| " | ६ | दिग्घग्गणी | " | " | दिग्घग्गणी | " |
| " | ८ | गोत्तम-गोत्तेण | गोत्तम-गोत्तेण | गोत्तम-गोत्तेण | गोत्तम-गोत्तेण | गोत्तम-गोत्तेण |
| ६२ | ६ | जावोसि | " | " | जावोसि | " |
| | | पिदिस्सेणे | " | " | पिदिस्सेणे | " |
| ६३ | ४ | बंधघोच्छेरो | " | " | बंधघोच्छेरो | " |
| ७३ | ० | यच्छे | " | " | यच्छे | " |
| ८२ | ३ | यथेई | यथेई | यथेई | यथेई | यथेई |
| ८४ | ३ | समनस्य | " | " | समनस्य | " |
| ८९ | ६ | निबग्गमो नय | निबग्गमो नय | निबग्गमो नय | निबग्गमो नय | निबग्गमो नय |
| ९९ | १ | सनिष्ठमि | सनिष्ठमि | सनिष्ठमि | सनिष्ठमि | सनिष्ठमि |
| | | निष्ठमि | निष्ठमि | निष्ठमि | निष्ठमि | निष्ठमि |
| ८९ | ५ | कत्ताम्येत्त | " | " | कत्ताम्येत्त | " |
| | | भिन्नपशाना | " | " | भिन्नपशाना | " |
| ९० | ६ | नामार्थ | " | " | नामार्थ | " |
| ९१ | ३ | अत्थोप | " | " | अत्थोप | " |
| ९२ | ४ | संख्येयानग्ग | संख्येयानग्ग | संख्येयानग्ग | संख्येयानग्ग | संख्येयानग्ग |
| | | त्तम | त्तम | त्तम | त्तम | त्तम |

| पृष्ठ | पक्ति | अ | आ | ऊ | स | सुट्टि |
|-------|-------|---|-------------------------------|---|----------------|---|
| ९ | १ | उच्चय | " | " | " | उच्चय |
| ९ | १ | जीरो वा जीरो जीरो वा जीरो
वा अजीरो वा वा अजीरो वा
जीरो च अनी अनीरो वा
यो च अजीरो च जीरो च अजी
अजीरा च जीरा यो च, अजीरो
च जीरा च अनी च जीरा च अ
यो च जीरा चेदि जीरा च जीरा
च अनीरो च
जीरा चेदि | " | " | " | जीरो वा, जीरा
वा, अनीरो वा,
अजीरा वा, जीरा
य अजीरो य,
जीरा य अजीरो
य, जीरो य अजी
रा य, जीरा य
अजीरा य |
| २० | ४ | सुमात्र | " | " | सम्भात्र | सन्मात्र |
| २१ | २ | तस्मात् | " | " | तस्मात् | तस्मात् |
| २९ | १ | अथाश्रित्यादि | " | " | अथाश्रित्यादि | " |
| ३० | ४ | जाणिगो | " | " | " | जाणिगो |
| ३१ | ५ | निपर्ययो | " | " | " | निपर्ययो |
| ३२ | ३ | असां व्यामोहेन | " | " | सोऽन्यामोहेन | " |
| ३४ | ३ | गच्छति कर्त्ता
सिद्धि | गच्छति कर्त्ता
कार्यसिद्धि | " | " | " |
| ३५ | ६ | सारम्प्य स्तम्भ | " | " | " | सारे स्तम्भ |
| ३९ | ७ | नमो जिज्ञानाम् | " | " | नमो जिज्ञानाम् | 'नमो जिज्ञान' |
| ४० | ४ | कयकाडया | " | " | " | कयकोडय |
| ४१ | ६ | जो मुत्तस्मादीय
मुत्तकचारेण
कयेदेयदानमो
कारो तं निबद्ध
मगट । जो मुत्त
स्मादी मुत्तकचा
रेण निबद्धो द्य
दानमोकारो तम
निबद्ध मगट । | " | " | " | जो मुत्तस्मादीय
मुत्तकचारेण नि
बद्धदेयदान
मोकारो तं नि
बद्धमगट । जो
मुत्तस्मादीय
मुत्तकचारेण
कयदेयदा
नमोकारो तमनि
बद्ध मगट । |
| ४३ | १ | विनष्टरा | " | " | " | विनष्टरा |
| ४६ | ३ | भूता दोषाम | " | " | " | भूतादोषाम |

| पृष्ठ | पंक्ति | अ | आ | इ | उ | दुनि |
|-------|--------|----------------------|----------------|----------------|---------------|-------------------|
| ४८ | | यज्जसिलत्थ | यज्जमिन्त्थ | यज्जसिलत्थ | यज्जमिन्त्थ | यज्जमिन्त्थ |
| | | स्मग्गय | स्मग्गय | स्मग्गय | स्मग्गय | स्मग्गय |
| ४९ | ४ | संगभग | | भगभग | संगभग | संग भग |
| ५० | ७ | कार्पेत्थाङ्गेद्द | " | " | " | कार्पेत्थाङ्गेद्द |
| | | सत्तेय | | | | सत्तेय |
| ५१ | ३ | रत्तकदेशस्य | रत्तकदेशस्य | रत्तक | | रत्तकदेशस्य |
| | | देवात्था | देवात्था | देवात्था | | देवात्था |
| ५२ | १ | संज्ञान | संज्ञान | संज्ञान | संज्ञान | संज्ञान |
| " | " | गुणिभूताङ्गे | " | गुणिभूताङ्गे | " | गुणिभूताङ्गे |
| " | ३ | धाणाधिक्य | " | " | " | धाणाधिक्य |
| " | ४ | अयापनार्थ | अयापनार्थ | अयापनार्थ | अयापनार्थ | अयापनार्थ |
| ५३ | ६ | कम्मं भुण्णत्तइय | कम्मं पुण्ण | कम्मं पुण्ण | | कम्मं पुण्ण मिट्ठ |
| | | पुण्ण मिट्ठपुण्णं पि | मिट्ठपुण्णं पि | मिट्ठपुण्णं | | पुण्णं पि पक्क |
| | | पयणत्तो । | पयणत्तो | पि पयणत्तो | | त्तो । |
| ६० | ३ | अदिउत्तो | " | " | अदिउत्तो | " |
| ६४ | ४ | अदियार न ज्ञाति | " | " | अदियार ज्ञाति | " |
| " | ६ | दिग्घग्गाली | " | " | दिग्घग्गाली | " |
| " | ८ | गोत्तम गोत्तेज | गोत्तम-गोत्तेज | गोत्तम-गोत्तेज | | गोत्तम गोत्तेज |
| ६९ | ६ | जादोनि | " | " | | जादोनि |
| ७१ | | पिदिसेणा | " | " | पिदिसेणा | " |
| ७३ | ४ | अधयोच्छेत्तो | " | " | | अधयोच्छेत्तो |
| ७३ | ७ | अच्छेत्तो | | | | अच्छेत्तो |
| ८५ | ३ | अच्छेत्तो | अच्छेत्तो | अच्छेत्तो | | अच्छेत्तो |
| ८४ | ३ | अच्छेत्तो | | | | अच्छेत्तो |
| " | ६ | अच्छेत्तो | | | अच्छेत्तो | अच्छेत्तो |
| ८९ | १ | अच्छेत्तो | अच्छेत्तो | " | | अच्छेत्तो |
| ८९ | ५ | अच्छेत्तो | | | अच्छेत्तो | अच्छेत्तो |
| ९० | ६ | अच्छेत्तो | | | अच्छेत्तो | अच्छेत्तो |
| ९१ | ३ | अच्छेत्तो | | | अच्छेत्तो | अच्छेत्तो |
| ९२ | ४ | अच्छेत्तो | अच्छेत्तो | अच्छेत्तो | | अच्छेत्तो |

| पृष्ठ | पक्ति | अ | आ | क | स | मुद्रित |
|-------|-------|---|-------------------------------|---|--------------------|--|
| ९ | १ | यज्जत्थ | " | " | " | वज्जत्थ |
| ९ | १ | जीवो वा जीवो जीवो वा जीवो
वा अजीवो वा वा अजीवो वा
जीवो च अजी अजीवो वा
वो च अजीवो च जीवो च अजी
अजीवा च जीवा वो च, अजीवो
च जीवा च अजी च जीवा च अ
वो च जीवा चेदि जीवा च जीवा
च अजीवो च
जीवा चेदि | | | | जीवो वा, जावो
वा, अजीवो वा,
अजीवा वा, जीवो
य अजीवो य,
जीवा य अजीवो
य, जीवो य अजी
वा य, जीवा य
अजीवा य |
| २० | ४ | सुभाय | " | " | सम्भाय | सम्भाय |
| २१ | २ | तस्सत्थ | " | " | तस्सद् | तस्सत्थ |
| २९ | १ | अर्धाष्टारत्न्यादि | " | " | अर्धाष्टारत्न्यादि | " |
| ३० | ४ | जाणिज्जो | " | " | " | जाणिजा |
| ३१ | ७ | विपर्ययो | " | " | " | विपर्यस्यतो |
| ३२ | ३ | असौ व्यामोहेन | " | " | सोऽव्यामोहेन | " |
| ३४ | ३ | गच्छति कर्त्ता
सिद्धि | गच्छति कर्त्ता
कार्यसिद्धि | " | " | " |
| ३५ | ६ | सारस्व स्तम्भ | " | " | " | सारे स्तम्भ |
| ३९ | ५ | नमो जिगानाम् | " | " | नमो जिगानाम् | 'नमो जिगानाम्' |
| ४० | ४ | कयकाडया | " | " | " | कयकोडय |
| ४१ | ६ | ओ सुत्तस्सादीप
सुत्तकत्तारेण
कयदेवदानमो
कारो तं णिबद्द
मगल । ओ सुत्त
स्सादी सुत्तकत्ता
रेण णिबद्दो देव
दानमोकारो तम
णिबद्द मगल । | | | | ओ सुत्तस्सादीप
सुत्तकत्तारेण णि
बद्द देवदान
मोकारो तं णि
बद्दमगल । ओ
सुत्तस्सादीप
सुत्तकत्तारेण
कयदेवदा
नमोकारो तमणि
बद्द मगल ।
विनट्टेरी
भूताशेषात्म |
| ४३ | ५ | विनट्टेरा | " | " | " | विनट्टेरी |
| ४६ | ३ | भूता शेषात्म | " | " | " | भूताशेषात्म |

| पृ० | पंक्ति | अ | आ | इ | उ | मुद्रित |
|-----|--------|--------------------|--------------------|--------------------|--------------------|--------------------|
| ४१ | | यन्नसित्तय | यन्नसित्तय | यन्नसित्तय | यन्नसित्तय | यन्नसित्तय |
| | | स्वगय | स्वगय | स्वगय | स्वगय | स्वगय |
| ४२ | ४ | सगभग्ग | | भग्गसग | सगभग्ग | सग भग |
| ४३ | ७ | कार्यथाद्वे | " | " | " | कार्यथाद्वे |
| | | सत्थेय | | | | सत्थेय |
| ४४ | ३ | रत्तंदेशस्य | रत्तंदेशस्य | रत्तं | | रत्तंदेशस्य |
| | | देशत्था | देशत्था | देशत्था | | देशत्था |
| ४५ | १ | संज्ञात | संज्ञात | संज्ञात | संज्ञात | संज्ञात |
| " | २ | गुणिभूतत्ताद्वे | " | गुणिभूतत्ताद्वे | " | गुणिभूतत्ताद्वे |
| " | ३ | गत्ताधिक्य | " | " | " | गत्ताधिक्य |
| " | ४ | स्वापनार्थ | स्वापनार्थ | स्वापनार्थ | स्वापनार्थ | स्वापनार्थ |
| " | ५ | कम्मं पुण्डरुदं वि | कम्मं पुण्डरुदं वि | कम्मं पुण्डरुदं वि | कम्मं पुण्डरुदं वि | कम्मं पुण्डरुदं वि |
| | | ययणादो । | ययणादो | वि ययणादो | | ययणादो । |
| ४६ | ३ | विच्छिन्नो | " | विच्छिन्नो | " | " |
| ४७ | ४ | निर्यादं न होति | " | निर्यादं न होति | " | " |
| " | ५ | विच्छिन्नो | " | विच्छिन्नो | " | " |
| " | ६ | गोसम-गोसेण | गोसम-गोसेण | गोसम-गोसेण | | गोसम-गोसेण |
| " | ७ | जादोति | " | " | | जादोति |
| ४८ | १ | विदितेणो | " | विदितेणो | " | " |
| ४९ | ४ | बन्धयोपपेदो | " | " | | बन्धयोपपेदो |
| ५० | ५ | अपपेदे | " | " | | अपपेदे |
| ५१ | ३ | पारपेदे | आपेदे | पारपेदे | | पारपेदे |
| ५२ | ३ | समनस्य | " | " | | समनस्य |
| " | ४ | सिद्धगमो भव | | | सिद्धगमो भव | |
| ५३ | ३ | सतिष्ठति | सतिष्ठति | | | सतिष्ठति |
| | | निष्ठति | निष्ठति | | | निष्ठति |
| ५४ | ५ | कत्ताम्येन | | | | कत्ताम्येन |
| " | | भिरपराणा | | | भिरपराणा | भिरपराणा |
| ५५ | ६ | नामार्थ | " | नामार्थ | " | " |
| ५६ | ३ | अप्योप | | अप्योप | | अप्योप |
| ५७ | ४ | सत्त्वोपासना | सत्त्वोपासना | सत्त्वोपासना | | सत्त्वोपासना |
| | | सत्त्व | सत्त्व | सत्त्व | | सत्त्व |

| उ | पठि | अ | शा | क | सं | मुद्रित |
|----|-----|-------------------|------------------|-------------|----------------|------------------------------|
| ० | ४ | रयानातुत्पत्तेः | , | , | रयानोत्पत्ते | , |
| | ५ | क्षयोपशमोप
गमन | क्षयोपशमन | , | | क्षयोपशमोप
शमन
करणानाम |
| १ | ३ | करणनाम | " | " | | |
| | | -दे-नी | " | " | -दे-न | " |
| २३ | ० | राश्य | राशे | राश्य | " | " |
| २४ | ६ | तानु | " | " | तान् | तेषु |
| २५ | ६ | -स्यात्पा | " | " | -स्यापा | " |
| २६ | ६ | क्षेपमभावि | " | " | क्षेपसमाधि | , |
| २७ | १ | -माक्षिष्ट | " | " | | माक्षिष्ट |
| २८ | ८ | -स्यापत्य | " | " | | -स्यापत्यानि |
| २९ | | तन्नु भवति | " | " | तदुच्यते | " |
| ३० | ४ | हृष्टिषु | -हृष्ट्यादिषु | " | | -हृष्टिषु |
| ३१ | ९ | तद्वत्य | तद्वत्य | तद्वत्य | तद्वत्ता | " |
| ३० | १० | मपुस्तमुस्तमुन | " | " | | मपुस्तमुन |
| ३१ | ४ | तदो | तदो न | तत्थ तदो | | तदो |
| ३२ | ६ | भाहृत्पिबदि | भाहृत्पिबदि | भाहृत्पिबदि | | भाहृत्पिबदि |
| | | धाण | रियन्मार्ग | बदियाण | | धाण |
| ३३ | ९ | अपणो | तदो अपणो | अपणो | | , |
| ३४ | ७ | गमियमिद् | " | , | गमिय | , |
| ३५ | ३ | -स्यतास्ता | " | , | | स्यतास्त्यतास्ता |
| ३६ | ४ | -स्यादेशा | " | , | -स्योदेशा | -स्यादेशा |
| ३७ | १ | -यामजनन | , | , | -यामजनन | , |
| ३८ | २ | मा-य | -माय | -मा-य | , | -मा-य |
| ३९ | ७ | विद्वेष | , | , | " | विद्वेष |
| ४० | ११ | -दास्त्याविभाधित | -दास्त्याविभाधित | नस्त्याविभा | | , |
| | | धृतय | तद्वत्त | जितवृत्तय | | सप्तनिघान |
| ४१ | ७ | सप्तनिघान | , | , | , | |
| ४२ | ६ | स्याद्भयलो | " | , | स्यान् भयलो | |
| ४३ | ४ | सप्तनस्ते | " | , | सप्तनस्तेषु | |
| ४४ | | सप्तनस्ते | " | , | तत्स्वरूप | " |
| ४५ | | मुक्तगद्वयमाद | , | , | -मुक्तगद्वयमाद | |

| पृ० | पंक्ति | अ | जा | इ | म | मं० |
|-----|--------|----------------|-------------|--------|------------|---------------|
| ९३ | ४ | गिह | , | , | मह | म |
| १०१ | १ | गिमगायो | " | " | | गिमगायो |
| ९४ | ४ | मुदाण | मणण | मुणण | मणण | , |
| १०२ | ६ | पुयस | पुयुन | पुयुन | पुयस | " |
| ९५ | ३ | गिहाय | गियाह | गियाह | गियाह | , |
| १०३ | २ | गंधदस्सितात्ता | तत्ता भाये | , | " | " |
| १०४ | २ | मुद्धिमक्कंति | " | " | | मुद्धिमक्कंति |
| १०५ | ३ | धानत्ती | , | , | | धानत्ती |
| १०६ | ७ | उत्त व भाये | " | " | उत्त व | , |
| १०७ | ३ | मन्यानि | , | " | मन्यानि | , |
| १०८ | ४ | पय्यपददह | " | , | पय्यपददह | " |
| १०९ | २ | यहोक् | " | " | | यहोक् |
| ११० | १ | सरीर | " | , | | सरीर |
| १११ | ६ | वेमोदि | " | " | वेमोदि | " |
| ११२ | १ | सरीरो | " | " | | सरीरो |
| ११३ | २ | धारणा | , | | धारणा | , |
| ११४ | १० | भायो | भायादो भायो | भायो | | भायो |
| ११५ | २ | क्षोणि पफाणि | " | " | क्षोणि | " |
| ११६ | ११ | पुत्त | उत्त | पुत्त | उत्त | पुत्त |
| ११७ | ६ | रक्कित्तया | , | , | | रक्कित्तया |
| ११८ | १ | रुद्धिष | | | रुद्धिष | " |
| ११९ | ४ | मेयो | , | " | मेयो | मेयो |
| १२० | ७ | तदा भायाण | , | " | भायाण | भायाण |
| १२१ | ३ | मुक्कता | , | , | | मुक्कता |
| १२२ | ७ | इमायणे | | | इमाणि अट्ट | , |
| १२३ | १ | परुषणा ण | , | " | परुषणा | , |
| १२४ | १ | ततोऽसत्येपु | ततो सत्येप | सत्येप | ततोऽसन्न | " |
| १२५ | ३ | सतोऽपि | | , | सतापि | |
| १२६ | ३ | दिवत | | , | | दिवत |
| १२७ | १० | अट्टि | | , | | अट्टि |
| १२८ | ५ | सद्धमायो | , | , | सद्धमायो | , |
| १२९ | २ | कुत्त | , | , | कुत्त | , |

| पति | अ | आ | क | स | मुद्रित |
|-----|-------------------|-------------------|-------------------|----------------|-------------------|
| ४ | रयानानुरपक्षेः | " | " | रयानोत्पक्षे | |
| ५ | क्षयोपशमोप
शमन | क्षयोपशमन | | | क्षयोपशमोप
शमन |
| ३ | करणनाम | " | " | | करणनाम |
| १ | देशी | " | " | देश | " |
| २ | राश्य | राये | राश्य | " | " |
| ६ | तान् | " | " | तान् | तेषु |
| ६ | स्वात्पो | " | " | स्वापा | , |
| ६ | क्षेयमभावि | " | " | क्षेयमभावि | , |
| १ | माक्षिष्ट | " | " | | माक्षिष्ट |
| ८ | स्वापय | " | " | | स्वापयतनि |
| | तन्तु भवति | " | " | तद्-गति | " |
| | तद्भवति | | | | |
| ४ | टष्टिषु | टष्टवादिषु | " | | टष्टिषु |
| ९ | तठ्ठय | तठ्ठय | तठ्ठय | तठ्ठता | " |
| १० | मधुक्तमुक्तमुत् | " | " | | मधुक्तमुत् |
| ४ | तद्धो | तद्धो ण | ताथ तद्धो | | तद्धो |
| १ | आहारिपकदि | आहारिदि | आहारियाहय | | आहारिपकदि |
| | याण | रिपकम्माण | कदियाण | | याप |
| १ | अप्पणो | तद्धो अप्पणो | अप्पणो | | , |
| ७ | गमियमिक् | " | , | गमिय | , |
| ३ | स्वयतास्ता | " | , | | स्वयतास्वयतास्ता |
| २ | स्वादेशा | , | | स्वादेशा | स्वादेशा |
| ५ | स्वास्वजनः | , | , | स्वास्वजनः | |
| २ | माद्य | माद्य | माद्य | | माद्य |
| ७ | विट्ठ | | | | विट्ठ |
| ११ | प्राक्त्वादिमाधित | प्राक्त्वादिमाधित | प्राक्त्वादिमाधित | | |
| | पृत्तयः | तपृत्त | पितृपृत्तयः | | |
| ७ | सप्तनिपात | | , | , | सप्त निपात |
| ६ | मादप्रयानो | , | , | स्वात् प्रयानो | |
| ४ | सप्तनस्वे | , | , | सप्तनस्वे | |
| | सप्तनस्वे | | , | सप्तनस्वे | |
| | मुक्तस्वस्वमाद | | " | मुक्तस्वस्वमाद | |

| पृष्ठ | पङ्क्ति | अ | आ | ग | ग | ग | सुट्ट |
|-------|---------|-----------------|-------------------------|------------|----------|-----------------|-------|
| " | ७ | सजोगिनेगि | सजोगिनेगि | | | सजोगिनेगि | " |
| २८० | ७ | तत्रागर्जयस्य | तत्रागर्जयस्य तत्रागर्ज | | | | " |
| | | | तत्रायनगर्जयस्य | | | | " |
| | | | स्यस्य | | | | " |
| ३९२ | २ | मिस्सहायजोगो | " | " | | मिस्सहाय | |
| ३९३ | ५ | पूत शरीर | " | " | | पूत शरीर | |
| ३९८ | ३ | ततश्च द्विहेतु | " | " | | ततश्च द्विहेतु | |
| ३०२ | ३ | सर्गघाति | " | " | | सर्गघाति | |
| " | १० | यतेषु | " | " | | यतेषु | |
| ३०५ | ३ | धारणामायाग | धारणाग | धारणामायाग | " | | |
| ३०६ | १ | ऽपथा न | " | " | | ऽपथा | |
| ३१६ | २ | यत्नेनोत्तम | " | " | | यत्नेनोत्तम | |
| ३१९ | २ | प्रवृत्त्यसूत्र | " | " | | प्रवृत्त्यसूत्र | |
| " | ३ | कुतो भवेन् | " | " | | कुतो भवेन् | |
| ३२० | ८ | तत्र तु न | " | " | | तत्र तु न | |
| " | ७ | सन्त्येताभ्या | " | " | | सन्त्येताभ्या | |
| ३२१ | ७ | प्राप्तो यी | " | " | | प्राप्तो यी | |
| ३२४ | ७ | विद्यमान | नियमान | नियमान | विद्यमान | | |
| ३२५ | ८ | सजदासजद् | सजदासजद् | " | | | |
| | | द्वाणे | सजद्द्वाणे | | | | |
| ३२६ | १० | महद्वयो मु य ण | " | " | | महद्वयो मु य ण | |
| | | अहद्वयो वा | | | | अहद्वयो वा | |
| ३३४ | ६ | नम्यनारमस्य | " | " | | नम्यनारमस्य | |
| ३३७ | ७ | उपरिम | उपरिम | " | | उपरिम उपरिम | |
| | | | उपरिम | | | | |
| ३३८ | ३ | नुपशान्तास्त्र | " | " | | नुपशान्तास्त्र | |
| " | ७ | तनुतु न | तनुतु न | " | | तनुतु न | |
| ३४२ | १ | पुम्ह | " | " | | पुम्ह | |
| " | २ | समाणा | " | " | | समाणा | |
| ३५७ | ३ | शब्दस्य | " | " | | शब्दस्य | |
| " | ४ | नि स्तानु | " | " | | नि स्तानु | |
| ३५८ | ८ | आमेयमासु | " | " | | आमेयमासु | |
| ३६३ | ११ | नामिधन | " | " | | नामिधन | |
| ३६५ | १ | तद्वयनि | " | " | | तद्वयनि | |

| | पाति | थ | आ | व | स | मुनि |
|-----|------|-----------------|---------------|---------------|---|------------|
| ३३६ | १ | सयमाहेदा | | | | सयमं |
| ३३६ | ३० | सयममयत | | | | सयमामयत |
| ३३७ | १ | नाममधिष्यन् | सयमसयतस्य सय | सयत | | सयम |
| ३३९ | | दोष सामेई | अधयस्य | | | सयम |
| ३४० | १ | गुहिसयत | | | | नामगमिष्य |
| " | ७ | मूत्रे | दोष समिद | | | |
| ३४१ | ३० | पादे | | | | दोष रूपमिद |
| ३४३ | ४ | सजमो | विशिष्यन्त्रे | मूत्रे | | गुहिसयत |
| ३४ | | निमग्राप्ताना | पादे | पादत | | |
| ३४५ | ३ | निबधनायेष | सजमो | | | सजमो |
| ३४५ | ४ | गुणस्य गुणस्थान | निमग्राप्ताना | निमग्राप्ताना | | |
| ३४५ | ५ | प्रमाणनिरु | निबधनाय | निबधनायेष | | |
| ३४५ | ६ | नियम | भावि | | | |
| " | ९ | न दर्शनस्य | गुणस्य गुण | गुणस्थान | | |
| ३८१ | ६ | विषय | स्थान निरु | प्रमाणनिरु | | |
| ३८१ | ८ | ज्ञानदर्शन | | | | |
| ३८१ | ८ | पापस्थि | | | | |
| ३८१ | ९ | दृश्य | | | | |
| ३८२ | ८ | पेशया ने | | | | |
| ३८३ | ७ | गच्छता | | | | |
| ३८४ | १ | निष्कन्धो | | | | |
| ३९ | ६ | स्याय | | | | |
| ४०२ | ७ | तिरिक्त | | | | |
| ४०३ | ८ | सप्तदशमजरा | | | | |
| ४०३ | ९ | | सप्तदशमजरा | | | |
| ४०४ | १ | धर्मयन समर्थ | सप्तदश | | | |
| ४०५ | ८ | सप्तद | सप्तद | | | |
| ४० | ८ | पञ्चता | सप्तद-सप्तद | | | |

प्रतियोगे छटे हुए पाठ

THE WISCONSIN LEGISLATURE,

—

715

[illegible]

विशेष टिप्पण

गुणेना - प्रथम सत्याग पृष्ठ ७४ आर दूसरा पक्ष ११ नाथ्य । ।

१. 'मिर्ता' सुन्ती एक गाथा वसुधाविधायकायाम् निरा प्रसारम् पारि जानी ६-

पारस भर्गवी जा दुमण निज्या कर्मिल पारथ हस ।

श्रीराम पुण्याहव्याख्या ॥ १०१ ॥

२१ 'दक्षितो यय' इत्या पाठ भागवती प्रथिम सर्ग ८, आर हम् पाठक न ज्ञानमे अधका
 नाम्नाम्भी टीका धर्मता ८, किन्तु पाठ-विशय करन समये भागवत प्रान्द हमा
 नामने न होयेमे हम उगे छोड़ सर्ग नके आर किमी प्रकाश अध-नमान किन्ता
 गर। पर जान पड़ता ह कि अ भ्यर क प्रतियोग्य पर भागवती साभा न १० क
 '(जिणि) देदि तो नय' पाठमे त्रिपिबाराह दृष्टि-दायमे भागवत ह। मने गि। नान
 इन मयी प्रतियोग्य भवे दे। (दक्षिणे प्रतियोग्य पाठ भवे)

[illegible]

विभिन्न कौशल प्रतिभा महात्मा-सदस्य-गिहानु । ४०३ ।

[illegible]

31 - जिलासायि दहल पुनपनाशिया बगदायसिमय म ।। दगा दहल व म ।
 भयुपादम 'दलक' (दह) बिया दगा द ।। दहल दलक म ।। दलक दलक म ।।
 (दह) मी द ।। दलक द ।। (दह) भूमिका व ।। पुनपनाशिया बगदायसिमय म ।।



